अंगुत्तर-निकाय

[चतुर्थ भाग]

[illegible] कलकत्ता

अंगुत्तर - निकाय

[चतुर्थ भाग]

[नवक-निपात, दसक-निपात, एकादसक-निपात]

अनुवादक

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

प्रकाशक

महाबोधि सभा, कलकत्ता

प्रकाशक :

एन. जिनरत्न महाथेरो

मंत्री,

महाबोधि सभा, कलकत्ता

*   *   *

मूल्य :

[redacted] मात्र

*   *   *

मुद्रक :

मोहनलाल भट्ट

राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

*   *   *

•

विद्यालंकारपरिवेणाधिपति
किरिवत्तुडुवे पञ्ञासार नायकमहास्थविर पादयन् वहंसे
वेतटयि

•

प्रकाशकीय

पवित्र पालि-त्रिपिटकके सुत्तपिटकके पाँच निकायोंमें अंगुत्तर-निकाय का विशिष्ट स्थान है। शेष चार निकायोंका अधिकांश अनूदित हो चुकनेपर भी अंगुत्तर-निकायका सम्पूर्ण अनुवाद अभी तक हिन्दीमें अप्राप्य था। हम भदन्त आनन्द कौसल्यायनजीके चिर-कृतज्ञ हैं कि उन्होंने "जातक" जैसे महान अनुवाद-कार्यको समाप्त कर अब अंगुत्तर-निकायके अनुवाद-कार्यको हाथमें लिया और हमें यह सूचना देते हुए हर्ष होता है कि इससे पूर्व प्रकाशित तीनों भागोंके अनन्तर उन्होंने यह अन्तिम और चौथा भाग भी समाप्त कर दिया है। इस प्रकार अब सम्पूर्ण अंगुत्तर-निकाय का हिन्दी रूपान्तर प्राप्य हो गया है।

यह हार्दिक संवेगका विषय है कि महाबोधि सभाके जिन भूतपूर्व मन्त्री परलोकवासी देवप्रिय वलीसिंहने अंगुत्तर-निकायके प्रकाशनकी योजनाको अपने हाथमें लिया था, वह इस कार्यको पूरा हुआ न देख सके। उन्हें इस कार्यको सम्पूर्ण हुआ देखकर कितना सन्तोष होता!

हम केन्द्रीय सरकारके भी कृतज्ञ हैं जिसकी कृपासे हमें शास्त्रीय ग्रन्थोंके मूल तथा अनुवाद छापनेके लिए चार हजार रुपए वार्षिकका अनुदान प्राप्त है।

यदि हमें यह सरकारी अनुदान प्राप्त न हुआ होता तो हमें इसमें बड़ा सन्देह है कि हम इस पवित्र कार्यको सम्पूर्ण करनेमें समर्थ सिद्ध होते।

४ ए, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता—१२

मन्त्री
महाबोधि सभा

दो शब्द

१९५८ में अंगुत्तर-निकायके प्रथम भागकी प्रस्तावनामें अंगुत्तर-निकायका परिचय इन शब्दोंमें दिया गया था :—

"सूत्र-पिटक, विनय-पिटक तथा आभिधर्म-पिटक ही बौद्धधर्मके प्रामाणिक त्रिपिटक हैं। इनमें विद्यमान भगवानके उपदेश विद्वानोंकी ऊहापोहके विषय हैं हीं।

"सूत्र पिटक दीर्घ-निकाय, मज्झिम-निकाय, संयुक्त-निकाय, अंगुत्तर-निकाय तथा खुद्दक-निकाय नामक पाँच निकायोंमें विभक्त माना जाता है। अंगुत्तर-निकायकी रचना-शैली सभी दूसरे निकायोंमें विशिष्ट है। इसके 'एकक' निपातमें एक ही एक धर्म (= विषय) का वर्णन है, 'दुक-निपात' में दो-दो धर्मों (= विषयों) का; इसी प्रकार 'तिक-निपात' में तीन-तीन विषयोंका। यही क्रम पूरे ग्यारह निपातों तक चला जाता है। प्रत्येक निपातमें अंकोत्तर-वृद्धि होती चलती है, इसीसे अंगुत्तर-निकाय नाम सार्थक है।

"इस पहले भागमें अंगुत्तर-निकायके प्रथम तीन निपातोंका ही समावेश हो सका है। शेष आठ निपातोंके लिए अनुमानत: पाँच अन्य भाग अपेक्षित होंगे।"

पाँच वर्ष बाद अंगुत्तर-निकायके द्वितीय भागकी प्रस्तावना लिखते समय लिखा गया :—

"अंगुत्तर-निकायके पहले भागमें तीन निपातोंका ही समावेश हो सका था। इस दूसरे भागके अन्तर्गत चतुक्क निपात तथा पञ्चक निपात हैं। शेष छह निपात अनुमानत: तीन भागोंमें समाप्त हो जाएँगे। इस प्रकार आशा है किसी न किसी दिन अंगुत्तर-निकायके पाँचों भाग हिन्दी पाठकोंके हाथों तक पहुँच सकेंगे।"

तीन वर्ष बाद अंगुत्तर-निकायके ही तृतीय भागकी प्रस्तावनामें लिखा गया :—

"अंगुत्तर-निकाय के प्रथम भागका अनुवाद १९५७ ई. में प्रकाशित हो गया था। द्वितीय भागका अनुवाद पूरे छह वर्षके बाद १९६३ ई. में ही प्रकाशित हो सका था। अब तीसरे भागका अनुवाद १९६६ ई. में प्रकाशित हो रहा है। सापेक्ष दृष्टिसे इसे जल्दी ही मानना चाहिए।"

तीसरे भागमें पाँचवाँ, छठा, सातवाँ तथा आठवाँ निपात समाविष्ट थे। शेष केवल तीन निपात रह गए थे। उन तीनोंका समावेश इस चौथे भाग और अन्तिम-भागमें हो जानेसे आरम्भमें अंगुत्तर-निकायका अनुवाद जो पाँच भागोंमें पूरा करनेकी कल्पना थी, वह चार भागोंमें ही पूरी हो गई।

यूँ हिसाब जोड़नेपर कुल जमा चार भागोंके अनुवाद और उनके मुद्रण और प्रकाशनमें दस वर्ष लग जाना समयका कुछ उतना सदुपयोग हुआ नहीं माना जाएगा। अनुवादने तो उतना समय नहीं ही लिया। प्रत्येक भागके अनुवाद-कार्यने तो तीन महीनेसे चार महीने तकका ही समय लिया होगा। किन्तु प्रकाशक कलकत्तामें, मुद्रक वर्धामें और अनुवादक 'आज यहाँ कल वहाँ'! सापेक्ष दृष्टिसे कुछ स्थिर होकर रहा भी तो सुदूर श्रीलंकामें। विलम्बसे ही सही, यह सन्तोष का विषय है कि अंगुत्तर-निकायका अन्तिम खण्ड भी पाठकोंके हाथमें पहुँच रहा है।

राष्ट्रभाषा मुद्रणालय तो धन्यवादका पात्र है ही। विशेष धन्यवादके पात्र हैं मित्रवर श्री. राधेश्याम गौतम, एम. ए.। उन्होंने जिस मनोयोगसे अंगुत्तर-निकायके प्रूफ आदि देखनेका कार्य किया, यदि वह न करते तो मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि आज भी अंगुत्तर-निकायका कुछ अंश अप्रकाशित ही रहता।

अंगुत्तर-निकायका अन्तिम खण्ड पाठकोंके हाथमें सौंपते मुझे यह सोचकर हार्दिक दुःख हो रहा है कि महाबोधि सोसाइटीके जिन महामन्त्री श्री. देवप्रिय वलीसिंहने इस प्रकाशन-योजनाको अपनाया था, वह इसे सम्पूर्ण देखनेके लिए अब इस संसारमें नहीं रहे। अनिच्चा वत संखारा!

भिक्खु-निवास, दीक्षा-भूमि
नागपुर–३

आनन्द कौसल्यायन
१५–३–६९

अंगुत्तर-निकाय

चौथा भाग

सूची

दसवाँ निपात

ग्यारहवाँ निपात



अंगुत्तर-निकाय

[चतुर्थ भाग]

अंगुत्तर निकाय

चौथा भाग

नौवाँ निपात

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

१. सम्बोधि वर्ग

१. सम्बोधि सुत्त

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार कर रहे थे। भगवानने वहाँ भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

" भिक्षुओ, यदि दूसरे सम्प्रदायोंके परिव्राजक यह प्रश्न करें कि आयुष्मानो! जिन गुणों (–धर्मों) के होनेसे सम्बोधि (= ज्ञान) की प्राप्ति होती है, वे गुण सबसे अधिक किस एक बात पर निर्भर करते हैं? तो हे भिक्षुओ, तुम उन दूसरे सम्प्रदायोंके परिव्राजकोंका कैसे समाधान करोगे?"

" भन्ते! भगवानकी देशना पर ही हमारा ज्ञान निर्भर करता है। हम भगवानसे सुनकर इस बातको ग्रहण करेंगे।"

"तो भिक्षुओ, सुनो। अच्छी तरह ग्रहण करो। कहता हूँ।"

"भन्ते अच्छा" कह कर उन भिक्षुओंने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवानने यह कहा—" भिक्षुओ, यदि दूसरे सम्प्रदायोंके परिव्राजक यह प्रश्न करें कि आयुष्मानो! जिन गुणों (= धर्मों) के होनेसे सम्बोधि (= ज्ञान) की प्राप्ति होती है, वे गुण सबसे अधिक किस एक बात पर निर्भर करते हैं? तो हे भिक्षुओ, तुम उन दूसरे सम्प्रदायोंके परिव्राजकोंकी जिज्ञासाका यह कह कर समाधान करो कि आयुष्मानो! भिक्षु सत्संगतिमें रहता है, अच्छी संगतिमें रहता है, भली संगतिमें रहता है। आयुष्मान्! जिन गुणों (= धर्मों)के होनेसे सम्बोधि (= ज्ञान)की प्राप्ति होती है, वे गुण अपनी वृद्धिके लिए सबसे पहले सत्संगति पर निर्भर करते हैं।"

"आयुष्मानो, इसके अतिरिक्त भिक्षु सदाचारी होता है, प्रातिमोक्षके नियमोंका पालन करने वाला, शिष्टाचार पालन करनेवाला, छोटेसे छोटे दुष्कर्मोंके करनेसे भी बचने वाला, शिक्षाओंका सम्यक् पालन करने वाला। आयुष्मानो! जिन गुणों (= धर्मों) के होनेसे सम्बोधि (= ज्ञान) की प्राप्ति होती है, वे गुण अपनी वृद्धिके लिए इस दूसरी बात पर भी निर्भर करते हैं।

"आयुष्मानो, इसके अतिरिक्त भिक्षु ऐसी बातचीतका अनायास करनेवाला, प्रचुर मात्रामें करने वाला होता है, जो शुद्ध होती है, जो चित्तकी विमुक्तिमें सहायक होती है—जैसे अल्पेच्छ-कथा, सन्तोष-कथा, एकान्तवास-कथा, अनासक्ति-कथा, प्राक्रम-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा, प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति-कथा तथा विमुक्ति ज्ञान-दर्शन-कथा। आयुष्मानो! जिन गुणों (= धर्मों) के होनेसे सम्बोधि (= ज्ञान) की प्राप्ति होती है, वे गुण अपनी वृद्धिके लिये इस तीसरी बात पर भी निर्भर करते हैं।

"आयुष्मानो, इसके अतिरिक्त भिक्षु अकुशल-कर्मोंके त्यागके प्रति तथा कुशल-कर्मोंके अभ्यासके प्रति दृढ़ होता है, पराक्रमी होता है, सतत प्रयत्न करनेवाला होता है। आयुष्मानो, जिन गुणोंके (= धर्मों) होनेसे सम्बोधि (= ज्ञान) की प्राप्ति होती है, वे गुण अपनी वृद्धिके लिए इस चौथी बात पर भी निर्भर करते हैं।

"आयुष्मानो, इसके अतिरिक्त भिक्षु (वस्तुओंकी) उत्पत्ति और निरोध सम्बन्धी, आर्य, बींधनेवाली, सम्यक् रूपसे दुख-क्षयकी ओर ले जानेवाली प्रज्ञासे युक्त होता है। आयुष्मानो, जिन गुणोंके (= धर्मों) होनेसे सम्बोधि (= ज्ञान) की प्राप्ति होती है, वे गुण अपनी वृद्धिके लिए इस पाँचवीं बात पर निर्भर करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सत्संगतिमें रहता है, अच्छी संगतिमें रहता है, भली संगतिमें रहता है, उससे यह आशाकी जा सकती है कि वह सदाचारी होगा और होगा प्रातिमोक्षके नियमोंका पालन करनेवाला, शिष्टाचार पालन करनेवाला, छोटेसे छोटे दुष्कर्मोंसे भी बचनेका प्रयत्न करने वाला, शिक्षाओंका सम्यक् पालन करने वाला।

भिक्षुओ, जो भिक्षु सत्संगतिमें रहता है, अच्छी संगतिमें रहता है, भली संगति में रहता है, उससे यह आशा की जा सकती है कि वह भिक्षु ऐसी बातचीतका अनायास करने वाला, प्रचुर मात्रामें करने वाला होगा, जो शुद्ध होगी, जो चित्त की विमुक्ति में सहायक होगी—जैसे अल्पेच्छ कथा, सन्तोष-कथा, एकान्तवास-कथा, अनासक्ति कथा, प्राक्रम-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा, प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति-कथा तथा विमुक्ति-ान-दर्शन-कथा।

भिक्षुओ, जो भिक्षु सत्संगतिमें रहता है, अच्छी संगतिमें रहता है, भली संगति में रहता है, उससे यह आशा की जा सकती है कि वह भिक्षु अकुशल-कर्मोंके त्यागके प्रति तथा कुशल-कर्मोंके अभ्यासके प्रति दृढ़ होगा, पराक्रमी होगा तथा सतत प्रयत्न करने वाला होगा।

भिक्षुओ, जो भिक्षु सत्संगतिमें रहता है, अच्छी संगतिमें रहता है, भली संगतिमें रहता है, उससे यह आशा की जा सकती है कि वह भिक्षु (वस्तुओंकी) उत्पत्ति और निरोध सम्बन्धी, आर्य, बींधने-वाली, सम्यक् रूपसे दुख-क्षयकी ओर ले जाने वाली प्रज्ञासे युक्त होगा।

भिक्षुओ, उस भिक्षुको चाहिये कि इन पाँच बातोंका अभ्यास हो जाने पर और भी चार बातोंका अभ्यास करे—रागका प्रहाण करनेके लिए अशुभ-भावनाका अभ्यास करे, व्यापाद (= क्रोध) का प्रहाण करनेके लिये मैत्री–भावनाका अभ्यास करे, वितर्कोंके प्रहाणके लिये आनापान स्मृतिका अभ्यास करे तथा अहंकारके प्रहाणके लिए अनित्य-संज्ञाका अभ्यास करे। भिक्षुओं, जो अनित्य-संज्ञाका अभ्यास करता है, उसकी अनात्म–संज्ञा स्थिर होती है। जिसकी अनात्म-संज्ञा स्थिर होती है, उसके अहंकारका विनाश होता है, वह इसी शरीरमें निर्वाणको प्राप्त करता है।

२. निस्सयसुत्त

उस समय एक भिक्षु जहाँ भगवान (बुद्ध) थे, वहाँ गये, भगवानके पास जाकर. . . . . एक ओर बैठे हुए उस भिक्षुने भगवानसे निवेदन किया 'भन्ते! निश्रय (= आश्रय)–सम्पन्न, निश्रय-सम्पन्न कहा जाता है, किन गुणोंके होनेसे भन्ते! भिक्षु निश्रय-सम्पन्न होता है, ?"

"भिक्षु, यदि भिक्षु श्रद्धावान होनेके कारण, अकुशल-कर्मोंका त्याग कर, कुशल-कर्मोंकी भावना (= अभ्यास) करता है, तो उसके अकुशल-कर्म प्रहीण हो जाते हैं। भिक्षु यदि भिक्षु लज्जाके कारण. . . . . (पाप) भीरुताके कारण. . . . वीर्य के कारण. . . . . प्रज्ञावान् होनेके कारण अकुशल-कर्मोंका त्याग कर, कुशल-कर्मों की भावना करता है, तो उसके अकुशल-कर्म प्रहीण हो जाते हैं। भिक्षुका वही अकुशल कर्म सम्यक् प्रकार प्रहीण हुआ कहा जा सकता है, जो कि आर्य (= श्रेष्ठ) प्रज्ञाके कारण प्रहीण हुआ हो।

"हे भिक्षु! इस प्रकार उस भिक्षुको इन पाँच धर्मों (= गुणों) में प्रतिष्ठित हो कर इन चार आश्रयों (= उपनिश्रयों) के आश्रित रहकर विहार करना चाहिए। कौनसे चार? भिक्षु, एक भिक्षु विचारपूर्वक एक (चीवर पिण्डपात

आदि) का सेवन करता है, विचारपूर्वक एक (शारीरिक वेदनाओं आदि) को सहन करता है, विचारपूर्वक एक (चण्ड हाथी आदि) से बचकर चलता है तथा विचार-पूर्वक एक (अकुशल संकल्पों) की उपेक्षा करता है। हे भिक्षु! इस प्रकार भिक्षु निश्चय-सम्पन्न होता है।"

३. मेघियसुत्त

एक समय भगवान् चालिका (प्रदेश) के चालिकापर्वत पर विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् मेघिय भगवानके सेवक (= उपट्ठाक) थे। तब आयुष्मान् मेघिय जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। पास जाकर भगवान्को नमस्कार कर एक ओर खड़े हुए। एक ओर खड़े हुए आयुष्मान् मेघियने भगवान्से यह कहा— "भन्ते! मैं जन्तुग्राममें भिक्षाटनके लिये जाना चाहता हूँ।"

"मेघिय! जिस (काम) का तू समय समझे, (उसे करे)।"

तब आयुष्मान् मेघिय पूर्वाह्न समय पहन कर, पात्र चीवर ले जन्तुग्राममें भिक्षाटनके लिये प्रविष्ट हुए। जन्तुग्राममें भिक्षाटन कर, भिक्षाचर्य्याके अनन्तर निमिकाळ नदीके किनारे पहुँचे। आयुष्मान् मेघियने निमिकाळ नदीके तटपर घूमते हुए एक सुन्दर रमणीय आम्रवन देखा। उसे देखकर उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—"यह आम्रवन रमणीय है। यह योगाभ्यास करनेकी इच्छा रखने वालेके लिए अनुकूल है। यदि भगवान मुझे अनुमति दें, तो मैं यहाँ अभ्यास करनेके लिए चला आऊँ।"

तब आयुष्मान् मेघिय जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान मेघियने भगवानसे यह कहा—"भन्ते! मैं पूर्वाह्न समय पहनकर पात्र-चीवर ले जन्तुग्राममें भिक्षाटनके लिये प्रविष्ट हुआ। जन्तुग्राममें भिक्षाटन कर, भिक्षाचर्य्याके अनन्तर जहाँ निमिकाळ नदीका तट था, वहाँ पहुँचा। भन्ते! निमिकाळ नदी के किनारे पर विचरते समय मैंने सुन्दर रमणीय आम्रवन देखा। उसे देखकर मेरे मनमें यह हुआ 'यह आम्रवन रमणीय है। यह योगाभ्यासकी इच्छा रखनेवालेके लिए अनुकूल है। यदि भगवान् मुझे अनुमति दें, तो मैं यहाँ अभ्यास करनेके लिए चला आऊँ। यदि भगवान् मुझे अनुमति दें, तो मैं वहाँ (योग) अभ्यास करनेके लिए चला जाऊँ।"

"मेघिय! थोड़ी प्रतीक्षा कर। मैं यहाँ अकेला हूँ। तबतक कोई दूसरा भिक्षु यहाँ आ जाता है।"

दूसरी बार भी आयुष्मान् मेघियने भगवान्को यह कहा—"भन्ते! भगवान् को तो अब कुछ और करना शेष नहीं रहा है। भगवान्के कृतकर्मोंका अब 'विपाक' नहीं है। भन्ते! मुझे तो अभी कुछ और करना शेष है। मेरे तो कृतकर्मों का 'विपाक' है। यदि भगवान्! मुझे अनुमति दें तो मैं वहाँ 'अभ्यास' के लिए चला जाऊँ।"

"मेघिय! थोड़ी प्रतीक्षा कर। मैं यहाँ अकेला हूँ। तबतक कोई दूसरा भिक्षु यहाँ आ जाता है।"

तीसरी बार भी आयुष्मान् मेघियने भगवान् को यह कहा—"भन्ते! भगवान्को तो अब कुछ और करना शेष नहीं रहा है। भगवान्के कृतकर्मोंका अब 'विपाक' नहीं है भन्ते! मुझे तो अभी कुछ और करना शेष है। मेरे तो कृतकर्मोंका 'विपाक' है। यदि भगवान् मुझे अनुमति दें तो मैं वहाँ 'अभ्यास' के लिए चला जाऊँ।"

'मेघिय! जब 'अभ्यास' की बात करते हो, तो फिर क्या बार-बार मना करूँ? मेघिय! जिस कार्यके करनेका तू समय समझे, (उसे कर)।'

तब आयुष्मान् मेघिय आसनसे उठ, भगवानको अभिवादन कर, प्रदक्षिणाकर जहाँ वह आम्रवन था, वहाँ पहुँचे। वहाँ जा, उस आम्रवनमें प्रविष्ट हो, एक वृक्षके नीचे दिनमें बिहार करनेके लिए बैठे। उस समय उस आम्रभवनमें विहार करते हुए आयुष्मान् मेघियके मनमें तीन अकुशल-संकल्प ही प्रचुरतासे आने लगे—'काम (= राग संकल्प, व्यापाद (= द्वेष) संकल्प तथा विहिंसा-संकल्प'। तब आयुष्मान् मेघियके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—'अरे! यह कितने आश्चर्यकी बात है। अरे! यह कितनी विचित्र बात है कि मैं श्रद्धापूर्वक घरसे बे-घर हुआ हूँ और मैं तीन अकुशल संकल्प विकल्पोंसे घिरा हूँ—'काम (= राग) संकल्पोंसे, व्यापाद (= द्वेष) संकल्प तथा विहिंसा-संकल्पोंसे।'

तब आयुष्मान मेघिय जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् मेघियने भगवान को यह कहा—

"भन्ते! उस आम्रवनमें विचरते समय मेरे मनमें तीन अकुशल संकल्प विकल्प प्रचरतासे पैदा होते हैं—काम (= राग) संकल्प, व्यापाद (= द्वेष) संकल्प तथा विहिंसा-संकल्प। तब भन्ते! मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—'अरे! यह कितने आश्चर्यकी बात है। अरे यह कितनी विचित्र बात है कि मैं श्रद्धापूर्वक घर

बे-घर हुआ हूँ और मैं तीन अकुशल-संकल्प-विकल्पोंसे घिरा हूँ—'काम (=राग) संकल्पसे, व्यापाद (=द्वेष) संकल्पसे तथा विहिंसा-संकल्पसे।"

"मेघिय! ये पाँच बातें हैं जो अपरिपक्व चित्त-विमुक्तिको परिपक्व बनाती हैं। कौनसी पाँच? मेघिय! भिक्षु सत्संगतिमें रहता है, अच्छी संगतिमें रहता है, भली संगतिमें रहत है। मेघिय! यह पहली बात है जो अपरिपक्व चित्त-विमुक्तिको परिपक्व बनाती है।"

"मेधिय! इसके अतिरिक्त भिक्षु सदाचारी होता है, प्रातिमोक्षके नियमोंका पालन करने वाला, शिष्टाचार पालन करने वाला, छोटेसे छोटे दुष्कर्मोंके करनेसे भी बचने वाला, शिक्षाओंका सम्यक् पालन करने वाला, मेघिय! यह दूसरी बात है जो अपरिपक्व चित्त-विमुक्तिको परिपक्व बनाती है।

"मेघिय! इसके अतिरिक्त भिक्षु ऐसी बातचीत का अनायास करने वाला, प्रचुर मात्रामें करने वाला होता है, जो शुद्ध होती है, जो चित्तकी विमुक्तिमें सहायक होती है—जैसे अल्पेच्छ-कथा, सन्तोष-कथा, एकान्त-वास-कथा, अनासक्ति-कथा, पराक्रम-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा, प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति-कथा तथा विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन कथा। मेघिय! यह तीसरी बात है जो अपरिपक्व चित्त-विमुक्ति को परिपक्व बनाती है।

मेघिय! इसके अतिरिक्त भिक्षु अकुशल-कर्मोंके त्यागके प्रति दृढ़ होता है, पराक्रमी होता है, सतत प्रयत्न करने वाला होता है। मेधिय! यह चौथी बात है जो अपरिपक्व चित्त-विमुक्तिको परिपक्व बनाती है।

मेघिय! इसके अतिरिक्त भिक्षु (वस्तुओंकी) उत्पत्ति और निरोध सम्बन्धी, आर्य, बींधनेवाली, सम्यक् रूपसे दुखक्षयकी ओर ले जाने वाली प्रज्ञासे युक्त होता है। मेघिय! यह पाँचवीं बात है जो अपरिपक्व-चित्त विमुक्तिको परिपक्व बनाती है।

"मेघिय! जो भिक्षु सत्संगतिमें रहता है, अच्छी संगतिमें रहता है, भली संगतिमें रहता है, उससे यह आशा की जा सकती है कि वह सदाचारी होगा.... शिक्षाओंका सम्यक् पालन करने वाला होगा।

"मेघिय! जो भिक्षु सत्संगतिमें रहता है, अच्छी संगतिमें रहता है, भली संगतिमें रहता है, उससे यह आशा की जा सकती है कि वह भिक्षु ऐसी बातचीतका करने वाला, प्रचुर मात्रामें करने वाला होगा, जो शुद्ध होगी, जो चित्तकी विमुक्तिमें सहायक सिद्ध होगी—जैसे अल्पेच्छ कथा.... विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन कथा।

"मेघिय! जो भिक्षु सत्संगतिमें रहता है, अच्छी संगतिमें रहता है, भली संगतिमें रहता है, उससे यह आशा की जा सकती है कि वह भिक्षु अकुशल-धर्मोंके त्यागके प्रति . . . . सतत प्रयत्न करने वाला होगा। मेघिय! जो भिक्षु सत्संगतिमें रहता है, अच्छी संगतिमें रहता है, भली संगतिमें रहता है, उससे यह आशा की जा सकती है कि वह भिक्षु (वस्तुओंकी) उत्पत्ति और निरोध सम्बन्धी. . . . प्रज्ञासे युक्त होगा।

मेघिय! उस भिक्षुको चाहिए कि इन पाँच बातोंका अभ्यास हो जाने पर और भी चार बातोंका अभ्यास करे—रागका प्रहाण करने के लिए अशुभ-भावनाका अभ्यास करे, व्यापाद (=क्रोध) का प्रहाण करनेके लिए मैत्री-भावनाका अभ्यास करे, वितर्कोंके प्रहाणके लिए आनापान स्मृतिका अभ्यास करे तथा अहंकारके प्रहाणके लिए अनित्य-संज्ञाका अभ्यास करे। मेधिय, जो अनित्य संज्ञाका अभ्यास करता है, उसकी अनात्म-संज्ञा स्थिर होती है। जिसकी अनात्म-संज्ञा स्थिर होती है, उसके अहंकारका विनाश होता है, वह इसी शरीरमें निर्वाणको प्राप्त करता है।

४. नन्दकसुत्त

एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। उस समय उपस्थान शालामें बैठे हुए आयुष्मान् नन्दक भिक्षुओंको धार्मिक प्रवचनसे शिक्षित कर रहे थे, प्रेरित कर रहे थे, उत्साहित कर रहे थे तथा आनंदित कर रहे थे। उस समय भगवान् संध्या हो जाने पर एकान्त-सेवनसे उठ जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर प्रवचनके समाप्त होने तककी प्रतीक्षा करते हुए बाहर बरामदेमें खड़े रहे। जब भगवान् ने जाना कि धार्मिक प्रवचन समाप्त हो गया तो वे खाँसे और कुण्डी खटखटायी। भिक्षुओंने भगवानके लिए द्वार खोला।

तब भगवान उपस्थान-शालामें प्रविष्ट हुए और बिछे आसन पर बैठे। बैठ चुकने पर भगवानने आयुष्मान् नन्दकको यह कहा "नन्दक! तूने भिक्षुओंको बड़ा लम्बा उपदेश दिया। धार्मिक-प्रवचनकी समाप्ति की प्रतीक्षामें खड़े-खड़े मेरी पीठ दुखने लग गई।"

ऐसा कहे जाने पर आयुष्मान् नन्दकको लज्जा अनुभव हुई और वह बोले—'भन्ते! हम नहीं ज़ानते थे कि भगवान् बरामदेमें खड़े हैं। भन्ते! यदि हम जानते कि आप बरामदेमें खड़े हैं, तो प्रवचन इतना (लम्बा) न होता।"

भगवानने जब देखा कि आयुष्मान नन्दक लज्जाका अनुभव कर रहे हैं तो उन्होंने आयुष्मान नन्दकको कहा—"नन्दक! बहुत अच्छा। बहुत अच्छा।

नन्दक ! श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हुए तुम्हारे सदृश कुल-पुत्रोंके यही योग्य है कि तुम धार्मिक वार्ता करते रहो। नन्दक ! एकत्र होने पर दो बातोंमेंसे एक ही करणीय होती है या तो धार्मिक बातचीत या आर्य मौन। नन्दक ! यदि भिक्षु श्रद्धावान् हो किन्तु सदाचारी न हो तो उसमें उतनी कमी होती है। उसे उस कमीको पूरा कर लेना चाहिए—'मैं श्रद्धावान्के साथ-साथ शीलवान् भी होऊँ।' नन्दक ! जब भिक्षु श्रद्धावानके साथ-साथ शीलवान् भी होता है, तो उसकी उस कमीकी पूर्ति हो जाती है।

"नन्दक ! भिक्षु श्रद्धावान् भी होता है, शीलवान् भी होता है, किन्तु वह अन्दरूनी चित्त-समाधि से रहित होता है। उसमें उतनी कमी होती है। उसे कमीको पूरा कर लेना चाहिए—'मैं श्रद्धावान् तथा शीलवान् भी होऊँ, और मुझे अन्दरूनी चित्त-समाधि भी प्राप्त हो।' नन्दक ! जब भिक्षु श्रद्धावान् तथा शीलवान दोनों होता है, और उसे अन्दरूनी चित्त-समाधि भी प्राप्त होती है, तो उसकी उस कमीकी पूर्ति हो जाती है।

"नन्दक ! भिक्षु श्रद्धावान् भी होता है, शीलवान भी होता है, उसे अन्दरूनी चित्त-समाधि भी प्राप्त होती है, किन्तु वह प्रज्ञा-धर्म-विदर्शनासे रहित होता है। नन्दक ! जैसे कोई चतुष्पाद प्राणी हो। उसका एक पैर ऊना हो, छोटा हो। उसमें उतनी कमी होती है। उसे उस कमीको पूरा कर लेना चाहिए—मैं श्रद्धावान तथा शीलवान् भी होऊँ। मुझे अन्दरूनी चित्त समाधि भी प्राप्त हो तथा मैं प्रज्ञा-धर्म-विर्शनासे भी युक्त होऊँ।'

"नन्दक ! जब भिक्षु श्रद्धावान् तथा शीलवान् दोनों होता है, और उसे अन्दरूनी चित्त समाधि भी प्राप्त होती है तथा वह प्रज्ञा-धर्म-विदर्शनासे भी युक्त होता है, तो उसकी उस कमीकी पूर्ति हो जाती है।

भगवानने यह कहा। इतना कहकर भगवान आसनसे उठ विहारमें चले गए। भगवानके चले जानेके थोड़े ही समय बाद आयुष्मान् नन्दकने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—आयुष्मानों ! भगवानने अभी चार पदोंसे ही सम्पूर्ण परिशुद्ध श्रेष्ठ जीवनकी व्याख्या कर विहारमें प्रविष्ट हुए हैं—नन्दक ! यदि भिक्षु श्रद्धावान् होता है, किन्तु शीलवान नहीं होता। यह उसकी एक कमी होती है। उसे उस कमीकी पूर्ति कर लेनी चाहिए—मैं श्रद्धावान् तथा शीलवान होऊँ....... अन्दरूनी चित्त-समाधि तथा प्रज्ञा-धर्म-विदर्शनासे युक्त होऊँ—इस प्रकार उसकी इस कमीकी पूर्ति होती है।

"आयुष्मानों ! समय समयपर धर्म-श्रवण करनेके, धर्मके विषयमें बातचीत करनेके पाँच शुभ-परिणाम होते हैं। कौनसे पाँच ? आयुष्मानो ! एक भिक्षु दूसरे भिक्षुओंको आदिमें कल्याणकारक, मध्यमें कल्याणकारक तथा अन्तमें कल्याणकारक अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका उपदेश देता है। आयुष्मानो ! जब-जब भिक्षु दूसरे भिक्षुओंको आदिमें कल्याण कारक, मध्यमें कल्याण कारक तथा अन्तमें कल्याणकारक, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित, सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका उपदेश देता है, तब-तब वह शास्ताको प्रिय लगने वाला होता है, अच्छा लगने वाला होता है, गौरवार्ह होता है, आदरणीय होता है। आयुष्मानो ! समय समयपर धर्म-श्रवण करनेका, धर्मके विषयमें बातचीत करनेका यह पहला शुभ-परिणाम होता है।

"फिर आयुष्मानो। एक भिक्षु दूसरे भिक्षुओंको आदिमें कल्याणकारक, मध्यमें कल्याणकारक तथा अन्तमें कल्याणकारक, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका उपदेश देता है। आयुष्मानो ! जैसे जैसे भिक्षु दूसरे भिक्षुओंको आदिमें अल्याणकारक...... उपदेश देता है, वैसे-वैसे उसे धर्मोपदेशके अर्थों तथा भावोंका अधिकाधिक अनुभव होता है। आयुष्मानो ! समय समयपर धर्मश्रवण करनेका, धर्मके विषयमें बातचीत करनेका यह दूसरा शुभ परिणाम होता है।

"फिर आयुष्मानो ! एक भिक्षु दूसरे भिक्षुओंको आदिमें कल्याणकारक, मध्यमें कल्याणकारक तथा अन्तमें कल्याणकारक, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका उपदेश देता है। आयुष्मानो ! जैसे-जैसे भिक्षु दूसरे भिक्षुओंको आदिमें कल्याणकारक....... उपदेश देता है, वैसे-वैसे वह उन वचनोंके गम्भीर अर्थको अपनी प्रज्ञा द्वारा हृदयंगम करता है। आयुष्मानो ! समय समयपर धर्म-श्रवण करनेका, धर्मके विषयमें बातचीत करनेका यह तीसरा शुभ परिणाम होता है।

"फिर आयुष्मानो ! एक भिक्षु दूसरे भिक्षुओंको आदिमें कल्याणकारक, मध्यमें कल्याणकारक तथा अन्तमें कल्याण कारक, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका उपदेश देता है। आयुष्मानो ! जैसे-जैसे भिक्षु दूसरे भिक्षुओंको आदिमें कल्याणकारक...... उपदेश देता है, वैसे-वैसे उसके साथी उसका अधिकाधिक गौरव करने लगते हैं कि यह आयुष्मान् निश्चयसे या तो (ज्ञान-प्राप्तिके शिखरपर) पहुँच गए हैं अथवा पहुँच जाएँगे। आयुष्मानो ! समय समयपर धर्म-श्रवण करनेका, धर्मके विषयमें बातचीत करनेका यह चौथा शुभ-परिणाम होता है।

"फिर आयुष्मानो! एक भिक्षु दूसरे भिक्षुओंको आदिमें कल्याणकारक, मध्यमें कल्याणकारक तथा अन्तमें कल्याणकारक अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका उपदेश देता है। आयुष्मानो! जैसे-जैसे भिक्षु दूसरे भिक्षुओंको आदिमें कल्याणकारक, मध्यमें कल्याणकारक तथा अन्तमें कल्याणकारक अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका उपदेश देता है, तो जो भिक्षु शैक्ष होते हैं, जिनके चित्तने अभी प्राप्ति नहीं की होती है तथा जो अनुपम निर्वाण (= योग क्षेम) की कामना करते हुए विचरते हैं, वे उस धर्मको सुनकर अप्राप्तकी प्राप्तिके लिए, अनधिकृत पर अपना अधिकार करनेके लिए तथा असाक्षातकृतको साक्षात करनेके लिए प्रयत्न आरम्भ करते हैं। लेकिन जो अर्हत, क्षीणास्रव भिक्षु होते हैं, जिन्होंने अपना जीवनका उद्देश्य प्राप्त कर लिया है, जो कृतकृत्य हो गए हैं, जो भार-विहीन हो गए हैं, जिन्होंने सदर्थकी प्राप्ति कर ली है, जिनके भव-बंधन क्षीण हो गए हैं तथा जो सम्यक् प्रकारसे प्रज्ञा-विमुक्त हैं, वे उस धर्मको सुनकर (इसी) जीवनमें सुखका अनुभव करते हुए विचरते हैं। आयुष्मानो! समय समयपर धर्म-श्रवण करनेका, धर्मके विषयमें बातचीत करनेका यह पाँचवाँ शुभ-परिणाम है। आयुष्मानो! समय समयपर धर्म-श्रवण करनेके, धर्मके विषयमें बातचीत करनेके पाँच शुभ-परिणाम होते हैं।

५. बलसुत्त

भिक्षुओ, ये चार बल हैं। कौनसे चार? प्रज्ञा-बल, पराक्रम (= वीर्य) बल, निर्दोषता-बल, तथा संग्रह-बल। भिक्षुओ, प्रज्ञा-बल किसे कहते हैं? जो कुशल-धर्म हैं, जिन्हें कुशल-धर्म कहा गया है तथा जो अकुशल-धर्म हैं, जिन्हें अकुशल-धर्म कहा गया है; जो धर्म सदोष हैं, जिन्हें सदोष कहा गया है तथा जो धर्म निर्दोष हैं, जिन्हें निर्दोष धर्म कहा गया है; जो धर्म 'कृष्ण' हैं, 'कृष्ण' कहे गए हैं तथा जो धर्म 'शुक्ल' हैं, 'शुक्ल' कहे गए हैं; जो धर्म सेवन करने योग्य हैं, सेवन करने योग्य कहे गए हैं तथा जो धर्म असेवन करने योग्य हैं, असेवन करने योग्य कहे गए हैं, जो धर्म आर्य-जनोंके अयोग्य हैं, आर्य-जनोंके अयोग्य कहे गए हैं तथा जो धर्म आर्य-जनों (= श्रेष्ठ जनों) के योग्य हैं, आर्य जनोंके योग्य कहे गए हैं—ये सभी धर्म प्रज्ञा द्वारा जाने गए होते हैं, सम्यक् प्रकार जाने गए होते हैं—इसे कहते हैं प्रज्ञा-बल। भिक्षुओ, ये प्रज्ञा-बल हैं।

भिक्षुओ, पराक्रम (= वीर्य)-बल किसे कहते हैं? जो अकुशल-धर्म हैं, जिन्हें अकुशल-धर्म कहा गया है; जो सदोष धर्म हैं, जिन्हें सदोष-धर्म कहा गया

है; जो 'कृष्ण' धर्म हैं, जिन्हें 'कृष्ण' धर्म कहा गया है; जो असेवन करने योग्य धर्म हैं, जिन्हें असेवन करने योग्य कहा गया है; जो धर्म आर्य (=श्रेष्ठ) जनोंके अयोग्य हैं, जिन्हें श्रेष्ठ जनोंके अयोग्य कहा गया है—ऐसे सभी 'धर्मों' का त्याग करनेका संकल्प करता है, प्रयास करता है, पराक्रम करता है, चित्तको उधर लगाता है। जो कुशल-धर्म हैं, जिन्हें कुशल-धर्म कहा गया है; जो निर्दोष-धर्म हैं, जिन्हें निर्दोष-धर्म कहा गया है; जो सेवन करने योग्य धर्म हैं, जिन्हें सेवन करने योग्य कहा गया है; जो धर्म आर्य (—श्रेष्ठ) जनोंके योग्य हैं, आर्य जनोंके योग्य कहे गए हैं—ऐसे सभी धर्मोंको प्राप्त करनेका संकल्प करता है, प्रयास करता है, पराक्रम करता है, चित्तको उधर लगाता है। भिक्षुओ, इसे कहते हैं पराक्रम (=वीर्य) बल।

भिक्षुओ, निर्दोषता-बल किसे कहते हैं? भिक्षुओ, आर्य-श्रावकके शारीरिक-कर्म निर्दोष होते हैं, वाणीके कर्म निर्दोष होते हैं, मनके कर्म निर्दोष होते हैं। भिक्षुओ, यह है निर्दोषता-बल।

भिक्षुओ, संग्रह-बल किसे कहते हैं? भिक्षुओ, ये चार संग्रह-वस्तुएँ हैं—दान, प्रियवचन, परोपकार (=अर्थचर्य्या) तथा बराबरीका व्यवहार। भिक्षुओ, दानोंमें धर्म-दान श्रेष्ठ है। भिक्षुओ, प्रियवचनोंमें यही श्रेष्ठ है, यह जो अर्थीको, यह जो ध्यान देकर सुननेवालेको पुनः पुनः धर्मका उपदेश देना। भिक्षुओ, परोपकारोंमें यही श्रेष्ठ परोपकार है, यह जो अश्रद्धावान्‌को श्रद्धावान बनाना, दुश्शीलको शीलवान् बनाना, लोभीको त्यागी बनाना......प्रज्ञाहीनको प्रज्ञावान् बनाना। भिक्षुओ, बराबरीके व्यवहारोंमें यही श्रेष्ठ है यह जो स्रोतापन्नका स्रोपापन्नके समान होना, सकृदागामिका सकृदागामिके समान होना, अनागामिका अनागामिके समान होना, तथा अर्हतका अर्हतके समान होना। भिक्षुओ, इसे संग्रह-बल कहते हैं। भिक्षुओ, ये चार बल हैं।

भिक्षुओ, जो आर्य-श्रावक इन चार बलोंसे युक्त होता है, वह इन पाँच भयोंसे मुक्त होता है। किन पाँच भयोंसे? जीविका न मिलनेके भयसे, निन्दा-भयसे, परिषदमें आने-जानेमें संकोच होनेके भयसे, मृत्यु-भयसे तथा दुर्गति-भयसे। भिक्षुओ, वह आर्य-श्रावक इस प्रकार सोचता है—मैं जीविका न मिलनेके भयसे भयभीत नहीं हूँ। मैं जीविका न मिलनेके भयसे क्यों भयभीत रहूँगा? मेरे पास चार बल हैं—प्रज्ञा-बल, पराक्रम-बल, निर्दोषता-बल तथा संग्रह-बल। जो दुष्प्रज्ञ हो, वह जीविका न मिलनेके भयसे भयभीत हो। जो आलसी हो, वह जीविका न मिलनेके भयसे भयभीत हो। जिसके शारीरिक कर्म, वाणीके कर्म तथा मानसिक कर्म सदोष

हों, वह जीविका न मिलनेके भयसे भयभीत हो। जो संग्रह न करने वाला हो, वह जीविका न मिलनेके भयसे भयभीत हो। मैं निन्दा-भयसे भयभीत नहीं होता हूँ...... मैं परिषदमें आने जानेका संकोच होनेसे भयभीत नहीं हूँ.......मैं मृत्यु-भयसे भयभीत नहीं हूँ........मैं दुर्गति-भयसे भय-भीत नहीं हूँ। मैं दुर्गति-भयसे क्यों भय-भीत रहूँगा? मेरे पास चारबल हैं—प्रज्ञा-बल, पराक्रम-बल, निर्दोषता-बल तथा संग्रह बल। जो दुष्प्रज्ञ हो, वह दुर्गति भयसे भयभीत हो। जो आलसी हो, वह दुर्गति-भयसे भय-भीत हो। जिसके शारीरिक कर्म, वाणीके कर्म तथा मानसिक कर्म सदोष हों, वह दुर्गति-भयसे भयभीत हो। जो संग्रह न करनेवाला हो, वह दुर्गति-भयसे भयभीत हो। भिक्षुओ, जो आर्य-श्रावक इन चारबलोंसे युक्त होता है, वह इन पाँच भयोंसे मुक्त होता है।

६. सेवनासुत्त

तब आयुष्मान सारिपुत्रने भिक्षुओंको सम्बोधित किया........... आयुष्मान सारिपुत्रने यह कहा—

"आयुष्मानो! यह जानना चाहिए कि व्यक्ति भी दो तरहके होते हैं—साथ रहने योग्य तथा साथ न रहने योग्य। आयुष्मानो! यह जानना चाहिए कि चीवर भी दो तरहके होते हैं—पहनने योग्य तथा न पहनने योग्य। आयुष्मानो! यह जानना चाहिए कि भिक्षा (= पिण्डपात) भी दो तरह की होती है—ग्रहण करने योग्य तथा ग्रहण न करने योग्य। आयुष्मानो! यह जानना चाहिए कि शयनासन भी दो तरहका होता है—उपयोगमें लाने योग्य तथा उपयोगमें न लाने योग्य। आयुष्मानो! यह जानना चाहिए कि ग्राम-निगम भी दो तरहका होता है—रहने योग्य तथा न रहने योग्य। आयुष्मानो! यह जानना चाहिए कि जनपद-प्रदेश भी दो तरहका होता है—वास करने योग्य तथा वास न करने योग्य।

"आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि यह जानना चाहिए कि व्यक्ति भी दो तरहके होते हैं—साथ रहने योग्य तथा साथ न रहने योग्य; यह किस अर्थमें कहा गया? आयुष्मानो! जिस व्यक्तिके बारेमें कोई व्यक्ति यह जाने कि इस आदमीके साथ रहनेसे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्मोंका ह्रास होता है; और प्रव्रजितकी जो आवश्यकताएँ मुझे प्राप्त होनी चाहिए जैसे चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय भैषज्य आदि वे भी बड़ी कठिनाईसे मिलती हैं; तथा जिस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूँ, उस मेरे श्रमण होनेके उद्देश्यकी पूर्ति भी नहीं होती है, तो हे आयुष्मानो, उस व्यक्तिको चाहिए कि उस व्यक्तिको रातके

समय वा दिनके समय बिना कहे भी छोड़कर चला जाय, उसके पीछे-पीछे न घूमे।

"जिस व्यक्तिके बारेमें कोई व्यक्ति यह जाने कि इस आदमीके साथ रहनेसे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्मोंका ह्रास होता है; और प्रव्रजित की जो आवश्यकताएँ मुझे प्राप्त होनी चाहिए जैसे चीवर पिण्डपात, शयनासन ग्लान-प्रत्यय भैषज्य आदि वे बिना कठिनाईसे मिलती है; तथा जिस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूँ, उस मेरे श्रमण होनेके उद्देश्यकी पूर्ति भी नहीं होती है, तो हे आयुष्मानो, उस व्यक्तिको चाहिए कि उस व्यक्तिको रातके समय वा दिनके समय बिना कहे भी छोड़कर चला जाय, उसके पीछे-पीछे न घूमे।

"जिस व्यक्तिके बारेमें जाने कि उस आदमीके साथ रहनेसे अकुशल-धर्मोंका ह्रास होता है, कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है; और प्रव्रजितोंकी जो आवश्य-श्यकताएँ मुझे प्राप्त होनी चाहिए जैसे चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय भैषज्य आदि वे बिना कठिनाईसे मिलती हैं; तथा जिस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए मैं घरसे बे-घर हुआ हूँ उस मेरे श्रमण होनेके उद्देश्यकी पूर्ति होती है तो उस व्यक्तिको उसके पीछे-पीछे चलना चाहिए, उसके पाससे नहीं जाना चाहिए।

"जिस व्यक्तिके बारेमें जाने कि उस आदमीके साथ रहनेसे अकुशल-धर्मोंका ह्रास होता है, कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है; और प्रव्रजितोंकी जो आवश्यकताएँ मुझे प्राप्त होनी चाहिए जैसे चीवर पिण्डपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय भैषज्य आदि वे बिना कठिनाईसे मिलती हैं, तथा जिस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए मैं घरसे बे-घर हुआ हूँ, उस मेरे श्रमण होनेके उद्देश्यकी पूर्ति होती है तो हे आयुष्मानो! उस व्यक्तिको चाहिए कि वह ऐसे व्यक्तिका अनुगामी बना रहे, यदि वह भगाए तब भी उसका परित्याग न करे। आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि व्यक्ति भी दो तरहके होते हैं—साथ रहने योग्य तथा साथ न रहने योग्य—यह इसी अर्थमें कहा गया।

"आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि यह जानना चाहिए कि चीवर भी दो तरहके होते हैं—पहनने योग्य तथा न पहनने योग्य; यह किस अर्थमें कहा गया? जिस चीवरके बारेमें यह जाने कि इस चीवरको पहननेसे अकुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है, कुशल-धर्मोंका ह्रास होता है, तो ऐसे चीवरको नहीं पहनना चाहिए। जिस चीवरके बारेम यह जानें कि इस चीवरको पहननेसे कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है, अकुशल-धर्मोंका ह्रास होता है, तो ऐसे चीवर को पहनना चाहिए। आयुष्मानो!

यह जो कहा गया कि यह जानना चाहिए कि चीवर भी दो तरहके होते हैं—पहनने योग्य तथा न पहनने योग्य; यह इसी अर्थमें कहा गया।

"आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि यह जानना चाहिए कि भिक्षा भी दो तरहकी होती है—ग्रहण करने योग्य तथा ग्रहण न करने योग्य; यह किस अर्थमें कहा गया? जिस भिक्षाके बारेमें यह जाने कि इस भिक्षाके ग्रहण करनेसे अकुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है, कुशल-धर्मोंका ह्रास होता है, तो ऐसी भिक्षाको ग्रहण नहीं करना चाहिए। जिस भिक्षाके बारेमें यह जाने कि उस भिक्षाके ग्रहण करनेकी कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है, अकुशल-धर्मोंका ह्रास होता है, तो ऐसी भिक्षाको ग्रहण करना चाहिए। आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि यह जानना चाहिए कि भिक्षा भी दो तरह की होती है—ग्रहण करने योग्य तथा ग्रहण न करने योग्य; यह इसी अर्थमें कहा गया।

"आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि शयनासन भी दो तरहका होता है—उपयोगमें लाने योग्य तथा उपयोगमें न लाने योग्य; यह किस अर्थमें कहा गया? जिस शयनासनके बारेमें यह जाने कि इस शयनासनके उपयोगमें लानेसे अकुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है, कुशल-धर्मोंका ह्रास होता है, तो ऐसे शयनासनको उपयोगमें नहीं लाना चाहिए। जिस शयनासनके बारेमें यह जाने कि इस शयनासनके उपयोगमें लानेसे कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है, अकुशल-धर्मोंका ह्रास होता है, उस शयनासनको उपयोगमें लाना चाहिए। आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि शयनासन भी दो तरहका होता है—उपयोगमें लाने योग्य तथा उपयोगमें न लाने योग्य; यह इसी अर्थमें कहा गया।

आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि ग्राम-निगम भी दो तरहके होते हैं—रहने योग्य तथा न रहने योग्य; यह किस अर्थमें कहा गया? जिस ग्राम-निगमके बारेमें यह जाने कि इसमें रहनेसे अकुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है, कुशल धर्मोंका ह्रास होता है, तो ऐसे ग्राम-निगममें नहीं रहना चाहिए। जिस ग्राम-निगमके बारेमें यह जाने कि इसमें रहनेसे कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है, अकुशल-धर्मोंका ह्रास होता है, उस ग्राम-निगममें रहना चाहिए। आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि ग्राम-निगम भी दो तरहके होते हैं—रहने योग्य तथा न रहने योग्य; यह इसी अर्थमें कहा गया।

आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि जनपद-प्रदेश भी दो तरहके होते हैं—वास करने योग्य तथा वास न करने योग्य; यह किस अर्थमें कहा गया? जिस

जनपद-प्रदेशके बारेमें यह जाने कि इसमें वास करनेसे अकुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है, कुशल-धर्मोंका ह्रास होता है, तो ऐसे जनपद-प्रदेशमें वास नहीं करना चाहिए। जिस जनपद-प्रदेशके बारेमें यह जाने कि इसमें वास करनेसे कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती है, अकुशल-धर्मोंका ह्रास होता है तो ऐसे जन-पद-प्रदेशमें वास करना चाहिए। आयुष्मानो! यह जो कहा गया कि जनपद-प्रदेश भी दो तरहके होते हैं—वास करने योग्य तथा वास न करने योग्य; यह इसी अर्थमें कहा गया।

७. सुतवासुत्त

एक समय भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार कर रहे थे। उस समय श्रुतवान परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। आकर भगवान्के साथ कुशल-क्षेमकी वार्ता की। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेके अनन्तर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए श्रुतवान परिव्राजकने भगवानसे यह कहा—"भन्ते भगवान! एक समय मैं इसी राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार कर रहा था। भन्ते! उस समय मैंने भगवानसे यह बात सुनी है, यह बात ग्रहण की है कि जो भिक्षु श्रुतवान (=ज्ञानी) होता है, अर्हत् होता है, क्षीणास्रव होता है, जिसका श्रेष्ठ जीवनका उद्देश्य पूरा हो गया रहता है, जो कृतकृत्य होता है, जिसका भार उतर गया रहता है, जिसने सदर्थ प्राप्त कर लिया होता है, जिसके भव-संयोजन क्षीण हो गए रहते हैं तथा जो सम्यक्-रूपसे प्रज्ञा द्वारा विमुक्त हो गया होता है, उसके लिए ये पाँच बातें कर सकना असम्भव होता है—(१) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु जान-बूझकर किसी प्राणीकी हत्या कर सके, (२) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु चोरी कर सके, (३) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु मैथुन-धर्मका सेवन कर सके, (४) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु जान बूझकर झूठ बोल सके तथा यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु उसी प्रकार जोड़ू-बटोरू हो सके जैसे वह गृहस्थ रहनेके समय था। भन्ते! क्या मैंने भगवानसे यह ठीक सुना है, ठीक ग्रहण किया है, ठीक रूपसे मनमें धारण किया है?"

"हे श्रुतवान! तूने निश्चयसे यह ठीक सुना है, ठीक ग्रहण किया है, ठीक रूपसे मनमें धारण किया है। हे श्रुतवान! मैंने पहले भी ऐसा कहा है और अब भी कहता हूँ कि जो भिक्षु श्रुतवान (=ज्ञानी) होता है, अर्हत् होता है, क्षीणास्रव होता है, जिसका श्रेष्ठ जीवनका उद्देश्य पूरा हो गया रहता है, जो कृतकृत्य होता है, जिसका भार उतर गया रहता है, जिसने सदर्थ प्राप्त कर लिया होता है, जिसके भव-संयोजन क्षीण हो गए रहते हैं तथा जो सम्यक् रूपसे प्रज्ञा द्वारा विमुक्त हो गया

रहता है, उसके लिए ये नौ बातें कर सकना असम्भव होता है—(१) यह असम्भव है कि कोई क्षीणाश्रव भिक्षु जान-बूझकर किसी प्राणीकी हत्या कर सके, (२) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु चोरी कर सके, (३) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु मैथुन-धर्मका सेवन कर सके, (४) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु जान बूझकर झूठ बोल सके, (५) यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु उसी प्रकार जोड़ू-बटोरू हो सके जैसे वह गृहस्थ रहनेके समय था, (६) यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु छन्द (=राग) के वशीभूत हो सके, (७) यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु द्वेषके वशीभूत हो सके, (८) यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु मोहके वशीभूत हो सके तथा (९) यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु भयके वशीभूत हो सके। हे श्रुतवान् मैंने पहले भी ऐसा कहा है और अब भी कहता हूँ कि जो भिक्षु श्रुतवान (=ज्ञानी) होता है, अर्हत् होता है, क्षीणास्रव होता है, जिसका श्रेष्ठ जीवनका उद्देश्य पूरा हो गया रहता है, जो कृतकृत्य होता है, जिसका भार उतर गया रहता है, जिसने सदर्थ प्राप्त कर लिया होता है, जिसके भव-संयोजन क्षीण हो गए रहते हैं तथा जो सम्यक् रूपसे प्रज्ञा द्वारा विमुक्त हो गया रहता है, उसके लिए ये नौ बातें कर सकना असम्भव होता है।

८. सज्झसुत्त

एक समय भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार कर रहे थे। उस समय सज्झ परिब्राजक जहाँ भगवान थे, वहाँ आया। आकर भगवानके साथ कुशल-क्षेमकी वार्ता की। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेके अनन्तर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए सज्झ परिब्राजकने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते भगवान्! एक समय मैं इसी राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार कर रहा था। भन्ते! उस समय मैंने भगवान्से यह बात सुनी है, यह बात ग्रहण की है कि जो भिक्षु श्रुतवान (=ज्ञानी) होता है, अर्हत् होता है, क्षीणास्रव होता है, जिसका श्रेष्ठ जीवनका उद्देश्य पूरा हो गया रहता है, जो कृतकृत्य होता है, जिसका भार उतर गया रहता है, जिसने सदर्थ प्राप्त कर लिया होता है, जिसके भव संयोजन क्षीण हो गए रहते हैं तथा जो सम्यक् रूपसे प्रज्ञा द्वारा विमुक्त हो गया होता है उसके लिए ये पाँच बातें कर सकना असम्भव होता है—(१) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु जान-बूझकर किसी प्राणीकी हत्या कर सके, (२) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु चोरी कर सके, (३) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु मैथुन-धर्मका सेवन कर सके, (४) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु

जान-बुझकर झूठ बोल सके तथा यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु उसी प्रकार जोड़ू-बटोरु हो सके जैसे वह गृहस्थ रहनेके समय था। भन्ते! क्या मैंने भगवानसे यह ठीक सुना है, ठीक ग्रहण किया है, ठीक रूपसे मनमें धारण किया है?"

"हे सज्झ! तूने निश्चयसे यह ठीक सुना है, ठीक ग्रहण किया है, ठीक रूपसे मनमें धारण किया है। हे सज्झ! मैंने पहले भी ऐसा कहा है और अब भी कहता हूँ कि जो भिक्षु श्रुतवान् (=ज्ञानी) होता है, अर्हत् होता है, क्षीणास्रव होता है, जिसका श्रेष्ठ जीवनका उद्देश्य पूरा हो गया रहता है, जो कृतकृत्य होता है, जिस का भार उतर गया रहता है, जिसने सदर्थ प्राप्त कर लिया होता है, जिसके भव-संयोजन क्षीण हो गए रहते हैं तथा जो सम्यक् रूपसे प्रज्ञा द्वारा विमुक्त हो गया रहता है, उसके लिए ये नौ बातें कर सकना असम्भव होता है—(१) यह असम्भव है कि कोई क्षीणास्रव भिक्षु जान बूझकर किसी प्राणीकी हत्या कर सके...... (५) यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु उसी प्रकार जोड़ू-बटोरु हो सके जैसे वह गृहस्थ रहनेके समय था, (६) यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु बुद्धका प्रत्याख्यान कर सके, (७) यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु धर्मका प्रत्याख्यान कर सके, (८) यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु संघका प्रत्याख्यान कर सके तथा (९) यह असम्भव है कि क्षीणास्रव भिक्षु शिक्षाका प्रत्याख्यान कर सके। हे सज्झ! मैंने पहले भी ऐसा कहा है और अब भी कहता हूँ कि जो भिक्षु श्रुतवान् (=ज्ञानी) होता है, अर्हत् होता है, क्षीणास्रव होता है, जिसका श्रेष्ठ जीवनका उद्देश्य पूरा हो गया रहता है, जो कृतकृत्य होता है, जिसका भार उतर गया रहता है, जिसने सदर्थ प्राप्त कर लिया होता है, जिसके भव-संयोजन क्षीण हो गए रहते हैं तथा जो सम्यक् रूपसे प्रज्ञा द्वारा विमुक्त हो गया रहता है, उसके लिए ये नौ बातें कर सकना असम्भव होता है।

९. पुग्गल सुत्त

भिक्षुओ, इस संसारमें नौ प्रकारके लोग विद्यमान हैं। कौनसे नौ? (१) अर्हत्, (२) अर्हत् मार्गपर आरुढ़, (३) अनागामि, (४) अनागामि फल साक्षात करनेमें लगा हुआ, (५) सकृदागामि, (६) सकृदागामि फल साक्षात् करनेमें लगा हुआ, (७) स्रोतापन्न, (८) स्रोतापत्ति-फल साक्षात करनेमें लगा हुआ तथा (९) पृथक-जन। भिक्षुओ, इस संसारमें ये नौ तरहके लोग विद्यमान हैं।

१०. आहुनेय्य सुत्त

भिक्षुओ, ये नौ जन आदर करने योग्य हैं, सत्कार करने योग्य हैं, दक्षिणा (देने) के योग्य हैं, हाथ जोड़नेके योग्य हैं तथा लोगोंके लिए अनुपम पुण्य-क्षेत्र हैं। कौनसे नौ? (१) अर्हत्-जन, (२) अर्हतके मार्गपर आरूढ़, (३) अनागामि, (४) अनागामि फल साक्षात् करनेमें लगे हुए, (५) सकृदागामि, (६) सकृदागामि फल साक्षात् करनेमें लगे हुए, (७) स्रोतापन्न, (८) स्रोतापत्ति फल साक्षात् करनेमें लगे हुए, तथा (९) गोत्र-भू।[1] भिक्षुओ, ये नौ जन आदर करने योग्य हैं, सत्कार करने योग्य हैं, दक्षिणा (देने) के योग्य हैं, हाथ जोड़नेके योग्य हैं तथा लोगोंके लिए अनुपम पुण्य-क्षेत्र हैं।

२. सीहनाद वर्ग

१. सीहनाद सुत्त

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मानसा रिपुत्रने भगवानसे यह कहा—"भन्ते! मैंने श्रावस्तीमें वर्षावास किया। भन्ते! मैं चाहता हूँ कि अब मैं जनपदमें चारिका करूँ।"

"सारिपुत्र! जिस (काम) का तू समय समझे (वह कर)।"

तब आयुष्मान् सारिपुत्र आसनसे उठ, भगवान्को नमस्कार कर, प्रदक्षिणा कर, विदा हुए। सारिपुत्रके बिदा होनेके थोड़े ही समय बाद एक भिक्षुने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! यह आयुष्मान् सारिपुत्र मेरे शरीरको रगड़ देते हुए, बिना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चल दिए।"

तब भगवानने एक भिक्षुको बुलवाया—"हे भिक्षु! तू मेरा नाम लेकर सारिपुत्रको बुला कि आयुष्मान सारिपुत्र! तुम्हें शास्ता बुला रहे हैं।" 'भन्ते अच्छा' कह, वह भिक्षु भगवान्को प्रति-वचन दे, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे बोले—"हे सारिपुत्र! तुम्हें शास्ता बुला रहे हैं।" आयुष्मान् सारिपुत्रने उस भिक्षुके प्रति-वचन दिया—'आयुष्मान! बहुत अच्छा।"

---

१. स्रोतापत्ति-मार्गके अनन्तर प्रत्ययके फलस्वरूप शिक्षा प्राप्त उग्र विपश्यना चित्तसे युक्त (अट्ठकथा)

उस समय आयुष्मान् महामौद्ग्ल्यायन तथा आयुष्मान् आनन्द चाबी लिए बरामदेमें यह कहते विचर रहे थे—आयुष्मानो ! बाहर आ जाओ। आयुष्मानो ! बाहर आ जाओ। अब यह आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान्के सम्मुख सिंह-गर्जना करेंगे।" तब आयुष्मान सारिपुत्र जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवान्को नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए, आयुष्मान् सारिपुत्रको भगवानने यह कहा—"सारिपुत्र। तेरा एक सब्रह्मचारी तेरे ऊपर दोषारोपण करता है कि यह आयुष्मान सारिपुत्र मेरे शरीरको रगड़ देते हुए, बिना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चल दिए।"

"भन्ते ! जिसकी कायानुस्मृति अनुपस्थित हो, वह ही किसी एक ब्रह्मचारीके शरीरको रगड़ देकर, बिना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चला जाय।

"भन्ते ! जैसे पृथ्वीपर अच्छी चीज भी गिराई जाती है, बुरी भी गिराई जाती है, गुह भी गिराया जाता है, पेशाब भी गिराया जाता है, थूक भी गिरायी जाती है, पीप भी गिराया जाता है तथा खून भी गिराया जाता है, उससे पृथ्वी न दुखी होती है, न बुरा मानती है और न घृणा करती है। इसी प्रकार भन्ते ! मैं पृथ्वीके समान (सहन शील), उदार, महान्, असीम चित्तसे युक्त होकर विचरता हूँ, जिसमें न वैर है, न विरोध। भन्ते ! जिसकी कायानुस्मृति अनुपस्थित हो, वह ही किसी एक ब्रह्मचारीके शरीरको रगड़ देकर, बिना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चला जाय।

"भन्ते ! जैसे जलमें भली-बुरी सभी चीजें धोते हैं, ऐसी जिनमें गुह लगा हो,......मूत्र लगा हो....थूक लगा हो.....पीप लगी हो.....खून लगा हो। उससे जल न दुखी होता है, न बुरा मानता है, और न घृणा करता है। इसी प्रकार भन्ते ! मैं जलके समान (सहनशील), उदार, महान, असीम चित्तसे युक्त होकर विचरता हूँ, जिसमें न वैर है, न विरोध। भन्ते ! जिसकी कायानुस्मृति अनुपस्थित हो, वह ही किसी एक सब्रह्मचारीके शरीरको रगड़ देकर, बिना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चला जाय।

"भन्ते ! जैसे वायु भली-बुरी हर चीजको उड़ा ले जाती है, गुह लगी चीजको भी....मूत्र लगीको भी....थूक लगीको भी.....पीप लगीको भी तथा खून लगीको भी उड़ा ले जाती है। उससे वायु न दुखी होती है, न बुरा मानती है, न घृणा करती है। इसी प्रकार भन्ते ! मैं वायुके समान (सहन शील) उदार, महान्, असीम चित्तसे मुक्त होकर विचरता हूँ, जिसमें न वैर है, न विरोध। भन्ते !

जिसकी कायानुस्मृति अनुपस्थित हो, वह ही किसी सब्रह्मचारीके शरीरको रगड़ देकर विना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चला जाय।

भन्ते! जैसे चीथड़े (=रजो हरण) से भला-बुरा सब कुछ पोंछा जाता है, गुह लगा भी......मूत्र लगा भी.....थूक लगा भी.....पीप लगा भी......खून लगा भी पोंछा जाता है। उससे भीगा लत्ता न दुखी होता है, न बुरा मानता है, न घृणा करता है। इसी प्रकार भन्ते! मैं चीथड़ेके समान (सहन शील) उदार, महान, असीम चित्तसे युक्त होकर विचरता हूँ, जिसमें न वैर है, न विरोध। भन्ते! जिसकी कायानुस्मृति अनुपस्थित हो, वह ही किसी एक सब्रह्मचारीके शरीरको रगड़ देकर, बिना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चला जाय।

"भन्ते! जैसे कोई चण्डाल-कुमार वा चण्डाल-कुमारी जिसके हाथमें टोकरी हो और जो फटे वस्त्र पहनी हो, जब ग्राम या निगममें प्रवेश करती है, तो वह बड़ी निम्रतापूर्वक ही प्रवेश करती है। भन्ते! इसी प्रकार मैं चण्डाल-कुमार या चण्डाल-कुमारिका जैसे (सहन शील) उदार, महान्, असीम चित्तसे युक्त होकर विचरता हूँ, जिसमें न वैर है, न विरोध। भन्ते! जिसकी कायानुस्मृति अनुपस्थित हो, वह ही किसी एक सब्रह्मचारीके शरीरको रगड़ देकर, विना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चला जाय।

"भन्ते! जैसे कोई सींग-टूटा बैल हो, सुशील, संयत, विनीत,; वह एक सड़कसे दूसरी सड़क, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घूमता हो और न पाँवसे, न सींगसे किसीको भी कष्ट पहुँचाता हो। भन्ते! इसी प्रकार मैं सींग-टूटे बैलकी तरह (सहन-शील) उदार, महान्, असीम चित्तसे युक्त होकर विचरता हूँ, जिसमें न वैर है, न विरोध। भन्ते! जिसकी कायानुस्मृति अनुपस्थित हो, वह ही किसी एक सब्रह्मचारीके शरीरको रगड़ कर, बिना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चला जाय।

"भन्ते! जैसे कोई शौकीन स्त्री हो, पुरुष हो वा तरुण हो और उसने सिरसे स्नान किया हो। उसके गलेसे मृत-सर्प, मृत-कुत्ते या मुर्देकी लाश लग जाय। वह उससे दुखी हो, बुरा माने, घृणा करे। भन्ते! इसी प्रकार मैं इस घृणित शरीरको देखकर दुखी होता हूँ, बुरा मानता हूँ, घृणा करता हूँ। भन्ते! जिसकी कायानुस्मृति अनुपास्थित हो, वह ही किसी एक सब्रह्मचारीके शरीरको रगड़कर, बिना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चला जाय।

"भन्ते! जैसे कोई आदमी छेदवाली चर्बीकी थाली लिए हो, जो ऊपर नीचे दोनों ओरसे चू रही हो। भन्ते! इसी प्रकार मैं अपने इस शरीरको धारण

किए हूँ, जो सछिद्र है और जो ऊपर-नीचे दोनों ओरसे चूता है। भन्ते! जिसकी कायानुस्मृति अनुपस्थित हो, वह ही किसी एक सब्रह्मचारीके शरीरको रगड़कर, बिना क्षमा याचना किए, चारिकाके लिए चला जाय।"

तब वह भिक्षु आसनसे उठ, चीवरको एक कंधेपर कर, भगवान्के चरणोंमें सिरसे प्रणाम कर कहने लगा—"भन्ते! यह मेरा अपराध है, यह मेरा बालपन है, यह मेरी मूर्खता है, यह मेरा अकुशल-कर्म है जो मैंने आयुष्मान् सारिपुत्र पर झूठा आरोप लगाया। भन्ते! आप मेरे अपराधको अपराध करके स्वीकार करें। मैं भविष्यमें संयत रहूँगा।"

"हे भिक्षु! यह तेरा निश्चित अपराध है, तेरा बालपन है, तेरी मूर्खता है, तेरा अकुशल-कर्म है जो तूने आयुष्मान सारिपुत्र पर झूठा आरोप लगाया। हे भिक्षु! अब जो तू अपने अपराधको अपराध करके स्वीकार करता है और धर्मानुसार प्रायश्चित्त करता है, हम इसे स्वीकार करते हैं। भिक्षु! आर्य-विनय (=श्रेष्ठ जीवन) में यह वृद्धिका ही कारण होता है, यह जो अपराध को अपराध की तरह स्वीकार करना तथा धर्मानुसार प्रति-कर्म करना तथा भविष्यमें संयत रहना।

तब भगवान्ने आयुष्मान् सारिपुत्रको निमंत्रित किया—"सारिपुत्र! इस मूर्ख को क्षमा कर दे। अन्यथा यहीं इसके सिरके सात टुकड़े हो जा सकते हैं।"

भन्ते! मैं उस आयुष्मानको क्षमा करता हूँ। यदि वह आयुष्मान मुझे यह कहे कि वह आयुष्मान मुझे क्षमा करे।

२. सउपादिसेस सुत्त

एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथ पिण्डिकके आराममें विहार करते थे। तब आयुष्मान सारिपुत्र, पूर्वाह्न समय पहन, पात्र-चीवर ले श्रावस्तीमें भिक्षाटनके निमित्त प्रविष्ट हुए। तब आयुष्मान सारिपुत्रके मनमें आया—श्रावस्तीमें भिक्षाटनके निमित्त घूमनेका समय थोड़े विलम्बसे आयेगा। तब तक जहाँ अन्य तैर्थिक (=दूसरे मतवाले) परिब्राजकोंका आश्रम है, वहाँ चलूं।" तब आयुष्मान सारिपुत्र जहाँ अन्य-तैर्थिक परिब्राजकोंका आश्रम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन अन्य तैर्थिक परिब्राजकोंके साथ कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेमकी बातचीत समाप्त होनेपर एक ओर बैठे।

उस समय उन एकत्र हुए, इकट्ठे हुए परिब्राजकोंमें आपसमें यह बातचीत चल रही थी—'आयुष्मानो, जो भी कोई उपाधि-शेष रहते हुए मृत्युको प्राप्त होता है, वह निरयमें उत्पन्न होनेसे मुक्त नहीं होता, पशु-योनिमें उत्पन्न होनेसे मुक्त नहीं

होता, प्रेत-योनिमें उत्पन्न होनेसे मुक्त नहीं होता, नरक-दुर्गतिको प्राप्त होनेसे मुक्त नहीं होता।' तब आयुष्मान सारिपुत्रने उन अन्य तैर्थिक परिव्राजकोंके कथन का न समर्थन किया, न खण्डन किया। बिना समर्थन किए, बिना खण्डन किए वहाँसे उठकर चले आए कि 'भगवानसे इस कथनका ठीक ठीक अर्थ जानेंगे।' तब आयुष्मान् सारिपुत्र, श्रावस्तीमें भिक्षाटन कर, भिक्षाटनसे लौट चुकनेपर, भोजन कर चुकनेके अनन्तर जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवान्को नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! मैं पूर्वाह्न समय पहन, पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमें भिक्षाटनके निमित्त प्रविष्ट हुआ। तब भन्ते! मेरे मनमें आया—श्रावस्तीमें भिक्षाटनके निमित्त घूमनेका समय थोड़े विलम्बसे आयेगा। तब तक जहाँ अन्य तैर्थिकों (=दूसरे मत वाले) परिव्राजकोंका आश्रम है, वहाँ चलूं।" तब आयुष्मान सारिपुत्र जहाँ अन्य तैर्थिक परिव्राजकोंका आश्रम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन अन्य तैर्थिक परि-व्राजकोंके साथ कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेमकी बातचीत होनेपर एक ओर बैठा। उस समय उन एकत्र हुए, इकट्ठे हुए परिव्राजकोंमें आपसमें यह बातचीत चल रही थी—'आयुष्मानो, जो भी कोई उपाधि-शेष रहते हुए मृत्युको प्राप्त होता है, वह निरयमें उत्पन्न से मुक्त नहीं होता, पशु-योनिमें उत्पन्न होनेसे मुक्त नहीं होता, प्रेत-योनिमें उत्पन्न होनेसे मुक्त नहीं होता, नरक-दुर्गतिको प्राप्त होनेसे मुक्त नहीं होता।' तब मैंने उन तैर्थिक परिव्राजकोंके कथनका न समर्थन किया, न खण्डन किया। बिना समर्थक किए, बिना खण्डन किए वहाँसे उठकर चला आया कि 'भगवान्से इस कथनका ठीक ठीक अर्थ जानूंगा।'

"सारिपुत्र! कौन हैं वे अज्ञ, मूर्ख दूसरे सम्प्रदायोंके परिव्राजक जो उपाधि-शेषता वा उपाधि-शेष-व्यक्ति को जानेंगे और निरुपाधि-शेषता या निरुपाधि-शेष व्यक्तिको जानेंगे?"

"सारिपुत्र! ऐसे नौ व्यक्ति हैं जो उपाधि-शेष (रहकर) मरनेके बाव-जूद नरकमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होते हैं, पशु-योनिमें उत्पन्नसे युक्त होते हैं, प्रेत होकर उत्पन्न होनेसे मुक्त होते हैं, अपाय-दुर्गतिमें पड़नेसे मुक्त होते हैं। कौनसे नौ? सारिपुत्र! एक आदमीका शील सम्पूर्ण होता है, समाधि सम्पूर्ण होती है, लेकिन प्रज्ञा परिमित होती है। वह पतनकी ओर ले जानेवाले पाँचों संयोजनोंका क्षय कर 'अन्तर-परिनिर्वाण-प्राप्त' होता है। सारिपुत्र! यह पहला व्यक्ति है, जो उपाधि-शेष रहकर मरनेके बावजूद नरकमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है, पशु-योनिमें उत्पन्न

होनेसे मुक्त होता है, प्रेत होकर उत्पन्न होनेसे युक्त होता है तथा अपाय दुर्गतिमें पड़नेसे मुक्त होता है।

फिर सारिपुत्र! एक व्यक्तिका शील सम्पूर्ण होता है, समाधि सम्पूर्ण होती है, प्रज्ञा परिमित होती है। वह पतनकी ओर ले जानेवाले पाँचों संयोजनोंका क्षय कर, (जन्म-मरणका लगभग नाश कर) परिनिर्वाण-प्राप्त[1] होता है..... असंस्कार परिनिर्वाण-प्राप्त होता है..... ससंस्कार परिनिर्वाण-प्राप्त होता है........अकनिष्ठ-प्राप्त ऊर्ध्व-स्रोत होता है। सारिपुत्र! यह पाँचवाँ व्यक्ति है, जो उपाधि-शेष रहकर, मरनेके बावजूद नरकमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है, पशु-योनिमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है, प्रेत होकर उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है तथा अपाय-दुर्गतिमें पड़नेसे मुक्त होता है।

फिर सारिपुत्र! एक व्यक्तिका शील सम्पूर्ण होता है, समाधि परिमित होती है तथा प्रज्ञा भी परिमित होती है। वह तीनों संयोजनोंका क्षय कर, राग-मोह-द्वेषको क्षीण कर, सकृदागामि होता है, वह एक ही बार और इस लोकमें जन्म ग्रहण कर दुःखका अन्त करता है। सारिपुत्र! यह छठा व्यक्ति है, जो उपाधि-शेष रहकर, मरनेके बावजूद नरकमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है, पशु-योनिमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है, प्रेत होकर उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है तथा अपाय-दुर्गतिमें पड़नेसे मुक्त होता है।

फिर सारिपुत्र! एक व्यक्तिका शील सम्पूर्ण होता है, समाधि परिमित होती है तथा प्रज्ञा भी परिमित होती है। वह तीनों संयोजनोंका क्षय कर एक बीज-वाला (=एक ही बार जन्म ग्रहण करने वाला) होता है, एक ही बार मनुष्य-लोकमें जन्म ग्रहण कर दुखका अन्त करता है। सारिपुत्र! यह सातवाँ व्यक्ति है, जो उपाधि-शेष रहकर मरनेके बावजूद, नरकमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है पशु-योनिमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है, प्रेत होकर उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है तथा अपाय-दुर्गतिमें पड़नेसे मुक्त होता है।

फिर सारिपुत्र! एक व्यक्तिका शील सम्पूर्ण होता है, समाधि परिमित होती है तथा प्रज्ञा भी परिमित होती है। वह तीनों संयोजनोंका क्षय कर कोलंकोल (=एक कुलसे दूसरे कुल) जाने वाला होता है, दो या तीन कुलमें जन्म ग्रहण करनेके अनन्तर दुखका अन्त करता है। सारिपुत्र! यह आठवाँ व्यक्ति है, जो

---

१ उपहच्च परिनिब्बायी=उपहत्य परिनिर्वाण-प्राप्त।

उपाधि-शेष रहकर मरनेके बावजूद, नरकमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है, पशु-योनिमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है, प्रेत होकर उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है तथा अपाय-दुर्गतिमें पड़नेसे मुक्त होता है।

फिर सारिपुत्र! एक व्यक्तिका शील सम्पूर्ण होता है, समाधि परिमित होती है तथा प्रज्ञा भी परिमित होती है। वह तीनों संयोजनोंका क्षय कर अधिक-से-अधिक सात बार जन्म ग्रहण करने वाला होता है, देव-योनि तथा मनुष्य योनिमें अधिक-से-अधिक सात बार जन्म ग्रहण कर दुखका अन्त करेगा। सारिपुत्र! यह नौवाँ व्यक्ति है, जो उपाधि-शेष रहकर मरनेके बावजूद, नरकमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है, पशु-योनिमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है, प्रेत होकर उत्पन्न होनेसे मुक्त होता है तथा अपाय-दुर्गतिमें पड़नेसे मुक्त होता है।

"सारिपुत्र! कौन हैं वे अज्ञ, मूर्ख दूसरे सम्प्रदायोंके परिब्राजक जो उपाधि-शेषता या उपाधि-शेष व्यक्तिको जानेंगे और निरुपाधि-शेषता या निरुपाधि-शेष-व्यक्ति को जानेंगे? सारिपुत्र! ऐसे नौ व्यक्ति हैं जो उपाधि-शेष रहकर मरनेके बावजूद, नरकमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होते हैं, पशु-योनिमें उत्पन्न होनेसे मुक्त होते हैं, प्रेत होकर उत्पन्न होनेसे मुक्त होते हैं तथा अपाय-दुर्गतिमें पड़नेसे मुक्त होते हैं।

सारिपुत्र! मैंने अबतक भिक्षुओंको भिक्षुणियोंको, उपासकोंको तथा उपासिकाओंको यह धर्मोपदेश (=धर्म पर्याय) नहीं दिया था। यह किसलिए? इसे सुनकर प्रमादी न हो जाएँ। लेकिन हे सारिपुत्र! इस समय मैंने यह (धर्म-पर्याय) प्रश्नोत्तरके रूपमें कह दिया।

३. कोटिठ्क सुत्त

उस समय आयुष्मान् महाकोटि्ठक वहाँ पहुँचे जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे। पास जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रके साथ कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेमकी बातचीत हो चुकनेपर, वह एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् महा-कोटि्ठकने आयुष्मान सारिपुत्रको यह कहा—"आयुष्मान सारिपुत्र! क्या भगवानके पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत किया जाता है कि जिन कर्मोंका फल यहीं मिलनेवाला है, उनका फल पर लोकमें मिले?"

"आयुष्मान्! ऐसी बात नहीं है।"

"तो क्या आयुष्मान् सारिपुत्र! भगवानके पथप्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत किया जाता है कि जिन कर्मोंका फल परलोकमें मिलने वाला है, उनका फल यहीं मिल जाए?"

"तो क्या आयुष्मान् सारिपुत्र! भगवान्के पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो सुखद-कर्म हैं, वे दुःखद कर्म हो जायें?"

"आयुष्मान्! ऐसी बात नहीं है।"

"तो क्या आयुष्मान् सारिपुत्र! भगवान्के पथ प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो दुःखद कर्म हैं, वे सुखद हो जायें?"

"आयुष्मान्! ऐसी बात नहीं है।"

"तो क्या आयुष्मान् सारिपुत्र! भगवानके पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म पककर फल देनेवाला है, वह कर्म बिना पके फलदायी हो जाय?"

"आयुष्मान्! ऐसी बात नहीं है।"

"तो क्या आयुष्मान् सारिपुत्र! भगवान्के पथ प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म बिना पके फल देनेवाले हैं, वे पककर फल देनेवाले हो जायें?"

"आयुष्मान्, ऐसी बात नहीं है।"

"तो क्या आयुष्मान् सारिपुत्र! भगवानके पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म बहुवेदनीय हैं, वे अल्प-वेदनीय हो जायें?"

"आयुष्मान्! ऐसी बात नहीं है।"

"तो क्या आयुष्मान् सारिपुत्र! भगवान्के पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म अल्प-वेदनीय हैं, वे बहु-वेदनीय हो जायें?"

"आयुष्मान्! ऐसी बात नहीं है।"

"तो क्या आयुष्मान् सारिपुत्र! भगवान्के पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म वेदनीय (=फल दायक) है, वह वेदनीय न रहे?"

"आयुष्मान्! ऐसी बात नहीं है।"

"तो क्या आयुष्मान् सारिपुत्र! भगवानके पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म वेदनीय नहीं हैं, वे कर्म वेदनीय हो जायें?"

"आयुष्मान्! ऐसी बात नहीं है।"

"आयुष्मान सारिपुत्र! यह क्या बात है कि यह पूछनेपर भी कि क्या भगवान्के पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत किया जाता है कि जिन कर्मोंका फल यहीं मिलने वाला है, उनका फल परलोकमें मिले?' यह उत्तर मिलता है

कि 'आयुष्मान् ! ऐसी बात नहीं हैं ?' आयुष्मान् सारिपुत्र ! यह क्या बात है कि यह पूछनेपर भी कि क्या भगवान्के पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जिन कर्मोंका फल परलोकमें मिलनेवाला है, उनका फल यहीं मिल जाय ?' यह उत्तर मिलता है कि 'आयुष्मान् ! ऐसी बात नहीं है।' आयुष्मान् ! सारिपुत्र ! यह क्या बात है कि यह पूछनेपर कि क्या भगवानके पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो सुखद कर्म हैं, वे दुखद कर्मसे हो जायें ?' यह उत्तर मिलता है कि 'आयुष्मान् ! ऐसी बात नहीं हैं ? आयुष्मान सारिपुत्र ! यह क्या बात है कि यह पूछनेपर कि क्या भगवानके पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है, कि जो दुःखद कर्म हैं, वे सुखद हो जायें ?' यह उत्तर मिलता है कि 'आयुष्मान् ! ऐसी बात नहीं है।' आयुष्मान सारिपुत्र ! यह क्या बात है कि यह पूछनेपर भी कि क्या भगवान के पथ प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म पककर फल देने वाला है, वह कर्म बिना पके फलदायी हो जाय ?' यह उत्तर मिलता है कि 'आयुष्मान् ! ऐसी बात नहीं है ?" आयुष्मान् सारिपुत्र ! यह क्या बात है कि यह पूछनेपर भी कि क्या भगवानके पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म बिना पके फल देने वाले हैं, वे पककर फल देनेवाले हो जायें ?' यह उत्तर मिलता है कि 'आयुष्मान् ! ऐसी बात नहीं है ?' आयुष्मान् सारिपुत्र ! यह क्या बात है कि यह पूछनेपर कि क्या भगवान्के पथ प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म बहुवेदनीय हैं, वे अल्प-वेदनीय हो जायें ?' यह उत्तर मिलता है कि 'आयुष्मान ! यह बात नहीं है ?' आयुष्मान सारिपुत्र ! यह क्या बात है कि यह पूछनेपर कि क्या भगवान्के पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म अल्प-वेदनीय हैं, वे बहु-वेदनीय हो जायें ?' यह उत्तर मिलता है कि आयुष्मान् ऐसी बात नहीं है ?' आयुष्मान् सारिपुत्र ! यह क्या बात है कि यह पूछनेपर भी कि क्या भगवानके पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म वेदनीय हैं, वे वेदनीय न रहें ?' यह उत्तर मिलता है कि 'आयुष्मान ऐसी बात नहीं है ?' आयुष्मान सारिपुत्र ! यह क्या बात है कि यह पूछनेपर भी कि क्या भगवानके पथ-प्रदर्शनमें इसलिए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है कि जो कर्म वेदनीय नहीं हैं, वे कर्म वेदनीय हो जायें ?' यह उत्तर मिलता है कि 'आयुष्मान ! ऐसी बात नहीं है !' तो आयुष्मान् ! वह कौन-सा उद्देश्य है, जिसकी पूर्तिके लिए भगवान्के पथ प्रदर्शनमें श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है ?"

"आयुष्मान्! जो अज्ञात है, जो अदृष्ट है, जो अप्राप्त है, जो असाक्षातक्कृत है, जिसके पास पहुँचा नहीं गया है, उसे ज्ञात करनेके लिए, दृष्ट करनेके लिए, प्राप्त करनेके लिए, साक्षात करनेके लिए, पास पहुँचनेके लिए ही भगवानके पथ-प्रदर्शनमें श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है।

आयुष्मान्! वह क्या है जो अज्ञात है, जो अदृष्ट है, जो अप्राप्त है, जो असाक्षातक्कृत है, जिसके पास पहुँचा नहीं गया है और जिसे ज्ञात करनेके लिए, जिसे दृष्ट करनेके लिए, जिसे प्राप्त करनेके लिए, जिसे साक्षात करनेके लिए, जिसके पास पहुँचनेके लिए ही भगवानके पथ-प्रदर्शनमें श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है?

आयुष्मान्! 'यह दुःख है' यह अज्ञात है, यह अदृष्ट है, यह अप्राप्त है, यह असाक्षात्कृत है, इसके पास पहुँचा नहीं गया है और इसे ज्ञात करनेके लिए, दृष्ट करनेके लिए, प्राप्त करनेके लिए, साक्षात् करनेके लिए, तथा इसके पास पहुँचनेके लिए ही भगवानके पथ-प्रदर्शनमें श्रेष्ठ जीवन व्यतीत किया जाता है। आयुष्मान्! यह दुःख-समुदय है......आयुष्मान! यह दुःख निरोध है......आयुष्मान्! यह दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा है जो अज्ञात है, जो अदृष्ट है, जो अप्राप्त है, जो असाक्षातक्कृत है, जिसके पास पहुचा नहीं गया है और जिसे बात करनेके लिए, दृष्ट करनेके लिए, प्राप्त करनेके लिए, साक्षात् करनेके लिए तथा जिसके पास पहुँचनेके लिए ही भगवानके पथ प्रदर्शनमें श्रेष्ठ जीवन व्यक्तीत किया जाता है।

४. समिद्धिसुत्त

उस समय आयुष्मान स्मृद्धि आयुष्मान सारिपुत्रके पास गये। पास जाकर आयुष्मान सारिपुत्रको नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान स्मृद्धिसे आयुष्मान सारिपुत्रने पूछा—

"स्मृद्धि! आदमीके मनमें जो संकल्प-विकल्प पैदा होते हैं, उनका 'आलम्बन' क्या (होता) है?

"भन्ते! उनका आलम्बन 'नाम-रूप' होता है।"

"स्मृद्धि! ये संकल्प-विकल्प नानत्वको कहाँ प्राप्त होते हैं?"

"भन्ते! धातुओंमें।[1]"

"स्मृद्धि! इन संकल्प-विकल्पोंका समुदय कैसे होता है?"

"भन्ते! स्पर्श होनेसे इनका समुदय होता है।"

---

१. रूप, शब्द आदि।

"स्मृद्धि ! इनका एकत्र होना (= समोसरण) कहाँ होता है ?"

"भन्ते ! सुख-दुख-वेदनाओंमें समोसरव होता है।"

"स्मृद्धि ! इनमें प्रमुख-स्थान किसका है ?"

"भन्ते ! इनमें प्रमुख स्थान समाधिका है।"

"स्मृद्धि ! इनमें अधिपति किसे कह सकते हैं ?"

"भन्ते ! इनमें 'स्मृति' को अधिपति कह सकते हैं।"

"स्मृद्धि ! इन संकल्पोंसे बढ़कर (= उत्तर) क्या है ?"

"भन्ते ! इनसे प्रज्ञा बढ़कर है।"

"स्मृद्धि ! इनका क्या सार है ?"

"भन्ते ! इनका सार विमुक्ति है।"

"स्मृद्धि ! ये किसमें निमग्न हैं ?"

"भन्ते ! ये अमृतमें निमग्न हैं।"

स्मृद्धि ! जब तुमसे यह पूछा जाता है कि आदमीके मनमें जो संकल्प-विकल्प पैदा होते हैं, उनका 'आलम्बन' क्या है ? तो तुम्हारा उत्तर है कि उनका 'आलम्बन' नाम-रूप है। स्मृद्धि ! जब तुमसे यह पूछा जाता है कि ये संकल्प-विकल्प नानात्वको कहाँ प्राप्त होते हैं ? तो तुम्हारा उत्तर है कि धातुओंमें। स्मृद्धि ! जब तुमसे यह पूछा जाता है कि इन संकल्प-विकल्पोंका समुदय कैसे होता है ? तो तुम्हारा उत्तर है कि स्पर्श होनेसे उनका समुदय होता है। स्मृद्धि ! जब तुमसे यह पूछा जाता है कि इनका समोसरण कहाँ होता है ? तो तुम्हारा उत्तर है कि सुख-दुख वेदनाओंमें समोसरण होता है। स्मृद्धि ! जब तुमसे यह प्रश्न पूछा जाता है कि इनमें प्रथमस्थान किसका है ? तो तुम्हारा उत्तर होता है कि इनमें प्रथम स्थान समाधिका है ? स्मृद्धि ! जब तुम से यह पूछा जाता है कि इनमें अधिपति किसे कह सकते हैं ? तो तुम्हारा उत्तर होता है कि इनमें 'स्मृद्धि' को अधिपति कह सकते हैं। स्मृद्धि ! जब तुमसे यह पूछा जाता है कि इन संकल्पोंसे बढ़कर क्या है ? तो तुम्हारा उत्तर होता है कि इनसे प्रज्ञा बढ़कर है। स्मृद्धि ! जब तुमसे पूछा जाता है कि इनका सार क्या है ? तो तुम्हारा उत्तर होता है कि इनका सार विमुक्ति है। स्मृद्धि ! जब तुमसे पूछा जाता है कि ये किसमें निमग्न हैं ? तो तुम्हारा उत्तर होता है कि ये अमृतमें निमग्न हैं। स्मृद्धि ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, तू ने जो जो प्रश्न पूछा गया, उस का ठीक ठीक उत्तर दिया है। लेकिन अब इससे मनमें 'अहं-भाव' को स्थान मत देना।

५. गण्ड सुत्त

भिक्षुओ, जैसे कई वर्ष पुराना कोई फोड़ा हो। उस व्रणके नौ मुंह हों, प्रकृति-जन्य। उनमेंसे जो कुछ भी बाहर आये, अशुचि ही बाहर आये, दुर्गन्ध ही बाहर आये, घृणित पदार्थ ही बाहर आये, जो कुछ पैदा हो अशुचि ही पैदा हो, दुर्गन्ध ही पैदा हो तथा घृणित पदार्थ ही पैदा हो।

भिक्षुओ, यह जो फोड़ा है, यह इसी शरीरका पर्याय है, जो पृथ्वी आदि चार महाभूतोंसे निर्मित है, जो माता-पितासे संभव हुआ है, जो भात (= ओदन) और कुल्माष पर निर्भर करता है, जो स्वभावसे अनित्य है, जो सुगन्धियोंसे लीपा जाता है, जिसकी मालिश की जाती है, जो खण्डित होता है तथा जिसका विध्वंस होता है। उस व्रण के नौ मुंह हैं, प्रकृति-जन्य। उनमेंसे जो कुछ भी बाहर आती है, अशुचि ही बाहर आती है, दुर्गन्ध ही बाहर आती है, घृणित-पदार्थ ही बाहर आते हैं ; जो कुछ भी पैदा होती है, अशुचि ही पैदा होती है, दुर्गन्ध ही पैदा होती है तथा घृणित-पदार्थ ही पैदा होते हैं। इसलिए भिक्षुओ, इस शरीरके प्रति निर्वेद (= वैराग्य) प्राप्त करो।

६. सञ्ञा सुत्त

भिक्षुओ, ये नौ संज्ञा ऐसी हैं, जिनका अभ्यास करनेसे, जिनमें वृद्धि होनेसे महान फल होता है, महान् शुभ-परिणाम होता है, अमृत की प्राप्ति होती है, अमत पर समाप्ति होती है। कौनसी नौ ! अशुभ संज्ञा, मृत्य-संज्ञा, आहारके प्रति प्रतिकूल भाव, सारी दुनियाके प्रति विरति, अनित्य संज्ञा, अनित्यके प्रति दुख संज्ञा, जो दुक्ख मय है उसके प्रति अनात्म-संज्ञा, प्रहाण संज्ञा, विराग संज्ञा। भिक्षुओ, ये नौ संज्ञा ऐसी है, जिनका अभ्यास करनेसे, जिनमें वृद्धि होनेसे महान फल होता है, महान् शुभ परिणाम होता है, अमृतकी प्राप्ति होती है, अमृत पर समाप्ति होती है।

७. कुलसुत्त

भिक्षुओ, जिस (गृहस्थ–) कुलमें ये नौ बातें हों, वहाँ जाना न हुआ हो तो जाना नहीं चाहिए, जाना हुआ हो तो बैठना नहीं चाहिए। कौन-सी नौ बातें ? अच्छी तरह उठकर स्वागत न करते हों, अच्छी तरह अभिवादन न करते हों, आदर पूर्वक आसन न देते हों, घरमें जो हो, उसे छिपाते हों, बहुत रहने पर भी थोड़ा देते हों, बढ़िया होने पर भी रूखा-सूखा देते हों, सत्कारपूर्वक न देते हों, धर्म सुननेके लिए न बैठते हों तथा जो कहा जाय उसे ध्यान पूर्वक न सुनते हों। भिक्षुओ, जिस (गृहस्थ–) कुलमें ये नौ बातें हों, वहाँ जाना न हुआ हो तो जाना नहीं चाहिए, जाना हुआ हो तो बैठना नहीं चाहिए।

भिक्षुओ, जिस (गृहस्थ) कुलमें ये नौ बातें हों वहाँ जाना न हुआ हो, तो जाना चाहिए, जाना हुआ हो तो बैठना चाहिए। कौन-सी नौ बातें ? अच्छी तरह उठकर स्वागत करते हो; अच्छी तरह अभिवादन करते हों; आदरपूर्वक आसन देते हों; घरमें जो हो, उसे छिपाते न हों ; बहुत होने पर बहुत देते हों, बढ़िया होनेपर बढ़िया देते हो ; सत्कारपूर्वक देते हों, धर्म सुनने के लिए बैठते हों तथा जो कहा जाय उसे ध्यानपूर्वक सुनते हों। भिक्षुओ, जिस (गृहस्थ–) कुलमें ये नौ बातें हों, वहाँ जाना न हुआ हो तो जाना चाहिए और जाना हुआ हो तो, बैठना चाहिए।

८. नवंगपोसथसुत्त

भिक्षुओ, जो उपोसथ (= व्रत) नौ अङ्को (= बातों) से युक्त होता है, उसका महान फल होता है, महान् शुभ परिणाम होता है, महान् प्रकाश होता है तथा महान विस्तार होता है। भिक्षुओ, नौ अंगो (= बातों) वाला उपोसथ-व्रत किस प्रकार वास करनेसे, उसका महान फल होता है, महान शुभ परिणाम होता है, महान प्रकाश होता है तथा महान विस्तार होता है? भिक्षुओ, आर्य-श्रावक इस प्रकार विचार करता है—अर्हतगण जीवन भर प्राणी-हिंसा छोड़, प्राणातिपातसे विरत हो, दण्ड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, लज्जा-शील, दयावान् सभी प्राणियोंके प्रति करुणाका भाव रखते हुए विचरते हैं। मैं भी आज की रात तथा आजका दिन प्राणी-हिंसा-छोड़, प्राणातिपात से विरत हो, दण्ड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, लज्जा-शील, दयावान् सभी प्राणियोंके प्रति करुणाका भाव रखते हुए विचरता हूँ। इस प्रकार इस अंशमें मैं अर्हतों का अनुकरण कर रहा हूँ और मेरा उपोसथ (= व्रत) सिद्ध हो रहा है। इस प्रकार वह इस प्रथम अंगसे युक्त होता है......। अर्हत गण जीवन भर ऊँची शैय्या, महान् शय्या छोड़ ; ऊँची शैय्या महान्-शय्या पर सोनेसे विरत हो नीची शय्याका उपयोग करते हैं—मंचका या तिनकोंके आस्तरणका। मैं भी आजकी रात, आजका दिन ऊँची-शय्या महान्-शैय्या छोड़, ऊँची-शैय्या महान-शय्यापर सोनेसे विरत हो, नीची-शैय्याका उपयोग करता हूँ—पंचका या तिनकोंका आस्तरण का। इस प्रकार इस अंशमें मैं अर्हतोंका अनुकरण कर रहा हूँ और मेरा उपोसथ (—व्रत) सिद्ध हो रहा है। इस प्रकार वह इस आठवें अंगसे युक्त होता है।

"वह मैत्री युक्त चित्तसे एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशाको व्याप्त करता है। वह ऊपर, नीचे, तिर्यक, सर्वत्र, सब तरहसे, समस्त लोकको विपुल, विशाल, असीम, वैर-रहित, क्रोध-रहित, मैत्री-चित्तसे व्याप्त करता है। ह इस नौवें अंगसे युक्त होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार जो उपोसथ (= व्रत) नौ

अंगोंसे युक्त होता है, उसका महान् फल होता है, महान् शुभ-परिणाम होता है, महान् प्रकाश होता है तथा महान विस्तार होता है।

९. देवता सुत्त

भिक्षुओ, आज रात––प्रकाशमान रात्रिमें––बहुतसे प्रकाशमान देवता, सारेके सारे जेतवनको प्रकाश-युक्त कर मेरे पास आये ; पास आकर मुझे प्रणामकर एक ओर खड़े हो गए। भिक्षुओ, एक ओर खड़े हुए उन देवताओंने मुझे यह कहा––भन्ते ! जब हम पहले मनुष्य थे, तब हमारे घरोंपर प्रव्रजित लोग आये। भन्ते ! हमने उनका खड़े होकर स्वागत किया, किन्तु उन्हें अभिवादन नहीं किया। भन्ते ! अपना कर्तव्य पूरा न करनेके कारण हम दुखी हुए, हमें पश्चाताप हुआ और हमें हीन-योनि प्राप्त हुई।

"भिक्षुओ, दूसरे भी बहुतसे देवता मेरे पास आए। उन्होंने भी मुझे आकर यह कहा :–"भन्ते ! जब हम पहले मनुष्य थे , तब हमारे घरोंपर प्रव्रजित लोग आये। भन्ते ! हमने उनका खड़े होकर स्वागत किया तथा उन्हें अभिवादन किया, लेकिन उन्हें आसन नहीं दिया। भन्ते ! अपना कर्तव्य पूरा न करनेके कारण हम दुखी हुए। हमें पश्चात्ताप हुआ और हमें हीन योनि प्राप्त हुई।

"भिक्षुओ, दूसरे भी बहुतसे देवता मेरे पास आये। उन्होंने भी मुझे आकर यह कहा––"भन्ते ! जब हम पहले मनुष्य थे, तब हमारे घरोंपर प्रव्रजित लोग आए। भन्ते! हमने उनका खड़े होकर स्वागत किया, उन्हें अभिवादन किया, उन्हें आसन दिया, किन्तु यथाबल यथाशक्ति दान नहीं दिया. . . . यथाबल यथाशक्ति दान दिया किन्तु धर्म सुननेके लिए नहीं बैठे. . . . . धर्म सुननेके लिए बैठे किन्तु ध्यान देकर धर्म-श्रवण नहीं किया. . . . . . ध्यान से धर्म-श्रवण किया, किन्तु सुनकर उसे याद नहीं रखा. . . . सुनकर याद रखा किन्तु उनके अर्थ पर विचार नहीं किया. . . याद रखे हुए धर्मोके अर्थ पर विचार किया, किन्तु उनके अनुसार आचरण नहीं किया। भन्ते ! अपना कर्तव्य पूरा न करनेके कारण हम दुखी हुए, हमें पश्चात्ताप हुआ और हमें हीन-योनि प्राप्त हुई।

भिक्षुओ, दूसरे भी बहुतसे देवता मेरे पास आए। उन्होंने भी मुझे आकर यह कहाँ––"भन्ते ! जब हम पहले मनुष्य थे, तब हमारे घरोंपर प्रव्रजित लोग आए। भन्ते ! हमने उनका खड़े होकर स्वागत किया, उन्हें अभिवादन किया, उन्हें आसन दिया, यथा-बल यथा-शक्ति दान दिया, धर्म सुनने के लिए बैठे, ध्यानसे धर्म-श्रवण किया, सुनकर याद रखा, याद रख अर्थ पर विचार किया तथा उसके

अनुसार आचरण किया। भन्ते! अपना कर्तव्य पूरा हुआ रहनेके कारण हम दुखी नहीं हुए, हमें पश्चात्ताप नहीं हुआ और हमें बढ़िया योनि प्राप्त हुई। भिक्षुओ, ये वृक्षोंकी छाया हैं, ये शून्य घर हैं। भिक्षुओ, ध्यान करो। भिक्षुओ, प्रमाद मत करो। भिक्षुओ, उन पहलेके देवताओंकी तरह बादमें पश्चात्ताप मत करना।

१०. वेलाम सुत्त

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। तब अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ भगवान थे, वहाँ गया। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक गृहपतिसे भगवान्ने पूछा—

"गृहपति! (सामान्य जनोंको) दान दिया जाता है?"

"भन्ते! मेरे कुलसे (सामान्य याचक आदि को) दान दिया जाता है, लेकिन वह कांजी और टूटे चावलका भात मात्र होता है।"

"गृहपति! दान चाहे रूखा हो, चाहे बढ़िया हो, यदि वह लापरवाहीसे दिया जाता है, बेमनसे दिया जाता है, अपने हाथ से नहीं देता, नियमपूर्वक नहीं देता तथा दान-कर्मके फल में विश्वास रखकर नहीं देता तो जहाँ-जहाँ भी उस दान-कर्मका फल मिलता है, तो वहाँ बढ़िया भोजनकी ओर मन नहीं झुकता है, बढ़िया वस्त्रकी ओर मन नहीं झुकता है, बढ़िया सवारीकी ओर मन नहीं झुकता है तथा न पांचों इन्द्रियोंके बढ़िया भोगोंकी ओर मन झुकता है। उसके पुत्र, स्त्री, दास, नौकर-चाकर उसकी बात नहीं सुनते, उसके कथनकी ओर ध्यान नहीं देते तथा उसकी आज्ञा नहीं मानते। ऐसा क्यों? गृहपति! जो काम लापरवाहीसे किये जाते हैं उनका कर्म-फल ऐसा ही होता है।

"गृहपति! दान चाहे रूखा हो, चाहे बढ़िया हो, यदि वह लापरवाहीसे नहीं दिया जाता है, बेमनसे नहीं दिया जाता है, अपने हाथसे दिया जाता है, नियम-पूर्वक दिया जाता है तथा दान-कर्मके फलमें विश्वास रखकर दिया जाता है; जहाँ जहाँ भी उस कर्मका फल मिलता है, तो वहाँ बढ़िया भोजनकी ओर मन झुकता है, बढ़िया वस्त्रकी ओर मन झुकता है, बढ़िया सवारीकी ओर मन झुकता है, तथा पाँचों इंन्द्रियों के बढ़िया भोगोंकी ओर मन झुकता है। उसके पुत्र, स्त्री, दास, नौकर चाकर उसकी बात सुनते हैं, उसके कथनकी ओर ध्यान देते हैं तथा उसकी आज्ञा मानते हैं। ऐसा क्यों? गृहपति! जो काम लापरवाही से नहीं किये जाते, उनका कर्म-फल ऐसा ही होता है।

"गृहपति ! पूर्व समयमें वेलाम नामका एक ब्राह्मण था। उसने ऐसा महादान दिया—चाँदी भरे चौरासी हजार सोनेके थाल दिये सोना भरे चौरासी हजार चाँदीके थाल दिए, हिरण्य-भरे चौरासी हजार काँसेके थाल दिए, स्वर्णालंकारोंको धारण किए, स्वर्णमय ध्वजाओं सहित, स्वर्णिम आस्तरणोंसे आच्छादित चौरासी हजार हाथी दिए ; सिंहचर्मसे आच्छादित, व्याघ्रचर्मसे आच्छादित, चीतेके चर्मसे आच्छादित, पाण्डुवर्ण कम्बलोंसे आच्छादित, स्वर्णालंकारोंको धारण किए, स्वर्णमय ध्वजाओं सहित, स्वर्णमय आस्तरणोंसे आच्छादित चौरासी हजार रथ दिए ; वस्त्रोंसे आच्छादित, कांसे आदिके आभरण धारण किए हुए चौरासी हजार गौएँ दीं, मणि-कुण्डल धारण किए हुए चौरासी हजार कन्यायें दीं ; गोणक आस्तरण वाले, पटिक आस्तरण वाले, (पटलिक त्थतानि), कदलिमृग-प्रवर आस्तरणों वाले, ऊपर चँदवे वाले तथा दोनों ओर लाल लाल तकियों वाले चौरासी हजार पलंग दिए, बढ़िया खोय, बढ़िया कोसेय्य, बढ़िया कम्बल, बढ़िया कपासके बने हुए चौरासी हजार वस्त्र (कोटि ?) दान दिए, अन्न, पान, खाद्य, भोज्य, चाटने तथा पीनेके तो पदार्थोंका कहना ही क्या। उनकी तो जैसे नदियाँ ही बह रही थीं।

"हो सकता है कि गृहपति तेरी यह धारणा हो कि उस समय कोई दूसरा ही वेलाम ब्राह्मण हुआ होगा और उसीने वह महादान दिया। गृहपति ! यह ऐसा नहीं समझना चाहिए। मैं ही उस समय वेलाम ब्राह्मण था। मैंने ही वह महादान दिया। गृहपति ! उस दानके दिए जानेके समय कोई दक्षिणार्ह नहीं था, इसलिए उस समय कोई दान-ग्रहण करने वालेकी पात्रता की ओर ध्यान नहीं देता था।

"हे गृहपति ! वेलाम ब्राह्मणने जो महादान दिया था, उस दानके फलसे उस भोजन दानका फल अधिक है, जो एक (सम्यक्) दृष्टि प्राप्त को दिया जाता है।

"जो सौ (सम्यक्–) दृष्टि प्राप्तोंको भोजन कराया जाता है, उससे एक सकृदागामीको भोजन करानेका फल अधिकतर है।

"जो सौ सकृदागामियोंको. . . . एक अनागामीको भोजन करानेका फल अधिकतर है। जो सौ अनागामियोंको. . . . . एक अर्हतको भोजन करानेका फल अधिकतर है। जो सौ अर्हतोंको . . . . . . एक प्रत्येक बुद्धको भोजन कराने का फल अधिक तर है। जो सौ प्रत्येक -बुद्धोंको . . . . . तथागत अर्हत सम्यक् सम्बुद्को भोजन करानेका फल अधिकतर है। जो तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धको . . . . . बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघको भोजन करानेका फल अधिकतर है। जो

बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को. . . . जो चारों दिशाओंके वर्तमान तथा भविष्यमें आनेवाले संघके लिये विहार बनवाये, उसका फल अधिकतर है। जो चारों दिशाओंके वर्तमान तथा भावी संघके लिए विहार बनवाये. . . . जो प्रसन्न मनसे बुद्ध, धर्म तथा संघकी शरण ग्रहण करे, उसका फल अधिकतर है। जो प्रसन्न मनसे बुद्ध, धर्म तथा संघकी शरण ग्रहण करे, उसके उस (कुशल-) कर्मसे से जो प्राणातिपात (हिंसा) से विरत रहने, चोरीसे विरत रहने, काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत रहने, झूठसे विरत रहने, शराब आदि नशीली चीजोंके पीनेसे विरत रहनेके शीलोंको ग्रहण करता है उसका फल अधिक है तथा उससे भी अधिक फल है अल्प समयतक मैत्री--भावना करनेका।

"हे गृहपति! वेलाम ब्राह्मणने जो महादान दिया था, उस दानके फलसे उस भोजन-दानका फल अधिक है, जो एक (सम्यक्) दृष्टि-प्राप्त को दिया जाता है।

"जो सौ (सम्यक्) दृष्टि-प्राप्तोंको भोजन कराया जाता है, उससे एक सकृदागामिको भोजन करानेका फल अधिक तर है। जो सौ सकृदागामियोंको . . . एक अनागामिको भोजन करानेका फल अधिकतर है। जो सौ अनागामियोंको . . . . . . एक अर्हतको भोजन करानेका फल अधिकतर है। जो सौ अर्हतोंको . . . . . . एक प्रत्येक -बुद्धको भोजन करानेका फल अधिकतर है। जो सौ प्रत्येक बुद्धोंको . . . . . तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धको भोजन करानेका फल अधिकतर है। जो तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धको. . . . बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को भोजन करानेका फल अधिकतर है। जो सौ बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघको. . . . .जो चारों दिशाओंसे वर्तमान तथा भविष्यमें आनेवाले भिक्षु-संघके लिए विहार बनवाये, उसका फल अधिकतर है। जो चारों दिशाओंसे वर्तमान तथा भविष्यमें आने वाले भिक्षु संघके लिए विहार बनवाये, • उससे जो सम्पन्न प्रसन्न मनसे बुद्ध, धर्म तथा संघकी शरण ग्रहण करे, उसका फल अधिक है। जो प्रसन्न मनसे बुद्ध, धर्म तथा संघकी शरण ग्रहण करे, उसके उस (कुशल–) कर्मसे, जो प्राणातिपात (=हिंसा) से विरत रहने, चोरीसे विरत रहने, काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत रहने, झूठसे विरत रहने तथा शराब आदि नशीली चीजोंके पीनेसे विरत रहनेके शीलोंको ग्रहण करता है, उसका फल अधिक है तथा इससे भी अधिक फल है अल्प समय तक मैत्री-भावना करनेका और इससे भी कहीं अधिक फल है चुटकी बजाने भरके समय तक भी अनित्य-संज्ञाके अभ्यास करनेका।

३. सत्वावास वर्ग

१. तिठानसुत्त

भिक्षुओं ! तीन बातोंमें उत्तर-कुरुके मनुष्य त्रयोत्रिशं देवताओं पर तथा जम्बूद्वीपवासी मनुष्यों पर बाजी मार लेते हैं ? किन तीन बातोंमें ? वे ममत्व रहित-परिग्रह रहित होते हैं, उनकी आयु निश्चित होती है तथा उनमें विशेष गुण होते हैं। भिक्षुओ, इन तीन बातोंमें उत्तर-कुरुके मनुष्य त्रयोत्रिशं देवताओं पर तथा जम्बूद्वीपवासी मनुष्यों पर बाजी मार लेते हैं।

भिक्षुओ तीन बातोंमें त्रयोत्रिश देवता उत्तर-कुरु के मनुष्य पर तथा जम्बूद्वीपवासी मनुष्यों पर बाजी मार लेते हैं। किन तीन बातोंमें ? दिव्य-आयु, दिव्य-वर्ण तथा दिव्य-सुखको लेकर। भिक्षुओ इन तीन बातोंमें त्रयोत्रिश देवता उत्तर-कुरु के मनुष्योंपर तथा जम्बूद्वीपवासी, मनुष्योंपर बाजी मार लेते हैं।

भिक्षुओ ! तीन बातोंमें जम्बूद्वीपवासी मनुष्य उत्तर-कुरुके मनुष्यों तथा त्रयोत्रिश देवताओं पर बाजी मार लेते हैं। किन तीन बातोंमें ? वे शूर-वीर होते हैं, स्मृति मान होते हैं तथा श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करनेवाले होते हैं। भिक्षुओ, इन तीन बातोंमें जम्बूद्वीपवासी मनुष्य उत्तर-कुरुके मनुष्यों तथा त्रयोत्रिश देवताओं पर बाजी मार लेते हैं।

२. अस्सखळुंकसुत्त

भिक्षुओ, मैं तीन प्रकारके अविनीत अश्वोंकी देशना करता हूँ, तथा तीन प्रकारके अविनीत मनुष्योंकी ; तीन प्रकारके अश्व-सदृशोंकी तथा तीन प्रकारके पुरुष-सदृशोंकी; तीन प्रकारके श्रेष्ठ अश्वोंकी तथा तीन प्रकारके श्रेष्ठ पुरुषोंकी। इन्हें सुनें......।

भिक्षुओ, तीन अविनीत-अश्व कौनसे होते हैं ? भिक्षुओ, एक अविनीत अश्व रोज चलने वाला होता है किन्तु न वर्णवान होता है और न सवारीके योग्य होता है। भिक्षुओ, एक अविनीत अश्व तेज चलने वाला होता है, वर्णवान होता है, किन्तु सवारीके योग्य नहीं होता। भिक्षुओ, लेकिन एक अविनीत अश्व तेज चलने वाला भी होता है, वर्णवान भी होता है तथा सवारीके योघ्य भी होता है। भिक्षुओ, ये तीन अविनीत (= आसानीसे काबूमें आने वाले) घोड़े होते हैं।

भिक्षुओ, तीन अविनीत-पुरुष कौनसे होते हैं ? भिक्षुओ, एक अविनीत पुरुष तेज चलने वाला होता है, किन्तु न वर्णवान होता है और न सवारीके योग्य

होता है। भिक्षुओ, एक अविनीत पुरुष तेज चलने वाला होता है, वर्णवान होता है, किन्तु सवारीके योग्य नहीं होता। भिक्षुओ, लेकिन एक अविनीत पुरुष तेज चलने वाला भी होता है, वर्णवान भी होता है तथा सवारीके योग्य भी होता है।

भिक्षुओ, अविनीत-पुरुष कैसे तेज चलने वाला, किन्तु न वर्णवान् होता है और न सवारीके योग्य होता है। भिक्षुओ, एक भिक्षु इस बातको कि 'यह दुःख है' यथार्थ रूपसे जानता है, 'यह दुःख समुदय है' इसे यथार्थ-रूपसे जानता है, 'यहदुःख निरोध है' इसे यथार्थ-रूपसे जानता है, 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा है' इसे यथार्थ रूपसे जानता है, यही उसका तेज चलने वाला होता है। धर्मके विषयमें अथवा विनयके विषयमें प्रश्न पूछे जानेपर मुरझा जाता है, उसका उत्तर नहीं दे सकता। यह उसका वर्णवान न होना है। वह चीवर, पिण्डपात (=भिक्षा), शयनासन, ग्लान-प्रत्यय, भैषज्य आदि आवश्यकताओंको प्राप्त न करने वाला होता है। यह उसका सवारीके योग्य न होना होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार अविनीत-पुरुष तेज चलने वाला होता है, किन्तु न वर्णवान होता है और न सवारीके योग्य होता है।

भिक्षुओ, अविनीत-पुरुष कैसे तेज चलने वाला होता है, रूपवान होता है, किन्तु सवारी करनेके योग्य नहीं होता है? भिक्षुओ, एक भिक्षु, इस बातको कि 'यह दुःख है' यथार्थ-रूपसे जानता है, 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थ-रूपसे जानता है, 'यह दुःख-निरोध है', इसे यथार्थ रूपसे जानता है, 'यह दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा है', इसे यथार्थ रूपसे जानता है। यही उसका तेज चलनेवाला होता है। धर्म या विनयके विषयमें प्रश्न पूछे जाने पर उनके उत्तर देता है, मुरझा नहीं जाता है। यह उसका वर्णवान होना हुआ। वह चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय भैषज्य आदि आवश्यकताओंको प्राप्त न करने वाला होता है। यह उसका सवारीके योग्य न होना होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार अविनीत-पुरुष तेज चलने वाला होता है, वर्णवान होता है, किन्तु सवारीके योग्य नहीं होता।

भिक्षुओ, अविनीत-पुरुष कैसे तेज चलने वाला होता है, रूपवान होता है तथा सवारीके योग्य होता है। भिक्षुओ, भिक्षु, 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूपसे जानता है......'यह निरोध गामिनी प्रतिपदा है' इसे यथार्थ रूपसे जानता है। यह उसका तेज चलने वाला होता है। धर्मके विषयमें अथवा विनयके विषयमें प्रश्न पूछे जाने पर, उनका उत्तर देता है, मुरझा नहीं जाता है। यह उसका रूपवान होना हुआ। वह चीवर, पिण्डपात (=भिक्षा), शयनासन, ग्लान-प्रत्यय, भैषज्य आदि आवश्यकताओंको प्राप्त करने वाला होता है। यह उसका सवारीके योग्य होना

हुआ। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षुओ, अविनीत-पुरुष तेज चलने वाला होता है, रूपवान होता है तथा सवारीके योग्य होता है। भिक्षुओ, ये तीन प्रकारके अविनीत पुरुष होते हैं।

भिक्षुओ, तीन अश्व-परश्व कौनसे होते हैं? भिक्षुओ, एक अश्व-परश्व .... तेज चलने वाला होता है, वर्णवान होता है तथा सवारी करनेके लायक होता है। भिक्षुओ, ये तीन अश्व-परश्व हैं।

भिक्षुओ, तीन पुरुष-परश्व कौनसे होते हैं? भिक्षुओ, एक पुरुष-परश्व .... तेज चलने वाला होता है, वर्णवान होता है तथा सवारी करनेके लिए योग्य होता है।

भिक्षुओ, कैसे पुरुष-परश्व... जोरसे चलने वाला होता है, वर्णवान होता है तथा सवारी करनेके योग्य होता है? भिक्षुओ, एक भिक्षु पाँचों पतनोन्मुख संयोजनोंका क्षय कर ओपपातिक होता है, वहीं (ब्रह्म लोक) से निर्वाणको प्राप्त होने वाला, उस लोकसे फिर इस लोकको न आने वाला। यह उसका जोरसे चलना हुआ। धर्मके विषयमें अथवा विनयके विषयमें प्रश्न पूछे जाने पर उनका उत्तर देता है, मुरझा नहीं जाता है। यह उसका वर्णवान होना हुआ। वह चीवर, पिण्डपात, शयनासन ग्लान-प्रत्यय, भैषज्य आदि आवश्यकताओंको प्राप्त करने वाला होता है। यह उसका सवारीके योग्य होना हुआ। भिक्षुओ, इस प्रकार पुरुष-परश्व जोरसे चलने वाला होता है, रूपवान होता है तथा सवारीके योग्य होता है। भिक्षुओ, ये तीन पुरुष-परश्व हैं।

भिक्षुओ, तीन भद्र श्रेष्ठ घोड़े कौनसे होते हैं? भिक्षुओ, एक भद्र श्रेष्ठ घोड़ा....... तेज चलने वाला होता है, रूपवान् होता है तथा सवारी करनेके योग्य होता है। भिक्षुओ, ये तीन भद्र श्रेष्ठ घोड़े होते हैं।

भिक्षुओ, तीन भद्र श्रेष्ठ पुरुष कौनसे होते हैं? भिक्षुओ, एक भद्र श्रेष्ठ पुरुष तेज चलने वाला होता है, रूपवान होता है तथा सवारीके योग्य होता है।

भिक्षुओ, भद्र श्रेष्ठ पुरुष कैसे तेज चलने वाला होता है? वर्णवान होता है तथा सवारीके योग्य होता है? भिक्षुओ, एक भिक्षु आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्तिको, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर साक्षात् कर, प्राप्त कर विहार करता है। यह उसका तेज चालसे चलना हुआ। धर्म या विनयके बारेमें प्रश्न पूछे जाने पर उत्तर देता है, मुरझा नहीं जाता है। यह उसका रूपवान होना हुआ। वह चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय, भैषज्य, आदि वस्तुओंको

प्राप्त करने वाला होता है। यह उसका सवारीके योग्य होना हुआ। इस प्रकार भिक्षुओ, भद्र श्रेष्ठ पुरुष तेज चलने वाला होता है, वर्णवान होता है तथा सवारीके योग्य होता है। भिक्षुओ, ये तीन भद्र श्रेष्ठ पुरुष होते हैं।

३. तण्हामूलकसुत्त

भिक्षुओ, मैं ऐसे नौ धर्मों (= बातो) की देशना करता हूँ, जिनके मूलमें तृष्णा है, उन्हें सुनो. . . .भिक्षुओ ऐसे नौ धर्म (= बातें) हैं जिनके मूलमें तृष्णा है, कौनसे हैं ? तृष्णाके होनेसे वस्तुओंका खोजना होता है, खोजना होनेसे प्राप्ति होती है, प्राप्ति होनेसे (तृष्णा-) निश्चय होता है ; (तृष्णा-) निश्चय होनेसे, आसक्ति होती है, आसक्ति होनेसे ममत्व होता है, आसक्ति होनेसे परिग्रह होता है, परिग्रह होनेसे मात्सर्य, मात्सर्य होनेसे सुरक्षा, सुरक्षित वस्तुके लिए खींचतान, दण्डादण्डी, शस्त्र-प्रयोग, कलह, विग्रह, विवाद, तू-तू मैं-मैं, चुगलखोरी, झूठ बोलना तथा दूसरी भी अनेक बुरी बातें उत्पन्न हो जाती हैं। भिक्षुओ, ये ऐसे नौ धर्म (= बातें) हैं, जिनके मूलमें तृष्णा है।

४. सत्तावाससुत्त

भिक्षुओ, ये नौ प्राणियोंकी निवास-भूमियाँ हैं। कौन सी नौ ? भिक्षुओं, ऐसे प्राणी होते हैं जिनके नाना शरीर होते हैं और नाना संज्ञायें होती हैं, जैसे मनुष्य कुछ देवता-गण तथा कुछ विनिपातिक-प्राणी। यह प्राणियोंका पहला निवास है।

भिक्षुओ, ऐसे प्राणी होते हैं, जिनके नाना शरीर होते हैं, किन्तु एक ही संज्ञा (= जानने पहचाननेकी सामर्थ्य) होती है, जैसे प्रथमोत्पन्न ब्रह्मकायिक देवता। यह प्राणियोंका दूसरा निवास है।

भिक्षुओ, ऐसे भी प्राणी हैं, जिनका एक ही शरीर होता है, किन्तु नाना संज्ञायें होती हैं, जैसे आभस्वर-देवता। यह प्राणियोंका तीसरा निवास है।

भिक्षुओ, ऐसे भी प्राणी होते हैं, जिनका एक ही शरीर होता है, तथा एक ही संज्ञा होती है, जैसे शुभकृष्ण देवता । यह प्राणियोंका चौथा निवास है।

भिक्षुओ, ऐसे भी प्राणी हैं, जो संज्ञा-विहीन होते हैं, वेदना-विहीन होते हैं, जैसे असंज्ञ-सत्व देवता। यह प्राणियोंका पांचवां निवास है।

भिक्षुओ, ऐसे प्राणी भी होते हैं, जिन्होंने सभी रूप-संज्ञाओंका अतिक्रमण कर लिया है, जिनके लिए प्रतिव-संज्ञाओंका अस्त हो गया है, जिनके लिये संज्ञाओंका नानात्व लुप्त हो गया है और जो 'आकाश अनंत है' की भावना करके 'आकाशानञ्चायतनों' को प्राप्त हो गए हैं। यह प्राणियोंका छठा निवास है।

भिक्षुओ, ऐसे भी प्राणी हैं, जिन्होंने सभी 'आकाशानञ्चायतनों' का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त' है की भावना कर 'विज्ञानाञ्चायतन' को प्राप्त कर लिया है। यह प्राणियोंका सातवाँ निवास है।

भिक्षुओ, ऐसे भी प्राणी हैं जिन्होंने 'विज्ञान अनन्त है' को पार कर 'कुछ नहीं है' की भावना कर 'आकिंचन्यायतन' को प्राप्त कर लिया है। यह प्राणियों का आठवाँ निवास है। भिक्षुओ, ऐसे भी प्राणी हैं जिन्होंने सभी 'आकिंचन्यायतनों' को पार कर 'न संज्ञा न असंज्ञा' की भावना कर 'न संज्ञा न असंज्ञा आयतन' को प्राप्त कर लिया है। भिक्षुओ, यह प्राणियोंका नौवाँ निवास है। भिक्षुओ, ये प्राणियोंके नौ आवास हैं।

५. पञ्ञासुत्त

भिक्षुओ, जब भिक्षुका चित्त प्रज्ञासे सुपरिचित होता है, तो भिक्षुओ, उस भिक्षाका यह कहना उचित होता है—'जन्म' क्षीण हो गया है, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।

भिक्षुओ, भिक्षुका चित्त प्रज्ञासे कैसे सुपरिचित होता है? 'मेरा चित्त रागसे रहित है' अनुभव होने पर चित्त प्रज्ञा से सुपरिचित होता है; 'मेरा चित्त द्वेष से रहित है' अनुभव होने पर चित्त प्रज्ञासे सुपरिचित होता है; 'मेरा चित्त मोहसे रहित है' अनुभव होने पर चित्त प्रज्ञासे सुपरिचित होता है, 'मेरा चित्त बिना राग-धर्मके है' ऐसा अनुभव होने पर चित्त प्रज्ञासे सुपरिचित होता है; 'मेरा चित्त बिना द्वेष-धर्मके है' ऐसा अनुभव होने पर चित्त प्रज्ञासे सुपरिचित होता है; 'मेरा चित्त बिना मोह-धर्म के है' ऐसा अनुभव होने पर चित्त प्रज्ञासे सुपरिचित होता है; 'मेरे चित्तमें काम-भव का पुनरागमन नहीं हो सकता' ऐसा अनुभव होने पर चित्त प्रज्ञासे सुपरिचित होता है; 'मेरे चित्तमें रूप-भवका पुनरागमन नहीं हो सकता' ऐसा अनुभव होने पर चित्त प्रज्ञासे सुपरिचित होता है; 'मेरे चित्तमें अरूप-भवका पुनरागमन नहीं हो सकता' ऐसा अनुभव होनेपर चित्त प्रज्ञासे सुपरिचित होता है। भिक्षुओ, क्योंकि उस भिक्षुका चित्त प्रज्ञासे सुपरिचित होता है, इसलिए उस भिक्षुका यह कहना उचित होता है—'जन्म क्षीण हो गया, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।'

६. सिलायूपसुत्त

एक समय आयुष्मान सारिपुत्र तथा आयुष्मान चन्दिकापुत्र राजगृहके वेळुवनके कलन्दकनिवापमें विहार करते थे। वहाँ आयुष्मान चन्द्रिकापुत्रने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—'आयुष्मानो! देवदत्त भिक्षुओंको इस प्रकार धर्मकी देशना करता है कि आयुष्मानो! जब भिक्षुको चित्तसे चित्त होता है, तो उस भिक्षुका यह कहना उचित होता है—'जन्म' क्षीण हो गया, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।'

ऐसा कहने पर आयुष्मान सारिपुत्रने आयुष्मान चन्द्रिकापुत्रको यह कहा—आयुष्मान चन्द्रिकापुत्र! देवदत्त भिक्षुओंको इस प्रकार धर्म-देशना नहीं करता कि आयुष्मानो! जब भिक्षुको चित्तसे चित्त होता है, तो उस भिक्षुका यह कहना उचित होता है—'जन्म' क्षीण हो गया, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया है, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।' आयुश्मान् चन्द्रिका पुत्र! देवदत्त भिक्षुओंको इस प्रकार धर्म-देशना करता है कि आयुष्मानो! जब भिक्षुको चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है, तो उस भिक्षुका यह कहना उचित होता है—'जन्म क्षीण हो गया, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।'

दूसरी बार भी आयुष्मान चन्द्रिकापुत्रने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

'आयुष्मानो! देवदत्त भिक्षुओंको इस प्रकार धर्मकी देशना करता है कि आयुष्मानो! जब भिक्षुको चित्तसे चित्त होता है, तो उस भिक्षुका यह कहना उचित होता है—'जन्म' क्षीण हो गया, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।'

दूसरी बार भी आयुष्मान सारिपुत्रने आयुष्मान चन्द्रिकापुत्रको यह कहा—आयुष्मान चन्द्रिकापुत्र! देवदत्त भिक्षुओंको इस प्रकार धर्म-वेदना देशना नहीं करता है कि आयुष्मानो! जब भिक्षुको चित्तसे चित्त होता है, तो उस भिक्षुका यह कहना उचित होता है—'जन्म' क्षीण हो गया, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।' आयुष्मान चन्द्रिकापुत्र! देवदत्त भिक्षुओंको इस प्रकार धर्म-देशना करता है कि आयुष्मानो! जब भिक्षुको चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है, तो उस भिक्षुका यह कहना उचित होता है—'जन्म' क्षीण हो गया, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।'

तीसरी बार भी आयुष्मान चन्द्रिकापुत्रने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—'आयुष्मानो ! देवदत्त भिक्षुओंको इस प्रकार धर्म-देशना करता है कि आयुष्मानो जब भिक्षुको चित्तसे चित्त होता है, तो उस भिक्षुका यह कहना उचित होता है—'जन्म' क्षीण हो गया, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।'

तीसरी बार भी आयुष्मान सारिपुत्रने आयुष्मान् चन्द्रिकापुत्रको यह कहा—आयुष्मान चन्द्रिकापुत्र ! देवदत्त भिक्षुओंको इस प्रकार धर्म-देशना नहीं करता है कि आयुष्मानो ! जब भिक्षु को चित्तसे चित्त होता है, तो उस भिक्षुका यह कहना उचित होता है 'जन्म' क्षीण हो गया श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।' आयुष्मान चन्द्रिकापुत्र ! देवदत्त भिक्षुओंको इस प्रकार धर्म-देशना करता है आयुष्मानो ! जब भिक्षुको चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है, तो उस भिक्षुका यह कहना उचित होता है—'जन्म' क्षीण हो गया, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर लिया, मेरा कर्तृत्व पूरा हो गया, मैं जानता हूँ कि अब और जन्म नहीं होगा।'

भिक्षुओ, भिक्षुका चित्त चित्त से कैसे सुपरिचित होता है ? 'मेरा चित्त रागसे रहित है' अनुभव होने पर चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है।' मेरा चित्त 'द्वेषसे' रहित है, अनुभव होने पर चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है, 'मेरा चित्त मोहसे रहित है' अनुभव होने पर चित्त चित्तसे सुपरिचित होता है, 'मेरा चित्त बिना राग-धर्मके है' ऐसा अनुभव होने पर चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है। 'मेरा चित्त बिना द्वेष-धर्मके है' ऐसा अनुभव होने पर चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है, 'मेरा चित्त बिना मोह-धर्मके है' ऐसा अनुभव होने पर चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है, 'मेरे चित्त में काम-भवका पुनरागमन नहीं हो सकता' ऐसा अनुभव होने पर चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है, : 'मेरे चित्तमें रूप-भवका पुनरागमन नहीं हो सकता' ऐसा अनुभव होने पर चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है ; 'मेरे चित्तमें अरूप-भवका पुनरागमन नहीं हो सकता', ऐसा अनुभव होनेपर चित्तसे चित्त सुपरिचित होता है। आयुष्मानो ! जिस भिक्षुका चित्त इस प्रकार विमुक्त हो गया है, उसकी आँखके सामने चाहे कितने भी चक्षु-विज्ञानका विषय बनने वाले 'रूप' आयें, वे उसके चित्तको पथ-भ्रष्ट नहीं कर सकते। उसका चित्त अमिश्रित ही रहता है, स्थिर। वह उस 'रूप' के व्ययको देखता है।

आयुष्मानो, जैसे कोई सोलह हाथका शिला-स्तम्भ हो। आठ हाथ वह गढ़ेसे ऊपर हो और आठ हाथ गढ़के भीतर हो। तब पूर्व दिशासे बहुत हवा-पानी आवे, उससे न वह काँपे, न हिले, ; तब पश्चिम दिशासे . . . . तब उत्तर दिशासे. . . तब दक्षिण दिशासे भी बहुत हवा-पानी आये, उससे न वह कांपे, न हिले। ऐसा क्यों ? आयुष्मानो ! गढ़के गहरा होनेके कारण तथा शिला-स्तम्भके अच्छी तरहसे गड़ा होनेके कारण। इसी प्रकार आयुष्मानो ! जिस भिक्षुका चित्त सम्यक् रूपसे विमुक्त हुआ रहता है, उसकी आँखके सामने चाहे कितने भी चक्षु-विज्ञानको उत्पन्न करने वाले 'रूप' आयें, वे उसके चित्तको पथ-भ्रष्ट नहीं कर सकते। उसका चित्त 'अमिश्रित' ही रहता है, स्थिर। वह उस 'रूप' के व्ययको देखता है।

"उसके कानोंके सामने चाहे कितने भी श्रोत्र-विज्ञानको उत्पन्न करने वाले 'शब्द' आएँ. . . . . . घ्राण विज्ञान को उत्पन्न करने वाले गन्ध आयें. . . . . जिह्वा विज्ञानको उत्पन्न करने वाले रस आयें. . . . कायविज्ञानको उत्पन्न करनेवाले स्पृष्टव्य आएँ. . . . . मनोविज्ञान उत्पन्न करने वाले कितने भी धर्म (= मनके विषय) आयें, वे उसके चित्तको पथ-भ्रष्ट नहीं कर सकते। उसका चित्त अमिश्रित ही रहता है, स्थिर। वह उस रूपके 'व्यय' को देखता है।

७. पठमवेरसुत्त

तब अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ भगवान थे, वहाँ गया। पास जाकर भगवानको प्रणाम कर, एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपतिको भगवानने यह कहा—

'गृहपति ! जिस आर्य-श्रावकके ये पाँच भय अथवा वैर शान्त हो गये हों और वह स्रोतापत्तिके चार अंकोंसे युक्त हो, यदि वह चाहे तो वह अपने बारेमें स्वयं ही यह भविष्यवाणी कर सकता है कि 'मैं निरय (= नरक) गमनसे मुक्त हूँ, पशु-योनिमें जन्म ग्रहण करनेसे मुक्त हूँ, प्रेत-योनिमें जन्म ग्रहण करनेसे मुक्त हूँ, मैं अपाय-दुर्गतिमें पड़नेसे मुक्त हूँ, मैं स्रोतापन्न हूँ, मैं पतनकी ओर अग्रसर होने वाला नहीं हूँ। मेरी सम्बोधि-प्राप्ति निश्चित है।'

"कौनसे पाँच भय या वैर शान्त हो गए रहते हैं ? गृहपति ! प्राणिकी हिंसा करने वाला प्राणी हिंसा करनेके परिणाम स्वरूप इसी जन्ममें जिस भय-वैरको उत्पन्न करता है, मरणान्तर भुगते जाने वाले जिसमें वैरको उत्पन्न करता है, जिस चैतसिक दुख-दौर्मनस्यको उत्पन्न करता है, प्राणि-हिंसासे विरत रहनेके कारण न वह इसी जन्ममें किसी भय-वैरको उत्पन्न करता है, न मरणान्तर भुगते जाने वाले

किसी भय-वैरको उत्पन्न करता है तथा न किसी चैतसिक दुख-दौर्मनस्यको उत्पन्न करता है। प्राणि-हिंसासे विरत रहनेसे इस प्रकार, वह भय-वैर शान्त हो जाता है।

"गृहपति! चोरी करने वाला. . . . काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करने वाला. . . . . झूठ बोलने वाला. . . . सुरा-मेरय आदि नशीली चीजोंके ग्रहण करने वाला, सुरा मेरय आदि नशीली चीजोंके ग्रहण करनेके परिणाम स्वरूप इसी जन्ममें जिस भय-वैरको उत्पन्न करता है, मरणानन्तर भुगते जाने वाले जिस भय-वैरको उत्पन्न करता है, जिस चैतसिक दुख-दौर्मनस्य को उत्पन्न करता है, सुरा-मेरय आदि नशीली चीजोंसे विरत रहनेके कारण न वह इसी जन्ममें किसी भय-वैरको उत्पन्न करता है, न मरणान्तर भुगते जाने वाले किसी भय-वैरको उत्पन्न करता है तथा न किसी चैतसिक दुख-दौर्मनस्यको उत्पन्न करता है। सुरा-मेरय आदि नशीली चीजोंके ग्रहण न करनेसे, इस प्रकार वह भय-वैर शान्त हो जाता है।

"स्रोतापन्न किन चार अंगोंसे युक्त होता है? गृहपति! आर्यश्रावक बुद्धके प्रति अविचल श्रद्धासे युक्त होता है—वह भगवान् अर्हत् हैं, सम्यक् सम्बुद्ध हैं, विद्या तथा आचरणसे युक्त हैं, सुगत हैं, लोकके जानकार हैं, अनुपम हैं, (दुष्ट) पुरुषोंका दमन करनेवाले सारथी हैं, देव-मनुष्योंके शास्ता हैं, बुद्ध हैं, भगवान हैं। वह धर्म के प्रति अविचल श्रद्धासे युक्त होता है—भगवान्का धर्म सु-आख्यात है, सान्दृष्टिक है, कालातिक्रान्त है, इसके बारेमें कहा जा सकता है कि 'आओ और स्वयं देख लो,' ऊपर उठाने वाला है, प्रत्येक विज्ञ आदमी स्वयं साक्षात कर सकता है। वह संघके प्रति अविचल श्रद्धासे युक्त होता है—भगवान्का श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न है, भगवान का श्रावक-संघ ऋजु-प्रतिपन्न है, भगवानका श्रावक-संघ न्याय-प्रतिपन्न है, भगवानका श्रावक-संघ सुपथगामी है, यह जो चार जोड़े हैं, ये जो आठ (आर्य) पुद्गल हैं, यही भगवानका श्रावक संघ है, आदर करने योग्य, पहुनाई करने योग्य, दक्षिणा देने योग्य, हाथ जोड़ने योग्य तथा लोगोंके लिए अनुपम पुण्य-क्षेत्र हैं। वह आर्य-श्रेष्ठ शीलसे युक्त होता है, अखण्डित शीलसे, छिद्र-रहित शीलसे, धब्बे-विहीन शीलसे, मैल-रहित शीलसे, स्वतन्त्र शीलसे विज्ञों द्वारा प्रशंसित शीलसे, अपरामृष्ट शीलसे तथा समाधिकी ओर ले जाने वाले शीलसे। वह स्रोतापत्तिके इन चार अंगोसे युक्त होता है।

गृहपति! जब आर्यश्रावकके ये पाँच भय-वैर शामिल हों और जब वह स्रोतापत्तिके इन चारों अंगोंसे युक्त हो, तो यदि वह चाहे तो वह स्वयं अपने बारेमें यह भविष्यवाणी कर सकता है—मेरा नरक क्षीण हो गया, पशु-योनिमें उत्पन्न

होनेकी संभावना नहीं रही, प्रेत-योनिमें उत्पन्न होनेकी संभावना नहीं रही, दुर्गतिको प्राप्त होनेकी संभावना नहीं रही, स्रोतापन्न हो गया हूँ—पतन-विमुख, बोधि-प्राप्ति सुनिश्चित।

८. दुतियवेरसुत्त

"भिक्षुओ, जब आर्यश्रावकके ये पांच भय-वैर शामिल हों और जब वह स्रोतापत्तिके इन चार अंगोंसे युक्त हो, तो यदि वह चाहे तो वह स्वयं अपने बारेमें यह भविष्यवाणी कर सकता है—मेरा नरक क्षीण हो गया, पशु-योनिमें उत्पन्न होनेकी संभावना नहीं रही, प्रेत-योनिमें उत्पन्न होनेकी संभावना नहीं रही, दुर्गति को प्राप्त होनेकी संभावना नहीं रही, स्रोतापन्न हो गया हूँ— पतन-विमुख, बोधि-प्राप्ति सुनिश्चित।

"कौनसे पाँच भय या वैर शान्त हो गये रहते हैं?

भिक्षुओ, प्राणीकी हिंसा करने वाला प्राणी हिंसा करनेके परिणाम स्वरूप इसी जन्ममें जिस भय-वैरको उत्पन्न करता है, मरणान्तर भुगते जाने वाले जिस भय-वैरको उत्पन्न करता है, जिस चैतसिक दुख-दौर्मनस्य को उत्पन्न करता है, प्राणी-हिंसासे विरत रहनेके कारण. . . . शान्त हो जाता है।"

"भिक्षुओ, चोरी करने वाला. . . . सुरा-मेरय आदि नशीली चीजोंके ग्रहण करने वाला सुरा-मेरय आदि नशीली चीजोंके ग्रहण करनेके परिणाम स्वरूप इसी जन्ममें जिस भय-वैरको उत्पन्न करता है, मरणान्तर भुगते जाने वाले जिस भय-वैरको उत्पन्न करता है, जिस चैतसिक दुख-दौर्मनस्यको उत्पन्न करता है, सुरा-मेरय आदि नशीली चीजोंसे विरत रहनेके कारण न वह इसी जन्ममें किसी भय-वैरको उत्पन्न करता है, न मरणान्तर भुगते जाने वाले किसी भय-वैरको उत्पन्न करता है तथा न किसी चैतसिक दुख-दौर्मनस्य को उत्पन्न करता है। सुरा-मेरय आदि नशीली चीजोंके ग्रहण न करनेसे, इस प्रकार वह भय-वैर शान्त हो जाता है। ये पांच-भय या वैर शान्त हो गये रहते हैं।

"स्रोतापत्तिके किन चार अंगोंसे युक्त होता है? भिक्षुओ, आर्य श्रावक बुद्धके प्रति अविचल श्रद्धासे युक्त होता है—"वह भगवान्. . . भगवान् हैं।" वह धर्मके प्रति. . . . संघके प्रति. . . .वह आर्य-श्रेष्ठ शीलसे युक्त होता है, अखण्डित शीलसे, छिद्र-रहित शीलसे, धब्बे-विहीन शीलसे, मैल-रहित शीलसे, स्वतन्त्र शीलसे, विज्ञों द्वारा प्रशंसित शीलसे, अपरामृष्ट शील से तथा समाधिकी ओर ले जाने वाले शीलसे। वह स्रोतापत्तिके इन चार अंगोंसे युक्त होता है।"

"भिक्षुओ, जब आर्यश्रावकके ये पांच भय-वैर शामिल हों और जब वह स्रोतापत्तिके इन चार अंगोंसे युक्त हो, तो यदि वह चाहे तो वह स्वयं अपने बारेमें यह भविष्यवाणी कर सकता है—मेरा नरक क्षीण हो गया, पशु-योनिमें उत्पन्न होनेकी संभावना नहीं रही, प्रेत-योनिमें उत्पन्न होनेकी संभावना नहीं रही, दुर्गतिको प्राप्त होनेकी संभावना नहीं रही, स्रोतापन्न हो गया हूँ—पतन-विमुख, सम्बोधि-प्राप्ति सुनिश्चित।

९. आघातवत्थुसुत्त

भिक्षुओ, मनमें विरोधी-भावना (= आघात) उत्पन्न होनेके नौ कारण हैं। कौनसे नौ? उसने मेरा अनर्थ किया, इसलिये विरोधी बन जाता है। वह मेरा अनर्थ करता है, इसलिये विरोधी बन जाता है। वह मेरा विरोध करेगा, इसलिये विरोधी बन जाता है। उसने मेरे प्रिय व्यक्तिका, मुझे अच्छे लगने वाले व्यक्तिका अनर्थ किया, इसलिये विरोधी बन जाता है। वह मेरे प्रिय व्यक्तिका, मुझे अच्छे लगने वाले व्यक्तिका अनर्थ करता है, इसलिये विरोधी बन जाता है। वह मेरे प्रिय व्यक्तिका, मुझे अच्छे लगने वाले व्यक्तिका अनर्थ करेगा, इसलिये विरोधी बन जाता है। उसने मेरे अप्रिय व्यक्तिका, मुझे बुरे लगने वाले व्यक्तिका अर्थ (= हित) किया, इसलिये विरोधी बन जाता है। वह मेरे अप्रिय व्यक्तिका, मुझे बुरे लगने वाले व्यक्तिका अर्थ (= हित) करता है, इसलिए विरोधी बन जाता है। वह मेरे अप्रिय व्यक्तिका, मुझे बुरे लगने वाले व्यक्तिका अर्थ (= हित) करेगा, इसलिए विरोधी बन जाता है। भिक्षुओ, मनमें विरोधी-भावना उत्पन्न होनेके ये नौ कारण हैं।"

१०. आघातपटिविनयसुत्त

भिक्षुओ, उत्पन्न विरोधी-भावना (= आघात) के नष्ट करनेके ये नौ उपाय हैं। कौनसे नौ? वह यह सोचकर कि यहाँ कहाँ संभव है कि किसीने भी मेरा अनर्थ (= अहित) न किया है, उत्पन्न विरोधी-भावना (= आघात) को नष्ट कर डालता है। वह यह सोचकर कि यह कहाँ संभव है कि कोई भी वर्तमानमें मेरा अनर्थ न करे, उत्पन्न विरोधी-भावनाको नष्ट कर डालता है। वह यह सोचकर कि यह कहाँ संभव है कि भविष्यमें भी कोई मेरा अनर्थ न करे, उत्पन्न विरोधी—भावनाको नष्ट कर डालता है। वह यह सोचकर कि यह कहाँ संभव है कि मेरे प्रिय व्यक्तिका, मुझे अच्छे लगने वाले व्यक्तिका अनर्थ न किया हो. . . . वर्तमानमें अनर्थ न करता हो . . . भविष्यमें अनर्थ न करे, उत्पन्न विरोधी-भावनाको नष्ट कर डालता है। वह यह सोचकर कि यह कहाँ संभव है कि मेरे अप्रिय व्यक्तिका, मुझे अच्छे

न लगने वाले व्यक्तिका अर्थ न किया हो. . . . . वर्तमानमें अर्थ न करता हो. . . . भविष्यमें अर्थ न करे, सोचकर उत्पन्न विरोधी-भावनाको नष्ट कर डालता है। भिक्षुओ, उत्पन्न विरोधी-भावनाके नष्ट करनेके ये नौ उपाय हैं।

११. अनुपुब्बनिरोधसुत्त

भिक्षुओ, नौ क्रमशः निरोध हैं। कौनसे नौ? प्रथम-ध्यान-प्राप्त व्यक्ति की काम-भावना निरुद्ध हो जाती है। द्वितीय-ध्यान-प्राप्त के वितर्क-विचार निरुद्ध हो जाते हैं। तृतीय ध्यान-प्राप्त की प्रीति निरुद्ध हो जाती हैं। चतुर्थ ध्यान-प्राप्तका सांसका आवागमन निरुद्ध हो जाता है। आकाशानञ्चायतन-प्राप्तकी रूप-संज्ञा निरुद्ध हो जाती है। विज्ञानाञ्चायतन-प्राप्त की आकाशानञ्चायतन-संज्ञा निरुद्ध हो जाती है। आकिञ्चञ्ञायतन-प्राप्त की विज्ञानाञ्चायतन संज्ञा निरुद्ध हो जाती है। न संज्ञा न असंज्ञा प्राप्त की आकिञ्चञ्ञायतन-संज्ञा निरुद्ध हो जाती है। संज्ञा-वेदना-निरोध प्राप्त की संज्ञा तथा वेदना दोनों निरुद्ध हो जाती हैं। भिक्षुओ, ये नौ क्रमशः निरोध हैं।

४. महावग्ग

१. अनुपुब्बविहारसुत्त

भिक्षुओ, ये क्रमशः नौ विहरण (=ध्यान अवस्थायें हैं। कौनसे नौ? प्रथम-ध्यान, द्वितीय-ध्यान, तृतीय-ध्यान, चतुर्थ-ध्यान, आकाशानंचायतन, विज्ञानञ्चायतन, आकिञ्चञ्ञायतन, नेवसंञानासंञायतन, तथा संञावेदयित निरोधो—भिक्षुओ, ये क्रमशः नौ विहरण हैं।

२.

भिक्षुओ, मैं क्रमशः इन नौ विहरण-समापत्तियोंकी देशना करता हूँ। इसे ध्यानसे सुनो. . . . भिक्षुओ ये क्रमशः नौ विहरण-समापत्तियाँ कौन कौनसी हैं? जब कामनाओंका निरोध हो जाता है, जो कामनाओंको निरुद्ध करके विहार करते हैं, उनके बारेमें मैं कहता हूँ कि उतने अंशमें वे आयुष्मान तृष्णा-रहित हैं, निर्वाण-प्राप्त हैं, तीर्ण हैं, उस पार पहुँच गये हैं। यदि कोई कहे कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं नहीं देखता हूँ कि कहाँ कामनाओंका निरोध होता है और कौन हैं जो कामनाओंका निरोध करके विहार करते हैं, तो उसे कहना चाहिए—आयुष्मान्! एक भिक्षु काम-भोगोंसे पृथक्, अकुशल-धर्मोंसे पृथक, सवितर्क, सविचार, विवेकसे उत्पन्न, प्रीति सुखसे युक्त प्रथम-ध्यान विहार कर विहार करता है। यहाँ कामनाओंका निरोध

होता है, और ये वासनाओंका निरोध कर करके विहार करते हैं। भिक्षुओ, यह निश्चित है कि जो शठ नहीं होगा, मायावी नहीं होगा, वह 'साधु' कहकर उस कथनका समर्थन करेगा, अनुमोदन करेगा; और 'साधु' कह कथनका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, हाथ जोड़कर वन्दना करेगा।

जब वितर्क-विचारोंका निरोध हो जाता है, जो वितर्क-विचारोंका निरोध कर करके विहार करते हैं, उनके बारेमें मैं कहता हूँ कि उतने अंशमें आयुष्मान तृष्णा रहित हैं, निर्वाण-प्राप्त हैं, तीर्ण हैं, उस पार पहुँच गए हैं। यदि कोई कहे कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं नहीं देखता हूँ कि कहाँ वितर्क-विचारोंका निरोध होता है और कौन हैं जो वितर्क-विचारोंका निरोध कर करके विहार करते हैं, तो उसे कहना चाहिए ––आयुष्मान! एक भिक्षु वितर्क-विचारोंका उपशमन कर. . द्वितीय ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। यहाँ वितर्क-विचारोंका निरोध होता है, और ये वितर्क-विचारोंका निरोध कर करके विहार करते हैं। भिक्षुओ, यह निश्चित है कि जो शठ नहीं होगा, मायावी नहीं होगा, वह 'साधु' कहकर उस कथनका समर्थन करेगा, अनुमोदन करेगा; और 'साधु' कह कथनका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, हाथ जोड़ कर वन्दना करेगा।

जब प्रीतिका निरोध हो जाता है, जो प्रीतिका निरोध कर करके विहार करते हैं, उनके बारेमें मैं कहता हूँ कि उतने अंशमें वे आयुष्मान् तृष्णा-रहित हैं, निर्वाण-प्राप्त हैं, तीर्ण हैं, उस पार पहुँच गए हैं। यदि कोई कहे कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं नहीं देखता हूँ कि कहाँ प्रीतिका निरोध होता है और कौन हैं जो प्रीतिका निरोध कर करके विहार करते हैं, तो उसे कहना चाहिए—आयुष्मान् भिक्षु प्रीतिका निरोध कर. . . . . तृतीय-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। यहाँ प्रीतिका निरोध होता है, और ये प्रीतिका निरोध कर करके विहार करते हैं। भिक्षुओ, यह निश्चिन्त है कि जो शठ नहीं होगा, मायावी नहीं होगा, वह 'साधु' कहकर उस कथनका समर्थन करेगा, अनुमोदन करेगा, और 'साधु' कह कथनका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, हाथ जोड़ कर वन्दना करेगा।

जहाँ उपेक्षा-सुखका निरोध हो जाता है, जो उपेक्षा-सुखका निरोध कर करके विहार करते हैं, उनके बारेमें मैं कहता हूँ कि उतने अंशमें वे आयुष्मान् तृष्णा रहित हैं, निर्वाण-प्राप्त हैं, तीर्ण हैं, उस पार पहुँच गए हैं। यदि कोई कहे कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं नहीं देखता हूँ कि कहाँ उपेक्षा-सुखका निरोध होता है और कौन हैं जो उपेक्षा-सुखका निरोध कर करके विहार करते हैं, तो उसे कहना चाहिए—आयु-

ष्मान् ! भिक्षु उपेक्षा-सुखका . . . . चतुर्थ-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। यहाँ उपेक्षा-सुखका निरोध होता है, और ये उपेक्षा-सुखका निरोध कर करके विहार करते हैं। भिक्षुओ, यह निश्चित है कि जो शठ नहीं होगा, मायावी नहीं होगा, वह 'साधु' कह कर उस कथनका समर्थन करेगा, अनुमोदन करेगा और 'साधु' कह कथनका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, हाथ जोड़ कर वन्दना करेगा।

जहाँ रूप-संज्ञाका निरोध हो जाता है, जो रूप-संज्ञाका निरोध कर करके विहार करते हैं, उनके बारेमें मैं कहता हूँ कि उतने अंशमें वे आयुष्मान तृष्णा-रहित हैं, निर्वाण-प्राप्त हैं, तीर्ण हैं, उस पार पहुँच गए हैं। यदि कोई कहे कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं नहीं नहीं देखता हूँ कि कहाँ रूप-संज्ञाका निरोध होता है और कौन हैं जो रूप-संज्ञाका निरोध कर करके विहार करते हैं, तो उसे कहना चाहिए—आयुष्मान् ! भिक्षु सभी रूप-संज्ञाओंका अतिक्रमण कर, प्रति संज्ञाओंका अस्त हो जाने पर, नानत्व-संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान, होने पर, 'आकाश अनन्त है' करके 'आकाशानंचा-यतन' को प्राप्त कर विहार करता है। यहाँ रूप-संज्ञाका निरोध होता है, और ये रूप-संज्ञाका निरोध कर करके विहार करते हैं। भिक्षुओ, यह निश्चित है कि जो शठ नहीं होगा, मायावी नहीं होगा, वह 'साधु' कहकर उस कथनका समर्थन करेगा, अनुमोदन करेगा और 'साधु' कह कथनका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, हाथ जोड़कर वन्दना करेगा।

जहाँ 'आकाशानंचायतन' का निरोध हो जाता है, जो आकाशानंचायतन संज्ञाका निरोध कर करके विहार करते हैं, उनके बारेमें मैं कहता हूँ कि उतने अंशमें वे आयुष्मान तृष्णा रहित हैं, निर्वाण-प्राप्त हैं, तीर्ण हैं, उस पार पहुँच गए हैं। यदि कोई कहे कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं नहीं देखता हूँ कि कहाँ आकाशानंचायतन का निरोध होता है और कौन हैं जो आकाशानंचायतनका निरोध कर करके विहार करते हैं, तो उसे कहना चाहिए—आयुष्मान् ! भिक्षु सभी आकाशानंचायतन संज्ञाओं का अतिक्रमण कर 'विज्ञानको अनन्त' मान विज्ञानञ्चायतन को प्राप्त हो विहार करता है। यहाँ आकाशानंचायतन संज्ञाका निरोध होता है, और ये आकाशानंचायतन का निरोध कर करके विहार करते हैं। भिक्षुओ, यह निश्चित है कि जो शठ नहीं होगा, जो मायावी नहीं होगा, वह 'साधु' कह कर उस कथनका समर्थन करेगा, अनुमोदन करेगा, और 'साधु' कह कथनका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, हाथ जोड़कर वन्दना करेगा।

जहाँ 'विज्ञानंचायतन संज्ञा' का निरोध हो जाता है, जो विज्ञानंचायतन-संज्ञाका निरोध कर करके विहार करते हैं, उनके बारेमें मैं कहता हूँ कि उतने अंशमें वे आयुष्मान तृष्णा-रहित हैं, निर्वाण-प्राप्त हैं, तीर्ण हैं, उस पार पहुँच गये हैं। यदि कोई कहे कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं नहीं देखता हूँ कि कहाँ विज्ञानंचायतनका निरोध होता है और कौन हैं जो विज्ञानंचायतन का निरोध कर विहार करते हैं, तो उसे कहना चाहिये—आयुष्मान्! भिक्षु सभी विज्ञानंचायतनका समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं हैं' करके 'आकिंचन्यायतन'को प्राप्त हो विहार करता है। यहाँ विज्ञानंचायतनका संज्ञाका निरोध कर करके विहार करते हैं। भिक्षुओ, यह निश्चित है कि जो शठ नहीं होगा, जो मायावी नहीं होगा, वह 'साधु' कह कर उस कथनका समर्थन करेगा, अनुमोदन करेगा और 'साधु' कह, कथनका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, हाथ जोड़कर वन्दना करेगा।

जहाँ 'आकिंचन्यायतन-संज्ञा' का निरोध हो जाता है, जो 'आकिंचन्यायतन-संज्ञा' का निरोध कर करके विहार करते हैं, उनके बारेमें मैं कहता हूँ कि उतने अंशमें वे आयुष्मान् तृष्णा-रहित हैं, निर्वाण-प्राप्त हैं, तीर्ण हैं, उस पार पहुँच गए हैं। यदि कोई कहे कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं नहीं देखता हूँ कि कहाँ आकिंचन्यायतन-संज्ञाका निरोध होता है और कौन है जो आकिंचन्यायतनका निरोध कर विहार करते हैं, तो उसे कहना चाहिए—'आयुष्मान! भिक्षु सभी आकिंचन्यायतनका समतिक्रमण कर 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन' को प्राप्त हो विहार करता है। यहाँ 'आकिंचन्यायतन संज्ञा'का निरोध होता है, और ये 'आकिंचन्यायतन संज्ञा'का निरोध कर करके विहार करते हैं। भिक्षुओ, यह निश्चित है, कि जो शठ नहीं होगा, जो मायावी नहीं होगा, वह 'साधु' कहकर उस कथनका समर्थन करेगा, अनुमोदन करेगा और 'साधु' कह कथन को अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर हाथ जोड़कर वन्दना करेगा।

जहाँ 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन संज्ञा' का निरोध हो जाता है, जो 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन संज्ञा' का निरोध कर करके विहार करते हैं, उनके बारेमें मैं कहता हूँ कि उतने अंशमें वे आयुष्मान तृष्णा-रहित हैं, निर्वाण-प्राप्त हैं, तीर्ण हैं, उस पार पहुँच गए हैं। यदि कोई कहे कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं नहीं देखता हूँ कि कहाँ 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन संज्ञा' का निरोध होता है। और कौन हैं जो नेवसंज्ञानासंज्ञायतनका निरोध कर विहार करते हैं, तो उसे कहना चाहिए—आयुष्मान्! भिक्षु सभी नेवसंज्ञानासंज्ञायतनका समतिक्रमण कर संज्ञा-वेदयित-निरोध को प्राप्त कर

विहार करता है। यहाँ 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन संज्ञा'का निरोध होता है, और ये नेवसंज्ञाना-संज्ञायतन संज्ञाका विरोध कर करके विहार करते हैं। भिक्षुओ, यह निश्चित है कि जो शठ नहीं होगा, जो मायावी नहीं होगा, वह 'साधु' कहकर उस कथनका समर्थन करेगा, अनुमोदन करेगा, और 'साधु' कह कथनका अभिनन्दन कर, हाथ जोड़कर वदना करेगा। भिक्षुओ, ये क्रमशः नौ विहरण-समापत्तियाँ हैं।

३. निब्बानसुख सुत्तं

एक समय आयुष्मान सारिपुत्र राजगृहके वेळुवनमें कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। वहाँ आयुष्मान सारिपुत्रने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"आयुष्मानो! निर्वाण सुख है। आयुष्मानो! निर्वाण सुख है।" ऐसा कहने पर आयुष्मान उदायी ने आयुष्मान सारिपुत्र को यह कहा—"आयुष्मान सारिपुत्र! यह कैसा 'सुख' है, जो किसी प्रकारकी सुख, दुख अथवा असुख-अदुख वेदना नहीं है?'

"आयुष्मानो! यही सुख' है कि इसमें सुख, दुख, असुख-अदुख किसी प्रकार की 'वेदना' नहीं है। आयुष्मानो! ये पाँच काम-गुण (=कामनायें) हैं। कौनसे पाँच? चक्षुके अनुभवमें आनेवाले रूप, इष्ट, मनोरम, अच्छे लगने वाले, प्रियकर कामना-युक्त तथा मनोरंजक; श्रोत्रके अनुभवमें आने वाले शब्द, इष्ट. . . . मनोरंजक; घ्राणके अनुभवमें आने वाले गन्ध, इष्ट. . . . मनोरंजक; जिह्वाके अनुभवमें आनेवाले रस, इष्ट. . . मनोरंजक; काय (=शरीर) के अनुभवमें आने वाले स्पृष्टव्य, इष्ट. . . . मनोरंजक—आयुष्मानो! ये पाँच काम-गुण हैं। भिक्षुओ, इन पाँच काम-गुणोंके कारण जो 'सुख', जो 'मजा' उत्पन्न होता है, यही 'काम-सुख' कहलाता है।

अब आयुष्मानो! एक भिक्षु काम-भोगोंसे पृथक हो. . . . प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। आयुष्मानो! यदि इस चित्तावस्थामें रहते हुए उसके मनमें काम-वासना के भाव उत्पन्न होते हैं, ये उसके लिये विघ्न होते हैं। आयुष्मानो! जैसे किसी भी सुखी आदमीको जो दुख उत्पन्न होता है, वह विघ्नकर होता है। इसी प्रकार उसके मनमें काम-वासनाके भाव उत्पन्न होते हैं। ये उसके लिये विघ्न होते हैं। आयुष्मानो! जितने भी विघ्न हैं, जितनी भी बाधायें हैं, उन्हें भगवान्ने दुख कहा है। इस तरह भी आयुष्मानो! यह जानना चाहिये कि निर्वाण 'सुख' है।

फिर आयुष्मानो! एक भिक्षु वितर्क-विचारोंका उपशमन कर. . . . द्वितीय ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मानो! यदि इस चित्तावस्थामें रहते हुए उसके मनमें तर्क-वितर्क के भाव उत्पन्न होते हैं, ये उसके लिये विघ्न होते हैं।

आयुष्मानो ! जैसे किसी भी सुखी आदमीको जो दुख उत्पन्न होता है, वह विघ्नकर होता है। इसी प्रकार उसके मनमें तर्क-वितर्क उत्पन्न होते हैं। ये उसके लिये विघ्न होते हैं। आयुष्मानो ! जितने भी विघ्न हैं, जितनी भी बाधायें हैं, उन्हें भगवानने दुख कहा है। इस तरह भी आयुष्मानो ! यह जानना चाहिये कि 'निर्वाण' 'सुख' है।

फिर आयुष्मानो ! एक भिक्षु 'प्रीति' का उपशमन कर . . . . तृतीय ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मानो यदि इस चित्तावस्थामें रहते हुए उसके मनमें 'प्रीति' के भाव उत्पन्न होते हैं, ये उसके लिए 'विघ्न' होते हैं।

आयुष्मानो ! जैसे किसी भी सुखी आदमीको जो दुख उत्पन्न होता है, वह विघ्नकर होता है। इसी प्रकार उसके मनमें 'प्रीति' के भाव उत्पन्न होते हैं। ये उसके लिए विघ्न होते हैं। आयुष्मानो ! जितने भी विघ्न हैं, जितनी भी बाधायें हैं, उन्हें भगवानने दुख कहा है। इस तरह भी आयुष्मानो ! यह जानना चाहिये कि निर्वाण 'सुख' है।

फिर आयुष्मानो ! भिक्षु 'सुख' का प्रहाण कर . . . . . . चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मानो यदि इस चित्तावस्थामें रहते हुए 'उपेक्षा' के भाव उत्पन्न होते हैं, ये उसके लिये 'विघ्न' होते हैं। आयुष्मानो ! जैसे किसी भी सुखी आदमीको जो 'दुख' उत्पन्न होता है, वह विघ्नकर होता है। इसी प्रकार उसके मनमें 'उपेक्षा' के भाव उत्पन्न होते हैं। ये उसके लिये विघ्न होते हैं। आयुष्मानो ! जितने भी विघ्न हैं, जितनी भी बाधायें हैं, उन्हें भगवानने दुःख कहा है। इस तरह भी आयुष्मानो ! यह जानना चाहिए कि निर्वाण 'सुख' है।

फिर आयुष्मानो ! भिक्षु सभी 'रूप' संज्ञाओंका प्रहाण कर, प्रतिव-संज्ञाओं के अस्त हो जाने पर, नानात्व संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान हो 'आकाश अनन्त है' करके आकाशानञ्चायतनको प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मानो ! यदि इस चित्तावस्थामें रहते हुए 'रूप' के भाव उत्पन्न होते हैं, तो ये उसके लिये 'विघ्न' होते हैं। आयुष्मानो ! जैसे किसी भी सुखी आदमीको जो 'दुख' उत्पन्न होता है, वह विघ्नकर होता है। इसी प्रकार उसके मनमें 'रूप' के भाव उत्पन्न होते हैं। ये उसके लिए 'विघ्न' होते हैं। आयुष्मानो ! जितने भी विघ्न हैं, जितनी भी बाधायें हैं, उन्हें भगवानने दुख कहा है। इस तरह भी आयुष्मानो ! यह जानना चाहिए कि निर्वाण 'सुख' है।

फिर आयुष्मानो! भिक्षु पूरी तरहसे 'आकाशानन्चायतनका समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' करके 'विज्ञानन्चायतन' को प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मानो! यदि इस चित्तावस्थामें रहते हुए 'आकाशानंचायतन' के भाव उत्पन्न होते हैं, तो ये उसके लिये 'विघ्न' होते हैं। आयुष्मानो! जैसे किसी भी सुखी आदमीको जो 'दुख' उत्पन्न होता है, वह विघ्नकर होता है। इसी प्रकार उसके मनमें 'आकाशानन्चायतन' के भाव उत्पन्न होते हैं। ये उसके लिये 'विघ्न' होते हैं। आयुष्मानो! जितने भी 'विघ्न' है, जितनी भी बाधायें हैं। उन्हें भगवान्ने 'दुख' कहा है। इस तरह भी आयुष्मानो! यह जानना चाहिये कि निर्वाण 'सुख' है।

फिर आयुष्मानो! भिक्षु पूरी तरहसे 'विज्ञानन्चायतन'का समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके 'आकिञ्चन्यायतन' को प्राप्त हो विहार करता है। आयुष्मानो! यदि इस चित्तावस्थामें रहते हुए 'विज्ञानन्चायतन' के भाव उत्पन्न होते हैं, तो ये उसके लिए 'विघ्न' होते हैं। आयुष्मानो! जैसे किसी भी सुखी आदमीको जो दुख उत्पन्न होता है, वह विघ्नकर होता है। इसी प्रकार उसके मनमें 'विज्ञानन्चायतन' के भाव उत्पन्न होते हैं। ये उसके लिये 'विघ्न' होते हैं। आयुष्मानो! जितने भी विघ्न हैं, जितनी भी बाधायें हैं, भगवान्ने उन्हें दुख कहा है। इस तरह भी आयुष्मानो! यह जानना चाहिए कि निर्वाण 'सुख' है।

फिर आयुष्मानो! भिक्षु पूरी तरहसे 'आकिञ्चन्यायतन'का समतिक्रमण कर 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन' को प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मानो! यदि इस चित्तावस्थामें रहते हूए 'आकिञ्चन्यायतन' के भाव उत्पन्न होते हैं, तो ये उसके लिए 'विघ्न' होते हैं। आयुष्मानो! जैसे किसी भी सुखी आदमीको जो दुख उत्पन्न होता है, वह विघ्नकर होता है। इसी प्रकार उसके मनमें 'आकिञ्चन्यायतन' के भाव उत्पन्न होते हैं। ये उसके लिए 'विघ्न' होते हैं। आयुष्मानो! जितने भी विघ्न हैं, जितनी भी बाधायें हैं, भगवान्ने उन्हें 'दुख' कहा है। इस तरह भी आयुष्मानो! यह जानना चाहिए कि निर्वाण सुख है।

फिर आयुष्मानो! भिक्षु पूरी तरह से 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन'का समतिक्रमण कर संज्ञा-वेदना के निरोधको प्राप्त हो विहार करता है। प्रज्ञा द्वारा इष्ट होनेके कारण उसके आस्रव क्षीण हो जाते हैं। इस तरह भी आयुष्मानो! यह जानना चाहिए कि निर्वाण सुख है।

४. गावीउपमासुत्तं

१ भिक्षुओ, जैसे कोई पहाड़ी गौ हो, किन्तु वह मूर्ख हो, होशियार न हो, खेतोंकी जानकार न हो, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी-प्रदेशमें चरनेमें दक्ष न हो। उसके मनमें यह विचार आये कि मैं ऐसी दिशामें जाऊँ, जहाँ पहले न गई होऊँ; वह घास खाऊँ, जिसे पहले न खाया हो, वह पानी पीऊँ, जिसे पहले न पिया हो।' वह अपने अगले पाँवको अच्छी तरहसे सुप्रतिष्ठित किये बिना पिछला पाँव हटा ले। वह न तो ऐसी दिशामें जा सके, जहाँ पहले न गई हो; न वह घास खा सके; जिसे पहले न खाया हो; न वह पानी पी सके जिसे पहले न पिया हो। और जिस जगह पर खड़ी होकर उसके मनमें यह विचार पैदा हुआ हो कि 'मैं ऐसी दिशामें जाऊँ, जहाँ पहले न गई होऊँ; वह घास खाऊँ, जिसे पहले न खाया हो, वह पानी पीऊँ, जिसे पहले न पिया हो' वह उस जगह पर भी फिर प्रतिष्ठित न हो सके। यह किसलिये? भिक्षुओ, ऐसी ही है वह पहाड़ी गौ, जो मूर्ख है, जो होशियार नहीं है, जो खेतोंकी जानकार नहीं है, जो ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी प्रदेशमें चलनेमें दक्ष नहीं है। इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई भिक्षु मूर्ख होता है; होशियार नहीं होता; अपने क्षेत्र (=मर्यादा) का जानकार नहीं होता; काम-भोगोंसे पृथक्, अकुशल-कर्मोंसे पृथक, सवितर्क, सविचार, विवेकोत्पन्न, प्रीति-सुख वाले प्रथम-ध्यानको प्राप्त नहीं हो सकता। वह उस ध्यानके विषय (=निमित्त) का सेवन नहीं करता, अभ्यास नहीं करता, वृद्धि नहीं करता, उसे अपने अधिकारमें नहीं करता।

उसके मनमें होता है कि मैं वितर्क-विचारोंका उपशमन कर, आंतरिक प्रसन्नता देने वाले, चित्तकी एकाग्रता-रूप, वितर्क-रहित, विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त कर विहार करूँ। वह वितर्क-विचारोंके उपशमनके अनन्तर. . . द्वितीय ध्यान को प्राप्त करके विहार नहीं कर सकता है। तब उसके मनमें होता है कि मैं काम-भोगोंसे पृथक्, अकुशल-धर्मोंसे पृथक्, सवितर्क, सविचार, विवेकोत्पन्न, प्रीति, सुखवाले प्रथम- ध्यानको प्राप्त कर विहार करूँ। वह काम भोगोंसे पृथक. . . .प्रथम ध्यानको प्राप्त कर विहार नहीं कर सकता। भिक्षुओ, ऐसा भिक्षु ही उभय-भ्रष्ट, दोनों ओर से हानि-प्राप्त कहलाता है, ठीक उस पहाड़ी गौ की तरह जो मूर्ख हो, जो होशियार न हो, जो खेतोंकी जानकार न हो, जो ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी प्रदेशमें चरनेमें दक्ष न हो।

भिक्षुओ, जैसे कोई पहाड़ी गौ हो, पण्डित हो, होशियार हो, खेतोंकी जानकार हो, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी प्रदेशमें चलनेमें दक्ष हो। उसके मनमें यह हो कि मैं ऐसी

दिशामें जाऊँ, जहाँ पहले न गई होऊँ; वह घास खाऊँ, जिसे पहले न खाया हो; वह पानी पीऊँ, जिसे पहले न पिया हो।' वह अपने अगले पाँवको अच्छी तरह सुप्रतिष्ठित कर, पिछले पाँव को उठाए। वह ऐसी दिशामें जाए, जहाँ पहले न गई हो। वह घास खाए, जो पहले न खाई हो। वह पानी पिए, जिसे पहले न पिया हो। जिस प्रदेशमें खड़ी रहनेपर उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ था कि मैं ऐसी दिशामें जाऊँ, जहाँ पहले न गई होऊँ; वह घास खाऊँ; जो पहले न खाई हो; वह पानी पीऊँ, जो पहले न पिया हो; वह उस प्रदेशमें सकुशल पीछे लौट जाए। यह किसलिए? भिक्षुओ, क्योंकि वह पहाड़ी गौ पण्डित है, होशियार है, खेतोंकी जानकार है, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी प्रदेशमें चलनेमें दक्ष है। इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई भिक्षु पण्डित होता है; होशियार होता है; अपनी मर्यादाका जानकार होता है; काम भोगोंसे पृथक, अकुशल-कर्मोंसे पृथक, सवितर्क, सविचार, विवेकोत्पन्न, प्रीति-सुखवाले पृथक-ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। वह उस ध्यानके विषय (= निमित्त) का सेवन करता है, अभ्यास करता है, वृद्धि करता है, उसे अपने अधिकारमें रखता है।

उसके मनमें होता है कि मैं वितर्क-विचारोंका उपशमन कर, आन्तरिक प्रसन्नता देनेवाले, चित्तकी एकाग्रता-रूप, वितर्क-रहित, विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले द्वितीय-ध्यानको प्राप्त कर विहार करूं। वह द्वितीय-ध्यानमें बिना किसी प्रकारकी बाधा (= हिंसा) उपस्थित किए, द्वितीय-ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। वह उस ध्यानके विषय (= निमित्त) का सेवन करता है, अभ्यास करता है, वृद्धि करता है तथा उसे अपने अधिकारमें रखता है।

उसके मनमें होता है कि मैं 'प्रीति' की ओरसे उदासीन हो, उपेक्षावान हो विहार करूँ—स्मृति-सम्प्रजन्य युक्त; मैं (मनो—) कायसे सुखका स्पर्श करूँ। जिसके बारेमें आर्यजन कहते हैं—उपेक्षावान, स्मृतिमान तथा सुखपूर्वक विहार करनेवाला। ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्त कर विहार करूँ। वह तृतीय-ध्यानमें बिना किसी प्रकारकी बाधा (= हिंसा) उपस्थित किए, 'प्रीति' की ओरसे उदासीन हो, तृतीय-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। वह ध्यानके विषय (= निमित्त) का सेवन करता है, अभ्यास करता है, वृद्धि करता है तथा उसे अपने अधिकारमें रखता है।

उसके मनमें होता है कि मैं 'सुख' तथा 'दुख' का प्रहाण कर, सौमनस्य तथा दौर्मनस्यका पहले ही अन्तर्धान हुआ रहनेपर अदुख-स्वरूप, असुख-स्वरूप, उपेक्षा-स्मृति, परिशुद्धियुक्त चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त कर विहार करूँ। वह चतुर्थ ध्यानमें

बिना किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित किए सुखका प्रहाण कर...... चतुर्थ ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। वह उस ध्यानके विषय (= निमित्त) का सेवन करता है, अभ्यास करता है, वृद्धि करता है तथा उसे अपने अधिकारमें रखता है।

उसके मनमें होता है कि मैं सभी रूप संज्ञाओंका प्रहाण कर, प्रतिघ-संज्ञाओंके अस्त हो जानेपर, नानत्व संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान् हो 'आकाश अनन्त है' करके आकाशानंचायतनको प्राप्त कर विहार करूँ। वह आकाशानंचायतनको बिना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाए, सभी रूप-संज्ञाओंका समतिक्रमण कर..... आकाशानंचायतनको प्राप्त कर विहार करता है। वह उस ध्यानके विषय (= निमित्त) का सेवन करता है, अभ्यास करता है, वृद्धि करता है तथा उसे अपने अधिकारमें रखता है।

उसके मनमें होता है कि मैं पूरी तरहसे आकाशानंचायतनका समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' करके 'विज्ञानंचायतन' को प्राप्त कर विहार करूं। वह 'विज्ञानंचायतन' को बिना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाए, सभी आकाशानंचायतनोंका समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' करके 'विज्ञानंचायतन' को प्राप्त कर विहार करता है। वह उस ध्यानके विषय (= निमित्त) का सेवन करता है, अभ्यास करता है, वृद्धि करता है तथा उसे अपने अधिकारमें रखता है।

उसके मनमें होता है कि मैं पूरी तरहसे विज्ञानंचायतनका समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके आकिंचन्यायतनको प्राप्त कर विहार करूं। वह 'आकिञ्चन्यायतन' को बिना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाए, सभी विज्ञानञ्चायतनोंका समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके 'आकिंचन्यायतन' का समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके आकिंचन्यायतनको प्राप्त कर विहार करता है। वह उस ध्यानके विषय (= निमित्त) का सेवन करता है, अभ्यास करता है, वृद्धि करता है तथा उसे अपने अधिकारमें रखता है।

उसके मनमें होता है कि मैं पूरी तरहसे 'आकिञ्चन्यायतन' का समतिक्रमण कर नेवसंज्ञानासंज्ञायतनको प्राप्त कर विहार करूँ। वह 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन' को बिना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाए, सभी आकिञ्चन्यायतनका समतिक्रमण कर 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन' को प्राप्त कर विहार करता है। वह उस ध्यानके विषय (= निमित्त) का सेवन करता है, अभ्यास करता है, वृद्धि करता है तथा उसे अपने अधिकारमें रखता है।

उसके मनमें होता है कि मैं पूरी तरहसे 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन' का समतिक्रमण कर संज्ञा-वेदनाके निरोधको प्राप्त कर विहार करूँ। वह संज्ञा-वेदनाके निरोधको बिना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाए सभी 'नेवसंज्ञानासंज्ञायतन'का समतिक्रमण कर संज्ञा-वेदनाके निरोधको प्राप्त कर विहार करता है।

भिक्षुओ, जब भिक्षु उस उस ध्यान (=समापत्ति) को प्राप्त होता है और उससे उठता है, तो उसका चित्त कोमल होता है और कमाया हुआ होता है। मृदु तथा कमाए हुए चित्तसे असीम समाधि सिद्ध होती है। वह अभ्यस्त असीम समाधिसे जिस-जिस अभिज्ञा (धर्म) को साक्षात् करनेके लिए चित्तको झुकाता है, वह उस उस विषयमें ही उस उस आयतनके होने पर, साक्षी-भावको प्राप्त होता है।

यदि वह आकांक्षा करता है कि मैं अनेक प्रकारकी ऋद्धिका अनुभव करूँ, एक होकर भी अनेक हो जाऊँ, अनेक होकर भी एक हो जाऊँ....... ब्रह्मलोक तक भी मेरी सशरीर पहुँच हो, तो उस उस विषयमें, उस उस आयतनके होनेपर, साक्षी-भावको ग्रहण करता है।

यदि वह आकांक्षा करता है कि मैं उस उस आयतनमें दिव्य-श्रोत्र धातुसे दिव्य-शब्द सुनूँ.......।

यदि वह आकाक्षा करता है कि मैं दूसरे लोगोंके, दूसरे व्यक्तियोंके चित्तको अपने चित्तसे जान लूँ, सराग चित्तके बारेमें जान लूँ कि यह सराग-चित्त है, वीत-राग चित्तके बारेमें जान लूँ कि यह वीत-राग चित्त है, सद्वेष चित्तके बारेमें जान लूँ कि यह सद्वेष है, वीत-द्वेषके बारेमें जान लूँ कि यह वीत-द्वेष है, समोह-चित्त के बारेमें जान लूँ कि वह समोह है, वीत-मोहके बारेमें जान लूँ कि यह वीत-मोह है, संक्षिप्त (=एकाग्र) चित्तके बारेमें जान लूँ कि यह संक्षिप्त है, विक्षिप्त (=बिखरा हुआ) चित्तके बारेमें जान लूँ कि यह बिखरा हुआ है, महत् गत चित्त...... अमहत् गत चित्त......स-उत्तर (=जिससे श्रेष्ठतर हो) चित्त......स-उत्तर ......निरुत्तर (=सर्वश्रेष्ठ) चित्तके बारेमें जान लूँ कि यह निरुत्तर है...... समाहित-चित्त (=एकाग्र) चित्त.....समाहित-चित्त.....असमाहित-चित्त.. ....असमाहित-चित्त......विमुत्त चित्त....विमुत्त चित्त.....अविमुक्त चित्तके बारेमें जान लूँ कि यह अविमुक्त चित्त है। वह उस उस आयतनमें साक्षी-भावको प्राप्त करता है।

यदि वह आकांक्षा करता है कि अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंका अनुस्मरण करूँ, जैसे एक जन्मका.......दो जन्मोंका .....इस प्रकार आकार सहित,

उद्देश्य-सहित अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंका अनुस्मरण करूँ। वह उस उस आयतनमें साक्षी-भावको प्राप्त करता है।

यदि वह आकांक्षा करता है कि मैं मनुष्योत्तर दिव्य-चक्षुसे कर्मानुसार भिन्न-भिन्न गतियोंको प्राप्त हुए प्राणियोंको जानूँ। वह उस उस आयतनमें साक्षी-भावको प्राप्त करता है।

यदि वह आकांक्षा करता है कि आस्रवोंका क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर साक्षात कर विहार करूँ। वह उस उस आयतनमें साक्षी भावको प्राप्त करता है।

५. झानसुत्त

भिक्षुओ, प्रथम-ध्यान भी आस्रव-क्षयका सहायक-कारण होता है। भिक्षुओ, दूसरा-ध्यान भी आस्रव-क्षयका सहायक-कारण होता है। भिक्षुओ, तीसरा-ध्यान भी आस्रव-क्षयका सहायक-कारण होता है। भिक्षुओ, चौथा-ध्यान भी आस्रव-क्षयका सहायक-कारण होता है। भिक्षुओ, आकाशानञ्चायतन भी आस्रवोंके क्षयका सहायक-कारण होता है। भिक्षुओ, विज्ञानञ्चायतन भी आस्रवोंके क्षयका कारण होता है। भिक्षुओ, आकिञ्चन्यायतन भी आस्रवोंके क्षयके सहायक-कारण होता है। भिक्षुओ, 'न संज्ञा न असंज्ञा' भी आस्रवोंके क्षयका सहायक-कारण होता है। भिक्षुओ ! संज्ञा-वेदनाका निरोध भी आस्रवोंके क्षयका सहायक-कारण होता है।

भिक्षुओ, यह जो मैंने कहा कि प्रथम-ध्यान भी आस्रव-क्षयका सहायक-कारण होता है, यह किस अर्थमें कहा? भिक्षुओ, भिक्षु काम-भोगोंसे पृथक हो.... प्रथम-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। जो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान होते हैं सभी स्कन्धोंको वह अनित्य समझता है, दुःख समझता है, रोग समझता है, फोड़ा समझता है, शल्य समझता है, बुरा समझता है, बाधा समझता है, पराया समझता है, ह्रास समझता है, शून्य समझता है तथा अनात्म समझता है। वह उनसे अपने मनको हटा कर अमृत-धातुकी ओर लगाता है—यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन, सभी उपाधियोंका त्याग, तृष्णाका क्षय, वैराग्य-निरोध, निर्वाण। वह उस अवस्थामें स्थित रहकर आस्रवोंके क्षयको प्राप्त होता है। यदि आस्रवोंके क्षयको प्राप्त नहीं होता, तो उसी धर्म-स्नेहके कारण, उसी धर्म-प्रीतिके कारण पतनकी ओर ले जाने वाले पाँचों संयोजनोंका क्षय कर 'ओपपातिक' होता है, वहींसे परिनिर्वाणको प्राप्त होने वाला, उस लोकसे फिर यहाँ नहीं आता।

भिक्षुओ, जैसे कोई तीर चलाने वाला हो, या तीर चलानेवालेका शिष्य हो, वह तिनकोंका आदमी बनाकर या मिट्टीके ढेर पर अभ्यास करे और आगे चलकर वह तीरको दूर तक पहुँचाने वाला हो जाय, वह तुरन्त बींधनेवाला हो जाय और बड़ी-बड़ी चीजोंको बींधनेवाला हो जाय। इसी प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु काम-भोगोंसे पृथक हो.......प्रथम-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। जो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान होते हैं सभी स्कन्धोंको अनित्य समझता है, दुःख समझता है, रोग समझता है, फोड़ा समझता है, शल्य समझता है, बुरा समझता है, बाधा समझता है, पराया समझता है, ह्रास समझता है, शून्य समझता है तथा अनात्म समझता है। वह उनसे अपने मनको हटाकर, अमृत-धातुकी ओर लगाता है—यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन, सभी उपाधियोंका त्याग, तृष्णाका क्षय, वैराग्य, निरोध, निर्वाण। वह उस अवस्थामें स्थित रहकर आस्रवोंके क्षयको प्राप्त होता है। भिक्षुओ, यह जो मैंने कहा कि प्रथम-ध्यान भी आस्रव-क्षयका सहायक-कारण होता है, यह इसी अर्थमें कहा।

भिक्षुओ, यह जो मैंने कहा, दूसरा-ध्यान भी आस्रव-क्षयका......तीसरा-ध्यान भी आस्रव-क्षयका......चौथा-ध्यान भी आस्रव-क्षयका सहायक-कारण होता है, यह किस अर्थमें कहा? भिक्षुओ, भिक्षु सुख तथा दुख दोनोंका प्रहाण कर, सौमनस्य तथा दौर्मनस्य का पहले ही अस्त हुआ रहनेसे, दुख तथा सुखरहित, उपेक्षा-स्मृति परिशुद्धियुक्त चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। जो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान होते हैं सभी स्कन्धोंको वह अनित्य समझता है, दुख समझता है, रोग समझता है, फोड़ा समझता है, शल्य समझता है, बुरा समझता है, बाधा समझता है, पराया समझता है, ह्रास समझता है, शून्य समझता है तथा अनात्म समझता है। वह उनसे अपने मनको हटाकर, अमृत-धातुकी ओर लगाता है—यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन, सभी उपाधियोंका त्याग, तृष्णाका क्षय, वैराग्य, निरोध, निर्वाण। वह उस अवस्थामें स्थित रहकर आस्रवोंके क्षयको प्राप्त होता है। यदि आस्रवोंके क्षयको प्राप्त नहीं होता, तो उसी धर्म-स्नेहके कारण, उसी धर्म-प्रीतिके कारण पतनकी ओर ले जाने वाले पाँचों संयोजनोंका क्षय कर, 'ओपपातिक' होता है, वहींसे परिनिर्वाण को प्राप्त होने वाला, उस लोकसे फिर यहाँ नहीं आता।

भिक्षुओ, जैसे कोई तीर चलानेवाला हो, या तीर चलानेवालेका शिष्य हो, वह तिनकोंका आदमी बनाकर या मिट्टीके ढेरपर अभ्यास करे और आगे चलकर वह तीरको दूर तक पहुँचाने वाला हो जाय, वह तुरन्त बींधनेवाला हो जाय। इसी

प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु सुख तथा दुख दोनोंका प्रहाण कर, सौमनस्य तथा दौर्मनस्य का पहले ही अस्त हुआ रहनेसे, दुख तथा सुख-रहित, उपेक्षा-स्मृति परिशुद्धियुक्त चतुर्थ ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। जो रूप, वेदना...... नहीं आता। भिक्षुओ, यह जो मैंने कहा कि चतुर्थ ध्यान भी आस्रव-क्षयका सहायक-कारण होता है, यह इसी अर्थमें कहा।

भिक्षुओ, यह जो मैंने कहा—आकाशानन्चायतन भी आस्रव-क्षयका सहायक कारण होता है, यह किस अर्थमें कहा ? भिक्षुओ, भिक्षु सभी रूप-संज्ञाओंका अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=द्वेष) संज्ञाओंका अस्त हो जानेपर नानात्व-संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान हो, 'आकाश अनन्त है' करके आकाशानन्चायतनको प्राप्त कर विहार करता है। जो वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान होते हैं सभी स्कन्धोंको वह अनित्य समझता है, दुःख समझता है, रोग समझता है, फोड़ा समझता है, शल्य समझता है, बुरा समझता है, बाधा समझता है, पराया समझता है, ह्रास समझता है, शून्य समझता है तथा अनात्म समझता है। वह उनसे अपने मनको हटाकर, अमृत-धातुकी ओर लगाता है—यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन, सभी उपाधियोंका त्याग, तृष्णाका क्षय, निरोध, निर्वाण। वह उस अवस्थामें स्थित रहकर आस्रवोंके क्षयको प्राप्त होता है। यदि आस्रवोंके क्षयको प्राप्त नहीं होता, तो उसी धर्म-स्नेहके कारण, उसी धर्म-प्रीतिके कारण, पतन की ओर ले जाने वाले पाँचों संयोजनोंका क्षय कर 'ओपपातिक' होता है, वहींसे परिनिर्वाण को प्राप्त होनेवाला, उस लोकसे फिर यहाँ नहीं आता।

भिक्षुओ, जैसे कोई तीर चलाने वाला हो, या तीर चलाने वालेका शिष्य हो, वह तिनकोंका आदमी बनाकर या मिट्टीके ढेरपर अभ्यास करे और आगे चलकर वह तीरको दूर तक पहुँचाने वाला हो जाय, वह तुरन्त बींधने वाला हो जाय। इसी प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु सभी रूप-संज्ञाओंका अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञाओंका अस्त हो जाने पर, नानात्व-संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान हो, 'आकाश अनन्त है' करके आकाशानन्चायतनको प्राप्त कर विहार करता है। जो वेदना, संज्ञा..... उस लोकसे फिर यहाँ नहीं आता। भिक्षुओ, यह जो मैंने कहा कि आकाशानन्चायतन भी आस्रव-क्षयका सहायक-कारण होता है, वह इसी अर्थमें कहा।

भिक्षुओ, यह जो मैंने कहा विज्ञानन्चायतन..... आकिञ्चन्यायतन भी आस्रव-क्षयका सहायक कारण होता है, यह किस अर्थमें कहा ? भिक्षुओ, भिक्षु सभी विज्ञानन्चायतनोंका समतिक्रमण कर, 'कुछ नहीं है' 'करके 'आकिञ्चन्यायतन,

को प्राप्त कर विहार करता है। जो वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान होते हैं सभी स्कन्धोंको वह अनित्य समझता है, दुःख समझता है, रोग समझता है, फोड़ा समझता है, शल्य समझता है, बुरा समझता है, बाधा समझता है, पराया समझता है, ह्रास समझता है, शून्य समझता है तथा अनात्म समझता है। वह उनसे अपने मनको हटाकर अमृत-धातुकी ओर लगाता है—यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन, सभी उपाधियोंका त्याग, तृष्णाका क्षय, निरोध, निर्वाण। वह उस अवस्थामें स्थिर रहकर आस्रवोंके क्षयको प्राप्त होता है। यदि आस्रवोंके क्षयको प्राप्त नहीं होता, तो उसी धर्म-स्नेहके कारण, उसी धर्म-प्रीतिके कारण, पतनकी ओर ले जाने-वाले पाँचों संयोजनोंका क्षय कर 'ओपपातिक' होता है, वहीं से परिनिर्वाणको प्राप्त होनेवाला, उस लोकसे फिर यहाँ नहीं आता।

भिक्षुओ, जैसे कोई तीर चलाने वाला हो, या तीर चलानेवालेका शिष्य हो, वह तिनकोंका आदमी बनाकर या मिट्टीके ढेरपर अभ्यास करे और आगे चलकर वह तीरको दूर तक पहुँचानेवाला हो जाय, वह तुरन्त बींधनेवाला हो जाय और बड़ी बड़ी चीजोंको बींधने वाला हो जाय। इसी प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु सभी विज्ञान-ञ्चायतनोंका समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके आकिञ्चन्यायतनको प्राप्त कर विहार करता है। जो वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान होते हैं सभी स्कन्धोंको वह अनित्य समझता है, दुःख समझता है, रोग समझता है, फोड़ा समझता है, शल्य समझता है, बुरा समझता है, बाधा समझता है, पराया समझता है, ह्रास समझता है, शून्य समझता है तथा अनान्त्म समझता है। वह उनसे अपने मनको हटाकर अमृत-धातुकी ओर लगाता है यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन, सभी उपाधियोंका त्याग, तृष्णाका क्षय, निरोध, निर्वाण। वह इस अवस्थामें स्थिर रहकर आस्रवोंके क्षयको प्राप्त होता है। यदि आस्रवोंके क्षयको प्राप्त नहीं होता, तो उसी धर्म-स्नेहके कारण, उसी धर्म-प्रीतिके कारण, पतनकी ओर ले जानेवाले पाँचों संयोजनोंका क्षय कर 'ओपपातिक' होता है, वहीसे परिनिर्वाण को प्राप्त होनेवाला, उस लोकसे फिर यहाँ नहीं आता। भिक्षुओ, यह जो मैंने कहा कि आकिञ्चन्यायतन भी आस्रव क्षयका सहायक-कारण होता है, वह इसी अर्थमें कहा।

भिक्षुओ, जितनी संज्ञा-समापत्तियाँ, उतने ज्ञान-प्रतिवेध हैं। भिक्षुओ, ये जो आयतन हैं —नेवसंज्ञानासंज्ञायतन समापत्ति तथा संज्ञा-वेदना निरोध— ये ऐसे ध्यायी भिक्षुओं द्वारा जो ध्यानारूढ़ होनेमें कुशल हों, ध्यानावस्थासे नीचे

उतर आनेमें (= उठ आनेमें) कुशल हों, ध्यानारूढ़ हों तथा ध्यानसे उठकर भली प्रकार कहे जाने चाहिए—यह कहता हूँ।

६. आनंदसुत्त

एक समय आयुष्मान आनन्द कौसम्बीके घोषितारामसें विहार कर रहे थे। वहाँ आयुष्मान आनन्दने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—'आयुष्मानो भिक्षुओ!' उन भिक्षुओंने आयुष्मान आनन्दको "आयुष्मान" कहकर प्रतिवचन दिया। आयुष्मान आनन्दने यह कहा—

"आयुष्मानो! यह अद्भुत है। आयुष्मानो! यह आश्चर्यकर है कि उन भगवान, जानकार, दर्शी, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धने बाधाओंके बीचमें सत्वों (= प्राणियों) की विशुद्धिके लिए, शोक-रोने पीटनेको शान्त करनेके लिए, दुख-दौर्मनस्यको अस्त करनेके लिए, ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए तथा निर्वाणको साक्षात् करनेके लिए, रास्ता (= अवकाश) निकाल दिया। यही आँख रहेगी, यही रूप (= आँखके विषय) रहेंगे, किन्तु उस चक्षु-आयतनकी संवेदना नहीं होगी। यही श्रोत्र रहेगा, यही शब्द (= श्रोत्रके विषय) रहेंगे, किन्तु उस श्रोत्र-आयतनकी संवेदना नहीं होगी। यही घ्राण रहेगा, यही गंध रहेंगे, किन्तु उस घ्राण-आयतनकी संवेदना नहीं होगी। यही जिह्वा रहेगी, यही रस रहेंगे, किन्तु जिह्वा-आयतनकी संवेदना नहीं होगी। यही स्पर्शेन्द्रिय रहेगी, यही स्पर्शेन्द्रियके विषय रहेंगे, किन्तु स्पर्शायतनकी संवेदना नहीं होगी।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान उदायीने आयुष्मान आनन्दको यह कहा—"आयुष्मान आनन्द! क्या वह व्यक्ति संज्ञा-युक्त रहता हुआ उस आयतनकी संवेदना नहीं करेगा, अथवा सञ्ञा-विहीन होनेके कारण ?"

"आयुष्मान्! वह व्यक्ति संज्ञा-युक्त रहता हुआ ही उस आयतनकी संवेदना नहीं करेगा, संज्ञा-विहीन होनेके कारण नहीं।"

"आयुष्मान! वह व्यक्ति किस संज्ञासे युक्त होकर उस आयतनकी संवेदना नहीं करेगा ?"

आयुष्मान्! एक भिक्षु सभी रूप संज्ञाओंका प्रहाण कर, प्रतिघ-संज्ञाओंके अस्त हो जानेपर, नानात्व संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान हो, 'आकाश अनन्त है' करके आकाशानञ्चायतनको प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मान्! इस संज्ञासे युक्त होनेपर भी, वह उस आयतनकी संवेदना नहीं करता।

आयुष्मान ! फिर भिक्षु पूरी तरहसे आकाशानञ्चायतनका समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' करके 'विज्ञानञ्चायतन' को प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मान ! इस संज्ञासे युक्त होनेपर भी, वह उस आयतनकी संवेदना नहीं करता।

आयुष्मान ! फिर भिक्षु पूरी तरहसे विज्ञानञ्चायतनका समतिक्रमण कर "कुछ नहीं है' करके आकिञ्चन्यायतनको प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मान् ! इस संज्ञासे युक्त होनेपर भी वह उस आयतनकी संवेदना नहीं करता।

आयुष्मान् ! मैं एक बार साकेत अञ्जन-वनके मृगदायमें विहार करता था। आयुष्मान् ! उस समय जटिलवासिका भिक्षुणी, जहाँ मैं था, वहाँ पहुँची—"भन्ते ! जो समाधि (रागके हिसाब से) अभिनत नहीं, जो समाधि (द्वेषके हिसाबसे) अपनत नहीं, जिसमें संस्कार (= निग्रहके हिसाबसे) चित्त-क्लेशोंका निवारण नहीं हुआ, जो विमुक्त होनेसे स्थित है, जो स्थित होनेसे संतुसित है, संतुसित (= संतुष्ठ) होनेसे ही जो कम्पन-रहित है। भन्ते ! भगवानने इस समाधिका क्या फल बताया है ?

"आयुष्मान् ! ऐसा कहनेपर मैंने उस जटिलवासिका भिक्षुणीको यह कहा—"बहन ! यह जो समाधि अभिनत नहीं, अपनत नहीं, जिसमें संस्कार-निग्रहके हिसाबसे चित्त-क्लेशोंका निवारण नहीं, जो विमुक्ति होनेसे स्थित है, जो स्थित होनेसे संतुसित है, संतुसित (= संतुष्ट) होनेसे ही जो कम्पन-रहित है। बहन ! भगवानने इस समाधिका फल अर्हत्व कहा है। आयुष्मान् ! इस संज्ञासे युक्त होनेपर भी, वह उस आयतन की संवेदना नहीं करता।

७. लोकायतिकसुत्त

उस समय लोकायत मतको माननेवाले दो ब्राह्मण जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानके साथ-कुशल-क्षेमकी बातचीत चलाई। कुशल-क्षेमकी बातचीत समाप्त कर चुकनेपर एक ओर जा बैठे। एक ओर बैठे हुए उन ब्राह्मणोंने भगवान्को यह कहा—"हे गौतम ! पूर्ण काश्यप सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है, वह यह कहकर कि 'चलते समय, खड़े रहते समय, सोते समय, जागते समय, निरन्तर समस्त ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है', अपने सम्पूर्ण सर्वदर्शी होनेकी घोषणा करता है। उसका कहना है कि 'मैं अनन्त ज्ञानसे, अनन्त लोकको जानता हुआ, देखता हुआ विहार करता हूँ।' हे गौतम ! यह निर्ग्रन्थ (= निगण्ठ) नाटपुत्र (= ज्ञातिपुत्र) भी सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है, वह यह कहकर कि चलते समय, खड़े रहते समय, सोते समय, जागते समय, निरन्तर समस्त ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है, अपने सम्पूर्ण सर्वदर्शी होनेकी घोषणा करता है। उसका कहना है कि 'मैं अनन्त ज्ञानसे, अनन्त लोकको जानता

हुआ, देखता हुआ विहार करता हूँ।' हे गौतम ! इन दो ज्ञान-वादियोंमें, इन दोनों परस्पर विरोधियोंमें किसका कहना सत्य है और किसका कहना मृषा (= झूठ) है।"

"ब्राह्मणो ! इस बातको रहने दो कि इन दो ज्ञान-वादियोंमें, इन दोनों परस्पर विरोधियोंमें किसका कहना सत्य है और किसका कहना झूठ है। ब्राह्मणो मैं तुम्हें धर्मोपदेश देता हूँ। इसे सुनो। अच्छी तरह धारण करो कहता हूँ।" "गौतम ! अच्छा, कह" उन ब्राह्मणोंने भगवानको प्रतिवचन दिया।

भगवानने यह कहा—

"ब्राह्मण ! जैसे चार आदमी हों, और वे चार दिशाओंमें खड़े हों, उनकी गति, उनकी चाल अत्यन्त तेज हो। उनकी गति, उनकी चाल इतनी तेज हो कि जैसे कोई बलवान धनुर्धारी शिक्षित हो, अभ्यस्त हो। वह एक हलके तीरसे, बिना कठिनाईके ताड़के पेड़की छायाको लाँघ जाय।

उनकी गति, उनकी चाल ऐसी तेज हो ; जैसे पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्र। अब पूर्वदिशामें स्थित आदमी ऐसा कहे—"मैं पैदल चलकर लोकके अन्त तक पहुँच जाऊँगा।" वह बिना खाये, पीये, चखे, स्वाद लिये; बिना मल-मूत्र त्याग किये, बिना सोये, बिना विश्राम किये, सौ वर्ष तक जीवित रहकर, सौ वर्षतक चलते रहकर, बिना लोकके सिरे पर पहुँचे, बीचमें ही मर जाय। तब पश्चिम दिशामें स्थित आदमी . . . . तब उत्तर दिशामें स्थित आदमी . . . . तब दक्षिण दिशामें स्थित आदमी ऐसा कहे—"मैं पैदल चलकर लोकके अन्त तक पहुँच जाऊँगा।" वह बिना खाये, पिये, चखे, स्वाद लिये ; बिना मल-मूत्र त्याग किये ; बिना सोये, बिना विश्राम किये ; सौ वर्ष तक जीवित रहकर, सौ वर्ष तक चलते रहकर, बिना लोकके सिरे पर पहुँचे, बीचमें ही मर जाय। यह किसलिये ? हे ब्राह्मण ! मैं नहीं कहता कि इस प्रकारकी दौड़से लोकका अन्त जाना जा सकता है, देखा जा सकता है, प्राप्त किया जा सकता है। और ब्राह्मण ! मैं यह भी नहीं कहता कि बिना लोकके अन्तको प्राप्त हुए दुखका अन्त किया जा सकता है।

"ब्राह्मण ! ये पाँच इन्द्रिय-सुख (= कामगुण) आर्य-विनय (= बुद्ध-देशना) के अनुसार 'लोक' हैं। कौनसे पाँच ? ऐसे रूप, जो चक्षुविज्ञानका विषय हैं, जो अच्छे लगने वाले होते हैं, जो सुन्दर होते हैं, जो अनुकूल होते हैं, जो प्रियकर होते हैं, जो कामना-युक्त होते हैं तथा जो मनका रंजन करने वाले होते हैं; ऐसे शब्द, जो श्रोत्र-विज्ञानका विषय हैं, . . . ऐसे गन्ध जो घ्राण-विज्ञानका विषय हैं . . . ऐसे रस जो जिह्वा-विज्ञानका विषय हैं . . . . ऐसे स्पृष्टव्य जो काय-विज्ञानका विषय

हैं, जो अच्छे लगनेवाले होते हैं, जो सुन्दर होते हैं, जो अनुकूल होते हैं, जो प्रियकर होते हैं, जो कामना–युक्त होते हैं तथा जो मनका रंजन करनेवाले होते हैं। ब्राह्मण ! ये पाँच इन्द्रिय–सुख (=काम-गुण) आर्य–विनय (=बुद्धदेशना) के अनुसार 'लोक' होते हैं।

'हे ब्राह्मणों ! भिक्षु काम–भोगोसे पृथक हो प्रथम ध्यान प्राप्तकर विहार करता है। हे ब्राह्मणों ! इसे ही कहते हैं कि भिक्षु 'लोक' के अन्तपर पहुँचकर, 'लोक' के सिरेपर विहार करता है। उसे दूसरे कहते है कि यह (भिक्षु) भी लोकके अन्तको प्राप्त है, यह लोकके प्रति अनासक्त है। हे ब्राह्मणों ! मैं भी यह कहता हूँ कि यह (भिक्षु) भी लोकके अन्तको प्राप्त है, यह लोकके प्रति अनासक्त है।

'हे ब्राह्मणों ! फिर भिक्षु वितर्क–विचारोंका उपलंघन कर द्वितीय–ध्यान प्राप्तकर विहार करता है, तृतीय–ध्यान प्राप्तकर विहार करता है, चतुर्थ–ध्यान प्राप्तकर विहार करता है.....।

'हे ब्राह्मणों ! फिर भिक्षु सभी रूप–संज्ञाओंका अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=द्वेष) संज्ञाओंका अस्त हो जानेपर नानात्व–संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान हो, 'आकाश अनन्त हैं' करके आकाशानंचायतनको प्राप्तकर विहार करता है। हे ब्राह्मण ! इसे ही कहते हैं कि भिक्षु 'लोक' के अन्तपर पहुँचकर, 'लोक' के सिरे पर विहार करता है। इसे दूसरे कहते हैं कि यह (भिक्षु) भी लोकके अन्तको प्राप्त है, यह लोकके प्रति अनासक्त है। हे ब्राह्मणों ! मैं भी यह कहता हूँ कि (भिक्षु) भी लोकके अन्तको प्राप्त है, यह लोकके प्रति अनासक्त है।

हे ब्राह्मणों ! फिर भिक्षु सभी आकाशानंचायतनोंका समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है, करके विज्ञानंचायतनको प्राप्त कर विहार करता है....सभी 'विज्ञानंचायतनों' का समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके 'आकिंचन्यायतन' को प्राप्तकर विहार करता है। सभी आकिंचन्यायतनोंका समतिक्रमण कर' 'संज्ञा-न असंज्ञा' को प्राप्त कर विहार करता है। हे ब्राह्मणों ! इसे ही कहते हैं कि भिक्षु 'लोक' के अन्तपर पहुँचकर 'लोक' के सिरेपर विहार करता है। इसे दूसरे कहते हैं कि यह (भिक्षु) भी लोकके अन्तको प्राप्त है, यह लोकके प्रति अनासक्त है। हे ब्राह्मणों ! मैं भी यह कहता हूँ कि यह (भिक्षु) भी लोकके अन्तको प्राप्त है, यह लोकके प्रति अनासक्त है।

"हे ब्राह्मणों ! फिर भिक्षु सभी 'न संज्ञा-न असंज्ञा' का समतिक्रमणकर संज्ञा–वेदनाके निरोधको प्राप्तकर विहार करता है। उसे प्रज्ञा–दृष्ट होनेसे उसके सभी आस्रव क्षयको प्राप्त हो जाते हैं। ब्राह्मण ! इसे कहते हैं कि भिक्षु 'लोक' के अन्तको

प्राप्त हो गया, वह 'लोक' के 'अन्त' पर विहार करता है। वह लोक–बंधनोंको लाँघ गया।

८. देवासुरसंगामसुत्त

भिक्षुओ, पूर्व समयमें देवासुर संग्राम हुआ था। भिक्षुओ उस संग्राममें असुर जीत गए, देवता पराजित हो गए। पराजित देवता उत्तराभिमुख हो भाग गए। असुरोंने पीछा किया। तब देवताओंके मनमें यह हुआ कि असुर लोग पीछा कर ही रहे हैं, हम दूसरी बार भी इन असुरोंसे युद्ध करें। भिक्षुओ, दूसरी बार भी देवताओंने असुरोंके साथ संग्राम किया। भिक्षुओ, दूसरी बार मी असुर जीत गए, देवता पराजित हो गए। पराजित देवता उत्तराभिमुख भाग गए। असुरोंने पीछा किया। तब देवताओंके मनमें यह हुआ कि असुर लोग पीछा कर ही रहे हैं, हम तीसरी बार भी इन असुरोंसे युद्ध करें। भिक्षुओं, तीसरी बार भी देवताओंने असुरोंसे संग्राम किया। भिक्षुओ, तीसरी बार भी असुर जीत गए, देवता पराजित हो गए। भिक्षुओ, पराजित देवता देव–पुरीमें जा घुसे। भिक्षुओ, देव–पुरमें घुसे हुए देवताओंके मनमें यह हुआ कि अब हमें किसीका डर नहीं है। अब यहाँ रहते समय असुर हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। भिक्षुओ, असुरोंके मनमें भी यह हुआ कि अब देवता लोगोंको किसीका डर नहीं है। अब हम उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

भिक्षुओ, पूर्व समयमें देवासुर संग्राम हुआ था। भिक्षुओ, उस संग्राममें देवता जीत गये, असुर पराजित हो गए। पराजित असुर दक्षिणाभिमुख हो भाग गये। देवताओंने पीछा किया। तब असुरोंके मनमें यह हुआ कि देवता लोग पीछा कर ही रहे हैं, हम दूसरी बार भी इन देवताओंसे युद्ध करें। भिक्षुओ, दूसरी बार भी असुरोंने देवताओंके साथ संग्राम किया। भिक्षुओ, दूसरी बार भी देवता जीत गये, असुर पराजित हो गए। पराजित असुर दक्षिणाभिमुख भाग गए। देवताओंने पीछा किया। तब असुरोंके मनमें यह हुआ कि देवता लोग पीछा कर ही रहे हैं, हम तीसरी बार भी इन देवताओंसे युद्ध करें। भिक्षुओ, तीसरी बार भी असुरोंने देवताओंसे संग्राम किया। भिक्षुओ, तीसरी बार भी देवता जीत गये, असुर पराजित हो गये। भिक्षुओ, पराजित असुर असुर-पुरीमें जा घुसे। भिक्षुओ, असुर-पुरीमें घुसे हुए असुरोंके मनमें यह हुआ कि अब हमें किसीका डर नहीं है। अब यहाँ रहते समय देवता हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। भिक्षुओ, देवताओंके मनमें भी यह हुआ कि अब असुरोंको किसीका डर नहीं। अब हम उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

भिक्षुओ, इसी प्रकार, जिस समय काम-भोगोंसे पृथक हो. . . . प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है, उस समय भिक्षुके मनमें यह होता है कि अब मेरा भयसे त्राण हो गया है, अब मार मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। भिक्षुओ, पापी मार के मनमें भी ऐसा होता है कि अब भिक्षुका भयसे त्राण हो गया है, अब मैं भिक्षुका कुछ नहीं बिगाड़ सकता हूँ। भिक्षुओ, जिस समय भिक्षु वितर्क-विचारोंका उपशमन कर द्वितीय ध्यान. . . .तृतीय-ध्यान. . . .चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विहार करता है, उस समय भिक्षुके मनमें यह होता है कि अब मेरा भयसे त्राण हो गया है, अब मार मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। भिक्षुओ, पापी मारके मनमें भी ऐसा होता है कि अब भिक्षुका भयसे त्राण हो गया, अब मैं भिक्षुका कुछ नहीं बिगाड़ सकता हूँ।

हे भिक्षुओ ! जिस समय भिक्षु सभी रूप-संज्ञाओंका अतिक्रमणकर, प्रतिघ (=द्वेष)संज्ञाओंका अस्त हो जानेपर, नानात्व संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान हो 'आकाश अनन्त है' करके आकाशानंचायतनको प्राप्त कर विहार करता है, तो भिक्षुओ यह कहा जाता है कि इस भिक्षुने 'मार'—का अन्त कर दिया, मार—चक्षु को सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया, पापी—मार की दृष्टिसे ओझल हो गया।

भिक्षुओ ! जिस समय भिक्षु सभी आकाशनञ्चायतनोंका समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' करके 'विज्ञानञ्चायतन' को प्राप्त कर विहार करता है . . . सभी 'विज्ञानञ्चायतनों' का समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके 'आकिञ्चान्यायतन' को प्राप्त कर विहार करता है। सभी 'आकिञ्चान्यायतनों'का समतिक्रमण कर 'न संज्ञा-न असंज्ञा' को प्राप्त कर विहार करता है। सभी 'न संज्ञा न असंज्ञा' का समतिक्रमण कर संज्ञा-वेदनाके निरोधको प्राप्त कर विहार करता है। प्रज्ञा-चक्षु प्राप्त होनेके कारण (उसके) आस्रव क्षीण हो जाते हैं। भिक्षुओ, इसे कहा जाता है कि इस भिक्षु ने 'मार' का अन्त कर दिया। मार-चक्षुको सम्पूर्ण रूपसे नष्ट कर दिया, पापी—मार की दृष्टिसे ओझल हो गया।

९. नागसुत्त

भिक्षुओ, जिस समय जंगलमें रहनेवाले, चारेकी खोजमें निकले हुए हस्ति—राजसे भी आगे-आगे जाकर (दूसरे) हाथी भी, हथिनियाँ भी, हाथी-बच्चे भी, हाथी—शिशु भी ऊपर-ऊपरकी घास खा डालते हैं, तो भिक्षुओ जंगलमें रहनेवाला हाथी क्षुब्ध होता है, हैरान होता है तथा घृणा करता है। भिक्षुओ, जिस समय जंगलमें रहनेवाले, चारेकी खोजमें निकले हुए हस्ति-राजसे भी आगे आगे जाकर (दूसरे) हाथी भी, हथि-नियाँ भी, हाथी-बच्चे भी, हाथी-शिशु भी टूटी-टूटी शाखामें खा डालते हैं, तो भिक्षुओ,

जंगलमें रहनेवाला हाथी क्षुब्ध होता है, हैरान होता है तथा घृणा करता है। भिक्षुओ, जिस समय जंगलमें रहनेवाले, (पानीमें) उतरनेके लिए निकले हुए हस्तिराजसे भी पहले पहले जाकर (दूसरे) हाथी भी, हथिनियाँ भी, हाथी-बच्चे भी, हाथी-शिशु भी सूँड़से पानीको गँदला कर देते हैं, तो भिक्षुओ, जंगलमें रहनेवाला हाथी क्षुब्ध होता है, हैरान होता है तथा घृणा करता है। भिक्षुओ, जिस समय जंगलमें रहनेवाले (पानीमें) उतरनेके लिए निकले हुए हस्तिराजके शरीर को हाथी भी, हथिनियाँ भी, हाथी–बच्चे भी, हाथी-शिशु भी रगड़कर चलते हैं, तो भिक्षुओ, जंगलमें रहनेवाला हाथी क्षुब्ध होता है, हैरान होता है तथा घृणा करता है।

भिक्षुओ, उस समय जंगलमें रहनेवाले हस्तिराजके मनमें यह विचार आता है कि मैं इस समय (दूसरे) हाथियोंसे, हथिनियोंसे, हाथी-बच्चोंसे, हाथी-शिशुओंसे घिरा विचरता हूँ। इसीसे मुझे दूसरोंकी (पहले) खाई हुई घास खानी पड़ती है। ये टूटी हुई शाखायें खा लेते हैं। मैं गँदला पानी पीता हूँ। जब मैं (पानीमें) उतरनेके लिए निकलता हूँ तो हथिनियाँ मेरे शरीरको रगड़ती हुई जाती हैं। क्यों न मैं समूहसे पृथक हो, अकेला ही विचरूं? तब वह समूहसे पृथक हो, अकेला ही विचरे। बिना दूसरोंके द्वारा खाई हुई घास खाये। दूसरे टूटी-टूटी शाखायें नहीं खाते थे। निर्मल पानी पीनेको मिलता था। (पानीमें) उतरनेके लिए निकलनेपर हथिनियाँ उसके शरीरसे रगड़ खाती हुई नहीं जाती थीं। भिक्षुओ, उस समय जंगलमें रहनेवाले हस्तिराजके मनमें यह होता है कि पहले मैं (दूसरे) हाथियोंसे हथिनियोंसे, हाथी-बच्चोंसे, हाथी-शिशुओंसे घिरा रहता था। उस समय मुझे दूसरे द्वारा (पहले) खाई हुई घास खानी पड़ती थी। टूटी शाखायें दूसरे खा जाते थे। गंदला पानी पीनेको मिलता था। (पानीमें) उतरनेके लिए निकलनेपर हथिनियाँ शरीरसे रगड़ खाती हुई जाती थीं। अब मैं समूहसे पृथक हो अकेला ही विचरता हूँ। (पहले) दूसरों द्वारा नहीं खाई हुई घास खाता हूँ। दूसरे टूटी-टूटी शाखाएँ नहीं खाते हैं। निर्मल पानी पीनेको मिलता है। (पानीमें) उतरनेके लिए निकलनेपर हथिनियाँ मेरे शरीरसे रगड़ खाती हुई नहीं जाती हैं। वह सूँडसे शाखा तोड़ लेकर, उससे बदनको रगड़कर, शरीरको यथेष्ट खुजला लेता है।

इसी प्रकार भिक्षुओ, जब भिक्षु भिक्षुओंसे, भिक्षुणियोंसे, उपासकोंसे, उपासिकाओंसे, राजासे, राज-महामात्योंसे, तैर्थिकोंसे, तैर्थिक-श्रावकोंसे घिरा रहता है, तो उसके मनमें यह होता है कि मैं अब भिक्षुओंसे, भिक्षुणियोंसे, उपासकोंसे,

उपासिकाओंसे, राजासे, राज-महामात्योंसे, तैर्थिकोंसे, तैर्थिक-श्रावकोंसे घिरा रहता हूँ। मैं समूहसे पृथक होकर अकेला विचरूँ। वह एकान्त-सेवन करता है—अरण्यमें रहता है, वृक्षकी छाया तले रहता है, पर्वतपर रहता है, कन्दरामें रहता है, पहाड़की गुफामें रहता है, श्मशानमें रहता है, जंगलको जानेवाले रास्तेपर रहता है, खुलेमें रहता है, पुआलके ढेरपर रहता है। वह जंगलमें, या वृक्षकी छायामें अथवा शुन्यागारमें पहुँचकर, पालथी मारकर, शरीरको सीधा कर बैठता है, स्मृतिको सामने उपस्थित रख वह लोकमें लोभको छोड़, लोभ-रहित चित्तसे विचरता है, चित्तको लोभ-मैलसे शुद्ध करता है। वह क्रोध (= व्यापाद) रूपी दोषको छोड़, व्यापाद-रहित चित्तसे विचरता है, सभी प्राणियोंपर दया करता हुआ, अपने चित्तको व्यापाद रूपी चित्त-मैलसे शुद्ध करता है। वह आलस्य (= थीन मिद्ध) को छोड़ आलस्य-रहित हो विचरता है, रोशन-दिमाग, स्मृति-सम्प्रजन्यसे युक्त; अपने चित्तको आलस्य-रूपी चित्त-मैलसे शुद्ध करता है। वह उद्धतपन तथा कौकृत्यको छोड़ उद्धतपन रहित हो, शान्त-चित्तसे विचरता है, अपने चित्तको उद्धतपन तथा कौकृत्य रूपी चित्त-मैलसे शुद्ध करता है। वह सन्देह (= विचिकिच्छा) को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो विचरता है, कुशल-धर्मोंके प्रति शंका-रहित, अपने चित्तको सन्देह रूपी चित्त-मैलसे परिशुद्ध करता है। वह चित्तके उपक्लेश, प्रज्ञाको दुर्बल वनानेवाले इन पाँच चित्त-मलोंका त्याग कर काम-भोगोंसे पृथक हो ..... प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। वह (बदनको) यथेच्छ खुजला लेता है। वह वितर्क-विचारोंका उपशमन कर, प्रथम-ध्यान, द्वितीय-ध्यान, तृतीय-ध्यान तथा चतुर्थ-ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। वह यथेच्छ खुजला लेता है। वह सभी रूप-संज्ञाओंका अतिक्रमण कर, प्रतिघ (= द्वेष) संज्ञाओंका अस्त हो जानेपर, नानात्व संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान् हो, 'आकाश अनन्त है' करके आकाशानञ्चायतनको प्राप्त कर विहार करता है। वह यथेच्छ खुजला लेता है। वह सभी आकाशानञ्चायतनोंका समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' करके विज्ञानञ्चायतनको प्राप्त कर विहार करता है ..... सभी विज्ञानञ्चायतनोंका समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके 'आकिञ्चायतन' को प्राप्त कर विहार करता है। सभी आकिञ्चायतनोंका समतिक्रमण कर 'न संज्ञा न असंज्ञा' को प्राप्त कर विहार करता है। सभी 'न संज्ञा-न असंज्ञा' का समतिक्रमण कर 'संज्ञा-वेदना' के निरोधको प्राप्त कर विहार करता है। प्रज्ञा-चक्षु प्राप्त करनेके कारण उसके आस्रव क्षीण हो जाते हैं। वह यथेच्छ खुजला लेता है।

१०. तपुस्ससुत्त

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान मल्ल (जनपद) में विहार करते थे, मल्लोंके उरुवेलकप्प नाम निगममें। तब भगवानने पूर्वान्ह समय (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले भिक्षाटनके लिए उरुवेल कप्पमें प्रविष्ट हुए। उरुवेलमें भिक्षाटन कर चुकनेके अनन्तर, भिक्षा ग्रहण कर चुकनेपर, भिक्षाटनसे लौट आयुष्मान आनन्दको निमंत्रित किया—"आनन्द ! जब तक मैं महावनमें दिवा-विहार करूँ, तब तक तुम यहीं रहो।" आयुष्मान आनन्दने भगवानको प्रतिवचन दिया—"भन्ते ! अच्छा।" तब भगवानने महावनमें प्रवेश किया और दिनभर वहीं बितानेके लिए, एक वृक्षकी छायामें विराजमान हुए।

तब तपुस्स गृहपति जहाँ आनन्द थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर आयुष्मान आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए तपुस्स गृहपतिने आयुष्मान आनन्दसे यह कहा—"भन्ते आनन्द ! हम गृहस्थ काम-भोगी हैं, काम-भोगमें आनन्दित होनेवाले हैं, रत रहनेवाले हैं, उल्लसित होनेवाले हैं। भन्ते ! हम गृहस्थोंको, काम-भोगियोंको, काम-भोगमें आनन्दित होनेवालोंको, रत रहनेवालोंको, उल्लसित होनेवालोंको यह जो निष्काम-भाव है, एक प्रपात जैसा प्रतीत होता है। भन्ते ! मैंने यह सुना है कि इस बुद्ध-शासन (=धर्म-विनय) में तरुण तरुण भिक्षुओंका मन निष्काम-भावकी तरफ प्रवृत्त होता है, प्रसन्न होता है, स्थिर होता है और विमुक्त होता है। ऐसा देखनेपर लगता है कि इस धर्म-विनयमें रहनेवाले भिक्षुओंका यह जो निष्काम-भाव है, यह अधिकांश लोगोंसे विरुद्ध पड़ता है। गृहपति ! यह ऐसी बात है जिसे लेकर भगवानके पास जाया जा सकता है। गृहपति ! आओ, जहाँ भगवान हैं, वहाँ चलें। पास जाकर भगवानसे यह बात कहेंगे। जैसे भगवान हमें समझायेंगे, वैसे ग्रहण करेंगे।" तपुस्स गृहपतिने आयुष्मान आनन्दको प्रतिवचन दिया—"भन्ते ! अच्छा।"

तब तपुस्स गृहपतिको लिए आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान थे वहाँ पहुँचे। पास जाकर....... भगवानसे यह निवेदन किया—"भन्ते ! इस तपुस्स गृहपतिका यह कहना है—भन्ते ! आनन्द ! हम गृहस्थ काम-भोगी हैं, काम-भोगमें आनन्दित होनेवाले हैं, रत रहनेवाले हैं, उल्लसित होनेवाले हैं। भन्ते ! हम गृहस्थोंको, काम-भोगियोंको, काम-भोगमें आनन्दित होनेवालोंको, रत रहनेवालोंको, उल्लसित होनेवालोंको, यह जो निष्काम-भाव है, एक प्रपात जैसा प्रतीत होता है। भन्ते ! मैंने यह सुना है कि इस बुद्ध-शासन (=धर्म-विनय) में तरुण तरुण भिक्षुओंका मन

निष्काम-भावकी तरफ प्रवृत्त होता है, प्रसन्न होता है, स्थिर होता है और विमुक्त होता है। ऐसा देखनेपर लगता है कि इस धर्म-विनयमें रहनेवाले भिक्षुओंका यह जो निष्काम-भाव है, यह अधिकांश लोगोंसे विरुद्ध पड़ता है।"

"आनन्द! यह ऐसा ही है। आनन्द! यह ऐसा ही है। आनन्द! मुझे भी, जब मैं 'बुद्ध' नहीं था, जब मुझको 'बोधि' की प्राप्ति नहीं हुई थी, जब मैं 'बोधिसत्व' था, ऐसा होता था कि निष्क्रमण अच्छा है, एकान्त-वास अच्छा है; किन्तु आनन्द! उस समय मेरा मन निष्काम-भावकी तरफ प्रवृत्त नहीं होता था, प्रसन्न नहीं होता था, स्थिर नहीं होता था और विमुक्त नहीं होता था। ऐसा अनुभव होनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है जिससे मेरा मन निष्काम-भावकी तरफ प्रवृत्त नहीं होता, प्रसन्न नहीं होता, स्थिर नहीं होता और विमुक्त नहीं होता? ऐसा सोचनेपर आनन्द! मुझे सूझा कि मैंने काम-भोगोंके दुष्परिणामको नहीं देखा है, मैंने उसको अधिक नहीं देखा है, मैंने निष्काम-भावके शुभ-परिणामको नहीं जाना है, मैंने उसका अभ्यास नहीं किया है। इसीलिए मेरा चित्त निष्काम-भावकी तरफ प्रवृत्त नहीं होता, प्रसन्न नहीं होता, स्थिर नहीं होता, विमुक्त नहीं होता। ऐसा देखनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि मैं काम-भोगोंके दुष्परिणामोंको देखूँ, अधिक करके देखूँ, निष्काम-भावके शुभ-परिणामोंको जानूँ, उनका अभ्यास करूँ, तो इसकी सम्भावना है कि मेरा मन निष्काम-भावकी तरफ प्रवृत्त हो, प्रसन्न हो, स्थिर हो, विमुक्त हो। ऐसा समझ लेनेपर आनन्द! मैंने आगे चलकर काम-भोगोंके दुष्परिणामोंको देखा, बहुत करके देखा, निष्काम-भावके शुभ-परिणामोंको जाना, उनका अभ्यास किया। तो आनन्द! मेरा चित्त निष्काम भावकी तरफ प्रवृत्त हुआ, प्रसन्न हुआ, स्थिर हुआ तथा विमुक्त हुआ। ऐसा होनेपर आनन्द! आगे चलकर मैं काम-भोगोंसे पृथक हो प्रथम ध्यान प्राप्त कर विहार करने लगा। हे आनन्द! इस प्रकार विचरते हुए मेरे मनमें काम-संज्ञा उत्पन्न होती थी। आनन्द! यह मेरे लिए बड़ा विघ्न होता था, जैसे सुखी आदमीको दुःखकी अनुभूति हो। ठीक इसी प्रकार आनन्द! मेरे मनमें काम-संज्ञा उत्पन्न होती थी, और वह मेरे लिए विघ्नकर थी।

आनन्द! तब मेरे मनमें यह हुआ कि मैं वितर्क-विचारोंका उपशमन कर द्वितीय-ध्यान प्राप्त कर विहार करूँ। किन्तु, आनन्द! मेरा चित्त अ-वितर्ककी ओर नहीं झुकता था, प्रसन्न नहीं होता था, स्थिर नहीं होता था और विमुक्त नहीं होता था। ऐसा अनुभव होनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि इसका

क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है जिससे मेरा मन अवितर्ककी ओर नहीं झुकता ? ऐसा सोचनेपर आनन्द ! मुझे सूझा कि मैंने वितर्कके दुष्परिणामको नहीं देखा है, मैंने उसको अधिक नहीं देखा है, मैंने अवितर्कके शुभ-परिणामको नहीं जाना है, मैंने उसका अभ्यास नहीं किया है। इसीलिए मेरा चित्त अवितर्क की ओर नहीं झुकता, प्रसन्न नहीं होता, स्थिर नहीं होता, विमुक्त नहीं होता। ऐसा देखनेपर आनन्द ! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि मैं वितर्कके दुष्परिणामको देखूँ, अधिक करके देखूँ, अवितर्कके शुभ-परिणामोंको जानूँ, उनका अभ्यास करूँ, तो इसकी सम्भावना है कि मेरा मन अवितर्क की ओर झुके, प्रसन्न हो, स्थिर हो, विमुक्त हो। ऐसा समझ लेनेपर आनन्द ! मैंने आगे चलकर वितर्कके दुष्परिणामको देखा, बहुत करके देखा, अवितर्कके शुभ-परिणामोंको जाना, उनका अभ्यास किया। तो आनन्द ! मेरा चित्त अवितर्क की ओर प्रवृत्त हुआ, प्रसन्न हुआ, स्थिर हुआ तथा विमुक्त हुआ। ऐसा होनेपर आनन्द ! आगे चलकर वितर्क-विचारोंका उपशमन कर द्वितीय-ध्यान प्राप्त कर विचरनेका प्रयत्न करने लगा। हे आनन्द ! इस प्रकार विचरते हुए मेरे मनमें वितर्क-संज्ञा उत्पन्न होती थी। आनन्द ! यह मेरे लिए बड़ा विघ्न होता था, जैसे सुखी आदमीको दुखकी अनुभूति हो। ठीक इसी प्रकार आनन्द ! मेरे मनमें वितर्क-संज्ञा उत्पन्न होती थीं, और वे मेरे लिए विघ्नकर थीं।

आनन्द ! तब मेरे मनमें यह हुआ कि मैं 'प्रीति' की ओरसे उपेक्षावान हो, तृतीय-ध्यानको प्राप्त कर विहार करूँ। किन्तु आनन्द ! मेरा चित्त प्रीति-विहीनता की ओर नहीं झुकता था, प्रसन्न नहीं होता था, स्थिर नहीं होता था और विमुक्त नहीं होता था। ऐसा अनुभव होनेपर आनन्द ! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है कि जिससे मेरा मन प्रीति-विहीनता की ओर नहीं झुकता ? ऐसा सोचनेपर आनन्द ! मुझे सूझा कि मैंने 'प्रीति' के दुष्परिणामको नहीं देखा है, बहुत करके नहीं देखा है, मैंने प्रीति-विहीनताके शुभ-परिणामको नहीं जाना है, मैंने उसका अभ्यास नहीं किया है। इसलिए मेरा चित्त प्रीति-विहीनताकी ओर नहीं झुकता, प्रसन्न नहीं होता, स्थिर नहीं होता, विमुक्त नहीं होता। ऐसा होनेपर आनन्द ! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि मैं 'प्रीति' के दुष्परिणामको देखूँ, अधिक करके देखूँ, प्रीति-विहीनताके शुभ-परिणामोंको जानूँ, उनका अभ्यास करूँ तो इसकी सम्भावना है कि मेरा मन प्रीति-विहीनताकी ओर झुके, प्रसन्न हो, स्थिर हो, विमुक्त हो। ऐसा समझ लेनेपर आनन्द ! मैंने आगे चलकर 'प्रीति' के दुष्परिणामको देखा, बहुत करके देखा, प्रीति-विहीनताके शुभ-परिणामोंको जाना,

उनका अभ्यास किया। तो आनन्द! मेरा चित्त प्रीति-विहीनता की ओर प्रवृत्त हुआ, प्रसन्न हुआ, स्थिर हुआ तथा विमुक्त हुआ। ऐसा होनेपर आनन्द! आगे चलकर 'प्रीति' की ओर से उदासीन हो.......तृतीय ध्यान प्राप्त कर विचरनेका प्रयत्न करने लगा। हे आनन्द! इस प्रकार विचरते हुए मेरे मनमें प्रीति-संज्ञा उत्पन्न होती थी। आनन्द! यह मेरे लिए बड़ा विघ्न होता था, जैसे सुखी आदमीको दुखकी अनुभूति हो। ठीक इसी प्रकार आनन्द! मेरे मनमें प्रीति-संज्ञा उत्पन्न होती थी, और वे मेरे लिए विघ्नकर थीं।

आनन्द! तब मेरे मनमें यह हुआ कि मैं 'सुख' का प्रहाण कर चतुर्थ-ध्यान प्राप्त कर विहार करूँ। किन्तु आनन्द! मेरा चित्त दुख-सुख-विरहित-भावकी ओर नहीं झुकता था, प्रसन्न नहीं होता था, स्थिर नहीं होता था और विमुक्त नहीं होता था। ऐसा अनुभव होनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है जिससे मेरा मन 'दुख-सुख-विरहित-भाव' की ओर नहीं झुकता? ऐसा सोचनेपर आनन्द! मुझे सूझा कि मैंने उपेक्षा 'सुख' का प्रहाण न करनेके दुष्परिणामको नहीं देखा है, बहुत करके नहीं देखा है, मैंने दुख-सुख-विरहित-भावके शुभ-परिणामको नहीं जाना है, मैंने उसका अभ्यास नहीं किया है। इसलिए मेरा चित्त दुख-सुख-विरहित-भावकी ओर नहीं झुकता, प्रसन्न नहीं होता, स्थिर नहीं होता, विमुक्त नहीं होता। ऐसा होनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि मैं उपेक्षा 'सुख' का प्रहाण न करनेके दुष्परिणामको देखूँ, अधिक करके देखूँ, दुख-सुख-विरहित-भावके शुभ-परिणामोंको जानूं, उनका अभ्यास करूँ तो इसकी सम्भावना है कि मेरा मन दुख-सुख-विरहित-भावकी ओर झुके, प्रसन्न हो, स्थिर हो, विमुक्त हो। ऐसा समझ लेनेपर आनन्द! मैंने आगे चलकर उपेक्षा 'सुख' का प्रहाण न करनेके दुष्परिणाम को देखा, बहुत करके देखा, दुख-सुख-विरहित-भावके शुभ-परिणामोंको जाना, उनका अभ्यास किया। तो आनन्द! मेरा चित्त दुख-सुख-विरहित-भावकी ओर प्रवृत्त हुआ, प्रसन्न हुआ, स्थिर हुआ तथा विमुक्त हुआ। ऐसा होनेपर आनन्द! आगे चलकर उपेक्षा 'सुख' का प्रहाण कर मैं चतुर्थ-ध्यान प्राप्त कर विचरने का प्रयत्न करने लगा। हे आनन्द! इस प्रकार विचरते हुए मेरे मनमें उपेक्षा-सुख-संज्ञा उत्पन्न होती थी। आनन्द! यह मेरे लिए बड़ा विघ्न होता था, जैसे सुखी आदमीको दुखकी अनुभूति हो। ठीक इसी प्रकार आनन्द! मेरे मनमें उपेक्षा-सुख-संज्ञा उत्पन्न होती थीं, और वे मेरे लिए विघ्नकर थीं।

आनन्द! तब मेरे मनमें यह हुआ कि मैं सभी रूप-संज्ञाओंका अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=द्वेष) संज्ञाओंका अस्त हो जानेपर, नानात्व संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान हो, 'आकाश अनन्त है' करके आकाशानञ्चायतनको प्राप्त कर विहार करूँ। किन्तु आनन्द! मेरा चित्त आकाशानञ्चायतनकी ओर नहीं झुकता था, प्रसन्न नहीं होता था, स्थिर नहीं होता था और विमुक्त नहीं होता था। ऐसा अनुभव होनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे मेरा मन 'आकाशानञ्चायतन' की ओर नहीं झुकता? ऐसा सोचनेपर आनन्द! मुझे सूझा कि मैंने 'रूपों' के दुष्परिणामको नहीं देखा है, बहुत करके नहीं देखा है, मैंने आकाशानञ्चायतनके शुभ-परिणामको नहीं जाना है, मैंने उसका अभ्यास नहीं किया है। इसलिए मेरा चित्त 'आकाशानञ्चायतन' की ओर नहीं झुकता, प्रसन्न नहीं होता, स्थिर नहीं होता, विमुक्त नहीं होता। ऐसा होनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि मैं 'रूपों' के दुष्परिणामको देखूँ, अधिक करके देखूँ, 'आकाशानञ्चायतन' के शुभ-परिणामोंको जानूँ, उनका अभ्यास करूँ तो इसकी सम्भावना है कि मेरा मन 'आकाशानञ्चायतन' की ओर झुके, प्रसन्न हो, स्थिर हो, विमुक्त हो। ऐसा समझ लेनेपर आनन्द! मैंने आगे चल कर रूपोंके दुष्परिणामको देखा, बहुत करके देखा, 'आकाशानञ्चायतन' के शुभ-परिणामोंको जाना, उनका अभ्यास किया। तो आनन्द! मेरा चित्त आकाशानच्चायतनकी ओर प्रवृत्त हुआ, प्रसन्न हुआ, स्थिर हुआ तथा विमुक्त हुआ। ऐसा होनेपर आनन्द! आगे चलकर मैं सभी रूप-संज्ञाओंका अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=द्वेष) संज्ञाओंका अस्त हो जानेपर, नानात्व संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान हो 'आकाश अनन्त है' करके आकाशानञ्चायतनको प्राप्त कर विचरने का प्रयत्न करने लगा। हे आनन्द! इस प्रकार विचरते हुए मेरे मनमें 'रूप-संज्ञा' उत्पन्न होती थी। आनन्द! यह मेरे लिए बड़ा विघ्न होता था, जैसे सुखी आदमीको दुखकी अनुभूति हो। ठीक इसी प्रकार आनन्द! मेरे मनमें 'रूप-संज्ञा' उत्पन्न होती थीं, और वे मेरे लिए विघ्नकर थीं।

आनन्द! तब मेरे मनमें यह हुआ कि मैं सभी 'आकाशानञ्चायतनों' का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त' है करके 'विज्ञानञ्चायतन' को प्राप्त कर विहार करूँ। किन्तु आनन्द! मेरा चित्त 'विज्ञानञ्चायतन' की ओर नहीं झुकता था, प्रसन्न नहीं होता था, स्थिर नहीं होता था और विमुक्त नहीं होता था। ऐसा होनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय

है, जिससे मेरा मन 'विज्ञानञ्चायतन' की ओर नहीं झुकता? ऐसा सोचनेपर आनन्द! मुझे सूझा कि मैं ने 'आकाशानञ्चायतन' के दुष्परिणामको नहीं देखा है, बहुत करके नहीं देखा है, मैंने 'विज्ञानञ्चायतन' के शुभ परिणाम को नहीं जाना है, मैंने उसका अभ्यास नहीं किया है। इसलिए मेरा चित्त 'विज्ञानञ्चायतन' की ओर नहीं झुकता, प्रसन्न नहीं होता, स्थिर नहीं होता, विमुक्त नहीं होता। ऐसा होनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि मैं 'आकाशानञ्चायतन' के दुष्परिणामको देखूँ, अधिक करके देखूँ, 'विज्ञानञ्चायतन' के शुभ-परिणामोंको जानूँ, उनका अभ्यास करूँ तो इसकी सम्भावना है कि मेरा मन 'विज्ञानञ्चायतन' की ओर झुके, प्रसन्न हो, स्थिर हो, विमुक्त हो। ऐसा समझ लेनेपर आनन्द! मैंने आगे चलकर 'आकाशानञ्चायतन' के दुष्परिणामको देखा, बहुत करके देखा, 'विज्ञानञ्चायतन' के शुभ परिणामोंको जाना, उनका अभ्यास किया, तो आनन्द! मेरा चित्त विज्ञान-ञ्चायतनकी ओर प्रवृत्त हुआ, प्रसन्न हुआ, स्थिर हुआ तथा विमुक्त हुआ। ऐसा होनेपर आनन्द! आगे चलकर मैं सभी 'आकाशानञ्चायतन' का समतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' करके 'विज्ञानञ्चायतन' को प्राप्त कर विचरने का प्रयत्न करने लगा। हे आनन्द! इस प्रकार विचरते हुए मेरे मनमें 'आकाशानञ्चायतन' संज्ञा उत्पन्न होती थी। आनन्द! यह मेरे लिए बड़ा विघ्न होता था, जैसे सुखी आदमी को दुखकी अनुभूति हो। ठीक इसी प्रकार आनन्द! मेरे मनमें 'आकाशानञ्चायतन' संज्ञा उत्पन्न होती थी, और वे मेरे लिए विघ्नकर थीं।

आनन्द! तब मेरे मनमें यह हुआ कि मैं सभी 'विज्ञानञ्चायतनों' का समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके 'आकिञ्चन्यायतन' को प्राप्त कर विहार करूँ। किन्तु आनन्द! मेरा चित्त 'आकिञ्चन्यायतन' की ओर नहीं झुकता था प्रसन्न नहीं होता था, स्थिर नहीं होता था और विमुक्त नहीं होता था। ऐसा होनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे मेरा मन 'आकिञ्चन्यायतन' की ओर नहीं झुकता? ऐसा सोचनेपर आनन्द! मुझे सूझा कि मैंने 'विज्ञानञ्चायतन' के दुष्परिणामको नहीं देखा है, बहुत करके, नहीं देखा है, मैंने 'आकिञ्चन्यायतन' के शुभ परिणामको नहीं जाना है, मैंने उसका अभ्यास नहीं किया है। इसलिए मेरा मेरा चित्त 'आकिञ्चन्यायतन' की ओर नहीं झुकता, प्रसन्न नहीं होता, स्थिर नहीं होता। विमुक्त नहीं होता। ऐसा होनेपर आनन्द! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि मैं 'विज्ञानञ्चायतन' के दुष्परिणाम को देखूँ, अधिक करके देखूँ, 'आकिञ्चन्यायतन' के शुभ परिणामोंको जानूँ, उनका

अभ्यास करूँ तो इसकी सम्भावना है कि मेरा मन 'आकिञ्चन्यायतन' की ओर झुके, प्रसन्न हो, स्थिर हो, विमुक्त हो। ऐसा समझ लेनेपर आनन्द ! मैंने आगे चलकर 'विज्ञानञ्चायतन' के दुष्परिणामोंको देखा, बहुत करके देखा, 'आकिञ्चन्यायतन' के शुभ परिणामोंको जाना, उनका अभ्यास किया, तो आनन्द ! मेरा चित्त 'आकिञ्चन्यायतन' की ओर प्रवृत्त हुआ, प्रसन्न हुआ, स्थिर हुआ तथा विमुक्त हुआ। ऐसा होनेपर आनन्द ! आगे चलकर मैं सभी 'विज्ञानञ्चायतनोंका समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके आकिञ्चन्यातनको प्राप्त कर विचरने का प्रयत्न करने लगा। हे आनन्द ! इस प्रकार विचरते हुए मेरे मनमें 'विज्ञानञ्चायतन' संज्ञा उत्पन्न होती थी। आनन्द ! यह मेरे लिए बड़ा विघ्न होता था, जैसे सुखी आदमीको दुखकी अनुभूति हो। ठीक इसी प्रकार आनन्द ! मेरे मनमें विज्ञानञ्चायतन-संज्ञा उत्पन्न होती थीं, और वे मेरे लिए विघ्नकर थीं।

तब आनन्द ! मेरे मनमें यह हुआ कि मैं सभी 'आकिञ्चन्यायतनों' का समतिक्रमण कर 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतनको प्राप्त कर विहार करूँ। किन्तु आनन्द ! मेरा चित्त 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतनकी ओर नहीं झुकता था, प्रसन्न नहीं होता था, स्थिर नहीं होता था और विमुक्त नहीं होता था। ऐसा होनेपर आनन्द ! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे मेरा मन 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतनकी ओर नहीं झुकता ? ऐसा सोचनेपर आनन्द ! मुझे सूझा कि मैंने 'आकिञ्चन्यायतन' के दुष्परिणामको नहीं देखा है, बहुत करके नहीं देखा है, मैं ने 'न संज्ञा-न असंज्ञा' के शुभ-परिणामको नहीं जाना है, मैंने उसका अभ्यास नहीं किया है। इसलिए मेरा चित्त 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतनकी ओर नहीं झुकता, प्रसन्न नहीं होता, स्थिर नहीं होता, विमुक्त नहीं होता। ऐसा होनेपर आनन्द ! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि मैं 'आकिञ्चन्यायतन' के दुष्परिणामको देखूँ, अधिक करके देखूँ, 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतनके शुभ-परिणामोंको जानूँ, उनका अभ्यास करूँ, तो इसकी सम्भावना है कि मेरा मन 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतनकी ओर झुके, प्रसन्न हो, स्थिर हो, विमुक्त हो। ऐसा समझ लेनेपर आनन्द ! मैंने आगे चलकर 'आकिञ्चन्यायतन' के दुष्परिणामोंको देखा, बहुत करके देखा, 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतनके शुभ परिणामोंको जाना, उनका अभ्यास किया, तो आनन्द ! मेरा चित्त 'न संज्ञा-न असंज्ञा' की ओर प्रवृत्त हुआ, प्रसन्न हुआ, स्थिर हुआ तथा विमुक्त हुआ। ऐसा होनेपर आनन्द ! आगे चल कर मैं सभी 'आकिञ्चन्यायतनों' का समतिक्रमण कर 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतनको प्राप्त कर विचरने का प्रयत्न

करने) लगा। हे आनन्द ! इस प्रकार विचरते हुए मेरे मनमें 'आकिञ्चन्यायतन' संज्ञा उत्पन्न होती थी। आनन्द ! यह मेरे लिए बड़ा विघ्न होता था, जैसे सुखी आदमीको दुखकी अनुभूति हो। ठीक इसी प्रकार आनन्द ! मेरे मनमें 'आकिञ्चन्यायतन' संज्ञा उत्पन्न होती थी; और वे मेरे लिए विघ्नकर थीं।

तब आनन्द ! मेरे मनमें यह हुआ कि मैं सभी 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनोंका समतिक्रमणकर 'संज्ञा-वेदना के निरोध' को प्राप्त कर विहार करूँ। किन्तु आनन्द ! मेरा चित्त 'संज्ञा-वेदना के निरोध' की ओर नहीं झुकता था, प्रसन्न नहीं होता था, स्थिर नहीं होता था और विमुक्त नहीं होता था। ऐसा होनेपर आनन्द ! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे मेरा मन 'संज्ञा-वेदना के निरोध' की ओर नहीं झुकता ? ऐसा सोचनेपर आनन्द ! मुझे सूझा कि मैंने 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनके दुष्परिणामको नहीं देखा है, बहुत करके नहीं देखा है, मैंने 'संज्ञा-वेदनाके निरोध' के शुभ-परिणाम को नहीं जाना है, मैंने उसका अभ्यास नहीं किया है। इसलिए मेरा चित्त 'संज्ञा-वेदनाके निरोध' की ओर नहीं झुकता, प्रसन्न नहीं होता, स्थिर नहीं होता, विमुक्त नहीं होता। ऐसा होनेपर आनन्द ! मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि मैं 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनके दुष्परिणामको देखूँ, अधिक करके देखूँ, 'संज्ञा-वेदना के निरोध' के शुभ-परिणामोंको जानूँ, उनका अभ्यास करूँ, तो इसकी सम्भावना है कि मेरा मन 'संज्ञा-वेदनाके निरोध' की ओर झुके, प्रसन्न हो, स्थिर हो, विमुक्त हो। ऐसा समझ लेनेपर आनन्द ! मैंने आगे चलकर 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनके दुष्परिणामोंको देखा, बहुतकरके देखा, 'संज्ञा-वेदनाके निरोध' के शुभ-परिणामोंको जाना, उनका अभ्यास किया, तो आनन्द ! मेरा चित्त 'संज्ञा-वेदनाके निरोध' की ओर प्रवृत्त हुआ, प्रसन्न हुआ, स्थिर हुआ, मुक्त हुआ। ऐसा होनेपर आगे चलकर सभी 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनोंका समतिक्रमणकर 'संज्ञा-वेदना' के निरोधको प्राप्त कर विहार करने लगा। प्रज्ञा प्राप्त होनेसे मेरे आस्रवोंका क्षय हो गया।

हे आनन्द ! जबतक मैं क्रमशः दोनों तरह इन नौ ध्यानों (= विहार समापत्तियों) में आरूढ़ नहीं हुआ और उन-उन ध्यानावस्थाओंसे नीचे नहीं उतरा, तब तक मैंने यह दावा नहीं किया कि मैंने सदेव समार लोकमें, श्रमण-ब्राह्मण युक्त प्रजामें, अनुपम सम्यक् सम्बोधिको प्राप्त कर लिया है। लेकिन आनन्द ! जब मैं क्रमशः दोनों तरह इन नौ ध्यानोंमें आरूढ़ हो गया और उन उन ध्यानावस्थाओंसे नीचे उतर आया, तब ही मैंने यह दावा किया कि मैंने सदेव समार लोकमें, श्रमण-ब्राह्मणयुक्त प्रजामें,

अनुपम सम्यक् सम्बोधिको प्राप्त किया। मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया। मुझे सम्यक्-दृष्टि प्राप्त हो गई। मेरी चित्तकी विमुक्ति अचल हो गई। मुझे इस बातका ज्ञान हो गया कि यह अंतिम जन्म है, अब पुनर्भव नहीं है।

५. पंचाल वर्ग

१. सम्बाधसुत्त

ऐसा मैंने सुना। एक समय आयुष्मान आनन्द कौसम्बीके घोषिताराममें विहार करते थे। तब आयुष्मान उदायी जहाँ आयुष्मान आनन्द थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर आयुष्मान आनन्दके साथ कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेम की बात-चीत समाप्त होनेपर वह एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान उदायीने आयुष्मान आनन्दको यह कहा—"आयुष्मान आनन्द! पंचाल चण्ड देवपुत्रने यह कहा है—

सम्बाधेतवत' ओकासं अविदा भूरिमेधसो
यो ज्ञानमबुद्धा बुद्धो पतिलीननिस भो मुनि॥

[उस बहुल-मेधाने बाधाओं और उनके निवारणको जान लिया। जिस बुद्धने ध्यानको जान लिया, वही एकाग्रचित्त श्रेष्ठ मुनि हैं।]

आयुष्मान! बाधाओंसे क्या अभिप्राय है? और भगवानने 'बाधाओंका निवारण' किसे कहा है?"

"आयुष्मान! ये जो पाँच काम-भोगके विषय हैं, इन्हें भगवानने बाधा कहा है। कौनसे पाँच? चक्षु-विज्ञानके विषय ऐसे रूप जो अनुकूल हो, जो सुन्दर हों, जो अच्छे लगनेवाले हों, जो प्रियकर हों, जो काम-भावना-युक्त हों, जो मनोरञ्जन करनेवाले हों, श्रोत्र-विज्ञानके विषय शब्द .... घ्राण-विज्ञानके विषय गन्ध ...... जिह्वा-विज्ञानके विषय रस .... काय-विज्ञानके विषय स्पर्श जो अनुकूल हों जो सुन्दर हों, जो अच्छे लगनेवाले हों, जो प्रियकर हों, जो काम-भावना युक्त हों, तथा जो मनोरञ्जन करनेवाले हों। आयुष्मान! भगवानने इन पाँच काम-भोगके विषयोंको 'बाधा' कहा है।

आयुष्मान! भिक्षु काम-भोगोंसे पृथक .....प्रथम ध्यानको प्राप्तकर विचरता है। आयुष्मान! इसको भी भगवानने बाधाका दूर होना कहा है। एक दृष्टिसे इसमें भी बाधा है। इसमें कौन सी बाधा है? यह जो वितर्क-विचारोंका अनि-रूद्ध होना है, यह भी बाधा है।

फिर आयुष्मान ! भिक्षु वितर्क-विचारोंका उपशमन कर द्वितीय-ध्यान को प्राप्त कर विचरता है। आयुष्मान ! इसको भी भगवानने बाधा का दूर होना कहा है। एक दृष्टिसे इसमें भी बाधा है। इसमें कौनसी बाधा है ? यह जो प्रीतिका अनिरुद्ध होना है, यह भी बाधा है।

फिर आयुष्मान् ! भिक्षु 'प्रीति' की ओरसे उपेक्षावान् हो तृतीय-ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। आयुष्मान् ! इसको भी भगवानने बाधाका दूर होना कहा है। एक दृष्टिसे इसमें भी बाधा है। इसमें कौनसी बाधा है ? यह जो 'उपेक्षा-सुख' का अनिरुद्ध होना है, यह भी बाधा है।

फिर आयुष्मान ! भिक्षु 'सुख' का प्रहाण कर.....चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मान् ! इसको भी भगवान्ने बाधाका दूर होना कहा है। एक दृष्टिसे इसमें भी बाधा है। इसमें कौनसी बाधा है ? यह जो 'रूप-संज्ञा' का अनिरुद्ध होना है, यह भी बाधा है।

फिर आयुष्मान् ! भिक्षु सभी रूप-संज्ञाओंका अतिक्रमणकर, प्रतिघ-संज्ञा-ओंका अस्त हो जानेपर, नानात्व संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान हो 'आकाश अनन्त है' करके आकाशानंचायतनको प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मान ! इसको भी भगवानने बाधा का दूर होना कहा है, एक दृष्टिसे इसमें भी बाधा है। इसमें कौनसी बाधा है ? यह जो 'आकाशानञ्चायतन संज्ञा' का अनिरुद्ध होना है, यह भी बाधा है।

आयुष्मान् ! भिक्षु सभी 'आकाशानञ्चायतनो' का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' करके 'विज्ञानञ्चायतन' को प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मान ! इसको भी भगवानने बाधा का दूर होना कहा है। एक दृष्टिसे इसमें भी बाधा है। इसमें कौनसी बाधा है ? यह जो 'विज्ञानञ्चायतन संज्ञा' का अनिरुद्ध होना है, यह भी बाधा है।

फिर आयुष्मान ! भिक्षु सभी विज्ञानञ्चायतनोंका समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके आकिञ्चन्यायतनको प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मान् ! इसको भी भगवानने बाधाका दूर होना कहा है। एक दृष्टिसे इसमें भी बाधा है। इसमें कौन सी बाधा है ? यह जो आकिञ्चन्यायतन संज्ञाका अनिरूद्ध होना है, यह भी बाधा है।

फिर आयुष्मान् ! भिक्षु सभी आकिञ्चन्यायतन-संज्ञाका अतिक्रमण कर 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनको प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मान्, इसको भी

भगवानने बाधाका दूर होना कहा है। एक दृष्टिसे इसमें भी बाधा है। इसमें कौनसी बाधा है? यह जो 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनका अनिरूद्ध होना है, यह भी बाधा है।

फिर आयुष्मान्! भिक्षु 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतनका समतिक्रमण कर 'संज्ञा-वेदनाके निरोध' को प्राप्त कर विहार करता है। प्रज्ञा प्राप्त होनेसे मेरे आस्रवों का क्षय हो गया। आयुष्मान्! इसको भगवानने निरपेक्ष रूपसे बाधा का दूर करना कहा है।

२. कायसाक्खिसुत्त

'काय-साक्षी', 'काय-साक्षी' कहा जाता है। आयुष्मान! भगवानने क्या होनेसे काय-साक्षी कहा है? आयुष्मान्! भिक्षु काम भोगोंसे पृथक.... प्रथम-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। प्रत्येक आयतनके अनुसार काय(= चित्त)से स्पर्श करके विहार करता है। आयुष्मान! इस दृष्टिसे भी भगवानने 'काय-साक्षी' कहा है।

फिर आयुष्मान्! भिक्षु वितर्क-विचारोंका उपशमन कर द्वितीय ध्यान... तृतीयध्यान.....चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। प्रत्येक आयतनके अनुसार काय (= चित्त)से स्पर्श करके विहार करता है। आयुष्मान्! इस दृष्टिसे भी भगवान् 'काय-साक्षी' कहा है।

फिर आयुष्मान्! भिक्षु सभी रूप-संज्ञाओंका अतिक्रमण कर, प्रतिघ संज्ञाओंका अस्त हो जानेपर, नानात्व संज्ञाओंकी ओरसे उपेक्षावान हो 'आकाश अनन्त है।' करके आकाशानञ्चायतनको प्राप्त कर विहार करता है....सभी आकाशानञ्चायतनों का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' करके विज्ञानञ्चायतनको प्राप्त कर विहार करता है....सभी विज्ञानञ्चायतनोंका समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' करके आकिञ्चन्यायतनको प्राप्त कर विहार करता है.....सभी आकिञ्चन्यायतन संज्ञाका अतिक्रमण कर 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनको प्राप्त कर विहार करता है। प्रत्येक आयतनके अनुसार काय(= चित्त) से स्पर्श करके विहार करता है। आयुष्मान्! इस दृष्टिसे भी भगवानने 'काय-साक्षी' कहा है।

फिर आयुष्मान्! भिक्षु 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतनका समतिक्रमण कर 'संज्ञा-वेदनाके निरोध' को प्राप्त कर विहार करता है। प्रज्ञा प्राप्त होनेसे आस्रवोंका क्षय हो जाता है। प्रत्येक आयतनके अनुसार काय(= चित्त) से स्पर्श करके विहार करता है। इसको भगवानने निरपेक्ष रूपसे 'काय-साक्षी' कहा है।

३. पञ्ञाविमुत्तसुत्त

प्रज्ञा-विमुक्त, प्रज्ञा-विमुक्त आयुष्मान कहा जाता है। क्या होनेसे..... आयुष्मान ! भिक्षु काम-भोगोंसे पृथक .....प्रथम-ध्यान प्राप्त कर विहार करता हँ, इसे प्रज्ञासे जानता है। आयुष्मान ! इस दृष्टिसे भी भगवान्ने प्रज्ञा-विमुक्त कहा है.....फिर आयुष्मान भिक्षु, वितर्क-विचारोंका उपशमन कर .....द्वितीय ध्यान ....तृतीय ध्यान.....चतुर्थ-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है, इसे प्रज्ञासे जानता है। आयुष्मान ! इस दृष्टिसे भी भगवानने प्रज्ञा-विमुक्त कहा है।

फिर आयुष्मान ! भिक्षु सभी 'आकिञ्चन्यायतनों' का समतिक्रमण कर 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनको प्राप्त कर विहार करता है। इसे प्रज्ञासे जानता है। आयुष्मान ! इस दृष्टिसे भी भगवानने प्रज्ञा-विमुक्त कहा है।

फिर आयुष्मान ! भिक्षु सभी 'न संज्ञा-न असंज्ञा' आयतन का समतिक्रमण कर 'संज्ञा-वेदना के निरोध को' प्राप्त कर विहरता है। इसे प्रज्ञा से जानता है। इसको भगवानने निरपेक्ष रूपसे 'प्रज्ञा-विमुक्त' कहा है।

४. उभतोभागविमुत्तसुत्त

उभयतः भाग-विमुक्त, उभयतः भाग-विमुक्त आयुष्मान ! कहा जाता है। आयुष्मान ! क्या होनेसे भगवानने उभयतः भाग-विमुक्त कहा ? आयुष्मान ! भिक्षु काम-भोगोंसे पृथक .....प्रथम-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। प्रत्येक आयतन के अनुसार काय (=चित्त) से स्पर्श कर विहार करता है। इसे प्रज्ञा से जानता है। आयुष्मान ! इस दृष्टिसे भी भगवानने उभयतः भाग-विमुक्त कहा है।

फिर आयुष्मान ! भिक्षु सभी 'आकिञ्चन्यायतनों' का समतिक्रमण कर 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनको प्राप्त कर विहार करता है। प्रत्येक आयतनके अनुसार काय (=चित्त) से स्पर्श कर विहार करता है इसे प्रज्ञासे जानता है। आयुष्मान ! इस दृष्टिसे भी भगवानन्ने उभयतः-भाग-विमुक्त कहा है।

फिर आयुष्मान ! भिक्षु सभी 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनका समतिक्रमण कर 'संज्ञा-वेदना के निरोध' को प्राप्त कर विहार करता है। इसे प्रज्ञासे जानता है। इसको भगवानने निरपेक्ष रूपसे उभयतः भाग विभुक्त कहा है।

५. सन्दिट्ठिकनिब्बानसुत्त

आयुष्मान सांदृष्टिक-धर्म कहा जाता है, आयुष्मान् सांदृष्टिक-निर्वाण, सांदृष्टिक-निर्वाण कहा जाता है, आयुष्मान निर्वाण, निर्वाण कहा जाता है,

आयुष्मान्! परिनिर्वाण परिनिर्वाण कहा जाता है, आयुष्मान! 'तदङ्ग निर्वाण' तदङ्ग-निर्वाण कहा जाता है, आयुष्मान् दृष्ट धर्म-निर्वाण दृष्ट-धर्म निर्वाण कहा जाता है, आयुष्मान्! क्या होनेसे भगवान्ने दृष्टधर्म निर्वाण कहा है? आयुष्मान्! भिक्षु काम-भोगोंसे पृथक प्रथम ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मान्! इस दृष्टिसे भी भगवानने दृष्ट-धर्म निर्वाण कहा है........

फिर आयुष्मान्! भिक्षु सभी 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनका समतिक्रमण कर 'संज्ञा-वेदनाके निरोध' को प्राप्त कर विहार करता है। इसे भगवानने निरपेक्ष भावसे 'दृष्ट-धर्म-निर्वाण' कहा है।

६. खेम वर्ग

१. खेमसुत्त

आयुष्मान्! 'क्षेम' 'क्षेम' कहा जाता है.....।

२. खेमप्पत्तसुत्त

आयुष्मान्! 'क्षेम-प्राप्त' 'क्षेम-प्राप्त' कहा जाता है......।

३. अमतसुत्त

आयुष्मान्! 'अमृत 'अमृत' कहा जाता है........।

४. अमतप्पत्तसुत्त

आयुष्मान्! 'अमृत-प्राप्त' 'अमृत-प्राप्त' कहा जाता है......।

५. अभयसुत्त

आयुष्मान्! 'अभय' 'अभय' कहा जाता है.......।

६. अभयप्पत्तसुत्त

आयुष्मान्! 'अभय-प्राप्त' 'अभय-प्राप्त' कहा जाता है......।

७. पस्साद्धिसुत्त

आयुष्मान्! प्रश्रब्धि (=शान्ति) प्रश्रब्धि कहा जाता है......।

८. अनुपुब्बपस्सद्धिसुत्त

आयुष्मान्! 'क्रमशः प्रश्रब्धि' 'क्रमशः प्रश्रब्धि' कहा जाता है.....।

९. निरोधसुत्त

आयुष्मान्! 'निरोध' 'निरोध' कहा जाता है.......।

१०. अनुपुब्बनिरोधसुत्त

आयुष्मान् ! 'क्रमशः निरोध' 'क्रमशः निरोध' कहा जाता है। आयुष्मान् ! भगवानने क्या होनेसे क्रमशः निरोध कहा है? आयुष्मान् ! भिक्षु काम-भोगोंसे पृथक-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। आयुष्मान् ! इस दृष्टिसे भी भगवानने क्रमशः निरोध कहा है।

फिर आयुष्मान् ! भिक्षु सभी 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतन का समतिक्रमण कर 'संज्ञा-वेदनाके निरोध' को प्राप्त कर विहार करता है। प्रज्ञा प्राप्त होनेसे आस्रवों का क्षय हो जाता है। इसको भगवानने निरपेक्ष रूपसे क्रमशः निरोध कहा है।

११. अभब्बसुत्त

भिक्षुओ, इन नौ दुर्गुणोंका त्याग किए बिना अर्हत्वका साक्षात्कार नहीं हो सकता। कौनसे नौ दुर्गुणोंका? राग, द्वेष, मोह, क्रोध, शत्रुता (उपनाह) निर्दयता (=भ्रम) घृणा (=पलास) इर्ष्या तथा मात्सर्य का।

भिक्षुओ, इन नौ दुर्गुणोंका त्याग किए बिना अर्हत्वका साक्षात्कार नहीं हो सकता।

भिक्षुओ, इन नौ दुर्गुणोंका त्याग कर देनेसे अर्हत्वका साक्षात्कार हो सकता है। है। कौनसे नौ दुर्गुणोंका? राग, द्वेष, मोह, क्रोध, शत्रुता (=उपनाह) निर्दयता (=मक्ख) घृणा (=पलास), ईर्ष्या तथा मात्सर्यका। भिक्षुओ, इन नौ दुर्गुणोंका त्याग कर देनेसे अर्हत्वका साक्षात्कार हो सकता है।

७. स्मृति-उपस्थान वर्ग

१. सिक्खादुब्बल्यसुत्त

भिक्षुओं, ये पाँच शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलताएँ हैं। कौनसी पाँच? हिंसा करना....चोरी करना....काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार....झूठ बोलना... तथा सुरा-मेरय-मद्य आदि नशीली चीजोंका व्यवहार। भिक्षुओ, ये पाँच शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलताएँ हैं। भिक्षुओ, इन् पाँचों शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलताओंका प्रहाण करनेके लिए चारों स्मृति-उपस्थानोंका अभ्यास करना चाहिए। कौनसे चार? भिक्षुओ, भिक्षु कायाके प्रति कायानुपश्यी हो विहार करता है, प्रयत्नशील, सम्प्रजन्ययुक्त स्मृतिमान्, लोकके प्रति राग-द्वेष न रखनेवाला; वेदनाओंके प्रति वेदनानुपश्यी हो विहार करता है, प्रयत्नशील, सम्प्रजन्ययुक्त, स्मृतिमान, लोकके प्रति राग-द्वेष न रखनेवाला; चित्तके प्रति चित्तानुपश्यी हो विहार करता है, प्रयत्न-

शील, सम्प्रजन्ययुक्त, स्मृतिमान, लोकके प्रति राग-द्वेष न रखनेवाला; धर्मों (=चित्तके विषयों) के प्रति धर्मानुपश्यी हो विहार करता है, प्रयत्नशील, सम्प्रजन्ययुक्त, स्मृतिमान, लोकके प्रति राग-द्वेष न रखनेवाला। भिक्षुओ, इन पाँच शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलताओंका प्रहाण करनेके लिए इन चारों स्मृति-उपस्थानोंका अभ्यास करना चाहिए।

२. नीवरणसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच नीवरण हैं। कौनसे पाँच ? कामच्छन्द-नीवरण, व्यापाद-नीवरण, थीन मिद्ध (=आलस्य) नीवरण, उद्धत्य-कौकृत्य नीवरण तथा विचिकित्सा-नीवरण। भिक्षुओ, ये पाँच नीवरण हैं। भिक्षुओ, इन पाँच नीवरणोंका प्रहाण करनेके लिए—इन चारों स्मृति-उपस्थानोंका अभ्यास करना चाहिए।

३. कामगुणसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच काम-भोगके विषय (=काम-गुण) हैं। कौनसे पाँच ? ऐसे रूप, जो चक्षु-विज्ञानका विषय हैं, जो अच्छे लगते हैं, जो सुन्दर होते हैं, जो अनुकूल होते हैं, जो प्रियकर होते हैं, जो कामना-युक्त होते हैं तथा जो मनका रञ्जन करनेवाले होते हैं; ऐसे शब्द, जो श्रोत्र-विज्ञानका विषय हैं; ......ऐसे गन्ध, जो घ्राण-विज्ञानका विषय हैं; ......ऐसे रस जो जिह्वा-विज्ञानका विषय हैं; ......ऐसे स्पृष्टव्य जो काय-विज्ञानका विषय हैं, जो अच्छे लगते हैं, जो सुन्दर होते हैं, जो अनुकूल होते हैं, जो प्रियकर होते हैं, जो कामना-युक्त होते हैं तथा जो मनका रञ्जन करनेवाले होते हैं। भिक्षुओ, इन पाँच काम-गुणोंका प्रहाण करनेके लिए इन चारों स्मृति-उपस्थानोंका अभ्यास करना चाहिए।

४. उपादानक्खन्धसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच उपादान-स्कन्ध हैं। कौनसे पाँच ? रूप-उपादान स्कन्ध, वेदना-उपादान स्कन्ध, संज्ञा-उपादान-स्कन्ध, संस्कार-उपादान-स्कन्ध तथा विज्ञान उपादान-स्कन्ध। भिक्षुओ, ये पाँच उपादान-स्कन्ध हैं। भिक्षुओ, इन पाँचों उपादान-स्कन्धोंका प्रहाण करनेके लिए इन चारों स्मृति-उपस्थानोंका अभ्यास करना चाहिए।

५. ओरम्भागियसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच पतनकी ओर ले जानेवाले संयोजन हैं। कौनसे पाँच ? सत-काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रत परामास, कामच्छन्द, व्यापाद। भिक्षुओ, ये पाँच पतनकी ओर ले जानेवाले संयोजन हैं। भिक्षुओ, इन पाँचों पतनकी ओर

ले जानेवाले संयोजनोंके प्रहाणके लिए इन चारों स्मृति-उपस्थानोंका अभ्यास करना चाहिए।

६. गतिसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच गतियाँ हैं। कौन-सी पाँच? नरक-योनि, पशु-योनि, प्रेत-योनि, मनुष्य-योनि तथा देव-योनि।

भिक्षुओ, ये पाँच गतियाँ हैं। इन पाँचों गतियोंके प्रहाणके लिए इन चारों स्मृति-उपस्थानोंकी भावना करनी चाहिए।

७. मच्छरियसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच मात्सर्य हैं। कौनसे पाँच? आवास (=निवास स्थान) सम्बन्धी मात्सर्य, कुल (=वंश) मात्सर्य, लाभ-मात्सर्य, वर्ण-मात्सर्य तथा धर्म-मात्सर्य। भिक्षुओ, ये पाँच मात्सर्य हैं। भिक्षुओ, इन पाँचों मात्सर्योंका प्रहाण करनेके लिए इन चारों स्मृति-उपस्थानोंकी भावना करनी चाहिए।

८. उद्धम्भागियसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच सूक्ष्मतर (=उद्धम्मागियानि) संयोजन हैं। कौनसे पाँच? रूप-राग, अरूप-राग, मान, उद्धतपन (=उद्धच्च) तथा अविद्या। भिक्षुओ, ये पाँच सूक्ष्मतर संयोजन हैं। भिक्षुओ, इन सूक्ष्मतर संयोजनोंका प्रहाण करनेके लिए इन चारों स्मृति-उपस्थानोंकी भावना करनी चाहिए।

९. चेतोखीलसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच चित्तके बन्धन (=खिल) हैं। कौनसे पाँच? भिक्षुओ, भिक्षु शास्ताके प्रति संदिग्ध होता है, विचिकित्सा-युक्त होता है, विश्वास नहीं करता है तथा श्रद्धावान नहीं होता है। उसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधना करनेकी ओर नहीं झुकता। यह पहला चित्तका बन्धन है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु धर्मके प्रति संदिग्ध होता है...... संघके प्रति संदिग्ध होता है...... शिक्षा-पदोंके प्रति संदिग्ध होता है....... अपने साथियों (=सब्रह्मचारियों) के प्रति कुपित होता है, उनसे असन्तुष्ट होता है, आहत चित्त होता है तथा बाधा-युक्त होता है। उसका चित्त प्रयत्न की ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधना करनेकी ओर नहीं झुकता। जिसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यास की ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधना करनेकी ओर नहीं झुकता, यह पाँचवाँ चित्तका बन्धन है। भिक्षुओ, ये पाँच चित्तके बन्धन हैं।

भिक्षुओ, इन पाँचों चित्तके बन्धनोंका प्रहाण करनेके लिए इन चारों स्मृति-उपस्थानोंकी भावना करनी चाहिए।

१०. चेतसोविनिबन्धसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच चित्तके बन्धन हैं। कौनसे पाँच? भिक्षुओ, भिक्षु काम-भोगोंके प्रति सराग होता है, सछन्द होता है, प्रेम-युक्त होता है, पिपासा-युक्त होता है, जलन युक्त होता है तथा तृष्णा-युक्त होता है। उसका चित्त प्रयत्न की ओर, योगाभ्यास की ओर सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर नहीं झुकता। जिसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधना की ओर नहीं झुकता, यह चित्तका पहला बन्धन है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु कायाके प्रति सराग होता है.......रूपके प्रति सराग होता है......पेट भर खाकर, शयन-सुख, स्पर्श-सुख, तन्द्रा-सुखका मजा लेता हुआ विहार करता है। वह किसी-न-किसी देव-योनिमें उत्पन्न होनेके लिए ब्रह्मचर्य-वास करता है—इस शीलसे, इस व्रतसे वा इस तपसे या तो मैं 'देवता' होऊँगा या कोई देव-अनुचर। भिक्षुओ, जो भिक्षु इस प्रकार किसी न किसी देव-योनिमें उत्पन्न होनेके लिए ब्रह्मचर्य-वास करता है कि इस शीलसे, इस व्रतसे वा इस तपसे या तो मैं 'देवता' होऊँगा या कोई देव-अनुचर, उसका चित्त प्रयत्न की ओर योगाभ्यास की ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर नहीं झुकता। जिसका चित्त प्रयत्न की ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर नहीं झुकता, यह चित्तका पाँचवाँ बन्धन हैं। भिक्षुओ, इन चित्तके पाँचों बन्धनोंका प्रहाण करनेके लिए इन चारों स्मृति-उपस्थानोंकी भावना करनी चाहिए।

८. सम्यक् प्रयत्न वर्ग

१. सिक्खसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलताएँ हैं। कौन-सी पाँच? हिंसा करना......सुरा-मेरय-मद्य आदि नशीली चीजोंका व्यवहार। भिक्षुओ, इन पाँच शिक्षा-सम्बन्धी दुर्बलताओंके प्रहाणके लिए चारों सम्यक् प्रयत्नों (=प्रधानों) का अभ्यास करना चाहिए। कौनसे चारोंका? भिक्षओ, भिक्षु जो पाप-कर्म, अकुशल-कर्म अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं उन्हें उत्पन्न न होने देनेके लिए उत्साह करता है, प्रयत्न करता है, कोशिश करता है, चित्तको उधर झुकाता है, लगाता है, जो पाप-कर्म, अकुशल-

कर्म उत्पन्न हो गए हैं, उनका प्रहाण करनेके लिए उत्साह करता है, प्रयत्न करता है, कोशिश करता है, चित्तको उधर झुकाता है, लगाता है; जो कुशल-कर्म अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं उन्हें उत्पन्न करनेके लिए उत्साह करता है, प्रयत्न करता है, कोशिश करता है, चित्तको उधर झुकाता है, लगाता है; जो कुशल-कर्म उत्पन्न हो गए हैं, उनकी स्थितिके लिए, उन्हें बनाए रखनेके लिए, उन्हें बढ़ानेके लिए, उनकी विपुलताके लिए, उनकी वृद्धिके लिए तथा उनकी पूर्तिके लिए उत्साह करता है, प्रयत्न करता है, कोशिश करता है, चित्तको उधर झुकाता है, लगाता है। भिक्षुओ, इन पाँच शिक्षा-सम्बन्धी दुर्बलताओंके प्रहाणके लिए चारों सम्यक्-प्रयत्नोंका अभ्यास करना चाहिए।

२. चेतसोविनिबन्धसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच चित्तके बन्धन हैं। कौनसे पाँच? भिक्षुओ, भिक्षु काम-भोगोंके प्रति सराग होता है...... भिक्षुओ, ये पाँच चित्तके बन्धन हैं। भिक्षुओ, इन पाँचों चित्त-बन्धनोंका प्रहाण करनेके लिए चारों सम्यक् प्रयत्नोंका अभ्यास करना चाहिए। कौनसे चारों प्रयत्नोंका? भिक्षुओ, भिक्षु जो पाप-कर्म, अकुशल-कर्म अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं, उन्हें उत्पन्न न होने देनेके लिए उत्साह करता है, प्रयत्न करता है, कोशिश करता है, चित्तको उधर झुकाता है, लगाता है; जो पाप-कर्म अकुशल-कर्म उत्पन्न हो गए हैं, उनका प्रहाण करनेके लिए...... जो कुशल-कर्म अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं उनकी उत्पत्तिके लिए..... जो कुशल-कर्म उत्पन्न हो गए हैं, उनकी स्थितिके लिए, उन्हें बनाए रखनेके लिए, उन्हें बढ़ानेके लिए, उनकी विपुलता के लिए, उनकी वृद्धिके लिए तथा उनकी पूर्तिके लिए उत्साह करता है, प्रयत्न करता है, कोशिश करता है, चित्तको उधर झुकाता है, लगाता है। भिक्षुओ, इन पाँचों चित्त-बन्धनोंका प्रहाण करनेके लिए चारों सम्यक् प्रयत्नों (=प्रधानों) का अभ्यास करना चाहिए।

९. ऋद्धिपाद वर्ग

१. सिक्खसुत्त

भिक्षुओ, ये पाँच शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलताएँ हैं। कौनसी पाँच? हिंसा करना...... सुरा-मेरय-मद्य आदि नशीली चीजोंका व्यवहार। भिक्षुओं, ये पाँच शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलताएँ हैं। भिक्षुओ, इन पाँच शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलताओंके प्रहाणके लिए चार ऋद्धि-पादोंकी भावना करनी चाहिए। कौनसे चार ऋद्धि-पाद? भिक्षुओ, भिक्षु छन्द-समाधि-प्रधान संस्कारयुक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है,

विरिय (= वीर्य) समाधि-प्रधान....... चित्त-समाधि-प्रधान...... वीमंसा-समाधि-प्रधान संस्कार-युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है। भिक्षुओ, इन पाँच शिक्षा-सम्बन्धी दुर्बलताओंके प्रहाणके लिए इन चारों ऋद्धि-पादोंका अभ्यास करना चाहिए।

२.

भिक्षुओ, ये पाँच चित्तके बन्धन हैं। कौनसे पाँच? भिक्षुओ, भिक्षु काम-भोगोंके प्रति सराग होता है....... भिक्षुओ, ये पाँच चित्तके बन्धन हैं। भिक्षुओ, इन पाँच चित्त-बंधनोंके प्रहाणके लिए चारों सम्यक्-प्रयत्नोंका अभ्यास करना चाहिए। कौनसे चार? भिक्षुओ, भिक्षु छन्द समाधि-प्रधान संस्कार-युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, विरिय (= वीर्य) समाधि-प्रधान....... चित्त समाधि प्रधान..... वीमंसासमाधि-प्रधान संस्कार (—युक्त) ऋद्धि-पादकी भावना करता है। भिक्षुओ, इन पाँचों चित्त बन्धनोंके प्रहाणके लिए चारों सम्यक् प्रयत्नोंका अभ्यास करना चाहिए।

३.

भिक्षुओ, राग (के यथार्थ-रूप) की जानकारीके लिए नौ धर्मों (= बातों) की भावना (= अभ्यास) करनी चाहिए। कौनसी नौ बातें? अशुभ (= असुन्दर) -संज्ञा, मरण-संज्ञा, आहारके विषयमें प्रतिकूल-संज्ञा, समस्त लोकके प्रति अनासक्तिकी भावना, अनित्य-संज्ञा, अनित्यके प्रति दुख-संज्ञा, दुखके प्रति अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, तथा विराग-संज्ञा। भिक्षुओ, राग (के यथार्थ-रूप) की जानकारीके लिए नौ धर्मों (= बातों) की भावना करनी चाहिए।

४.

भिक्षुओ, राग (के यथार्थ रूप) की जानकारीके लिए नौ धर्मों (= बातों) की भावना (= अभ्यास) करनी चाहिए। कौनसे नौ धर्म? प्रथम-ध्यान, द्वितीय-ध्यान, तृतीय-ध्यान, चतुर्थ-ध्यान, आकाशानञ्चायतन, विज्ञानञ्चायतन, आकिञ्चन्यायतन, न संज्ञा न असंज्ञा आयतन, संज्ञा-वेदनाका निरोध। भिक्षुओ, राग (के यथार्थ रूप) की जानकारीके लिए नौ धर्मों (= बातों) की भावना (= अभ्यास) करनी चाहिए।

३.

भिक्षुओ, रागके परिज्ञानके लिए, परिक्षयके लिए, प्रहाणके लिए, क्षयके लिए, व्ययके लिए, विरागके लिए, विरोधके लिए, त्यागके लिए तथा प्रतिनिसर्गके लिए इन नौ धर्मोंकी भावना करनी चाहिए। द्वेषके........ मोहके..... क्रोधके

.........शत्रुता (= उपनाह) के, निर्दयता (= मक्ख) के, घृणा (= पलास) के.......ईर्षाके.......मात्सर्यके........ मायाके.......शठताके........ .....जड़ताके........कलहके........मानके .....मदके..... ......प्रमादके अभिज्ञानके लिए, परिज्ञानके लिए, परिक्षयके लिए, प्रहाणके लिए, क्षयके लिए, व्ययके लिए, विरागके लिए, निरोधके लिए, त्यागके लिए तथा प्रतिनिसर्गके लिए इन नौ धर्मोंकी भावना करनी चाहिए।

भगवानने यह कहा। उन भिक्षुओंने सन्तुष्ट हो भगवानके भाषणका अभिनन्दन किया।

दसवाँ निपात

१. आनिसंस वर्ग

१. किमत्थियसुत्त

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। तब आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान आनन्दने भगवानको यह कहा—

"भन्ते! कुशल-कर्मोंके करनेका क्या अर्थ है? क्या परिणाम होता है?"

"आनन्द! कुशल-कर्मों, शीलोंके पालन करनेसे पश्चात्तापका अभाव होता है।"

"भन्ते! पश्चात्तापका अभाव होनेसे क्या अर्थ है? उसका क्या परिणाम होता है?"

"आनन्द! पश्चात्ताप न होनेसे प्रमुदता उत्पन्न होती है।"

"भन्ते! प्रमुदता होनेसे क्या अर्थ है? उसका क्या परिणाम होता है?"

"आनन्द! प्रमुदता होनेसे 'प्रीति' उत्पन्न होती है।"

"भन्ते! 'प्रीति' होनेसे क्या अर्थ है? उसका क्या परिणाम होता है?"

"आनन्द! 'प्रीति' होनेसे प्रश्रब्धि उत्पन्न होती है।"

"भन्ते! प्रश्रब्धि होनेसे क्या अर्थ है? उसका क्या परिणाम होता है?"

"आनन्द! प्रश्रब्धि होनेसे सुख उत्पन्न होता है।"

"भन्ते! सुख होनेसे क्या अर्थ है? उसका क्या प्रयोजन है?"

"आनन्द! सुख होनेसे समाधि (=एकाग्रता) उत्पन्न होती है।"

"भन्ते! समाधि होनेसे क्या अर्थ है? उसका क्या परिणाम होता है?"

"आनन्द! समाधि होनेसे यथार्थ-ज्ञानकी प्राप्ति होती है।"

"भन्ते! यथार्थ-ज्ञान होनेसे क्या अर्थ है? उसका क्या परिणाम होता है?"

"आनन्द! यथार्थ-ज्ञान होनेसे निर्वेद-वैराग्य प्राप्त होता है।"

"भन्ते! निर्वेद-वैराग्य होनेसे क्या अर्थ है? उसका क्या परिणाम होता है?"

"आनन्द! निर्वेद-वैराग्य होनेसे विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन प्राप्त होता है।"

"इस प्रकार आनन्द ! कुशल-कर्म, शील पालन करनेसे पश्चात्तापका अभाव रहता है, पश्चात्तापका अभाव रहनेसे प्रमुदता प्राप्त होती है, प्रमुदतासे प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिसे प्रश्रब्धि उत्पन्न होती है, प्रश्रब्धिसे सुख उत्पन्न होता है, सुखसे समाधि (=एकाग्रता) उत्पन्न होती है, समाधिसे यथार्थ-ज्ञान उत्पन्न होता है, यथार्थ-ज्ञानसे निर्वेद-वैराग्य उत्पन्न होता है, निर्वेद-वैराग्यसे विमुक्ति ज्ञान-दर्शन, इस प्रकार आनन्द ! कुशल-कर्म, शील-पालनसे आगे-आगे लाभ होता जाता है।

२. चेतनाकरणीयसुत्त

भिक्षुओ, जो शील-सम्पन्न है, जो सदाचारी है उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं होती कि मुझे पश्चात्ताप न हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक-धर्म है कि जो शील-सम्पन्न है, जो सदाचारी है उसे पश्चाताप न हो। भिक्षुओ, जिसे पश्चात्ताप नहीं होता, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं होती कि मुझे प्रमुदता हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे पश्चाताप न हो, उसे प्रमुदता हो। भिक्षुओ, जिसे प्रमुदता हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं, कि मुझे 'प्रीति' उत्पन्न हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक-धर्म है कि जिसे प्रमुदता हो, उसे 'प्रीति' उत्पन्न हो। भिक्षुओ, जिसे 'प्रीति' प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे प्रश्रब्धि प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे 'प्रीति' प्राप्त हो उसे प्रश्रब्धि उत्पन्न हो। भिक्षुओ, जिसे प्रश्रब्धि (=शान्ति) प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे 'सुख' प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे 'प्रश्रब्धि' प्राप्त हो, उसे 'सुख' उत्पन्न हो। भिक्षुओ, जिसे 'सुख" प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे समाधि (=एकाग्रता) प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे 'सुख' प्राप्त हो, उसे 'समाधि' उत्पन्न हो। भिक्षुओ, जिसे 'समाधि' प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे 'यथार्थ-ज्ञान' प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे 'समाधि' प्राप्त हो, उसे 'यथार्थ-ज्ञान' उत्पन्न हो। भिक्षुओ, जिसे 'यथार्थ-ज्ञान प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करने की आवश्यकता नहीं कि मुझे निर्वेद-वैराग्य प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे 'यथार्थ-ज्ञान' प्राप्त हो, उसे निर्वेद-वैराग्य प्राप्त हो। भिक्षुओ, जिसे निर्वेद-वैराग्य प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मैं विमुक्ति ज्ञान-दर्शन साक्षात करूँ। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे निर्वेद-वैराग्य प्राप्त हो, वह विमुक्ति ज्ञान-दर्शन साक्षात करे।

इस प्रकार भिक्षुओ, निर्वेद-वैराग्य होनेसे विमुक्ति ज्ञान-दर्शनकी प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; यथार्थ-ज्ञान-दर्शन होनेसे निर्वेद-वैराग्यकी प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; समाधि होनेसे यथार्थ-ज्ञान-दर्शनकी प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है, 'सुख' होनेसे 'समाधि' की प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; प्रश्रब्धि होनेसे 'सुख' की प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; 'प्रीति' होनेसे 'प्रश्रब्धि' की प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; प्रमुदता होनेसे प्रीतिकी प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; पश्चात्ताप न होने प्रमुदता की प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है। कुशल-धर्मों (=शीलों) का पालन करनेसे पश्चात्ताप नहीं होता, यही उसका परिणाम है। इस प्रकार भिक्षुओ, धर्मोंसे धर्मोंकी प्राप्ति होती है, धर्मोंसे धर्मोंकी पूर्ति होती है—उत्तरोत्तर वृद्धि।

३. पठमउपनिससुत्त

भिक्षुओ, जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप-रहित होना नहीं है। जो पश्चात्ताप-रहित नहीं है, उसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति नहीं होती। जिसे प्रमुदताकी प्राप्ति नहीं उसके भाग्यमें 'प्रीति' नहीं। जिसे प्रीति प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें प्रश्रब्धि नहीं। जिसे प्रश्रब्धि प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें सुख नहीं। जिसे सुख प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें सम्यक समाधि (=एकाग्रता) नहीं। जिसे एकाग्रता प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें यथार्थ-ज्ञान-दर्शन नहीं। जिसे यथार्थ-ज्ञान-दर्शन प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें निर्वेद-वैराग्य नहीं। जिसे निर्वेद-वैराग्य प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें विमुक्ति ज्ञान-दर्शन नहीं।

भिक्षुओ, जिस प्रकार शाखा पत्ते रहित वृक्षकी पपड़ी भी नहीं पकती, छाल भी नहीं पकती, फेग्गु तथा सारकी भी पूर्ति नहीं होती। इसी प्रकार भिक्षुओ, जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप-रहित होना नहीं है, जो पश्चात्ताप-रहित नहीं है, उसके भाग्यमें......विमुक्ति ज्ञान-दर्शन नहीं।

भिक्षुओ, जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप-रहित होना है। जो पश्चात्ताप-रहित है, उसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति होती है। जिसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति होती है, उसके भाग्यमें 'प्रीति' है। जिसे 'प्रीति' प्राप्त है, उसके भाग्यमें 'प्रश्रब्धि' है। जिसे 'प्रश्रब्धि' प्राप्त है, उसके भाग्यमें 'सुख' है। जिसे 'सुख' प्राप्त है, उसके भाग्यमें सम्यक समाधि (=एकाग्रता) है। जिसे एकाग्रता प्राप्त है, उसके भाग्यमें यथार्थ-ज्ञान है। जिसे यथार्थ-ज्ञान-दर्शन प्राप्त है,

उसके भाग्यमें निर्वेद-वैराग्य है। जिसे निर्वेद-वैराग्य प्राप्त है, उसके भाग्यमें विमुक्ति ज्ञान-दर्शन है।

भिक्षुओ, जिस प्रकार शाखा-पत्ते युक्त वृक्षकी पपड़ी भी पकती है, छाल भी पकती है, फेग्गु तथा सारकी पूर्ति भी होती है। इसी प्रकार भिक्षुओ, जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप रहित होना है। जो पश्चात्ताप-रहित है......... उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन है।

४. दुतियउपनिससुत्त

आयुष्मान सारिपुत्रने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—आयुष्मानो ! जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप-रहित होना नहीं है। जो पश्चात्ताप रहित नहीं है....... उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन नहीं। आयुष्मानो, जिस प्रकार शाखा-पत्ते रहित वृक्षकी पपड़ी भी नहीं पकती, छाल भी नहीं पकती, फेग्गु तथा सारकी भी पूर्ति नहीं होती। इसी प्रकार भिक्षुओ, जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप-रहित होना नहीं है। जो पश्चात्ताप-रहित है, उसके भाग्यमें....... विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन नहीं।

आयुष्मानो ! जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप-रहित होना है, जो पश्चात्ताप-रहित है...... उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन है। आयुष्मानो ! जिस प्रकार शाखा-पत्ते युक्त वृक्षकी पपड़ी भी पकती ह, छाल भी पकती है, फेग्गु तथा सारकी पूर्ति भी होती है। इसी प्रकार आयुष्मानो, जो शील-वान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप-रहित होना है। जो पश्चात्ताप-रहित है........ उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन है।

५. ततियउपनिससुत्त

तब आयुष्मान आनन्दने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—आयुष्मानो ! जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप-रहित होना नहीं है। जो पश्चात्ताप-रहित नहीं है उसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति नहीं होती। जिसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति नहीं, उसके भाग्यमें 'प्रीति' नहीं। जिसे 'प्रीति' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'प्रश्रब्धि' नहीं। जिसे प्रश्रब्धि प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'सुख' नहीं। जिसे 'सुख' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें सम्यक समाधि (=एकाग्रता) नहीं। जिसे एकाग्रता प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें यथार्थ-ज्ञान नहीं। जिसे यथार्थ-ज्ञान-दर्शन प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें निर्वेद-वैराग्य नहीं। जिसे निर्वेद-वैराग्य प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन नहीं।

आयुष्मानो ! जिस प्रकार शाखा-पत्ते-रहित वृक्षकी पपड़ी भी नहीं पकती, छाल भी नहीं पकती, फेग्गु तथा सारकी भी पूर्ति नहीं होती। इसी प्रकार आयुष्मानो ! जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप-रहित होना नहीं है। जो पश्चात्ताप-रहित नहीं है, उसके भाग्यमें. . . विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन नहीं।

आयुष्मानो ! जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप रहित होना है। जो पश्चात्ताप-रहित है, उसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति होती है। जिसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति होती है, उसके भाग्यमें 'प्रीति' है। जिसे 'प्रीति' प्राप्त होती है, उसके भाग्यमें 'प्रश्रब्धि' है। जिसे 'प्रश्रब्धि' प्राप्त है, उसके भाग्यमें 'सुख' है। जिसे 'सुख' प्राप्त है, उसके भाग्यमें सम्यक-समाधि (=एकाग्रता) है। जिसे एकाग्रता प्राप्त है, उसके भाग्यमें यथार्थ-ज्ञान है। जिसे यथार्थ-ज्ञान-दर्शन प्राप्त है, उसके भाग्यमें निर्वेद-वैराग्य है। जिसे निर्वेद-वैराग्य प्राप्त है, उसके भाग्यमें विमुक्ति ज्ञान-दर्शन है।

आयुष्मानो ! जिस प्रकार शाखा-पत्ते-युक्त वृक्षकी पपड़ी भी पकती है, छाल भी पकती है, फेग्गु तथा सारकी पूर्ति भी होती है। इसी प्रकार आयष्मानो ! जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चात्ताप-रहित होना है। जो पश्चात्ताप-रहित है. . . . . उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन है।

६. समाधिसुत्त

उस समय आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान थे, वहाँ गये। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान आनन्दने भगवानसे यह प्रश्न किया—भन्ते ! क्या भिक्षुके लिए ऐसा समाधि-लाभ संभव है, जब न पृथ्वीके प्रति उसके मनमें पृथ्वी-संज्ञा हो, न जलके प्रति जल-संज्ञा हो, न तेज (=अग्नि) के प्रति तेज-संज्ञा हो, न वायुके प्रति वायु-संज्ञा हो, न आकाशानंचायतन के प्रति आकाशानंचायतन-संज्ञा हो, न विज्ञानंचायतनके प्रति विज्ञानंचायतन-संज्ञा हो, न आकिञ्चञ्ञायतन के प्रति आकिञ्चञ्ञायतन-संज्ञा हो, 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनके प्रति 'न-संज्ञा न-असंज्ञा' संज्ञा हो, न इस लोकके प्रति 'यह-लोक-संज्ञा' हो, न पर-लोकके प्रति पर-लोक-संज्ञा हो; लेकिन संज्ञा (=होश) हो !"

"आनन्द ! भिक्षुके लिये ऐसा समाधि-लाभ संभव है, जब न पृथ्वीके प्रति उसके मनमें पृथ्वी-संज्ञा हो, न जलके प्रति जल-संज्ञा हो, न तेज (=अग्नि) के प्रति तेज-संज्ञा हो, न वायुके प्रति वायु-संज्ञा हो, न आकाशानञ्चायतनके प्रति आकाशानञ्चायतन-संज्ञा हो, न विज्ञानञ्चायतनके प्रति विज्ञानञ्चायतन-संज्ञा हो,

न आकिञ्चञ्ञायतनके प्रति आकिञ्चञ्ञायतन-संज्ञा हो, न 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनके प्रति 'न संज्ञा-न-असंज्ञा' संज्ञा हो, न इस लोकके प्रति 'यह लोक-संज्ञा' हो, न पर-लोकके प्रति पर-लोक-संज्ञा हो; लेकिन संज्ञा (=होश) हो।"

"भन्ते! भिक्षुका ऐसा समाधि-प्रति लाभ कैसा होता है जब न पृथ्वीके प्रति उसके मनमें पृथ्वी-संज्ञा हो, न जलके प्रति जल-संज्ञा हो, न तेज (=अग्नि) के प्रति तेज-संज्ञा हो, न वायुके प्रति वायु-संज्ञा हो, न आकाशानंचायतनके प्रति आकाशानंचायतन-संज्ञा हो, न विज्ञानञ्चायतनके प्रति विज्ञानञ्चायतन-संज्ञा हो, न आकिञ्चञ्ञायतनके प्रति आकिञ्चञ्ञायतन-संज्ञा हो, 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनके प्रति 'न संज्ञा न असंज्ञा' संज्ञा हो, न इस लोकके प्रति 'यह लोक' संज्ञा हो और न पर-लोकके प्रति 'पर-लोक' संज्ञा हो; लेकिन संज्ञा (=होश) हो।"

"आनन्द! उस भिक्षुकी संज्ञा ऐसी होती है कि यही शान्त है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन है, सभी उपाधियों (=संयोजनों) का परित्याग है, यह जो तृष्णाका क्षय है, वैराग्य है, निरोध है, निर्वाण है। इस प्रकार आनन्द! भिक्षुको ऐसा समाधि-प्रतिलाभ होता है जब न पृथ्वीके प्रति उसके मनमें पृथ्वी-संज्ञा रहती है, न जलके प्रति जल-संज्ञा, न तेजके प्रति तेज-संज्ञा, न वायुके प्रति वायु-संज्ञा न आकाशानञ्चायतन के प्रति आकाशानञ्चायतन-संज्ञा, न विज्ञानञ्चायतनके प्रति विज्ञानंचायतन-संज्ञा, न आकिञ्चञ्ञायतनके प्रति आकिञ्चञ्ञायतन-संज्ञा, न 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनके प्रति 'न संज्ञा न-असंज्ञा' संज्ञा, न इस -लोकके प्रति यह-लोक संज्ञा, न पर-लोकके प्रति पर-लोक-संज्ञा; किन्तु संज्ञा (=होश) रहती है।

७. सारिपुत्तसुत्त

उस समय आयुष्मान आनन्द जहाँ आयुष्मान सारिपुत्र थे, वहाँ पहुँचे। जाकर आयुष्मान सारिपुत्रके साथ कुशल-वार्ता की। कुशल-बातचीत समाप्त हो चुकने पर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्दने आयुष्मान सारिपुत्रसे कहा—आयुष्मान सारिपुत्र! क्या भिक्षु के लिये ऐसा समाधि-लाभ संभव है जब न पृथ्वीके प्रति उसके मनमें पृथ्वी-संज्ञा हो, न जलके प्रति जल-संज्ञा हो, न तेज (=अग्नि) के प्रति तेज-संज्ञा हो, न वायुके प्रति वायु-संज्ञा हो, न आकाशानञ्चायतन के प्रति आकाशानञ्चायतन संज्ञा हो, न विज्ञानञ्चायतनके प्रति विज्ञानञ्चायतन संज्ञा हो, न आकिञ्चञ्ञायतनके प्रति आकिञ्चञ्ञायतन संज्ञा हो, न 'नसंज्ञा-न असंज्ञा' आयतनके प्रति 'न संज्ञा न असंज्ञा' संज्ञा हो, न इस लोकके प्रति 'यह लोक संज्ञा' हो, न पर लोकके प्रति 'पर लोक-संज्ञा' हो; लेकिन संज्ञा (=होश) हो?"

"आयुष्मान आनन्द ! भिक्षुके लिये ऐसा समाधि-प्रतिलाभ है, जब न पृथ्वी के प्रति उसके मनमें पृथ्वी-संज्ञा हो. . . . न परलोकके प्रति पर-लोक-संज्ञा हो; किंतु संज्ञा (= होश) हो।"

"आयुष्मान् सारिपुत्र ! भिक्षुका ऐसा समाधि-प्रतिलाभ कैसा होता है जब न पृथ्वीके प्रति उसके मनमें पृथ्वी संज्ञा हो. . . . न परलोक के प्रति परलोक-संज्ञा हो; किन्तु संज्ञा (= होश) हो।"

"आयुष्मान ! आनन्द ! एक बार मैं यहीं श्रावस्तीमें अन्धवनमें विहार कर रहा था। उस समय मैं ऐसी समाधिमें आरूढ़ हुआ, जब न पृथ्वी के प्रति मेरे मनमें पृथ्वी-संज्ञा थी, न जलके प्रति जल-संज्ञा थी, न तेज (= अग्नि) के प्रति तेज-संज्ञा थी, न वायुके प्रति वायु-संज्ञा थी, न आकाशानञ्चायतनके प्रति आकाशानञ्चायतन संज्ञा थी, न विज्ञानञ्चायतनके प्रति विज्ञानञ्चायतन संज्ञा थी, न आकिञ्चञ्ञायतनके प्रति आकिञ्चञ्ञायतन संज्ञा थी, न 'न संज्ञा न असंज्ञा' आयतनके प्रति 'न संज्ञा-न असंज्ञा' संज्ञा थी, न इस लोकके प्रति यह-लोक संज्ञा थी, न परलोक के प्रति परलोक संज्ञा थी; किन्तु संज्ञा (= होश) थी।"

"आयुष्मान सारिपुत्र ! उस समय आप किस संज्ञामें थे ?"

"आयुष्मान ! भवका निरोध होनेसे निर्वाण, भवका निरोध होनेसे निर्वाण, इस प्रकार अन्य संज्ञा उत्पन्न होती थी तथा अन्य संज्ञा निरुद्ध होती थी। आयुष्मान ! जैसे छिलटोंकी आग जलने पर अन्य लौ प्रज्वलित होती है, अन्य लौ निरोधको प्राप्त होती है। इसी प्रकार आयुष्मान् ! भव-निरोध ही निर्वाण है, भव-निरोध ही निर्वाण है, इस प्रकार अन्य संज्ञा उत्पन्न होती थी, अन्य संज्ञा निरुद्ध होती थी। आयुष्मान् ! उस समय मेरे मनमें यही संज्ञा थी कि भव-निरोध ही निर्वाण है।

८. **ज्ञानसुत्त**

भिक्षुओ, यदि भिक्षु श्रद्धावान हो, किन्तु शीलवान न हो, तो यह उसकी कमी है, उसे इस कमीकी की पूर्ति कर लेनी चाहिए। उसे सोचना चाहिए कि मैं श्रद्धावान भी होऊँ, शीलवान भी होऊँ। भिक्षुओ, जब भिक्षु श्रद्धावान होता है, तथा शीलवान होता है, तो उसके उस अंगकी कमी की पूर्ति हो जाती है।

भिक्षुओ, जब भिक्षु श्रद्धावान होता है, शीलवान् होता है, किन्तु बहुश्रुत नहीं होता है, तो. . . . किन्तु धर्मकथिक नहीं होता है, तो. . . . किन्तु परिषद-पटु नहीं होता है, तो. . . . किन्तु परिषद को धर्मोपदेश देनेमें पण्डित नहीं होता तो,. . . . . किन्तु विनय-धर नहीं होता है, तो. . . किन्तु आरण्यक एकान्त -वासी नहीं

होता है, तो. . . . . किन्तु इसी शरीरमें सुख पहुँचाने वाले चारों चैतसिक ध्यानों को आसानीसे प्रचुर मात्रामें हस्तगत कर सकनेवाला नहीं होता है, तो. . . किन्तु आस्रवोंका क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्तिको, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी शरीरमें साक्षात कर विहार करने वाला नहीं होता है। इस प्रकार इस अंशमें वह अपूर्ण होता है। उसे इस अंशकी पूर्ति कर लेनी चाहिए। उसे सोचना चाहिए कि मैं श्रद्धावान होऊँ, शीलवान होऊँ, बहुश्रुत होऊँ, धर्म-कथिक होऊँ, परिषद-पटु होऊँ, परिषदको धर्मोपदेश देनेमें पण्डित होऊँ, विनय-धर होऊँ, आरण्यक एकान्त-सेवी होऊँ, इसी शरीरमें सुख पहुँचाने वाले चारों चैतसिक ध्यानोंको आसानीसे प्रचुर मात्रामें हस्तगत कर सकने वाला होऊँ तथा आस्रवोंका क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्तिको, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें साक्षात कर विहार करने वाला होऊँ। भिक्षुओ, जब भिक्षु श्रद्धावान् होता है, शीलवान् होता है, बहुश्रुत होता है, धर्म-कथिक होता है, परिषद-पटु होता है, परिषदको धर्मोपदेश देनेमें पण्डित होता है, विनय-धर होता है, आरण्यक एकान्त-वासी होता है, इसी शरीरमें सुख पहुँचाने वाले चारों चैतसिक ध्यानोंको आसानीसे प्रचुर-मात्रामें हस्तगत कर सकने वाला होता है तथा आस्रवोंका क्षय कर अनाश्रव चित्त-विमुक्तिको, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें साक्षात कर विहार करने वाला होता है, तो उसके इस अंगकी कमीकी पूर्ति हो जाती है। भिक्षुओ, इन दस धर्मोंसे युक्त भिक्षु सभीके मनको सम्पूर्ण करनेवाला होता है और सभी तरहसे सम्पूर्ण होता है।

९. सन्तविमोक्खसुत्त

भिक्षुओ, यदि भिक्षु श्रद्धावान हो, किन्तु शीलवान न हो. . . शीलवान भी हो, किन्तु बहुश्रुत न हो. . . बहुश्रुत भी हो, किन्तु धर्म-कथिक न हो,. . . धर्म-कथिक भी हो, किन्तु परिषद-पटु न हो,. . . . परिषद-पटु भी हो, किन्तु परिषदको उपदेश देनेमें पटु न हो. . . परिषदको उपदेश देनेमें पटु भी होता है, किन्तु विनय-धर नहीं होता. . . . .विनयधर भी होता है, किन्तु आरण्यक एकान्त-वासी नहीं होता, ...आरण्यक एकान्त वासी भी होता है, किन्तु रूपोंका अतिक्रमण कर जो अरूप शान्त विमोक्ष हैं उन्हें काय (= चित्त) से स्पर्श कर विहार नहीं करता है,. . . . . रूपोंका अतिक्रमण कर जो अरूप शान्त विमोक्ष है उन्हें काय (= चित्त) से स्पर्श कर विहार भी करता है, किन्तु आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्तिको, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें साक्षात कर, प्राप्त कर विहार नहीं करता। इस प्रकार इस अंशमें वह अपूर्ण होता है। उसे इस अंशकी पूर्ति कर लेनी चाहिए। उसे सोचना चाहिए कि मैं श्रद्धावान होऊँ, शीलवान होऊँ, बहुश्रुत होऊँ, धर्म-कथिक होऊँ;

परिषद-पटु होऊँ, परिषदको धर्मोपदेश देनेमें पटु होऊँ, विनय-धर होऊँ, आरण्यक एकान्त-वासी होऊँ, रूपोंका अतिक्रमण कर जो अरूप शान्त विमोक्ष हैं, उन्हें काय (= चित्त) से स्पर्शकर विहार करूँ तथा आस्रवोंका क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्तिको, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूँ। भिक्षुओ, जब भिक्षु श्रद्धावान होता है, शीलवान होता है, बहुश्रुत होता है, धर्म-कथिक होता है, परिषद-पटु होता है, परिषद को धर्मोपदेश देनेमें पटु होता है, विनय-धर होता है, आरण्यक एकान्त-वासी होता है, रूपोंका अतिक्रमण कर जो अरूप शान्त विमोक्ष हैं, उन्हें काय (= चित्त) से स्पर्श कर विहार करता है तथा आस्रवोंका क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्तिको, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। इस प्रकार उसके इस अंशकी कमीकी पूर्ति हो जाती है।

भिक्षुओ, इन दस धर्मोंसे युक्त भिक्षु सभीके मनको सम्पूर्ण करने वाला होता है और सभी तरफसे सम्पूर्ण होता है।

१०. विज्ँजासुत्त

भिक्षुओ, यदि भिक्षु श्रद्धावान हो, किन्तु शीलवान न हो, तो यह उसकी कमी है, उसे इस कमीकी पूर्ति कर लेनी चाहिए। उसे सोचना चाहिए कि मैं श्रद्धावान भी होऊँ, शीलवान भी होऊँ। भिक्षुओ, जब भिक्षु श्रद्धावान होता है तथा शीलवान होता है, तो उसके इस अंगकी कमीकी पूर्ति हो जाती है।

भिक्षुओ, जब भिक्षु श्रद्धावान होता है, शीलवान होता है, किन्तु बहुश्रुत नहीं. . . . . बहुश्रुत भी होता है, किन्तु धर्म-कथिक नहीं. . . . धर्म-कथिक भी होता है, किन्तु परिषद-पटु नहीं,. . . . . परिषद पटु भी होता है, किन्तु परिषदको उपदेश देनेमें पटु नहीं,. . . . . परिषद को उपदेश देनेमें पटु भी होता है, किन्तु विनय-धर नहीं, ... विनयधर भी होता है, किन्तु नाना प्रकारके पूर्वजन्मोंका अनुस्मरण नहीं करता, जैसे एक जन्म. . . . .दो जन्म. . . . इस प्रकार आकार-सहित उद्देश्य-सहित पूर्व-जन्मोंका, ... नाना प्रकारके पूर्वजन्मोंका अनुस्मरण भी करता है, जैसे एक जन्म,. . . . दो जन्म. . . . इस प्रकार आकार-सहित उद्देश्य-सहित पूर्व-जन्मोंका, किन्तु मनुष्योत्तर दिव्य विशुद्ध चक्षुसे कर्मानुसार गतिको प्राप्त हुए प्राणियों की गतिको, नहीं देखता है,. . . . . मनुष्योत्तर दिव्य विशुद्ध-चक्षुसे कर्मानुसार गतिको प्राप्त हुए प्राणियोंकी गतिको देखता है, किन्तु आस्रवोंका क्षय कर. . . . . .प्राप्त कर विहार नहीं करता। इस प्रकार इस अंशमें वह अपूर्ण होता है। उसे इस अंशकी पूर्ति

कर लेनी चाहिए। उसे सोचना चाहिए कि मैं श्रद्धावान होऊँ, शीलवान होऊँ, बहुश्रुत होऊँ, धर्म-कथिक होऊँ, परिषद-पटु होऊँ, परिषदको धर्मोपदेश देनेमें पटु भी होऊँ, विनय-धर भी होऊँ, नाना प्रकारके पूर्व-जन्मोंका अनुस्मरण करूँ, जैसे एक जन्म . . . . दो जन्म . . . . इस प्रकार आकार-सहित उद्देश्य-सहित पूर्वजन्मोंका, मनुष्योत्तर दिव्य विशुद्ध चक्षुसे कर्मानुसार गतिको प्राप्त हुए प्राणियोंकी गतिको देखूं तथा आस्रवोंका क्षय कर. . . . .साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूँ।

भिक्षुओ, जब भिक्षु श्रद्धावान होता है, शीलवान होता है, बहुश्रुत होता है, धर्म-कथिक होता है, परिषद-पटु होता है, परिषद को उपदेश देनेमें पटु होता है, विनयधर होता है, नाना प्रकारके पूर्वजन्मोंका अनुस्मरण करता है, जैसे एक जन्म. . . . दो जन्म. . . . इस प्रकार आकार-सहित उद्देश्य-सहित पूर्व जन्मोंका, मनुष्योत्तर दिव्य विशुद्ध चक्षुसे कर्मानुसार गतिको प्राप्त हुए प्राणियोंकी गतिको देखता है तथा आस्रवोंका क्षय कर . . . . .साक्षात कर, प्राप्तकर विहार करता है। इस प्रकार उसके इस अंशकी कमीकी पूर्ति हो जाती है।

भिक्षुओ, इन दस धर्मोंसे युक्त भिक्षु सभीके मनको सम्पूर्ण करनेवाला होता है और सभी तरफसे सम्पूर्ण होता है।

२. नाथ वर्ग

१. सेनासनसुत्त

भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये पाँच बातें हों और जो ऐसे निवास (= शयनासन) में वास करता हो, जिसमें ये पाँच गुण हों, तो वह भिक्षु अचिरकालमें ही आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति को इसी शरीरमें साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, भिक्षुमें वे पाँच बातें कौनसी होनी चाहिए? भिक्षुओ, भिक्षु श्रद्धावान होता है, वह तथागतकी 'बोधि' में विश्वास रखता है कि वे भगवान अर्हत हैं, सम्यक सम्बुद्ध हैं, विद्या तथा आचरणसे युक्त हैं, सुगत हैं, लोकके जानकार हैं, अनुपम हैं, (दुष्ट) पुरुषोंका दमन करनेवाले सारथी हैं, देवताओं तथा मनुष्योंके शास्ता हैं, बुद्ध-भगवान हैं। वह निरोग होता है, स्वस्थ होता है, ऐसी जठराग्निसे युक्त होता है, जो नातिउष्ण होती है, न अति-शीत होती है, मध्यम दर्जेकी होती है। वह शठ नहीं होता, मायावी नहीं होता, शास्ता अथवा विज्ञ सब्रह्मचारियोंको यथार्थ बात प्रकट करनेवाला होता है। वह अकुशल-धर्मोंका प्रहाण करनेके लिए, कुशल-धर्मोंका सम्पादन करनेके लिए सामर्थ्यवान होता है,

दृढ़ पराक्रमी होता है, सतत-प्रयास करने वाला होता है। वह (वस्तुओंके) उदय-अस्त को पहचाननेवाली, आर्य, बींधनेवाली, सम्यक प्रकारसे दुखका क्षय करनेमें समर्थ प्रज्ञासे युक्त होता है। भिक्षुओ, भिक्षुमें उक्त पांच बातें होनी चाहिए।

भिक्षुओ, निवास-स्थान (=शयनासन) में पाँच गुण कौनसे होते हैं? भिक्षुओ, (१) वह शयनासन (नगरसे) न अति दूर होता है, न अति समीप होता है, आना-जाना सम्भव होता है, दिनमें बहुत भीड़ नहीं रहती, रातमें शोर गुल नहीं होता, डांस, मच्छर, हवा-धूप-रेंगनेवाले कीड़ोंके स्पर्शसे रहित। (२) उस शयनासनमें विहार करते समय चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य परिष्कार बिना किसी कठिनाईके प्राप्त हो जाते हैं। (३) उस शयनासन में बहुश्रुत, आगमके जानकार, धर्म-धर, विनय-धर, मातृका-धर स्थविर भिक्षु रहते हैं। (४) उनसे समय-समय पर प्रश्न पूछा जा सकता है, जिज्ञासा की जा सकती है, भन्ते! इसका क्या अर्थ है? भन्ते! इसका क्या तात्पर्य है? (५) वे आयुष्मान जो कुछ उसे अप्रकट रहता है, प्रकट कर देते हैं, अस्पष्ट रहता है, स्पष्ट कर देते हैं, नाना प्रकारकी शंकाओंका समाधान कर देते हैं। भिक्षुओ! निवास-स्थानमें ये पाँच गुण होने चाहिए।

भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये पाँच बातें हों और जो ऐसे निवास-स्थानमें वास करता हो, जिसमें उक्त पाँच गुण हों, वह भिक्षु अचिरकालमें ही आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी शरीरमें साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है।

२. पंचङ्गसुत्त

भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये पाँच दुर्गुण नहीं होते और जिसमें ये पाँच सद्गुण होते हैं, वह इस धर्म-विनय (=बुद्ध शासन) के अनुसार केवली, (=श्रेष्ठ जीवन) व्यतीत करने वाला उत्तम पुरुष माना जाता है। भिक्षुओ, भिक्षु किन पाँच बातों (दुर्गुणों) से रहित होता है? भिक्षुओ, भिक्षुका काम-च्छन्द प्रहीण होता है, व्यापाद (=क्रोध) प्रहीण होता है, आलस्य (=थीन मिद्ध) प्रहीण होता है, उद्धतपन तथा कौकृत्य प्रहीण होता है और सन्देह (=विचिकित्सा) प्रहीण होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु पाँच बातोंसे रहित होता हैं।

भिक्षुओ, भिक्षु कैसे पाँच बातों (=सद्गुणों) से युक्त होता है? भिक्षुओ, भिक्षु अशैक्ष शील-स्कन्ध से युक्त होता है, अशैक्ष समाधि-स्कन्ध से युक्त होता है, अशैक्ष प्रज्ञा-स्कन्ध से युक्त होता है, अशैक्ष विमुक्ति-स्कन्धसे युक्त होता है तथा अशैक्ष

विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन स्कन्धसे युक्त होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु इन पाँच बातों (=सद्‌गुणों) से युक्त होता है।

भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये पाँच दुर्गुण नहीं होते और जिसमें ये पाँच सद्‌गुण होते हैं, वह इस धर्म-विनयके अनुसार केवली, (=श्रेष्ठ जीवन) व्यतीत करने वाला, उत्तम पुरुष माना जाता है।

कामच्छन्दो च ब्यापादो थीनमिद्धंच भिक्खुनो
उद्धच्चं विचिकिच्छा च सब्बसो व न विज्जति।।
असेखेन च सीलेन असेखेन समाधिना,
विमुत्तिया च सम्पन्नो ञाणेन च तथाविधो।।
स वे पञ्चङ्ग सम्पन्नो पञ्च अङ्गे विवज्जयं,
इमस्मिं धम्म विनये केवलीति पवुच्चति।।

[उस भिक्षुमें कामच्छन्द, व्यापाद, थीन-मिद्ध, औद्धत्य तथा विचिकिच्छा का सर्वांशमें नाश हुआ रहता है। वह भिक्षु अशैक्ष शील, अशैक्ष समाधि, अशैक्ष प्रज्ञा, अशैक्ष विमुक्ति तथा अशैक्ष ज्ञानसे युक्त होता है। इस प्रकारका पाँच बातोंसे मुक्त तथा पांच बातोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म-विनय (=बुद्ध शासन)के अनुसार 'केवली' कहलाता है।]

३. संयोजनसुत्त

भिक्षुओ, ये दस संयोजन है। कौनसे दस ? पाँच नीचेके संयोजन, पाँच ऊपरके संयोजन। पाँच ओरम्भागीय-संयोजन कौनसे हैं ? सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रत परामाश, कामच्छन्द, व्यापाद। ऊपरके (उद्धम्भाग) पाँच संयोजन कौनसे हैं ? रूप-राग, अरूप-राग, मान, उद्धतपन तथा अविद्या। ये ऊपरके पाँच संयोजन हैं। भिक्षुओ, ये दस संयोजन हैं।

४. चेतोखीलसुत्त

भिक्षुओ, जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणीके चित्तके ये पाँच बंधन नष्ट नहीं हुए रहते हैं, पाँच रुकावटें दूर नहीं हुई रहती हैं, उसकी जो भी रात या दिन व्यतीत होता है, वह कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें अवनतिकर ही होता है, उन्नतिकर नहीं।

उसके कौनसे पाँच बंधन विनष्ट हुए नहीं रहते हैं ? भिक्षुओ, भिक्षु शास्ता के प्रति सन्देहयुक्त होता है, विचिकित्सायुक्त होता है, समर्पण-परायण नहीं होता है, श्रद्धावान नहीं होता है। उसका चित्त प्रयत्न की ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर नहीं झुकता। जिसका चित्त प्रयत्न की ओर,

योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर नहीं झुकता, यह उसका चित्तका पहला बंधन अविनष्ट हुआ रहता है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु धर्मके प्रति सन्देह-युक्त होना है. . . . . . संघके प्रति संदेह-युक्त. . . . . . शिक्षाओंके प्रति संदेह-युक्त होता है . . . . सहब्रह्मचारियोंके प्रति कुपित होता है, असन्तुष्ट चित्त होता है तथा आघात-प्राप्त होता है। भिक्षुओ, जो भिक्षु अपने साथी ब्रह्मचारियोंके प्रति कुपित होता है, असन्तुष्ट चित्त होता है तथा आघात -प्राप्त होता है, उसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर नहीं झुकता। जिसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर नहीं झुकता, यह उसका चित्तका पाँचवाँ बंधन अविनष्ट हुआ रहता है।

भिक्षुओ, भिक्षुके चित्तकी कौनसी पाँच रुकावटें दूर हुई नहीं रहतीं ? भिक्षुओ, भिक्षु काम-भोगोंके प्रति सराग होता है, सछन्द होता है, प्रेम-युक्त होता है, पिपासा-युक्त होता है, जलन-युक्त होता है, तथा तृष्णा-युक्त होता है। भिक्षुओ, जो भिक्षु काम-भोगोंके प्रति सराग होता है, सछन्द होता है, प्रेम-युक्त होता है, पिपासा-युक्त होता है, जलन-युक्त होता है तथा तृष्णा-युक्त होता है, उसका चित्त-प्रयत्न की ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधना की ओर नहीं झुकता। जिसका चित्त प्रयत्न की ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधना की ओर नहीं झुकता, यह उसके चित्तकी पहली रुकावट दूर हुई नहीं रहती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु कायाके प्रति सराग होता है। . . . . रूपके प्रति सराग होता है, . . . पेट भर खाकर शयन-सुख, स्पर्श-सुख, तन्द्रा-सुखका मजा लेता हुआ विहार करता है। वह किसी न किसी देव-योनिमें उत्पन्न होनेके लिए ब्रह्मचर्य-वास करता है—इस शीलसे, इस व्रतसे वा इस तपसे या तो मैं 'देवता' होऊँगा या कोई देव-अनुचर। भिक्षुओ, जो भिक्षु इस प्रकार किसी न किसी देव-योनिमें उत्पन्न होनेके लिये ब्रह्मचर्य वास करता है कि इस शीलसे, इस व्रतसे वा इस तपसे या तो मैं देवता होऊँगा या कोई देव-अनुचर, उसका चित्त, प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर नहीं झुकता। जिसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर नहीं झुकता, यह उसके चित्तकी पाँचवीं रुकावट दूर हुई नहीं रहती है। भिक्षुओ, ये चित्त की पाँच रुकावटें दूर हुई नहीं रहती हैं।

भिक्षुओ, जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणीके चित्तके ये पाँच बंधन नष्ट नहीं हुए रहते हैं, पाँच रुकावटें दूर नहीं हुई रहती हैं, उसकी जो भी रात या दिन व्यतीत होता है, वह कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें अवनतिकर ही होता है, उन्नतिकर नहीं होता है।

"भिक्षुओ, जैसे कृष्णपक्षके चन्द्रमाके लिए जो भी रात या दिन आता है, उसमें उसका वर्ग, उसका मण्डल, उसकी आभा तथा उसका आकार-प्रकार घटता ही है। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणीके चित्तके ये पाँच बंधन नष्ट नहीं हुए रहते हैं, पाँच रुकावटें दूर नहीं हुई रहती हैं, उसकी जो भी रात या दिन व्यतीत होता है, वह कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें अवनतिकर ही होता है, उन्नतिकर नहीं।

भिक्षुओ, जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणीके चित्तके ये पाँच बंधन नष्ट हुए रहते हैं, पाँच रुकावटें दूर हुई रहती हैं, उसका जो भी रात या दिन व्यतीत होता है, वह कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें उन्नतिकर ही होता है अवनतिकर नहीं।

उसके कौनसे पाँच बंधन विनष्ट हुए रहते हैं? भिक्षुओ, भिक्षु शास्ताके प्रति सन्देह-रहित होता है, विचिकित्सा-रहित होता है, समर्पण-परायण होता है, श्रद्धावान होता है। उसका चित्त प्रयत्न की ओर, योगाभ्यासकी ओर, संतत लगे रहनेकी ओर तथा साधना की ओर झुकता है। जिसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर, तथा साधनाकी ओर झुकता है, यह उसका चित्तका पहला बंधन विनष्ट हुआ रहता है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु धर्मके प्रति सन्देह-रहित होता है.....संघके प्रति संदेह-रहित होता है.....शिक्षाओंके प्रति संदेह-रहित होता है.....सब्रह्मचारियों-के प्रति कुपित नहीं होता है, सन्तुष्ट होता है, आघात-प्राप्त नहीं होता तथा मिलने-जुलने वाला होता है। भिक्षुओ, जो भिक्षु सब्रह्मचारियोंके प्रति कुपित नहीं होता है, असंतुष्ट नहीं होता है, आघात-प्राप्त नहीं होता तथा मिलने जुलने वाला होता है, उसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर झुकता है। जिसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर झुकता है यह उसके चित्तका पाँचवाँ बंधन विनष्ट हुआ रहता है। उस प्रकार उसके चित्तके पाँचों बंधन विनष्ट हुए रहते हैं।

भिक्षुओ, भिक्षुके चित्तकी कौन-सी पाँच रुकावटें दूर हुई रहती हैं? भिक्षुओ, भिक्षु काम-भोगोंके प्रति वीत-राग होता है, वीत-छन्द होता है, प्रेम-रहित होता

है, पिपासा-रहित होता है, जलन-रहित होता है तथा तृष्णा-रहित होता है। भिक्षुओ, जो भिक्षु काम-भोगोंके प्रति वीत-राग होता है, वीत-छन्द होता है, प्रेम-रहित होता है, पिपासा-रहित होता है, जलन-रहित होता है तथा तृष्णा-रहित होता है। उसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधना की ओर झुकता है। जिसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर झुकता है, यह उसके चित्तकी पहली रुकावट दूर हुई रहती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु कायाके प्रति वीत-राग होता है,.....रूपके प्रति वीत-राग होता है......पेटभर खाकर शयन-सुख, स्पर्श-सुख, तन्द्रा-सुखका मजा लेता हुआ विहार नहीं करता है। वह किसी न किसी देवयोनिमें उत्पन्न होनके लिए ब्रह्मचर्य-वास नहीं करता है—इस शीलसे, इस व्रतसे व इस तपसे या तो मैं देवता होऊँगा या कोई देव-अनुचर। भिक्षुओ, जो भिक्षु इस प्रकार किसी न किसी देव-योनिमें उत्पन्न होनेके लिए ब्रह्मचर्य वास नहीं करता है—इस शीलसे, इस व्रतसे वा इस तपसे या तो मैं देवता होऊँगा या कोई देव-अनुचर; उसका चित्त, प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यासकी ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधनाकी ओर झुकता है। जिसका चित्त प्रयत्नकी ओर, योगाभ्यास की ओर, सतत लगे रहनेकी ओर तथा साधना की ओर झुकता है, यह उसके चित्तकी पाँचवीं रुकावट दूर हुई रहती हैं। भिक्षुओ, ये चित्तकी पाँच रुकावटें दूर हुई रहती हैं।

भिक्षुओ, जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणीके चित्तके ये पाँच बंधन नष्ट हुए रहते हैं, पाँच रुकावटें दूर हुई रहती हैं, उसकी जो भी रात या दिन व्यतीत होता है, वह कुशल-धर्मोके सम्बन्धमें उन्नतिकर होता है, अवनतिकर नहीं।

भिक्षुओ, जैसे शुक्ल-पक्षके चन्द्रमाके लिए जो भी रात या दिन आता है, उसमें उसका वर्ग, उसका मण्डल, उसकी आभा तथा उसका आकार-प्रकार बढ़ता ही है। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणीके चित्तके ये पाँच बंधन नष्ट हुए रहते हैं, पाँच रुकावटें दूर हुई रहती हैं, उसकी जो भी रात या दिन व्यतीत होता है, वह कुशल-धर्मोके सम्बन्धमें उन्नतिकर होता है, अवनतिकर नहीं।

५. अप्पमादसुत्त

भिक्षुओ, जितने भी प्राणी होते हैं, चाहे वे अपद (= बिना पैर वाले) हों, चाहे द्विपद हों, चाहे चतुष्पद हों, चाहे बहुपद हों, चाहे रूपी हों, चाहे अरूपी हों, चाहे संज्ञी हों, चाहे असंज्ञी हों, चाहे 'न संज्ञी-न-असंज्ञी' हों, सम्यक् सम्बद्ध तथागत ही उनमें सर्वश्रेष्ठ (= अग्र) कहे जाते हैं। इसी प्रकार भिक्षुओ, जितने

भी कुशल धर्म हैं, उन सबके मूलमें अप्रमाद है, वे सब अप्रमादाभिमुख हैं। उनमें अप्रमाद ही प्रधान है।

भिक्षुओ, जितने भी जंगम प्राणियोंके पैर हैं, वे सब हाथीके पाँवके अन्तर्गत आ जाते हैं, हाथीका पाँव उनमें प्रमुख कहलाता है। इसी प्रकार भिक्षुओ, जितने भी कुशल धर्म हैं, उन सबके मूलमें अप्रमाद है, वे सब अप्रमादाभिमुख हैं। उनमें अप्रमाद ही प्रधान है।

भिक्षुओ, जैसे शिखरवाले मकानकी जितनी भी कड़ियाँ होती हैं, वे सब शिखराभिमुख होती हैं, शिखर ही उनमें प्रमुख कहलाता है। इसी प्रकार भिक्षुओ, जितने भी कुशल-धर्म हैं, उन सबके मूलमें अप्रमाद है, वे सब अप्रमादाभिमुख हैं। उनमें अप्रमाद ही प्रधान है।

भिक्षुओ, जैसे जितनी भी मूल-सुगन्धियाँ हैं, उनमें कालानुसार चन्दन ही श्रेष्ठ (=अग्र) कहलाता है; इसी प्रकार भिक्षुओ........अप्रमाद ही प्रधान है।

भिक्षुओ, जैसे जितनी भी सार-सुगन्धियाँ हैं, उनमें रक्त चन्दन ही श्रेष्ठ (=अग्र) कहलाता है; इसी प्रकार भिक्षुओ.......अप्रमाद ही प्रधान है।

भिक्षुओ, जैसे जितनी भी पुष्प-सुगन्धियाँ हैं, चमेलीकी सुगन्ध उनमें सर्वप्रथम (=अग्र) कहलाती है। इसी प्रकार भिक्षुओ,.......अप्रमाद ही प्रधान है।

भिक्षुओ, जैसे जितने भी छोटे छोटे राजा होते हैं, वे सभी चक्रवर्ती राजाके अनुगामी होते हैं; चक्रवर्ती राजा ही उनमें अग्र कहलाता है। इसी प्रकार भिक्षुओ, ...अप्रमाद ही प्रधान है।

भिक्षुओ, जैसे जितने भी तारोंकी प्रभा (=चमक) है, वह चन्द्रमाकी प्रभाके सोलहवें हिस्सेके भी बराबर नहीं है, चन्द्र-प्रभा ही अग्र कहलाती है। इसी प्रकार भिक्षुओ........अप्रमाद ही प्रधान है।

भिक्षुओ, जैसे शरद-ऋतुमें स्वच्छ बादल-विहीन आकाशमें सूर्य तमाम आकाशमें फैलता हुआ, समस्त आकाशके अन्धकारको नष्ट कर, प्रकाशित होता है—तपता है तथा चमकता है। इसी प्रकार भिक्षुओ.......अप्रमाद ही प्रधान है।

भिक्षुओ, जैसे जितनी भी महान नदियाँ हैं—चाहे वह गंगा हो, यमुना हो, अचिरवती (=राप्ती) हो, सरभू (=सरयू) हो अथवा मही हो—वे सभी समुद्रकी ओर जानेवाली, समुद्रकी ओर झुकी हुई, समुद्राभिमुख तथा समुद्रकी ओर

बहनेवाली हैं, महासमुद्र ही उनमें अग्र कहलाता है। इसी प्रकार भिक्षुओ.... अप्रमाद ही प्रधान है।

६. आहुनेय्यसुत्त

भिक्षुओ, ये दस व्यक्ति (=पुद्‌गल) आगत-स्वागत करने योग्य हैं, दक्षिणार्ह हैं, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य हैं और लोगोंके लिए अनुपम पुण्य-क्षेत्र हैं। कौनसे दस? सम्यक सम्बुद्ध तथागत, प्रत्येक-बुद्ध, दोनों तरहसे विमुक्त, प्रज्ञा-विमुक्त, काय-साक्षी, दृष्टि-प्राप्त, श्रद्धाविमुक्त, श्रद्धानुसारी, धर्मानुसारी तथा गोत्र-भू (=आर्य-जन)। भिक्षुओ, ये दस व्यक्ति (=पुद्‌गल) आगत-स्वागत योग्य हैं, दक्षिणार्ह हैं, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य हैं और लोगोंके लिए अनुपम पुण्य-क्षेत्र हैं।

७. पठमनाथसुत्त

भिक्षुओ, सनाथ होकर विचरो। अनाथ रहकर मत विचरो। भिक्षुओ, जो अनाथ बना रहकर विचरता है, वह दुखी रहता है। भिक्षुओ, ये दस बातें (=धर्म) ऐसी हैं, जिनके होनेसे भिक्षु सनाथ होता है। कौन-सी दस? भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्षके नियमोंका पालन करनेवाला, आचरण तथा व्यवहार (=गोचर) से युक्त, छोटे-से-छोटे दोष (के करने) में भयदर्शी तथा शिक्षापदोंका भली प्रकार पालन करने वाला। भिक्षुओ, यह जो भिक्षुका शीलवान होना है.... यह भी उसे सनाथ बनानेवाली बात (=धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु बहुश्रुत होता है, श्रुतधारी, श्रुत-संग्राहक, जो अर्थ तथा व्यंजन-सहित आदि, मध्य तथा अन्तमें कल्याण-कारक धर्म कहे जाते हैं और जो सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध धर्म हैं, ऐसे धर्म इसके द्वारा बहुत सुने गए होते हैं, धारण किए गए होते हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए होते हैं, मनके द्वारा सम्यक रूपसे जाने गए होते हैं, तथा (सम्यक) दृष्टिके द्वारा भली प्रकार बींधे गए होते हैं। भिक्षुओ, यह जो भिक्षुका बहु-श्रुत होना है.......दृष्टिके द्वारा भली प्रकार बींधे गए, यह भी उसे सनाथ बनानेवाली बात (=धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु कल्याण-मित्र होता है, भला दोस्त, भला यार। भिक्षुओ, यह जो भिक्षुका कल्याण-मित्र, भला दोस्त तथा भला यार होना है, यह भी उसे सनाथ बनानेवाली बात (=धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु सुवच होता है, भली-बातको ग्रहण करनेवाला, अच्छी शिक्षाको स्वीकार करनेवाला। भिक्षुओ, यह जो भिक्षुका सुवच होना है.... अच्छी शिक्षाको स्वीकार करनेवाला; यह भी उसे सनाथ बनानेवाली बात (=धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, सह-ब्रह्मचारियोंके प्रति जो उसके कर्तव्य होते हैं, उनके विषयमें दक्ष होता है, उन कर्तव्योंको प्रमाद-रहित रहकर पूरा करनेवाला। भिक्षुओ, यह जो सह-ब्रह्मचारियोंके प्रति...... करनेवाला; यह भी उसे सनाथ बनानेवाली बात (=धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु धर्म-कामी होता है, प्रिय-भाषी, धर्म तथा विनयको लेकर आनन्दित रहने वाला। भिक्षुओ, यह जो भिक्षुका धर्म-कामी होना है.... होनेवाला; यह भी उसे सनाथ बनानेवाली बात (=धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल-धर्मोंका प्रहाण करनेके लिए, कुशल-धर्मोंको अंगीकार करनेके लिए प्रयत्न शील रहता है, दृढ़ पराक्रमी रहता है। भले कामोंके करनेमें निरन्तर लगा रहनेवाला होता है। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु अकुशल-धर्मोंका प्रहाण....... निरन्तर लगा रहनेवाला होता है; यह भी उसे सनाथ बनानेवाली बात (=धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु जैसे-तैसे चीवर, भिक्षा, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय, भैषज्य आदि आवश्यकताओंसे सन्तुष्ट होता है। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु जैसे-तैसे चीवर.... से सन्तुष्ट होता है; यह भी उसे सनाथ बनानेवाली बात (=धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु स्मृतिमान होता है, उत्तम प्रकारकी स्मृति (=स्मरण-शक्ति) से युक्त, चिरकाल पूर्व की गई, चिर-काल पूर्व कही गई बातको याद रखनेवाला। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु स्मृतिमान होता है....... याद रखनेवाला; यह भी उसे सनाथ बनानेवाली बात (=धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु प्रज्ञावान होता है, उदय-अस्त-गामिनी, आर्य, बींध देनेवाली, सम्यक् प्रकारसे दुखके क्षयकी ओर ले जानेवाली प्रज्ञासे युक्त। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु प्रज्ञावान होता है...... प्रज्ञासे युक्त। यह भी उसे सनाथ बनानेवाली बात (=धर्म) है।

भिक्षुओ, सनाथ होकर विचरो। अनाथ रहकर मत विचरो। भिक्षुओ, जो अनाथ बना रहकर विचरता है, वह दुखी रहता है। भिक्षुओ, ये दस बातें ऐसी हैं, जिनके होनेसे भिक्षु सनाथ होता है।

८. दुतियनाथसुत्त

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनारामर्मे विहार कर रहे थे। वहाँ भगवानने भिक्षुओंको निमंत्रित किया—"भिक्षुओ," भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवचन दिया—"भदन्त।" भगवानने यह कहा—

"भिक्षुओ, सनाथ होकर विचरो। अनाथ होकर मत विचरो। भिक्षुओ, जो अनाथ बना रहकर विचरता है, वह दुखी रहता है। भिक्षुओ, ये दस बातें (= धर्म) ऐसी हैं, जिनके होनेसे भिक्षु सनाथ होता है। कौन-सी दस? भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है...... भली प्रकार पालन करनेवाला।' यह समझकर कि यह भिक्षु शीलवान है, प्रतिमोक्षके नियमोंका पालन करनेवाला है, आचरण तथा व्यवहारसे युक्त है, छोटे-से-छोटे दोष (के करने) में भय-दर्शी है तथा शिक्षापदोंका भली प्रकार पालन करनेवाला है, जो स्थविर भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है,उसे शिक्षा दी जा सकती है। जो मध्यम आयुके-भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य..... जो नए भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य. ......दी जा सकती है। जिस भिक्षुपर स्थविर, मध्यम आयुके तथा नए भिक्षु भी अनुकम्पा करते हैं, उसकी अभिवृद्धि की ही आशा रखनी चाहिए, पतनकी नहीं। यह भी सनाथ बनानेवाली बात (= धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु बहुश्रुत होता है.......भली प्रकार बींधे गए होते हैं। यह समझकर कि यह भिक्षु बहुश्रुत है, श्रुत-धारी, श्रुत-संग्राहक, जो अर्थ तथा व्यंजन-सहित धर्म आदि, मध्य तथा अन्तमें कल्याणकारक कहे जाते हैं और जो सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध धर्म हैं, ऐसे धर्म इसके द्वारा बहुत सुने गए हैं, धारण किए गए हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए हैं, मनके द्वारा सम्यक प्रकारसे जाने गए हैं तथा (सम्यक) दृष्टिके द्वारा भली प्रकार बींधे गए हैं, जो स्थविर भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जो मध्यम-आयुके भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य.........जो नये भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जिस भिक्षुपर स्थविर, मध्यम आयुके तथा नये भिक्षु भी अनुकम्पा करते हैं, उसकी अभिवृद्धिकी ही आशा करनी चाहिए, पतनकी नहीं। यह भी सनाथ बनाने वाली बात (= धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु कल्याण-मित्र होता है, भला दोस्त, भला यार। यह समझकर कि यह भिक्षु कल्याण-मित्र है, भला दोस्त, भला यार, जो स्थविर

भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जो मध्यम-आयुके भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य...... जो नये भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जिस भिक्षुपर स्थविर, मध्यम-आयुके तथा नये भिक्षु भी अनुकम्पा करते हैं, उसकी अभिवृद्धि की ही आशा करनी चाहिए, पतनकी नहीं। यह भी सनाथ बनानेवाली बात (= धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु सवच होता है, भली बातको ग्रहण करनेवाला, अच्छी शिक्षाको स्वीकार करने वाला। यह समझकर कि यह भिक्षु सुवच है, भली बातको ग्रहण करने वाला है, अच्छी शिक्षाको स्वीकार करनेवाला है, जो स्थविर भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जो मध्यम-आयुके भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य.......जो नये भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जिस भिक्षुपर स्थविर, मध्यम-आयुके तथा नये भिक्षु भी अनुकम्पा करते हैं, उसकी अभिवृद्धि की ही आशा करनी चाहिए, पतनकी नहीं। यह भी सनाथ बनानेवाली बात (= धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु सह-ब्रह्मचारियोंके प्रति जो उसके कर्तव्य होते हैं, उनके विषयमें दक्ष होता है, उन कर्तव्योंको प्रमाद रहित रहकर पूरा करनेवाला यह समझकर कि यह भिक्षु सह-ब्रह्मचारियोंके प्रति जो उसके कर्तव्य हैं, उनके विषयमें दक्ष है, उन कर्तव्योंको प्रमाद-रहित रहकर पूरा करनेवाला, जो स्थविर भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जो मध्यम-आयुके भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य.......जो नये भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकते है। जिस भिक्षुपर स्थविर, मध्यम-आयुके तथा नये भिक्षु भी अनुकम्पा करते हैं, उसकी अभिवृद्धि की ही आशा करनी चाहिए, पतनकी नहीं। यह भी सनाथ बनानेवाली बात (= धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु धर्म-कामी होता है, प्रिय-भार्षी, धर्म तथा विनयको लेकर आनन्दित रहनेवाला। यह समझकर कि यह भिक्षु धर्म-कामी है, प्रिय-भाषी है तथा धर्म और विनयको लेकर आनन्दित रहनेवाला है, जो स्थविर भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जो मध्यम-आयुके भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य....जो नये भिक्षु

होते हैं वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जिस भिक्षुपर स्थविर, मध्यम-आयुके तथा नये भिक्षु भी अनुकम्पा करते हैं, उसकी अभिवृद्धि की ही आशा करनी चाहिए, पतनकी नहीं। यह भी सनाथ बनानेवाली बात (= धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल-धर्मोंका प्रहाण करनेके लिए, कुशल-धर्मोंको अंगीकार करनेके लिए प्रयत्नशील रहता है, दृढ़-पराक्रमी रहता है, भले कामोंके करनेमें निरन्तर लगा रहनेवाला होता है। यह समझकर कि यह भिक्षु अकुशल-धर्मोंका प्रहाण करनेके लिए, कुशल-धर्मोंको अंगीकार करनेके लिए प्रयत्नशील है दृढ़-पराक्रमी है, भले कामोंके करनेमें निरन्तर लगा रहता है, जो स्थविर भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जो मध्यम-आयुके भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य.......जो नये भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जिस भिक्षु पर स्थविर, मध्यम आयुके तथा नये भिक्षु भी अनुकम्पा करते हैं, उसकी अभिवृद्धिकी ही आशा करनी चाहिए, पतनकी नहीं। यह भी सनाथ बनानेवाली बात (= धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु जैसे-तैसे चीवर, भिक्षा, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय, भैषज्य आदि आवश्यकताओंसे सन्तुष्ट होता है। यह समझकर कि यह भिक्षु जैसे तैसे चीवर, भिक्षा, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय, भैषज्य आदि आवश्यकताओंसे सन्तुष्ट रहनेवाला है, जो स्थविर भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता ह, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जो मध्यम-आयुके भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य.......जो नए भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जिस भिक्षुपर स्थविर, मध्यम आयुके तथा नये भिक्षु भी अनुकम्पा करते हैं, उसकी अभिवृद्धि की ही आशा करनी चाहिए, पतनकी नहीं। यह भी सनाथ बनानेवाली बात (= धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु स्मृतिमान होता है, उत्तम प्रकारकी स्मृति (= स्मरण-शक्ति) से युक्त, चिरकाल पूर्व की गई, चिरकाल पूर्व कही गई बात को याद रखनेवाला। यह समझकर कि यह भिक्षु स्मृतिमान है, उत्तम प्रकारकी स्मृति (= स्मरण-शक्ति) से युक्त, चिरकाल पूर्व की गई, चिरकाल पूर्व कही गई बातको याद रखनेवाला है, जो स्थविर भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जो मध्यम-आयुके भिक्षु होते

हैं वे भी उसे इस योग्य समझते हैं...... जो नए भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जिस भिक्षुपर स्थविर, मध्यम-आयुके तथा नए भिक्षु भी अनुकम्पा करते हैं, उसकी अभिवृद्धिकी ही आशा करनी चाहिए, पतनकी नहीं। यह भी सनाथ बनानेवाली बात (= धर्म) है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु प्रज्ञावान होता है, उदय-अस्त गामिनी, आर्य, बींध देनेवाली, सम्यक प्रकारसे दुखके क्षयकी ओर ले जानेवाली प्रज्ञासे युक्त। यह समझकर कि यह भिक्षु प्रज्ञावान है, उदय-अस्त-गामिनी, आर्य, बींध देनेवाली, सम्यक प्रकारसे दुखके क्षयकी ओर ले जानेवाली प्रज्ञा से युक्त है, जो स्थविर भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जो मध्यम-आयुके भिक्षु होते हैं वे भी उसे इस योग्य समझते हैं....... जो नये भिक्षु होते हैं, वे भी उसे इस योग्य समझते हैं कि उसे कुछ कहा जा सकता है, उसे शिक्षा दी जा सकती है। जिस भिक्षुपर स्थविर..... पतनकी नहीं। यह भी सनाथ बनानेवाली बात (= धर्म) है।

"भिक्षुओ, सनाथ होकर विचरो। अनाथ होकर मत विचरो। भिक्षुओ जो अनाथ बनकर विचरता है, वह दुखी रहता है। भिक्षुओ, ये दस सनाथ बनानेवाली बातें (= धर्म) हैं।"

भगवानने यह कहा। उन भिक्षुओंने सन्तुष्ट हो भगवानके भाषणका अभिनन्दन किया।

९. पठमअरियावाससुत्त

भिक्षुओ, ये दस आर्य-निवास हैं, जिनमें आर्यों (= श्रेष्ठ जनों) ने निवास किया है, निवास करते हैं वा निवास करेंगे। कौनसे दस? भिक्षुओ, (१) भिक्षु पाँच अंगोंसे प्रहीण होता है, (२) छः अंगोंसे युक्त होता है, (३) एक आरक्षासे युक्त होता है, (४) चार उपाश्रयोंसे युक्त होता है, (५) उसके द्वारा 'प्रत्येक-सत्य' परित्यक्त होते हैं, (६) उसके द्वारा एषणाओंका समूलाघात हुआ रहता है, (७) वह शुद्ध-संकल्पी होता है, (८) उसके काय (= चित्त) के संस्कार प्रशान्त होते हैं, (९) वह सुविमुक्त चित्त होता है तथा (१०) वह सुविमुक्त प्रज्ञ होता है। भिक्षुओ, ये दस आर्य-निवास हैं, जिनमें आर्यों (= श्रेष्ठ जनों) ने निवास किया है, निवास करते हैं या निवास करेंगे।

१०. दुतियअरिआवास सुत्त

एक समय भगवान कुरु जनपदमें कुरुओंके कम्मासधम्म नामके निगममें विहार करते थे। वहाँ भगवानने भिक्षुओंको आमंत्रित किया . . . . भगवानने यह कहा।

"भिक्षुओ, ये दस आर्य-निवास हैं, जिनमें आर्यों (= श्रेष्ठ जनों) ने निवास किया है, निवास करते हैं या निवास करेंगे। कौनसे दस? भिक्षुओ, भिक्षु पांच अंगोंसे प्रहीण होता है, (२) छः अंगोंसे युक्त होता है, (३) एक आरक्षासे युक्त होता है, (४) चार उपाश्रयोंसे युक्त होता है, (२) उसके द्वारा 'प्रत्येक-सत्य' परित्यक्त होते हैं, (६) उसके द्वारा एषणाओंका समूलाघात हुआ रहता है, (७) वह शुद्ध-संकल्पी होता है, (८) उसके काय (= चित्त) के संस्कार प्रशान्त होते हैं, (९) वह सुविमुक्त चित्त होता है तथा (१०) वह सुविमुक्त-प्रज्ञ होता है।

भिक्षुओ, भिक्षु पाँच अंगोंसे प्रहीण कैसे होता है?

भिक्षुओ, भिक्षुका कामछन्द प्रहीण होता है, व्यापाद (= क्रोध) प्रहीण होता है, आलस्य प्रहीण होता है, उद्धतपन-कौकृत्य प्रहीण होता है तथा विचिकित्सा प्रहीण होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु पाँच अंगोंसे प्रहीण होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु कैसे छह अंगोंसे युक्त होता है? भिक्षुओ, भिक्षु आँखसे रूप देखकर न प्रसन्न होता है, न अप्रसन्न होता है, स्मृति-सम्प्रजन्यसे युक्त हो उपेक्षा-सहित विहार करता है। भिक्षु श्रोत्रसे शब्द सुनकर. . . . घ्राणसे गन्ध सूँघ कर. . . . जिह्वासे रस चखकर. . . कायसे स्पर्श करके. . . . मनसे मनके विषयोंको ग्रहण कर न प्रसन्न होता है, न अप्रसन्न होता है, स्मृति-सम्प्रजन्यसे युक्त हो उपेक्षा-सहित विहार करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु छह अंगोंसे युक्त होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु एक आरक्षावाला कैसे होता है? भिक्षुओ, भिक्षु स्मृति द्वारा सुरक्षित चित्तसे युक्त होता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु एक आरक्षा वाला होता है।

भिक्षुओ, भिक्षु चार उपाश्रयोंसे युक्त कैसे होता है? भिक्षुओ, भिक्षु विचार-पूर्वक एक चीजको उपभोग में लाता है, विचारपूर्वक एक चीजको सहन करता है, विचारपूर्वक एक चीजका त्याग करता है तथा विचारपूर्वक एक चीजको दूर भगाता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु चार उपाश्रयोंसे युक्त होता है।

भिक्षुओ, भिक्षु द्वारा 'प्रत्येक-सत्य' परित्यक्त कैसे होते है? भिक्षुओ, बहुतसे श्रमण-ब्राह्मणोंके जो बहुतसे 'प्रत्येक-सत्य' होते हैं, जैसे 'लोक शाश्वत है', या

'लोक आशाश्वत है', या 'लोक सान्त है', या 'लोक अनन्त है', या 'शरीर तथा जीव एक ही है', या 'शरीर तथा जीव भिन्न-भिन्न हैं', या 'तथागत मरनेके अनन्तर होते हैं', या 'तथागत मरनेके अनन्तर नहीं होते हैं', या 'तथागत मरनेके अनन्तर होते भी हैं और नहीं भी होते हैं', या 'तथागत मरनेके अनन्तर न होते हैं तथा न नहीं होते हैं'—ये जितने हैं सभी त्यक्त होते हैं, परित्यक्त होते हैं, त्याग दिये होते हैं, परित्याग कर दिये होते हैं, प्रहीण कर दिये गए होते हैं, सम्पूर्ण रूपसे दूर कर दिये गए होते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षुके द्वारा 'प्रत्येक-सत्य' परित्यक्त होते हैं।

भिक्षुओ, भिक्षुके द्वारा एषणाओंका समूलाघात कैसे हुआ रहता है? भिक्षुओ भिक्षुकी कामेषणा प्रहीण होती है, ब्रह्मेषणा प्रहीण होती है तथा ब्रह्मचरियेषणा शान्त हो गई रहती है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षुके द्वारा एषणाओंका समूलाघात हुआ रहता है।

भिक्षुओ, भिक्षु शुद्ध-संकल्पी कैसे होता है? भिक्षुओ, भिक्षुके काम-संकल्प प्रहीण होते हैं, व्यापाद (= क्रोध) के संकल्प प्रहीण होते है तथा विहिंसाके संकल्प प्रहीण होते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु शुद्ध-संकल्पी होता है।

भिक्षुओ, भिक्षुके काय (= चित्त) के संस्कार कैसे शान्त होते हैं? भिक्षुओ, भिक्षु 'सुख' का प्रहाण कर। 'दुःख' का प्रहाणकर, सौमनस्य तथा दौर्मनस्यका पहले ही अस्त हुआ रहनेसे अदुख-असुख स्वरूप उपेक्षा-स्मृति-परिशुद्धिसे युक्त चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षुके काय (= चित्त) के संस्कार शान्त होते हैं।

भिक्षुओ, भिक्षु सुविमुक्त चित्त कैसे होता है? भिक्षुओ, भिक्षुका चित्त राग से विमुक्त होता है, द्वेषसे विमुक्त होता है तथा मोहसे विमुक्त होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु सुविमुक्त चित्त होता है।

भिक्षुओ, भिक्षु सुविमुक्त-प्रज्ञ कैसे होता है? भिक्षुओ, भिक्षुको यह ज्ञान होता है कि मेरा राग प्रहीण हो गया है, जड़-मूलसे जाता रहा है, कटे ताड़ वृक्षके समान हो गया है, अभाव-प्राप्त हो गया है तथा उसकी पुनरुत्पत्तिकी कोई संभावना नहीं रही है, मेरा द्वेष प्रहीण......मेरा मोह प्रहीण हो गया है, जड़-मूलसे जाता रहा है, कटे ताड़-वृक्षके समान हो गया है, अभाव-प्राप्त हो गया है तथा उसकी पुनरुत्पत्तिकी कोई संभावना नहीं। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु सुविमुक्त-प्रज्ञ होता है।

भिक्षुओ, भूत-कालमें जितने आर्योंने आर्य-निवासमें वास किया, उन सबने इन्हीं दस आर्य-निवासोंमें वास किया; भिक्षुओ भविष्य-कालमें जितने आर्य-निवासमें

वास करेंगे, वे सब इन्हीं दस आर्य-निवासोंमें वास करेंगे; भिक्षुओ वर्तमान-कालमें जितने आर्य आर्य-निवासोंमें वास करते हैं, वे सब इन्हीं दस आर्य-निवासोंमें वास करते हैं। भिक्षुओ, ये दस आर्य-निवास हैं, जिन में आर्य जनोंने वास किया है, करेंगे अथवा कर रहे हैं।

३. महावग्ग

१. सीहनादसुत्त

भिक्षुओ, सिंह मृगराज शामके समय अपनी गुफामेंसे निकलता है। गुफामेंसे निकलकर जम्हाई लेता है। जम्हाई लेकर चारों ओर देखता है। चारों ओर देखकर तीन बार सिंह-नाद करता है। तीन बार सिंह-नाद करके शिकारके लिये चल पड़ता है। वह ऐसा क्यों करता है? ताकि छोटे-मोटे प्राणी उसकी चपेटमें न आयें।

भिक्षुओ, 'सिंह' यह अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध तथागत का पर्याय है। भिक्षुओ, तथागत जो परिषदमें धर्मका उपदेश करते हैं, यही उनका 'सिंह-नाद' करना है।

भिक्षुओ, ये दस तथागतके तथागत-बल हैं, जिनसे युक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा धर्म-चक्रका प्रवर्तन करते हैं। कौनसे दस? भिक्षुओ, तथागत यथार्थ रूपसे (उचित) स्थानको स्थान करके तथा अस्थानको अस्थान करके जानते हैं। भिक्षुओ, यह जो तथागत यथार्थ रूपसे स्थानको स्थान तथा अस्थानको अस्थान करके जानते हैं, भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे युक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर भिक्षुओ, तथागत भूत-भविष्य-वर्तमान कर्मोंके स्वरूपको, हेतुको, फलको यथार्थ रूपसे जानते हैं। भिक्षुओ, यह जो तथागत भूत-भविष्य-वर्तमान कर्मों के स्वरूपको, हेतुको, फलको यथार्थ रूपसे जानते हैं, भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे मुक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर भिक्षुओ, तथागत सर्वत्रगामी मार्गके जानकार होते हैं। भिक्षुओ, यह जो तथागत सर्वत्रगामी मार्गको यथार्थ रूपसे जानते हैं, भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे मुक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर भिक्षुओ, तथागत अनेक-धातु, नाना-धातु वाले लोकको यथार्थ रूपसे जानते हैं। भिक्षुओ, यह जो तथागत अनेक-धातु, नाना-धातु वाले लोकको यथार्थ-रूपसे जानते हैं, भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे युक्त होने पर . . . ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर भिक्षुओ, तथागत प्राणियोंकी प्रवृत्ति को यथार्थ-रूपसे जानते हैं। भिक्षुओ, यह जो तथागत प्राणियोंकी प्रवृत्तिको यथार्थ-रूपसे जानते हैं, भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे युक्त होने पर. . . .ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर भिक्षुओ, तथागत दूसरे प्राणियोंकी, दूसरे व्यक्तियोंकी श्रद्धा आदि इन्द्रियोंकी कमी-बेशीको यथार्थ-रूपसे जानते हैं। भिक्षुओ, यह जो तथागत दूसरे प्राणियोंकी, दूसरे व्यक्तियोंकी श्रद्धा आदि, इन्द्रियोंकी कमी-बेशीको यथार्थ-रूपसे जानते हैं, भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे युक्त होने पर. . . . ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर भिक्षुओ, तथागत ध्यानोंके, विमोक्षोंके, समाधियोंके बाधक धर्मोंको, उनकी विशेषताओं(=परिशुद्धि)को तथा उन उन ध्यानों आदिसे उठनेको यथार्थ-रूपसे जानते हैं। भिक्षुओ, यह जो तथागत ध्यानोंके, विमोक्षोंके, समाधियोंके बाधक-धर्मोंको, उनकी विशेषताओं (=परिशुद्धि) को तथा उन-उन ध्यानों आदिसे उठनेको यथार्थ रूपसे जानते हैं, भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे युक्त होने पर. . . . ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर भिक्षुओ, तथागत अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंका अनुस्मरण करते हैं, जैसे एक जन्मोंका, दो जन्मोंका, तीन जन्मोंका, चार जन्मोंका, पाँच जन्मोंका, दस जन्मोंका, बीस जन्मोंका, तीस जन्मोंका, चालीस जन्मोंका, पचास जन्मोंका, सौ जन्मोंका, हजार जन्मोंका, लाख जन्मोंका, अनेक संवर्त-कल्पोंका, अनेक विवर्त-कल्पोंका, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पोंका कि मैं अमुक स्थान पर था, यह नाम था, यह गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा भोजन ग्रहण करता था, इस प्रकार सुख-दुखका अनुभव किया तथा इतनी आयु तक जीवित रहा। वहाँसे च्युत होकर मैंने अमुक जगह जन्म ग्रहण किया। वहाँ भी मेरा अमुक नाम था, अमुक गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा भोजन ग्रहण करता था, इस प्रकार सुख-दुखका अनुभव किया तथा इतनी आयु तक जीवित रहा। वहाँसे च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुआ, इस प्रकार आकार-उद्देश्य सहित नाना जन्मोंका अनुस्मरण करता है। भिक्षुओ, यह जो तथागत अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोंका अनुस्मरण करते हैं, जैसे एक जन्मोंका, दो जन्मोंका. . . . इस प्रकार आकार-उद्देश्य सहित नाना

जन्मोंका अनुस्मरण करते हैं, भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे युक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंहनाद-करते हैं तथा ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर भिक्षुओ, तथागत दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे प्राणियोंको मरते-उत्पन्न होते देखते हैं, हीन योनिमें, श्रेष्ठ योनिमें सुवर्ण या दुर्वर्ण वाले कर्मानुसार सुगति-प्राप्त अथवा दुर्गति-प्राप्त। वे जानते हैं कि ये प्राणी शरीरके, वाणीके तथा मनके दुष्कर्मोंसे युक्त हैं, ये आर्यों (=श्रेष्ठ जनों) के निन्दक हैं, ये मिथ्या-दृष्टि हैं, मिथ्या-मतको ग्रहण किये रहने वाले ; इसीलिए ये शरीर छूटने पर, मरनेके अनन्तर अपाय, दुर्गति, नरकमें उत्पन्न हुए हैं। अथवा, वे जानते हैं कि ये प्राणी शरीरके, वाणीके तथा मनके सुकर्मोंसे युक्त हैं, ये आर्यों (=श्रेष्ठ जनों) के प्रशंसक हैं, ये सम्यक्-दृष्टि हैं, सम्यक-दृष्टि को ग्रहण किये रहन वाले ; इसीलिए ये शरीर छूटने पर, मरनेके अनन्तर सुगति, स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न हुए। इस प्रकार तथागत दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे प्राणियोंको उत्पन्न होते मरते देखते हैं, हीन योनिमें, श्रेष्ठ योनिमें, सुवर्ण या दुर्वर्ण, कर्मानुसार सुगति-प्राप्त अथवा दुर्गति-प्राप्त। भिक्षुओ, यह जो तथागत दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे. . . . . . . .दुर्गति प्राप्त। भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे युक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

भिक्षुओ, फिर तथागत आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करते हैं। भिक्षुओ, यह जो तथागत आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी शरीरमें स्वयं जानकर साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करते हैं ; भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे युक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्व की घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

भिक्षुओ, ये दस तथागतके तथागत-बल हैं, जिनसे युक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

२. अधिवुत्तिपदसुत्त

उस समय आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान आनन्दको भगवानने यह कहा —

"आनन्द! जितने भी स्कन्ध-आयतन-धातु हैं जिन-जिन शब्दों द्वारा जाने जाते हैं, प्रकट किये जाते हैं, मैं यह कहता हूँ कि मैं उनके विषयमें विशारद हूँ। मैं उन-उन धर्मोंके बारेमें, वैसे-वैसे देशना करनेमें समर्थ हूँ कि तदनुसार आचरण करनेसे 'होने पर' जान लेगा कि है, 'न होने पर' जान लेगा कि नहीं है, 'हीन' होने पर जान लेगा कि 'हीन' है, 'प्रणीत' होने पर जान लेगा कि 'प्रणीत' है, 'श्रेष्ठतर कुछ' होने पर जान लेगा कि श्रेष्ठतर है, 'श्रेष्ठतर कुछ नहीं' होने पर जान लेगा कि श्रेष्ठतर कुछ नहीं—जैसे-जैसे वह ज्ञातव्य हो, द्रष्टव्य हो या साक्षात करने योग्य हों, वैसे-वैसे, इसकी सम्भावना है कि वह उसे जान लेगा, देख लेगा या साक्षात कर लेगा। आनन्द! सब ज्ञानोंमें यही श्रेष्ठतम ज्ञान है, यह जो यथार्थ-ज्ञान है। आनन्द! मैं कहता हूँ कि इस ज्ञानसे श्रेष्ठतर, इस ज्ञानसे बढ़कर, दूसरा कोई ज्ञान नहीं है।

"आनन्द, ये दस तथागतके तथागत-बल हैं, जिनसे युक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्रका प्रवर्तन करते हैं। कौनसे दस? भिक्षुओ, तथागत यथार्थ रूपसे (उचित) स्थानको स्थान करके तथा अस्थानको अस्थान करके जानते हैं। आनन्द, यह जो तथागत यथार्थ रूपसे स्थानको स्थान तथा अस्थानको अस्थान करके जानते हैं; भिक्षुओ, यह भी तथागतका तथागत-बल है, जिससे युक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर आनन्द, तथागत भूत-भविष्य-वर्तमान कर्मोंके स्वरूपको, हेतुको, फलको यथार्थ रूपसे जानते हैं। आनन्द, यह जो यथागत......ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर आनन्द, तथागत सर्वत्रगामी मार्गके जानकार होते हैं। आनन्द, यह जो तथागत.......ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर आनन्द, तथागत अनेक-धातु नाना-धातु, वाले लोकको यथार्थ-रूपसे जानते हैं। आनन्द, यह जो तथागत......ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

फिर आनन्द, तथागत प्राणियोंकी प्रवृत्तिको यथार्थ रूपसे जानते हैं। आनन्द, यह जो तथागत. . . . . ब्रह्मचक्र प्रवर्तन करते हैं।

फिर आनन्द! तथागत दूसरे प्राणियोंकी, दूसरे व्यक्तियोंकी श्रद्धा आदि इन्द्रियोंकी कमी-बेशीको यथार्थ-रूपसे जानते हैं। आनन्द! यह जो तथागत.... ......ब्रह्मचक्र प्रवर्तन करते हैं।

फिर आनन्द ! तथागत ध्यानोंके, विमोक्षोंके, समाधियोंके बाधक-धर्मोंको उनकी विशेषताओंको तथा उन उन ध्यानों आदिसे उठनेको यथार्थ-रूपसे जानते हैं। आनन्द ! यह जो तथागत....... ब्रह्मचक्र प्रवर्तन करते हैं।

फिर आनन्द ! तथागत अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंका अनुस्मरण करते हैं, जैसे एक जन्मका, दो जन्मोंका.... आकार-सहित उद्देश्य-सहित अनेकविध पूर्व जन्मों का अनुस्मरण करते हैं।

फिर आनन्द ! तथागत दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे प्राणियोंको.... ....कर्मानुसार मरते-उत्पन्न होते जानते हैं। आनन्द ! यह भी तथागत.... ....ब्रह्मचक्र प्रवर्तन करते हैं।

फिर आनन्द ! तथागत आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें स्वयं जानकर, साक्षात कर,प्राप्त कर विहार करते हैं। आनन्द ! यह जो तथागत आस्रवोंका क्षयकर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें स्वयं जानकर, साक्षातकर, प्राप्तकर विहार करते हैं, यह भी आनन्द ! तथागतका तथागत-बल है, जिससे युक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

आनन्द ! ये दस तथागतके तथागत-बल हैं, जिनसे युक्त होनेके कारण तथागत अपने श्रेष्ठत्वकी घोषणा करते हैं, परिषदमें सिंह-नाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र प्रवर्तन करते हैं।

३. कायसुत्त

भिक्षुओ, ऐसी बातें (= धर्म) भी हैं, जिन्हें शरीर द्वारा त्यागा जा सकता है, वाणी द्वारा नहीं। भिक्षुओ, ऐसी बातें हैं जिन्हें वाणी द्वारा त्यागा जा सकता है, शरीर द्वारा नहीं। भिक्षुओ, ऐसी बातें हैं, जिन्हें न शरीर द्वारा त्यागा जा सकता है, न वाणी द्वारा, प्रज्ञाके द्वारा त्यागा जा सकता है।

भिक्षुओ, जो बातें (= धर्म) शरीरके द्वारा त्यागे जा सकते हैं, वाणीके द्वारा नहीं, वे कौनसे हैं ? भिक्षुओ, भिक्षुसे कोई शारीरिक अकुशल-कर्म किया गया होता है। इसे जानकर विज्ञ सब्रह्मचारी ऐसा कहते हैं—'आयुष्मानसे कुछ शारीरिक अकुशल-कर्म हुआ है। आयुष्मान ! अच्छा होगा, यदि आप शारीरिक दुश्चरित्रताका त्याग कर शारीरिक सच्चरित्रताका अभ्यास करें।' वह यह जानकर, विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा कहे जानेपर शारीरिक दुश्चरित्रताको छोड़ शारीरिक सच्चरित्रताका अभ्यास

करता है। भिक्षुओ, ये बातें (= धर्म) ऐसी हैं, जिनका शरीरसे त्याग किया जाता है, वाणीके द्वारा नहीं।

भिक्षुओ, जो बातें (= धर्म) वाणीके द्वारा त्यागी जा सकती हैं, शरीरके द्वारा नहीं, वे कौनसी हैं? भिक्षुओ, भिक्षुसे कोई वाणीका अकुशल-कर्म किया गया होता है। इसे जानकर विज्ञ सब्रह्मचारी ऐसा कहते हैं—'आयुष्मान से वाणीका कुछ अकुशल-कर्म हुआ है। आयुष्मान्! अच्छा होगा, यदि आप वाणीकी दुश्चरित्रताका त्याग कर वाणीकी सच्चरित्रताका अभ्यास करें।' वह यह जानकर, विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा कहे जानेपर वाणीकी दुश्चरित्रताको छोड़, वाणीकी सच्चरित्रताका अभ्यास करता है। भिक्षुओ, ये बातें (= धर्म) ऐसी हैं, जिनका वाणीसे त्याग किया जाता है, शरीरके द्वारा नहीं।

भिक्षुओ, जो ऐसी बातें हैं, जिन्हें न शरीर द्वारा त्यागा जा सकता है, न वाणी द्वारा, प्रज्ञाके द्वारा त्यागा जा सकता है, कौनसी हैं? भिक्षुओ, लोभका प्रहाण न शरीरसे हो सकता है, न वाणीसे, किन्तु प्रज्ञासे विचार कर (देखकर) ही प्रहाण किया जा सकता है। भिक्षुओ, द्वेष......मोह.....क्रोध . . . . . शत्रुता (= उपनाह) ...... विरोध (= मक्ख)......निर्दयता (पळास).....मात्सर्यका प्रहाण न शरीरसे हो सकता है, न वाणीसे, किन्तु प्रज्ञासे विचार कर (देखकर) ही प्रहाण किया जा सकता है।

भिक्षुओ, पापी ईर्ष्याको न शरीरसे त्यागा जा सकता है, न वाणी द्वारा, प्रज्ञाके द्वारा त्यागा जा सकता है। भिक्षुओ, पापी ईर्ष्या किसे कहते हैं? भिक्षुओ, गृहपति या गृहपतिपुत्र धनसे, धान्यसे, चाँदीसे, सोनेसे ऐश्वर्यशाली होता है। उस समय किसी दास अथवा किसी आश्रितके मनमें यह होता है—'इस गृहपति या गृहपति-पुत्रका जो धन, धान्य, चाँदी, सोने सम्बन्धी ऐश्वर्य है, वह नष्ट हो जाय।' अथवा कोई श्रमण या ब्राह्मण ऐसा हो, जिसे चीवर, भिक्षा (= भोजन) शयनासन ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य परिष्कार प्राप्त होते हों। उस समय किसी एक श्रमण या ब्राह्मणके मनमें यह हो—'इस श्रमण या ब्राह्मणकी जो चीवर, भिक्षा (= भोजन) शयनासन, ग्लान-प्रत्यय भैषज्य परिष्कार प्राप्त होते हैं, वे प्राप्त न हों।' भिक्षुओ, यह कहलाती है पापी ईर्ष्या।

भिक्षुओ, पापी इच्छाको न शरीरसे त्यागा जा सकता है, न वाणी द्वारा प्रज्ञाके द्वारा त्यागा जा सकता है। भिक्षुओ, पापी इच्छाके किसे कहते हैं? भिक्षुओ, कोई अश्रद्धावान यह इच्छा कर सकता है कि लोग मुझे 'श्रद्धावान" समझें, कोई दुराचारी यह इच्छा कर सकता है कि लोग मुझे 'सदाचारी' जानें,

कोई अल्पश्रुत यह इच्छा कर सकता है कि लोग मुझे 'बहुश्रुत' जानें, कोई मण्डली-प्रेमी यह इच्छा कर सकता है कि लोग मुझे 'एकान्त-सेवी' जानें, कोई आलसी यह इच्छा कर सकता है कि लोग मुझे 'प्रयत्न-शील' जानें, कोई 'मूढ़-स्मृति' यह इच्छा कर सकता है कि लोग मुझे 'उपस्थित-स्मृति', जानें, कोई एकाग्रता-रहित चित्त वाला यह इच्छा कर सकता है कि लोग मुझे एकाग्रता-युक्त जानें, कोई मूर्ख यह इच्छा कर सकता है कि लोग मुझे 'बुद्धिमान' जानें, कोई ऐसा व्यक्ति जिसके आश्रव क्षीण नहीं हों, यह इच्छा कर सकता है कि लोग मुझे 'क्षीणाश्रव' जानें। भिक्षुओ, यह 'पापी इच्छा' कहलाती है। भिक्षुओ, ये बातें (= धर्म) हैं, जिन्हें न शरीरसे त्यागा जा सकता है, न वाणी द्वारा त्यागा जा सकता है, प्रज्ञाके द्वारा जानकर (= देखकर) त्यागा जा सकता है।

भिक्षुओ, यदि किसी भिक्षुको लोभ अभिभूत करके रहता है, द्वेष . . . मोह . . . . . क्रोध . . . . . शत्रुता . . . . विरोध . . . निर्दयता . . . . . मात्सर्य . . . . . पापी ईर्ष्या . . . . पापी इच्छा अभिभूत करके रहती है। उसके बारेमें यह जानना चाहिए—यह आयुष्मान वैसे नहीं जानता है, जैसे जाननेसे लोभ नहीं होता है, इसीसे इस आयुष्मानको लोभ अभिभूत करके रहता है। यह आयुष्मान वैसे नहीं जानता जैसे जाननेसे द्वेष नहीं होता . . . मोह-क्रोध-शत्रुता . . . . विरोध . . . निर्दयता . . . . . मात्सर्य . . . . पापी ईर्ष्या . . . . पापी इच्छा नहीं होती है, इसीसे इस आयुष्मानको पापी इच्छा अभिभूत करके रहती है।

भिक्षुओ, यदि किसी भिक्षुको लोभ अभिभूत करके नहीं रहता है, द्वेष . . . मोह . . . क्रोध . . . शत्रुता . . . विरोध . . . निर्दयता . . . मात्सर्य . . . . पापी ईर्ष्या . . . . पापी इच्छा अभिभूत करके नहीं रहती है। उसके बारेमें यह जानना चाहिए—यह आयुष्मान वैसे जानता है, जैसे जाननेसे लोभ नहीं होता है, इसीसे आयुष्मानको लोभ अभिभूत करके नहीं रहता है। यह आयुष्मान वैसे जानता है जैसे जाननेसे द्वेष नहीं होता . . . मोह . . . . क्रोध . . . . शत्रुता . . . . विरोध . . . निर्दयता . . . . . मात्सर्य . . . . . पापी ईर्ष्या . . . . . पापी इच्छा नहीं होती है, इसीसे इस आयुष्मानको पापी इच्छा अभिभूत करके नहीं रहती है।

४ महाचुन्दसुत्त

एक समय आयुष्मान महाचुन्द चेतिय (जनपद) के सहजाति (नगर) में विहार करते थे। आयुष्मान महाचुन्दने वहाँ भिक्षुओंको निमंत्रित किया—

"आयुष्मान भिक्षुओ।" उन भिक्षुओंने भी आयुष्मान चुन्दको प्रतिवचन दिया—"आयुष्मान।" आयुष्मान महाचुन्दने यह कहा—

आयुष्मानो! एक भिक्षु अपने ज्ञानी होनेकी बात कहता हुआ कह सकता है कि 'मैं इस धर्मको जानता हूँ। मैं इस धर्मको देखता हूँ।' आयुष्मानो, यदि उस भिक्षुको लोभ अभिभूत करके रहता है, द्वेष ..... मोह ...... क्रोध .... शत्रुता ...... विरोध ..... निर्दयता ...... मात्सर्य .... पापी ईर्ष्या ...... पापी इच्छा अभिभूत करके ठहरती है। उसके बारेमें यह जानना चाहिए—यह आयुष्मान वैसे नहीं जानता है, जैसे जाननेसे लोभ नहीं होता है, इसीसे इस आयुष्मानको लोभ अभिभूत करके रहता है। यह आयुष्मान् वैसे नहीं जानता जैसे जाननेसे द्वेष नहीं होता है ..... मोह ...... क्रोध ...... शत्रुता ..... विरोध ...... निर्दयता ...... मात्सर्य .... पापी ईर्ष्या .... पापी इच्छा नहीं होती है, इसीसे इस आयुष्मानको पापी इच्छा अभिभूत करके रहती है।

आयुष्मानो, एक भिक्षु अपने अभ्यासी होनेकी बात कहता हुआ कह सकता है कि 'मैंने शरीरको अभ्यस्त किया है, शीलका अभ्यास किया है, चित्तका अभ्यास किया है तथा प्रज्ञाका अभ्यास किया है।'

आयुष्मानो, यदि उस भिक्षुको लोभ अभिभूत करके रहता है, द्वेष .... मोह ...... क्रोध ...... शत्रुता .... विरोध .... निर्दयता .... मात्सर्य ...... पापी ईर्ष्या ...... पापी इच्छा अभिभूत करके रहती है। उसके बारेमें यह जानना चाहिए—यह आयुष्मान वैसे नहीं जानता है, जैसे जाननेसे लोभ नहीं होता है, इसीसे इस आयुष्मानको लोभ अभिभूत करके रहता है। यह आयुष्मान वैसे नहीं जानता जैसे जाननेसे द्वेष नहीं होता है ...... मोह ..... क्रोध .... शत्रुता ..... विरोध .... निर्दयता ...... मात्सर्य ...... पापी ईर्ष्या .. .. पापी इच्छा नहीं होती है, इसीसे इस आयुष्मान्को पापी इच्छा अभिभूत करके रहती है।

आयुष्मानो, एक भिक्षु अपने ज्ञानी होनेकी बात तथा अपने अभ्यासी होनेकी बात कहता हुआ यह कह सकता है कि 'मैं इस धर्मको जानता हूँ, मैं इस धर्मको देखता हूँ, मैंने शरीरको अभ्यस्त किया है, शीलका अभ्यास किया है, चित्तका अभ्यास किया है तथा प्रज्ञाका अभ्यास किया है।' आयुष्मानो, यदि उस भिक्षुको लोभ अभिभूत करके रहता है, द्वेष ...... मोह ...... क्रोध ...... शत्रुता ..... विरोध .... निर्दयता ..... मात्सर्य ...... पापी ईर्ष्या ..... पापी इच्छा अभिभूत करके

रहती है। उसके बारेमें यह जानना चाहिए—यह आयुष्मान वैसे नहीं जानता है, जैसे जाननेसे लोभ नहीं होता है, इसीसे इस आयुष्मानको लोभ अभिभूत करके रहता है। यह आयुष्मान वैसे नहीं जानता जैसे जाननेसे द्वेष नहीं होता है. . . . . मोह . . . . क्रोध . . . . शत्रुता . . . . . . विरोध . . . . . . निर्दयता . . . . . मात्सर्य . . . . पापी ईर्ष्या . . . . . . पापी इच्छा अभिभूत करके रहती है।

आयुष्मानो, जैसे कोई आदमी दरिद्र रहता हुआ, अपने धनी होनेकी बात कहे, निर्धन रहते हुए धनी होनेकी बात कहे, भोगके साधनोंके न रहते हुए भोगके साधनोंके रहनेकी बात कहे। लेकिन धन खर्च करनेका कोई काम आ पड़नेपर वह धन, धान्य, चाँदी, सोना, कुछ नहीं उपस्थित कर सकता। उसके बारेमें यही जानना चाहिए—यह आयुष्मान दरिद्र रहता हुआ, अपने धनी होनेकी बात कहता है, निर्धन रहते हु अपने धनी होनेकी बात कहता है, भोगके साधनोंके न रहते हुए भोगके साधनोंके होनेकी बात कहता है। ऐसा किसलिए? यह आयुष्मान धन खर्च करनेका कोई काम आ पड़नेपर, यह धन, धान्य, चाँदी, सोना कुछ नहीं उपस्थित कर सकता।

इसी प्रकार आयुष्मानो, एक भिक्षु अपने ज्ञानी होनेकी बात तथा अपने अभ्यासी होनेकी बात कहता हुआ, यह कह सकता है कि 'मैं इस धर्मको जानता हूँ। मैं इस धर्मको देखता हूँ, मैंने शरीरको अभ्यस्त किया है, शीलका अभ्यास किया है, चित्तका अभ्यास किया है तथा प्रज्ञाका अभ्यास किया है। आयुष्मानो! यदि उस भिक्षुको लोभ अभिभूत करके रहता है, द्वेष . . . . मोह . . . . . . क्रोध . . . . . शत्रुता . . . . . . विरोध . . . . निर्दयता . . . . मात्सर्य . . . . . पापी ईर्ष्या . . . . पापी इच्छा अभिभूत करके रहती है। उसके बारेमें यह जानना चाहिए—यह आयुष्मान वैसे नहीं जानता है, जैसे जाननेसे लोभ नहीं होता है, इसीसे इस आयुष्मानको लोभ अभिभूत करके रहता है। यह आयुष्मान वैसे नहीं जानता जैसे जाननेसे द्वेष नहीं होता है . . . . . . मोह . . . . . . क्रोध . . . . . . शत्रुता . . . . . विरोध . . . . निर्दयता . . . . . . मात्सर्य . . . . पापी ईर्ष्या . . . . पापी इच्छा अभिभूत करके रहती है।

आयुष्मानो! एक भिक्षु अपने ज्ञानी होनेकी बात कहता हुआ कह सकता है कि 'मैं 'इस धर्मको जानता हूँ। मैं इस धर्मको देखता हूँ।' आयुष्मानो! यदि उस भिक्षुको लोभ अभिभूत करके नहीं रहता है, द्वेष . . . . . . मोह . . . . . क्रोध . . . . शत्रुता . . . . . . विरोध . . . . . . निर्दयता . . . . . . मात्सर्य . . . . . . पापी ईर्ष्या . . . . पापी इच्छा अभिभूत करके नहीं ठहरती है। उसके बारेमें यह जानना

चाहिए—यह आयुष्मान वैसे जानता है, जैसे जाननेसे लोभ नहीं होता, इसीसे इस आयुष्मानको लोभ अभिभूत करके नहीं रहता है। यह आयुष्मान वैसे जानता है जैसे जाननेसे द्वेष नहीं होता है.......मोह.......क्रोध.......शत्रुता...... विरोध........निर्दयता.........मात्सर्य.......पापी ईर्ष्या......पापी इच्छा नहीं होती है, इसीसे इस आयुष्मानको पापी इच्छा अभिभूत करके नहीं ठहरती है।

आयुष्मानो! एक भिक्षु अपने अभ्यासी होनेकी बात कहता हुआ कह सकता है कि मैंने शरीरको अभ्यस्त किया है, शीलका अभ्यास किया है, चित्तका अभ्यास किया है तथा प्रज्ञाका अभ्यास किया है।' आयुष्मानो! यदि उस भिक्षुको लोभ अभिभूत करके नहीं रहता है, द्वेष.....मोह.....क्रोध.......शत्रुता...... विरोध.....निर्दयता......मात्सर्य......पापी ईर्ष्या......पापी इच्छा अभिभूत करके नहीं रहती है। उसके बारेमें यह जानना चाहिए—यह आयुष्मान वैसे जानता है जैसे जाननेसे लोभ नहीं होता है, इसीसे इस आयुष्मानको लोभ अभिभूत करके नहीं रहता है। यह आयुष्मान वैसे जानता है जैसे जाननेसे द्वेष नहीं होता है... मोह......क्रोध...... शत्रुता......विरोध.....निर्दयता...... मात्सर्य ....पापी ईर्ष्या......पापी इच्छा नहीं होती है, इसीसे इस आयुष्मानको पापी इच्छा अभिभूत करके नहीं रहती है।

आयुष्मानो! एक भिक्षु अपने ज्ञानी होनेकी बात तथा अपने अभ्यासी होनेकी बात कहता हुआ यह कह सकता है "कि मैं इस धर्मको जानता हूँ, मैं इस धर्मको देखता हूँ, मैंने शरीरको अभ्यस्त किया है, शीलका अभ्यास किया है, चित्तका अभ्यास किया है तथा प्रज्ञाका अभ्यास किया है।' आयुष्मानो! यदि उस भिक्षुको लोभ अभिभूत करके नहीं रहता है, द्वेष.......मोह...... क्रोध......शत्रुता ...... विरोध...... निर्दयता...... मात्सर्य......पापी ईर्ष्या......पापी इच्छा अभिभूत करके नहीं रहती है। उसके बारेमें यह जानना चाहिए—यह आयुष्मान वैसे जानता है, जैसे जाननेसे लोभ नहीं होता है, इसीसे इस आयुष्मानको लोभ अभिभूत करके नहीं रहता है। यह आयुष्माम वैसे जानता है जैसे जाननेसे द्वेष नहीं होता है.......मोह......क्रोध.....शत्रुता..... विरोध...... निर्दयता......मात्सर्य.......पापी ईर्ष्या......पापी इच्छा अभिभूत करके नहीं रहती है.........

आयुष्मानो! जैसे कोई आदमी धनी रहता हुआ अपने धनी होनेकी बात कहे, सम्पत्तिशाली होते हुए अपने सम्पत्तिशाली होनेकी बात कहे तथा भोगके

साधनोंके रहते हुए भोगके साधनोंके रहनेकी बात कहे। वह धन खर्च करनेका कोई काम आ पड़नेपर धन, धान्य, चाँदी, सोना सब कुछ उपस्थित कर सके। उसके बारेमें यही जानना चाहिए—यह आयुष्मान धनी रहता हुआ, अपने धनी होनेकी बात कहता है, सम्पत्तिशाली होता हुआ अपने सम्पत्तिशाली होनेकी बात कहता है, भोगके साधनोंके रहते हुए भोगके साधनोंके रहनेकी बात कहता है। ऐसा किसलिए? यह आयुष्मान धन खर्च करनेका कोई काम आ पड़नेपर धन, धान्य, चाँदी, सोना सब कुछ उपस्थित कर सकता है।

इसी प्रकार आयुष्मानो, एक भिक्षु अपने ज्ञानी होनेकी बात तथा अपने अभ्यासी होनेकी बात कहता हुआ यह कह सकता है कि 'मैं इस धर्मको जानता हूँ, मैं इस धर्मको देखता हूँ, मैंने शरीरको अभ्यस्त किया है, शीलका अभ्यास किया है, चित्तका अभ्यास किया है तथा प्रज्ञाका अभ्यास किया है।' आयुष्मानो! यदि उस भिक्षुको लोभ अभिभूत करके नहीं रहता है, द्वेष...... मोह...... क्रोध...... शत्रुता...... विरोध...... निर्दयता...... मात्सर्य...... पापी ईर्ष्या ...... पापी इच्छा अभिभूत करके नहीं रहती है। उसके बारेमें यह जानना चाहिए—यह आयुष्मान वैसे जानता है, जैसे जाननेसे लोभ नहीं होता है, इससे इस आयुष्मानको लोभ अभिभूत करके नहीं रहता है। यह आयुष्मान वैसे जानता है जैसे जाननेसे द्वेष नहीं होता है.....मोह.....क्रोध.....शत्रुता.....विरोध.... निर्दयता ....मात्सर्य........पापी ईर्ष्या........पापी इच्छा अभिभूत करके नहीं रहती है।

५. कसिणसुत्त

भिक्षुओ, ये दस कसिणायतन[1] हैं। कौनसे दस? कोई एक जन ऊपर (की ओर), नीचे (की ओर), तिर्यक (दिशा) में, अद्वय, अनन्त पृथ्वी-कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर)........अप (=जल) कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर) .... तेज (=अग्नि) कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपरकी ओर)......वायु-कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर) ....नील (वर्ण) कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर)......पीत (वर्ण) कसिणको सम्यक प्रकारसे

१. ध्यान-विधियाँ।

जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर) .....लोहित (=रक्त) वर्ण कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर) ....ओदात (=श्वेत)-वर्ण कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर)......आकाश-कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर), नीचे (की ओर), तिर्यक दिशामें, अद्वय, अनन्त विज्ञान-स्कन्धको सम्यक प्रकारसे जानता है। भिक्षुओ, ये दस कसिणायतन हैं।

६. काळीसुत्त

एक समय आयुष्मान महाकात्यायन अवन्ती जनपदके पर्वत-स्थित कुलघर (नगर) में विहार कर रहे थे। तब कुलघरमें रहनेवाली काळी उपासिका जहाँ आयुष्मान महाकात्यायन थे, वहाँ गई। पास जाकर आयुष्मान महाकात्यायनको अभिवादन कर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी, कुलघरकी काळी उपासिकाने आयुष्मान महाकात्यायनको यह कहा—

भन्ते! कुमारि-प्रश्नोंमें भगवानके द्वारा यह कहा गया है—

अत्थस्स पत्ति हदयस्स संन्ति,
जेत्वान सेनं पियसातरूपं।
एकोहं झायं सुखमनुबोधिं
तस्मा जनेन न करोमि सखिं
सखी न सम्पज्जति केनचि मे'ति॥

(प्रिय-आस्वाद रूपी सेनाको जीतकर, परमार्थ तथा हृदयकी शान्तिको प्राप्त कर, मैं सुख-स्वरूप बोधिका अनुभव करता हुआ अकेला ही ध्यान करता हूँ। इसलिए मैं लोगोंकी संगति नहीं करता हूँ। मेरी किसीसे भी दोस्ती नहीं है।)

"भन्ते! भगवान द्वारा संक्षेपमें दिए गए इस बुद्ध-वचनका विस्तृत अर्थ क्या है?"

"बहन! किन्हीं-किन्हीं श्रमण-ब्राह्मणोंने पृथ्वी-कसिण ध्यानको ही परम अर्थ मानकर उसे प्राप्त किया है। बहन! भगवानने जहाँ तक पृथ्वी-कसिण ध्यानकी सीमा है, वहाँ तक उसे जान लिया। उसे जानकर भगवानने उसके आस्वादको जाना, उसके दुष्परिणामको जाना, उस बन्धनसे मुक्त होनेको जाना तथा मार्गामार्ग ज्ञान-दर्शनको जाना। यह जो (परम) अर्थकी प्राप्ति तथा हृदयकी शान्ति कहा गया है यह उसके आस्वादके जानने, उसके दुष्परिणामके जानने, उस बन्धनसे मुक्त होनेको जानने तथा मार्गामार्ग ज्ञान-दर्शनको जाननेके ही कारण कहा गया है।

"बहन, किन्हीं किन्हीं श्रमण-ब्राह्मणोंने अप (=जल) कसिण ध्यानको ही.......तेज (=अग्नि) कसिण ध्यानको ही......वायु (=हवा) कसिण ध्यानको ही.......नील (—वर्ण) कसिण-ध्यानको ही......पीत (—वर्ण) कसिण ध्यानको ही.......लोहित (—वर्ण) कसिण ध्यानको ही......श्वेत (—वर्ण) कसिण ध्यानको ही......आकाश-कसिण ध्यानको ही......विज्ञान-कसिण ध्यानको ही परम अर्थ मान कर उसे प्राप्त किया है।

बहन! भगवानने जहाँ तक विज्ञान-कसिण ध्यानकी सीमा है, वहाँ तक उसे जान लिया। उसे जानकर भगवान्‌ने उसके आस्वादको जाना, उसके दुष्परिणामको जाना, उस बन्धनसे मुक्त होनेको जाना तथा मार्गामार्ग ज्ञान-दर्शनको जाना। यह जो (परम) अर्थकी प्राप्ति तथा हृदयकी शान्ति कहा गया है। यह उसके आस्वादके जानने, उसके दुष्परिणामके जानने, उस बन्धनसे मुक्त होनेको जानने तथा मार्गामार्ग ज्ञान-दर्शनको जाननेके ही कारण कहा गया है।

भगिनि! यह जो कुमारि-प्रश्नोंमें भगवानके द्वारा संक्षेपमें कहा गया कि—

अत्थस्स पत्ति हदयस्स सन्ति
जेत्वान सेनं पियसातरूपं।
एकोहं झायं सुखमनुबोधिं,
तस्मा जनेन न करोमि सखिं।
सखी न सम्पज्जति केनचि मे'ति॥

उसका विस्तारसे यही (उपर्युक्त) अर्थ है।

७. पठममहापञ्हासुत्त

एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। तब बहुतसे भिक्षु पूर्वान्ह-समय चीवर पहन पात्र चीवर ले श्रावस्तीमें भिक्षाटनके लिए प्रविष्ट हुए। तब उन भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'श्रावस्तीमें भिक्षाटन करनेके उपयुक्त समयमें अभी कुछ देर है, तब तक हम दूसरे सम्प्रदायवाले परिब्राजकोंके आश्रममें चल कर बैठें।'

तब वे भिक्षु जहाँ दूसरे सम्प्रदायवालों परिब्राजकोंका आश्रम था, वहाँ प्रविष्ट हुए। वहाँ जाकर दूसरे सम्प्रदायवाले परिब्राजकोंके साथ कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेपर वे एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओंको उन दूसरे सम्प्रदायवाले परिब्राजकोंने यह कहा—

"आयुष्मानो! श्रमण गौतम अपने श्रावकोंको यह उपदेश देता है, 'भिक्षुओ, आओ, सभी धर्मोंको जानो, सभी धर्मोंको जानकर विचरो'। आयुष्मानो! हम भी अपने श्रावकोंको यही उपदेश देते हैं, 'आयुष्मानो! आओ, सभी धर्मोंको जानो, सभी धर्मोंको जानकर विचरो।' आयुष्मानो! श्रमण गौतमकी देशनामें और हमारी देशनामें कौन-सी विशेषता है, किसका क्या अभिप्राय है, दोनोंमें क्या अन्तर है, धर्म-देशनाको लेकर या धर्मानुशासनाको लेकर?'

उन भिक्षुओंने उन दूसरे सम्प्रदायवाले परिव्राजकोंके कथनका न समर्थन किया, न खण्डन किया। बिना समर्थन किए, बिना खण्डन किए वे आसनसे उठकर चल दिए—'भगवानके पास जाकर इस कथनका रहस्य समझेंगे।'

वे भिक्षु श्रावस्तीमें भिक्षाटन कर, भिक्षा ग्रहण कर चुकनेके अनन्तर, भिक्षाटनसे लौट जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए भिक्षुओंने भगवानको यह कहा—

"भन्ते! हम पूर्वाह्ण समय चीवर पहन, पात्र चीवर ले, श्रावस्तीमें भिक्षाटनके लिए प्रविष्ट हुए। भन्ते! उस समय हमारे मनमें यह हुआ—'श्रावस्तीमें भिक्षाटन करनेके उपयुक्त समयमें अभी कुछ देर है, तब तक हम दूसरे सम्प्रदायवाले परिव्राजकोंके आश्रममें चल कर बैठें।' तब भन्ते! हम जहाँ दूसरे सम्प्रदायवाले परिव्राजकोंका आश्रम था, वहाँ प्रविष्ट हुए। वहाँ जाकर दूसरे सम्प्रदायवालोंके साथ कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेपर हम एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए हम भिक्षुओंको उन दूसरे सम्प्रदायवाले परिव्राजकोंने यह कहा—

"आयुष्मानो! श्रमण गौतम अपने श्रावकोंको यह उपदेश देता है, 'भिक्षुओ, आओ सभी धर्मोंको जानो, सभी धर्मोंको जानकर विचरो।' आयुष्मानो! हम भी अपने श्रावकोंको यही उपदेश देते हैं, 'आयुष्मानो! आओ, सभी धर्मोंको जानो, सभी धर्मोंको जानकर विचरो।' आयुष्मानो! श्रमण गौतमकी देशनामें और हमारी देशनामें कौन-सी विशेषता है, किसका क्या अभिप्राय है, दोनोंमें क्या अन्तर है धर्म-देशनाको लेकर या धर्मानुशासनाको लेकर?"

भन्ते! हमने उन दूसरे सम्प्रदायवाले परिव्राजकोंके कथनका न समर्थन किया, न खण्डन किया। बिना समर्थन किए, बिना खण्डन किए हम आसनसे उठकर चले आए—'भगवानके पास जाकर इस कथनका रहस्य समझेंगे।'

भिक्षुओ, ऐसे कहनेवाले दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकोंको तुम्हें उत्तर देना चाहिए—आयुष्मानो! एक प्रश्न है, एक कथन (=उद्देश्य) है, एक व्याख्या

(=वेय्याकरण) है; दो प्रश्न हैं, दो कथन हैं, दो व्याख्याएँ हैं; तीन प्रश्न हैं, तीन कथन हैं, तीन व्याख्याएँ हैं; चार प्रश्न हैं, चार कथन हैं, चार व्याख्याएँ हैं; पाँच प्रश्न हैं, पाँच कथन हैं, पाँच व्याख्याएँ हैं; छह प्रश्न हैं, छह कथन हैं, छह व्याख्याएँ हैं; सात प्रश्न हैं, सात कथन हैं, सात व्याख्याएँ हैं; आठ प्रश्न हैं, आठ कथन हैं, आठ व्याख्याएँ हैं; नौ प्रश्न हैं, नौ कथन हैं, नौ व्याख्याएँ हैं तथा दस प्रश्न हैं, दस कथन हैं, दस व्याख्याएँ हैं।' भिक्षुओ, इस प्रकार कहे जानेपर दूसरे सम्प्रदायोंके परिव्राजक कुछ भी न कह सकेंगे, वे मुँहकी खाएँगे। ऐसा किसलिए? भिक्षुओ, क्योंकि यह उनका 'अविषय' है। भिक्षुओ, इस सदेव, समार, सब्रह्म, सश्रमण-ब्राह्मण जनतामें मैं किसीको नहीं देखता (सिवाय तथागतके, तथागत श्रावकके या किसी ऐसेके जिसने यहीं से सुना हो) जो इन प्रश्नोंकी व्याख्या कर चित्तको प्रसन्न कर सके।

'एक प्रश्न, एक कथन, एक व्याख्या', जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ, एक विषय (=धर्म) में सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। किस एक विषय (=धर्म) में? 'सभी प्राणियोंकी स्थिति आहार पर निर्भर करती हैं, इस एक विषय (=धर्म) में सम्पूर्ण निर्वेद-प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'एक प्रश्न, एक कथन, एक व्याख्या' जो कहा गया, वह इसी अर्थमें कहा गया।

'दो प्रश्न, दो कथन, दो व्याख्याएँ' जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ, दो विषयों (=धर्मों) में सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। किन दो विषयों (=धर्मों) में 'नाम' तथा 'रूप' —इन दो विषयों (=धर्मों) में सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। 'दो प्रश्न, दो कथन, दो व्याख्याएँ' जो कहा गया, वह इसी अर्थमें कहा गया।

'तीन प्रश्न, तीन कथन, तीन व्याख्याएँ' जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ, तीन विषयों (=धर्मों) में सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। किन तीन विषयों (=धर्मों) में? तीन वेदनाओंके विषयमें सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'तीन प्रश्न, तीन कथन, तीन व्याख्याएँ' जो कहा गया, वह इसी अर्थमें कहा गया।

'चार प्रश्न, चार कथन, चार व्याख्याएँ' जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ, चार विषयों (=धर्मों) में सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। किन चार विषयों (=धर्मों) में? चार आहारोंके विषयमें सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। 'चार प्रश्न, चार कथन, चार व्याख्याएँ' जो कहा गया,वह इसी अर्थमें कहा गया।

'पाँच प्रश्न, पाँच कथन, पाँच व्याख्याएँ' जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ, पाँच विषयों (=धर्मों) में सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थ को हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखको क्षय करने वाला होता है। किन पाँच विषयों (=धर्मों) में? पाँच स्कन्धोंके विषयमें सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमाथको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। 'पाँच प्रश्न, पाँच कथन, पाँच व्याख्याएँ' जो कहा गया, वह इसी अर्थमें कहा गया।

'छह प्रश्न, छह कथन, छह व्याख्याएँ' जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ, छह विषयों (=धर्मों) में निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। किन छह विषयों (=धर्मों) में? छह भीतरी आयतनों (=छह इन्द्रियों) के

विषयमें सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थ को हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'छह प्रश्न, छह कथन, छह व्याख्याएँ' जो कहा गया, वह इसी अर्थमें कहा गया।

'सात प्रश्न, सात कथन, सात व्याख्याएँ' जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ, सात विषयों (=धर्मों) में निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। किन सात विषयोंमें? भिक्षुओ' सात विज्ञान-स्थितियोंमें निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जानेपर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। 'सात प्रश्न, सात कथन, सात व्याख्याएँ', जो कहा गया, वह इसी अर्थमें कहा गया।

"आठ प्रश्न, आठ कथन, आठ व्याख्यायें! यह जो कहा गया, यह अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ, आठ विषयों (=धर्मों) में निर्वेद प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण वैराग्य होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। किन आठ विषयोंमें? भिक्षुओ, आठ लोक-धर्मोंमें निर्वेद -प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण वैराग्य होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'आठ प्रश्न आठ कथन, आठ व्याख्यायें', यह जो कहा गया, यह इसी अर्थमें कहा गया।

"नौ प्रश्न, नौ कथन, नौ व्याख्यायें' यह जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ, नौ विषयों (=धर्मों) में निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। किन नौ विषयोंमें भिक्षुओ, नौ सत्वावासों (=प्राणियोंके लोकों) में निर्वेद प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण वैराग्य होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'नौ प्रश्न, नौ कथन, नौ व्याख्यायें' जो कहा गया, यह इसी अर्थमें कहा गया।

"दस प्रश्न, दस कथन, दस व्याख्यायें" यह जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ, दस विषयों (=धर्मों) में निर्वेद प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण वैराग्य होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। किन दस विषयोंमें? भिक्षुओ, दस अकुशल-कर्मोंमें निर्वेद प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण वैराग्य होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'दस प्रश्न, दस कथन, दस व्याख्यायें' जो कहा गया, वह इसी अर्थमें कहा गया।

८. दुतिय महापञ्हासुत्त

एक समय भगवान कजंगलके वेळुवनमें विहार करते थे। तब कजंगलके बहुतसे उपासक जहाँ कजंगलिका भिक्षुणी थी, वहाँ गये। पास जाकर कजंगलिका भिक्षुणीको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे कजंगलके उपासकोंने कजंगलिका भिक्षुणीको यह कहा—

"आर्ये! भगवानने महाप्रश्नोंमें यह कहा है—'एक प्रश्न, एक कथन, एक व्याख्या; दो प्रश्न, दो कथन, दो व्याख्यायें; तीन प्रश्न, तीन कथन, तीन व्याख्यायें; चार प्रश्न, चार कथन, चार व्याख्यायें; पाँच प्रश्न, पाँच कथन, पाँच व्याख्यायें; छह प्रश्न, छह कथन, छह व्याख्यायें; सात प्रश्न, सात कथन, सात व्याख्यायें; आठ प्रश्न, आठ कथन, आठ व्याख्यायें; नौ प्रश्न, नौ कथन, नौ व्याख्यायें; दस प्रश्न, दस कथन, दस व्याख्यायें।' आर्ये, भगवान के द्वारा जो यह संक्षेपमें कहा गया, इसका विस्तृत अर्थ क्या है?"

"आयुष्मानो! न तो मैंने यह व्याख्या भगवानसे सुनी या भगवानसे ग्रहण की है, न मैंने यह व्याख्या संयत भिक्षुओंसे सुनी या ग्रहण की है, लेकिन जैसे मैं समझती हूँ, वैसे कहती हूँ। अच्छी प्रकार सुनो। मनमें धारण करो। कहती हूँ।"

"आर्ये! अच्छा" कह कजंगलके उपासकोंने कजंगलिका भिक्षुणीको प्रतिवचन दिया। कजंगलिका भिक्षुणीने यह कहा—

'एक प्रश्न, एक कथन, एक व्याख्या' जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? आयुष्मानो, एक विषय (=धर्म) में सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होनेपर, सम्पूर्ण वैराग्य होनेपर सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक-प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुःखका क्षय करने वाला होता है। किस एक विषय (=धर्म) में? 'सभी प्राणियोंकी स्थिति आहारपर निर्भर करतीहै'—

इस एक विषय (= धर्म) में सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होने पर,सम्पूर्ण वैराग्य प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पुर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर, इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'एक प्रश्न, एक कथन, एक व्याख्या' जो कहा गया, यह भगवान द्वारा इसी अर्थ में कहा गया।

'दो प्रश्न, दो कथन, दो व्याख्यायें' जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? आयुष्मानो! दो विषयों (= धर्मों) में सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण वैराग्य होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है,। किन दो विषयों (= धर्मों) में? 'नाम' तथा 'रूप' इन दो विषयों (= धर्मों) में सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण वैराग्य होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'दो प्रश्न, दो कथन, दो व्याख्यायें' जो कहा गया, यह भगवान द्वारा इसी अर्थमें कहा गया।. . . .

किन तीन विषयों (= धर्मों) में? आयष्मानो! तीन वेदनाओंके विषयमें सम्पूर्ण निर्वेद प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण वैराग्य होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'तीन प्रश्न, तीन कथन, तीन व्याख्यायें' यह जो कहा गया, यह भगवान द्वारा इसी अर्थमें कहा गया।

'चार प्रश्न, चार कथन, चार व्याख्यायें' जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? आयुष्मानो, चार विषयों (= धर्मों) में सम्पूर्ण अभ्यास होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। किन चार विषयों (= धर्मों) में? आयुष्मानो! चार स्मृति-उपस्थानोंके विषयमें सम्पूर्ण अभ्यास होनेपर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर, इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'चार प्रश्न, चार कथन, चार व्याख्यायें' जो कहा गया, यह भगवान द्वारा इसी अर्थमें कहा गया।

'पाँच प्रश्न, पाँच कथन, पाँच व्याख्यायें' जो कहा गया, वह किस अर्थमें कहा गया? आयुष्मानो, पाँच विषयों (= धर्मों) में सम्पूर्ण अभ्यास होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक् प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। किन पाँच विषयों (= धर्मों) में? पाँच इन्द्रियोंमें

. . . . . किन छह विषयों (= धर्मों) में? छह मुक्त करनेवाली धातुओंके विषयमें . . . . किन सात विषयों (= धर्मों) में? सात बोधि-अंगों के विषयमें. . . किन आठ विषयों (= धर्मों) में? आर्य-मार्गके आठ अंगोंके विषयमें सम्पूर्ण अभ्यास होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करनेवाला होता है। 'आठ प्रश्न, आठ कथन, आठ व्याख्यायें' यह जो कहा गया, यह भगवान द्वारा इसी अर्थमें कहा गया।

"नौ प्रश्न, नौ कथन, नौ व्याख्यायें' यह जो कहा गया , यह किस अर्थमें कहा गया? भिक्षुओ,नौ विषयों (= धर्मों) में निर्वेद प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण वैराग्य होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमाथको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखको क्षय करने वाला होता है। किन नौ विषयों (= धर्मों)में? आयुष्मानो! नौ सत्वावासों (= प्राणियोंके लोकों) में निर्वेद प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण वैराग्य होने पर, सम्पूर्ण त्याग होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'नौ प्रश्न, नौ कथन, नौ व्याख्यायें'—यह जो कहा गया, यह भगवान द्वारा इसी अर्थमें कहा गया।

'दस प्रश्न, दस कथन, दस व्याख्यायें', यह जो कहा गया, यह किस अर्थमें कहा गया? आयुष्मानो! दस विषयों (= धर्मों) में सम्पूर्ण अभ्यास होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। किन दस विषयों (= धर्मों) में? आयुष्मान्! दस कुशल कर्मोंमें, इन दस विषयों(= धर्मों) में सम्पूर्ण अभ्यास होने पर, सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो जाने पर, सम्यक प्रकारसे परमार्थको हस्तगत कर इसी जन्ममें दुखका क्षय करने वाला होता है। 'दस प्रश्न, दस कथन, दस व्याख्यायें,' यह जो कहा गया, यह भगवान द्वारा इसी अर्थमें कहा गया।

"आयुष्मानो! जो कुछ भगवानने महाप्रश्नोंमें संक्षेपमें कहा है, कि 'एक प्रश्न है, एक कथन है, एक व्याख्या है'. . . . . दस प्रश्न हैं, दस कथन हैं, दस व्याख्यायें हैं', मैं उसका विस्तृत अर्थ इस प्रकार जानती हूँ। आयुष्मानो! यदि तुम चाहो तो तुम भगवानके पास जाकर उनसे भी इसकी व्याख्या पूछ सकते हो। जैसे भगवान व्याख्या करें, वैसे धारण करना। 'आर्ये! ऐसा ही' कह कजंगलके उपासकोंने कजंगलिका भिक्षुणीके कथनका अभिनन्दन किया, अनुमोदन किया और वे आसनसे उठकर कजंगलिका भिक्षुणीको प्रणाम कर, प्रदक्षिणा कर जहाँ भगवान थे,

वहाँ पहुँचे। वहाँ जाकर भगवानको प्रणाम कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे कजंगलके उपासकोंने कजंगलिका भिक्षुणीसे जितनी बातचीत हुई थी, सब भगवान की सेवामें निवेदन की।

"गृहपतियो! बहुत अच्छा! बहुत अच्छा। गृहपतियों! कजंगलिका भिक्षुणी पण्डित है। गृहपतियो! कजंगलिका भिक्षुणी महाप्रज्ञावान है। गृहपतियो! यदि तुम मेरे पास आकर भी यही बात पूछो, तो मैं भी इसकी उसी तरह व्याख्या करूँगा, जैसे कजंगलिका भिक्षुणी ने की है। यही उसका अर्थ है। इसे इसी प्रकार ग्रहण करो।

९. पठमकोसलसुत्त

भिक्षुओ, जितने भी काशी-कोशल के लोग हैं, जितने भी कोशल-नरेश द्वारा विजित -प्रदेश हैं, उसमें प्रसेनजित कोशल-नरेश ही श्रेष्ठ (=प्रधान) कहलाता है। भिक्षुओ, प्रसेनजित कोशल-नरेशमें भी परिवर्तन होता है, परिणाम होता ही है। भिक्षुओ, इस बातको देखता हुआ ज्ञानी-श्रावक कोशल-राज्यके प्रति भी निर्वेद को प्राप्त होता है। उसके प्रति निर्वेद प्राप्त होनेवाला, जो अग्र (=प्रधान) है, उसके प्रति भी वैरागी होता है, हीन (=गौण) की तो बात ही क्या?

भिक्षुओ, जितने क्षेत्रमें चन्द्रमा तथा सूर्य विचरते हैं, जिन-जिन दिशाओंमें दीप्त होकर भ्रमते हैं, लोक उससे हजार गुना है। उस सहस्रगुना लोकमें, हज़ार चन्द्रमा हैं, हजार सूर्य हैं, हजार सुमेरु पर्वत-राज हैं, हजार जम्बुद्वीप हैं, हजार अपर गोयान हैं, हजार उत्तर-कुरु हैं, हजार पूर्व-विदेह हैं, चार हजार महासमुद्र हैं, चार हजार महाराजगव है, हजार चातुर्महाराज (लोक) हैं,हजार त्रयोत्रिंश (लोक) है, हजार याम (लोक) हैं,हजार तुषित (लोक) हैं, हजार निर्मान रति (लोक) हैं, हजार परिनिर्मित वशवर्ती लोक हैं, तथा हजार ब्रह्मलोक हैं। भिक्षुओ, यह जितनी भी हजार-हजारवाली लोक-धातु है, उसमें महा-ब्रह्मा प्रधान (=अग्र) कहलाता है। भिक्षुओ, महाब्रह्मामें भी परिवर्तन होता ही है, परिणाम होता ही है। भिक्षुओ, इस बातको देखता हुआ ज्ञानी-श्रावक उस महाब्रह्माके प्रति भी निर्वेदको प्राप्त होता है। उसके प्रति वैरागी होने वाला, जो अग्र (=प्रधान) है, उसके प्रति भी वैरागी होता है, हीन (=गौण) की तो बात ही क्या?

भिक्षुओ, एक समय होता है, जब इस लोकका विकास होता है। भिक्षुओ, जब लोकका विकास होता है, तो प्राणी बहुत करके आभास्वर-प्रवृत्त होते हैं। वे

प्राणी मनोमय होते हैं, प्रीति-भोजी होते हैं। स्वयं-प्रभा होते हैं, अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले होते हैं, शुभ-स्थायी होते हैं, दीर्घ-काल तक रहते हैं। भिक्षुओ, विकसित होने वाले लोकमें आभास्वर-देवता प्रधान (= अग्र) कहलाते हैं। भिक्षुओ, आभस्वर-देवताओंमें भी परिवर्तन होता ही है, परिणाम होता ही है। भिक्षुओ, इस बातको देखता हुआ ज्ञानी श्रावक उसके प्रति भी निर्वेदको प्राप्त होता है। उसके प्रति वैराग्यको प्राप्त होने वाला जो अग्र है, उसके प्रति भी वैरागी होता है, हीन (= गौण) की तो बात ही क्या ?

भिक्षुओ, ये दस कसिणायतन हैं। कौनसे दस ? कोई एक जन ऊपर, (की ओर) नीचे (की ओर), तिर्यक (दिशा) में अद्वय, अनन्त पृथ्वी-कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर). . . . . अप (= जल) कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर) . . . . तेज (= अग्नि) कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर) . . . . वायु कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है. . . . कोई एक जन ऊपर (की ओर). . . . . नील (—वर्ण) कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर). . . . . . पीत (—वर्ण) कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है; कोई एक जन ऊपर (की ओर) . . . . . लोहित (= रक्त) वर्ण कसिणको सम्यक् प्रकारसे जानता है, कोई एक जन ऊपर (की ओर). . . . . ओदात (= श्वेत) वर्ण कसिणको सम्यक प्रकारसे जानता है, कोई एक जन ऊपर (की ओर), नीचे (की ओर), तिर्यक दिशामें, अद्वय, अनन्त विज्ञान-स्कन्धको सम्यक प्रकारसे जानता है। भिक्षुओ, ये दस कसिणायतन हैं।

भिक्षुओ, इन दस कसिणायतनोंमें यह जो कोई एक जन ऊपर (की ओर), नीचे (की ओर), तिर्यक् दिशामें, अद्वय, अनन्त विज्ञान स्कन्धको सम्यक प्रकारसे जानता है, यह प्रधान (= अग्र) है। भिक्षुओ, इस प्रकारकी संज्ञा रखने वाले प्राणी भी हैं। भिक्षुओ, इस प्रकारकी संज्ञा रखनेवाले प्राणियोंमें भी परिवर्तन होता ही है, परिणाम होता ही है। भिक्षुओ, इस बातको देखता हुआ ज्ञानी श्रावक उस प्राणीके प्रति भी निर्वेदको प्राप्त होता है। उसके प्रति वैरागी होनेवाला, जो अग्र है, उसके प्रति भी वैरागी होता है, हीन (= गौण) की तो बात ही क्या ?

भिक्षुओ, आठ अभिभू-आयतन हैं। कौनसे आठ ? स्वयं रूप संज्ञा वाला होकर, अपनेसे बाहर सीमित सुवर्ण-दुर्वर्ण देखता है। 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—यह उसकी संज्ञा होती है। यह प्रथम अभिभू-आयतन है।

स्वयं रूप-संज्ञी होकर, अपनेसे बाहर अनंत सुवर्ण-दुर्वर्ण रूपोंको देखता है। 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—यह उसकी संज्ञा होती है। यह दूसरा अभिभू-आयतन है।

स्वयं अरूप-संज्ञी होकर अपने से बाहर सीमित सुवर्ण-दुर्वर्ण देखता है। 'उन् को अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—यह उसकी संज्ञा होती हैं। यह तीसरा अभिभू-आयतन है।

स्वयं अरूप-संज्ञी होकर, अपनेसे बाहर अनंत सुवर्ण-दुर्वर्ण रूपोंको देखता है। 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—यह उसकी संज्ञा होती है। यह चौथा अभिभू-आयतन है।

स्वयं अरूप-संज्ञी होकर, अपनेसे बाहर नीले, नील वर्णके, नीली झलकके, नीली चमकके रूपोंको देखता है—जैसे नीला, नीले-वर्णका, नीली झलकका, नीली चमकका उमा-पुष्प; अथवा दोनों ओर चिकना किया गया, नीला, नीले वर्णका, नीली-झलक, नीली चमकका वाराणसीका वस्त्र।

स्वयं अरूप-संज्ञी होकर, अपनेसे बाहर नीले, नील-वर्णके, नीली झलकके, नीली चमकके रूपोंको देखता है। 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—यह उसकी संज्ञा होती है। यह पाँचवा अभिभू-आयतन है।

स्वयं अरूप-संज्ञी होकर, अपने से बाहर पीले, पीत-वर्णके, पीली झलकके, पीली चमकके रूपोंको देखता है—जैसे पीला पीले-वर्णका, पीली-झलकका, पीली चमकका कर्णिकार-पुष्प; अथवा दोनों ओर चिकना किया गया पीले, पीले वर्णका, पीली झलकका, पीली चमकका वाराणसीका वस्त्र। स्वयं अरूप संज्ञी होकर, अपनेसे बाहर पीले, पील-वर्णके, पीली झलकके, पीली चमकके रूपोंको देखता है। 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—यह उसकी संज्ञा होती है। यह छठा अभिभू-आयतन है।

स्वयं अरूप-संज्ञी होकर, अपनेसे बाहर लाल, लाल-वर्णके, लाल झलकके, लाल चमक के रूपोंको देखता है—जैसे लाल, लाल-वर्णका, लाल-झलकका, लाल चमक का बन्धु-जीवक पुष्प; अथवा दोनों ओर चिकना किया गया लाल, लाल वर्णका, लाल झलकका, लाल चमकका वाराणसीका वस्त्र। स्वयं अरूप-संज्ञी होकर, अपनेसे बाहर लाल, लाल वर्णके, लाल झलकके, लाल-चमकके रूपोंको देखता है। 'उन को अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ—यह उसकी संज्ञा होती है। यह सातवाँ अभिभू-आयतन है।

स्वयं अरूप-संज्ञी होकर, अपनेसे बाहर श्वेत, श्वेत-वर्णके, श्वेत-झलकके श्वेत-चमकके रूपोंको देखता है—जैसे श्वेत, श्वेत-वर्णका, श्वेत-झलकका, श्वेत-चमकका औषधी तारा; अथवा दोनों ओर चिकना किया गया, श्वेत, श्वेत-वर्णका, श्वेत झलकका, श्वेत चमकका वाराणसीका वस्त्र। स्वयं अरूप-संज्ञी होकर अपनेसे बाहर श्वेत, श्वेत वर्णके, श्वेत झलकके, श्वेत-चमकके रूपोंको देखता है। 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—यह उसकी संज्ञा होती है। यह आठवाँ अभिभू-आयतन है। भिक्षुओ, ये आठ अभिभू-आयतन हैं।

भिक्षुओ, इन आठों अभिभू-आयतनोंमें यही प्रधान (= अग्र) अभिभू-आयतन है, यह जो स्वयं अरूप-संज्ञी होकर, अपनेसे बाहर श्वेत, श्वेत-वर्णके, श्वेत-झलकके, श्वेत चमकके रूपोंको देखता है।

'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—यह उसकी संज्ञा होती है। भिक्षुओ, ऐसी संज्ञावाले प्राणी भी हैं। भिक्षुओ, इस प्रकारकी संज्ञा रखनेवाले प्राणियोंमें भी परिवर्तन होता ही है, परिणाम होता ही है। भिक्षुओ, इस बातको देखता हुआ ज्ञानी श्रावक इस (प्राणी) के प्रति भी निर्वेद को प्राप्त होता है। उसके प्रति वैरागी होनेवाला, जो अग्र है, उसके प्रति भी वैरागी होता है; हीन (= गौण) की तो बात ही क्या ?

भिक्षुओ, ये चार प्रतिपदायें (= मार्ग) हैं। कौनसे चार? दुष्कर-मार्ग तथा विलम्बसे-ज्ञान-प्राप्ति, दुष्कर-मार्ग तथा क्षिप्र ज्ञान-प्राप्ति, सुकर मार्ग तथा विलम्बसे ज्ञान-प्राप्ति, सुकर मार्ग तथा क्षिप्र-ज्ञान-प्राप्ति—भिक्षुओ, ये चार मार्ग हैं।

भिक्षुओ, इन चारों प्रतिपदाओंमें यही प्रतिपदा श्रेष्ठ (= अग्र) है यह जो सुकर-मार्ग तथा क्षिप्र-ज्ञान-प्राप्ति। भिक्षुओ, इस मार्ग पर चलने वाले प्राणी भी हैं। भिक्षुओ, इस प्रकारके मार्गारूढ़ प्राणियोंमें भी परिवर्तन होता ही है, परिणाम होता ही है। भिक्षुओ, इस बातको देखता हुआ ज्ञानी श्रावक इस (प्राणी) के प्रति भी निर्वेदको प्राप्त होता है। उसके प्रति वैरागी होनेवाला, जो अग्र है, उसके प्रति भी वैरागी होता है, हीन (= गौण) की तो बात ही क्या ?

भिक्षुओ, ये चार संज्ञायें हैं। कौनसी चार ? एक सीमितको पहचानता है, है, एक विशाल (= महग्गत) को पहचानता है, एक असीमको पहचानता है, 'कुछ नहीं है' करके एक आकिंचन्न्यायतनको पहचानता है—भिक्षुओ, ये चार संज्ञायें हैं।

भिक्षुओ, इन चार संज्ञाओंमें यही संज्ञा श्रेष्ठ (= अग्र) है, यह 'जो कुछ नहीं है' करके आकिंचन्न्यायतन संज्ञा है। भिक्षुओ, इस संज्ञावाले भी प्राणी हैं। भिक्षुओ, इस प्रकारके संज्ञावाले प्राणियोंमें भी परिवर्तन होता ही है, परिणाम होता ही है। भिक्षुओ, इस बातको देखता हुआ ज्ञानी श्रावक इस (प्राणी) के प्रति भी निर्वेदको प्राप्त होता है। उसके प्रति वैरागी होने वाला, जो अग्र है, उसके प्रति भी वैरागी होता है, हीन (= गौण) की तो बात ही क्या ?

भिक्षुओ, जो बाह्य दृष्टि-प्राप्त हैं, उनमें ऐसी दृष्टि वाला श्रेष्ठ (= अग्र) है कि 'न होऊँ, न मेरा होवे, न होऊँगा, न मेरा होगा।' भिक्षुओ, जिसकी ऐसी दृष्टि हो, उसके बारेमें यह आकांक्षा करनी चाहिए कि 'भवके प्रति जो अप्रतिकूलता है, वह उसको न होगी; जो भव-निरोधके प्रति अप्रतिकूलता है, वह भी उसे न होगी। भिक्षुओ, इस दृष्टि वाले प्राणी भी हैं। भिक्षुओ, इस प्रकारके संज्ञा वाले प्राणियोंमें भी परिवर्तन होता है, परिणाम होता ही है। भिक्षुओ, इस बातको देखता हुआ ज्ञानी श्रावक इस (प्राणी) के प्रति भी निर्वेद को प्राप्त होता है। उसके प्रति बैरागी होनेवाला, जो अग्र, उसके प्रति भी वैरागी होता है, हीन (= गौण) की तो बात ही क्या ?

भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मण परमार्थ -विशुद्धिका प्रज्ञापन करते हैं। भिक्षुओ, जो परमार्थ-विशुद्धिका प्रज्ञापन करते हैं, उनमें वे ही श्रेष्ठ (= अग्र) है, जो सभी आकिंचन्न्यायतनोंका समतिक्रमण कर 'नेव-संज्ञा न संज्ञा' आयतनको प्राप्त कर विहार करते हैं। वे उसे जानकर, उसे साक्षात करनेके लिये धर्मोपदेश देते हैं। भिक्षुओ, ऐसे मतवाले प्राणी भी हैं। भिक्षुओ, इस प्रकारके मतवाले प्राणियोंमें भी परिवर्तन होता ही है, परिणाम होता ही है। भिक्षुओ, इस बातको देखता हुआ ज्ञानी श्रावक उस (प्राणी) के प्रति भी निर्वेदको प्राप्त होता है। उसके प्रति वैरागी होनेवाला, जो अग्र है, उसके प्रति भी वैरागी होता है, हीन (= गौण) की तो बात ही क्या ?

भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मण परंदृष्ट-धर्म-निर्वाणका प्रज्ञापन करते हैं। भिक्षुओ, जो भी परंदृष्ट-धर्म-निर्वाणका प्रज्ञापन करते हैं, उनमें वे ही श्रेष्ठ (= अग्र) हैं जो छह स्पर्श-आयतनोंके समुदय, अस्त, आस्वाद, दुष्परिणाम तथा मोक्षको यथार्थ रूपसे जानकर अपुनर्भव-विमोक्षको प्राप्त हैं। भिक्षुओ, मैं ऐसा मत व्यक्त करता हूँ, ऐसा कहता हूँ, तो भी कुछ श्रमण -ब्राह्मण मुझ पर झूठा-मिथ्या, व्यर्थका आरोप लगाते हैं कि 'श्रमण-गौतम कामनाओंके परिज्ञान (= यथार्थ ज्ञान) का प्रज्ञापन नहीं करता,

रूपोंके परिज्ञानका प्रज्ञापन नहीं करता, वेदनाओंके परिज्ञानका प्रज्ञापन नहीं करता।' भिक्षुओ, मैं कामनाओंके परिज्ञानका प्रज्ञापन करता हूँ, रूपोंके परिज्ञानका प्रज्ञापना करता हूँ, वेदनाओंके परिज्ञानका प्रज्ञापन करता हूँ तथा इसी शरीरमें तृष्णा-रहित, निर्वृत, शान्त, अपुनर्भव-निर्वाणका प्रज्ञापन करता हूँ।

१०. दुतियकोसलसुत्त

एक समय भगवान अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। उस समय कोशल-नरेश प्रसेनजित संग्राममें विजयी हो, अपना अभिप्राय पूरा कर उय्योधिकासे वापिस लौटा था। तब राजा प्रसेनजित जहाँ (जेतवन)—आराम था, वहाँ गया। वाहन जाने योग्य सीमा तक वाहनसे जाकर, फिर वाहनसे उतर पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ। उस समय बहुतसे भिक्षु खुले-आकाशके नीचे चंक्रमण कर रहे थे। तब कोशल-नरेश प्रसेनजित उन भिक्षुओंके पास गया। पास जाकर उसने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

"भन्ते! इस समय भगवान अर्हत सम्यक सम्बुद्ध कहाँ विहार कर रहे हैं? भन्ते! हम उन भगवान अर्हत सम्यक सम्बुद्धका दर्शन करना चाहते हैं।"

"महाराज! यह विहार है, जिसके द्वार बंद हैं। बिना शोर किये वहाँ जायें और धीरेसे बरामदेमें प्रवेश करके खाँसें और अर्गला खटखटायें। भगवान आपके लिये द्वार खोल देंगे।"

तब कोशल-नरेश प्रसेनजितने, जहाँ वह द्वार-बंद विहार था, वहाँ बिना शोर किये पहुँच, धीरेसे बरामदेमें प्रवेश कर, खाँसकर, अर्गलाको खटखटाया। भगवानने द्वार खोला। तब कोशल-नरेश प्रसेनजितने विहारमें प्रविष्ट हो, भगवानके चरणोंमें सिरसे नमस्कार-कर, भगवानके पाँवका मुँहसे चुम्बन लिया और हाथोंसे मलकर अपना नाम सुनाया—"भन्ते! मैं कोसल-नरेश प्रसेनजित हूँ। भन्ते! मैं कोशल-नरेश प्रसेनजित हूँ।"

"महाराज! क्या बात देखकर आप इस शरीरके प्रति इतना सेवा-भाव प्रदर्शित कर रहे हैं इतनी मैत्री व्यक्त कर रहे हैं?"

"भन्ते! मैं कृतज्ञताके कारण कृत-वेदी होनेके कारण भगवानके प्रति इतना सेवा-भाव प्रदर्शित करता हूँ, इतनी मैत्री व्यक्त करता हू। भन्ते! भगवान ही बहुत जनोंका हित करनेमें लगे हैं, बहुत जनोंको सुख पहुँचानेमें लगे हैं, बहुत जनोंको कल्याण-मार्गमें, कुशल-मार्गमें, आर्य-ज्ञानमें स्थापित करनेवाले हैं। भन्ते! क्योंकि आप बहुत जनोंका हित करनेमें लगे हैं, बहुत जनोंको सुख पहुँचानेमें लगे हैं,

बहुत जनोंको कल्याण-मार्गमें, कुशल-मार्गमें, आर्य-ज्ञानमें स्थापित करने वाले हैं, इस एक कारणसे भी मैं भगवानके प्रति इतना सेवा-भाव प्रदर्शित करता हूँ, इतनी मैत्री व्यक्त करता हूँ।

"फिर भन्ते ! भगवान शीलवान हैं, ज्येष्ठ शील हैं, आर्य-शील तथा कुशल-शीलसे युक्त हैं। भन्ते ! क्योंकि आप शीलवान ह, ज्येष्ठ-शील हैं, आर्य-शील तथा कुशल-शीलसे युक्त हैं, इस कारणसे भी मैं भगवानके प्रति इतना सेवा-भाव प्रदर्शित करता हूँ। इतनी मैत्री व्यक्त करता हूँ।

फिर भन्ते ! भगवान चिरकाल तक अरण्य-वासी रहे हैं, जंगलमें एकान्त-वास सेवन करते रहे हैं ! भन्ते ! क्योंकि आप चिरकाल तक अरण्य-वासी रहे हैं, जंगलमें एकांत-वास सेवन करते रहे हैं इस कारणसे भी मैं भगवानके प्रति इतना सेवा-भाव प्रदर्शित करता हूँ, इतनी मैत्री व्यक्त करता हूँ। "फिर भन्ते ! भगवान जैसे-तैसे चीवर, पिण्डपात-शयनासन-गिलान-प्रत्यय (=रोगी की आवश्यकतायें) भैषज्य परिष्कारसे ही संतुष्ट रहते हैं। भन्ते ! क्योंकि आप जसे-तैसे चीवर-पिण्डपात-शयनासन-गिलान-प्रत्यय (=रोगीकी आवश्यकतायें) भैषज्य-परिष्कारसे ही संतुष्ट रहते हैं; इस कारणसे भी मैं भगवान्के प्रति इतना सेवा-भाव, इतनी मैत्री प्रदर्शित करता हूँ।

"फिर भन्ते ! भगवान आदरणीय है, सत्कार करने योग्य हैं, दक्षिणाके योग्य हैं, हाथ जोड़ने योग्य हैं, लोकके सर्वोत्तम पुण्य-क्षेत्र हैं। भन्ते ! क्योंकि भगवान आदरणीय हैं, सत्कार करने योग्य हैं, दक्षिणाके योग्य हैं, लोकके सर्वोत्तम पुण्य-क्षेत्र हैं; इस कारण से भी मैं भगवानके प्रति इतना सेवा-भाव, इतनी मैत्री प्रदर्शित करता हूँ।

फिर भन्ते ! यह जो स्वच्छ, चित्तकी विमुक्ति में सहायक वार्ता है, जैसे अल्पेच्छ कथा, संतुष्टि-कथा, प्रविवेक-कथा, असंसर्ग-कथा, वीर्यारम्भ-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा, प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति-कथा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन कथा, ऐसी वार्ता भगवानको अनायास प्राप्त रही है, प्रचुर मात्रामें प्राप्त रही है, बहुलतासे प्राप्त रही है। भन्ते ! क्योंकि यह जो स्वच्छ, चित्तकी विमुक्तिमें सहायक वार्ता है, जैसे अल्पेच्छ-कथा, संतुष्टि-कथा, प्रविवेक-कथा, असंसर्ग-कथा, वीर्यारम्भ-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा, प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति-कथा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-कथा, ऐसी वार्ता भगवानको अनायास प्राप्त रही है, प्रचुर मात्रामें प्राप्त रही है, बहुलतासे प्राप्त रही है; इस कारणसे भी भगवान के प्रति इतना सेवा-भाव, इतनी मैत्री-प्रदर्शित करता हूँ।

फिर भन्ते! भगवान आप इसी शरीरमें सुख देने वाले चारों चैतसिक ध्यानोंको अनायास प्राप्त करनेवाले हैं, प्रचुर मात्रामें प्राप्त करनेवाले हैं तथा बहुलतासे प्राप्त करनेवाले हैं। भन्ते! क्योंकि भगवान आप इसी शरीरमें सुख देनेवाले चारों चैतसिक ध्यानोंको अनायास प्राप्त करनेवाले हैं, प्रचुर मात्रामें प्राप्त करनेवाले हैं तथा बहुलतासे प्राप्त करनेवाले हैं; इस कारणसे भी मैं भगवानके प्रति इतना सेवा-भाव, इतनी मैत्री प्रदर्शित करता हूँ।

फिर भन्ते! भगवान अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंका अनुस्मरण करते हैं, जैसे एक जन्मका, दो जन्मोंका, तीन जन्मोंका, चार जन्मोंका, पाँच जन्मोंका, दस जन्मोंका, बीस जन्मोंका, तीस जन्मोंका, चालीस जन्मोंका, पचास जन्मोंका, सौ जन्मोंका, हजार जन्मोंका, लाख जन्मोंका, अनेक संवर्त-कल्पोंका अनेक विवर्त-कल्पोंका, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पोंका कि मैं अमुक स्थानपर था, यह नाम था, यह गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा भोजन ग्रहण करता था, इस प्रकार सुख-दुखका अनुभव किया तथा इतनी आयु तक जीवित रहा। वहाँसे च्युत होकर मैंने अमुक जगह जन्म ग्रहण किया। वहाँ भी मेरा अमुक नाम था, अमुक गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा भोजन ग्रहण करता था, इस प्रकार सुख-दुखका अनुभव किया तथा इतनी आयु तक जीवित रहा। वहाँसे च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुआ, इस प्रकार आकार-उद्देश्य सहित नाना जन्मोंका अनुस्मरण करते हैं। भन्ते! भगवान! क्योंकि आप अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोंका अनुस्मरण करते हैं जैसे एक जन्मका, दो जन्मोंका......इस प्रकार आकार-उद्देश्य सहित नाना जन्मोंका अनुस्मरण करते हैं; इस कारण से भी भन्ते! मैं भगवानके प्रति इतना सेवा-भाव, इतनी मैत्री प्रदर्शित करता हूँ।

फिर भन्ते! भगवान दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे प्राणियोंको मरते-उत्पन्न होते देखते हैं, हीन-योनिमें, श्रेष्ठ-योनिमें, सुवर्ण या दुर्वर्ण, कर्मानुसार सुगति-प्राप्त अथवा दुर्गति-प्राप्त। आप जानते है कि ये प्राणी शरीरके, वाणीके तथा मनके दुष्कर्मोंसे युक्त हैं, ये आर्यों (= श्रेष्ठ जनों) के निन्दक हैं, ये मिथ्या-दृष्टि हैं, मिथ्या-मतके ग्रहण किए रहनेवाले; इसलिए ये शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर, अपाय, दुर्गति, नरकमें उत्पन्न हुए हैं। अथवा, आप जानते हैं कि ये प्राणी शरीरके, वाणीके तथा मनके सुकर्मोंसे युक्त हैं, ये आर्यों (= श्रेष्ठ जनों) के प्रशंसक हैं, ये सम्यक-दृष्टि हैं, सम्यक दृष्टिको ग्रहण किए रहनेवाले; इसीलिए ये शरीर छूटनेपर मरनेके अनन्तर सुगति, स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न हुए। इस प्रकार आप दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे प्राणियोंको मरते-उत्पन्न होते देखते हैं, हीन-योनिमें, श्रेष्ठ-योनिमें,

सुवर्ण या दुर्वर्ण, कर्मानुसार सुगति-प्राप्त अथवा दुर्गति-प्राप्त। भन्ते! भगवान! क्योंकि आप दिव्य, विशुद्ध, मनोष्योत्तर चक्षुसे......देखते हैं......दुर्गति-प्राप्त; इस कारणसे भी भन्ते! मैं भगवानके प्रति इतना सेवा-भाव, इतनी मैत्री प्रदर्शित करता हूँ।

फिर भन्ते! भगवान आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव-चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करते हैं। भन्ते! भगवान! क्योंकि आप आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करते हैं; इस कारणसे भी भन्ते! मैं भगवानके प्रति इतना सेवा भाव, इतनी मैत्री प्रदर्शित करता हूँ।

"भन्ते! आज्ञा दें। अब हम चलें। हमें बहुत काम हैं, अनेक करणीय हैं।"

"महाराज! आप जिस (कार्य) का समय समझें, (वह करें)।"

तब कोशल-नरेश प्रसेनजित आसनसे उठ, भगवानको अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, चला गया।

४. उपालि वर्ग

१. उपालिसुत्त

उस समय आयुष्मान उपालि जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान उपालिने भगवान्से यह पूछा—

"भन्ते! किन उद्देश्योंकी पूर्तिकी दृष्टिसे तथागतने श्रावकोंके लिए शिक्षा-पदोंकी प्रज्ञप्ति की है और प्रातिमोक्षके नियम बनाए हैं?"

"उपालि! दस उद्देश्योंकी पूर्तिकी दृष्टिसे तथागतने श्रावकोंके लिए शिक्षा-पदोंकी प्रज्ञप्ति की है और प्रातिमोक्षके नियम बनाए हैं। किन दस उद्देश्योंकी पूर्तिकी दृष्टिसे? संघकी अच्छाईके लिए, संघकी आसानीके लिए, दुष्ट व्यक्तियोंका निग्रह करनेके लिए, शीलवान भिक्षुओंके सुख-पूर्वक विहार करनेके लिए, इसी जन्मके आस्रवोंको संयत करनेके लिए, भावी-जन्मोंके आस्रवोंका प्रतिघात करनेके लिए, अश्रद्धावानोंको श्रद्धावान बनानेके लिए, श्रद्धावानोंको अधिक श्रद्धावान बनानेके लिए, सद्धर्मकी स्थितिके लिए तथा विनय (=नियम पालन) पर अनुग्रह करनेके लिए। उपालि! इन दस उद्देश्योंकी पूर्तिकी दृष्टिसे तथागतने श्रावकोंके लिए शिक्षा-पदोंकी प्रज्ञाप्ति की है और प्रातिमोक्षके नियम बनाए हैं।

२. पातिमोक्खट्ठपनासुत्त

"भन्ते! प्रातिमोक्ष (—पारायण) कब-कब स्थगित किया जाता है ?"

उपालि! दस अवस्थाओंमें प्रातिमोक्ष (—पारायण) स्थगित किया जाता है। कौन-सी दस अवस्थाओंमें? जब उस परिषदमें कोई पाराजिक[1] बैठा हो! पाराजिक सम्बन्धी बातचीत अधूरी रह गई हो। कोई ऐसा व्यक्ति जो उप-सम्पदा-प्राप्त न हो उस परिषदमें बैठा हो; अनुपसम्पन्न-कथा अधूरी रह गई हो; शिक्षा (=बुद्ध-देशना) का प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषदमें बैठा हो; शिक्षाके प्रत्याख्यान सम्बन्धी बातचीत अधूरी रह गई हो; नपुंसक उस परिषदमें बैठा हो; नपुंसक सम्बन्धी बातचीत अधूरी रह गई हो, भिक्षुणीको भ्रष्ट करनेवाला उस परिषदमें बैठा हो तथा भिक्षुणीको भ्रष्ट करनेवालेके सम्बन्धकी बातचीत अधूरी रह गई हो। उपालि! ये दस अवस्थाएँ हैं, जब प्रातिमोक्ष (—पारायण) स्थगित किया जाता है।

३. उब्बाहिकासुत्त

"भन्ते! किन गुणों (=धर्मों) से युक्त भिक्षुको उब्बाहिकाके[2] लिए चुना जाए?"

"उपालि! जिस भिक्षुमें ये दस गुण हों, उसे उब्बाहिकाके लिए चुना जाय। कौनसे दस? उपालि! भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्षके नियमोंको पालन करता हुआ, अपने आचरणको व्यवस्थित रखता हुआ तथा छोटेसे छोटे दोषोंके करनेसे भी डरता हुआ विचरता है, शिक्षा-पदोंको सम्यक प्रकार ग्रहण करता है; बहुश्रुत होता है, श्रुतको धारण करनेवाला, श्रुतका संग्रह करनेवाला; जो आदिमें, कल्याणकारक, मध्यमें कल्याण कारक तथा अन्तमें कल्याणकारक, अर्थ-सहित व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहलाते हैं, उसके द्वारा वैसे धर्म बहु-श्रुत धारण किए गए होते हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए, मनके द्वारा परीक्षित किए गए तथा (सम्यक-) दृष्टि द्वारा बींधे गए होते हैं; उसके द्वारा भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्राति मोक्ष विस्तार पूर्वक हृदयंगभ किए गए होते हैं, सुविभक्त होते हैं, सुपरिचित होते हैं तथा सूत्र और अनुव्यंजनकी दृष्टिसे सुनिश्चित होते हैं;

---

१. भिक्षु द्वारा हो सकनेवाले चार सर्वप्रधान दोषोंमेंसे। किसी भी एक या अधिकका दोषी।

२. किसी भिक्षुको संघसे निकालनेका निर्णय करनेवाली भिक्षु—अदालत।

विनयमें दृढ़तापूर्वक स्थिर होता है; अपने विरोधियोंको जानकारी देनेमें, प्रज्ञापन करनेमें, अपनें पक्षमें कर लेनेमें, (अपना पक्ष) दिखानेमें (?), प्रसन्न करनेमें समर्थ होता है; उत्पन्न झगड़ेका शमन करनेमें कुशल होता है, झगड़ेको जानता है झगड़ेकी उत्पत्तिको जानता है, झगड़ेके निरोधको जानता है तथा झगड़ेके निरोधकी ओर ले जानेवाले मार्गको जानता है। उपालि! जिस भिक्षुमें ये दस गुण हों, उसे उब्बाहिकाके लिए चुना जाय।

४. उपसम्पदासुत्त

"भन्ते! दूसरेको उपसम्पन्न करनेवाले भिक्षुमें कितने गुण होने चाहिए?"

"उपालि! दूसरेको उपसम्पन्न करनेवाले भिक्षुमें ये दस गुण होने चाहिए। कौनसे दस? उपालि! भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्षके नियमोंको पालन करता हुआ, अपने आचरणको व्यवस्थित रखता हुआ तथा छोटे-से-छोटे दोषोंके करनेसे भी डरता हुआ विचरता है, शिक्षापदोंको सम्यक प्रकार ग्रहण करता है, बहुश्रुत होता है, श्रुतको धारण करने वाला, श्रुतका संग्रह करनेवाला; जो आदिमें कल्याणकारक, मध्यमें कल्याणकारक तथा अन्तमें कल्याणकारक, अर्थ-सहित व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहलाते हैं, उसके द्वारा वैसे धर्म बहुश्रुत धारण किए गए होते हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए, मनके द्वारा परिचित किए गए तथा (सम्यक) दृष्टि द्वारा बींधे गए होते हैं, उसके द्वारा भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी प्रातिमोक्ष विस्तार-पूर्वक हृदयंगम किए गए होते हैं, सुविभक्त होते हैं, सुपरिचित होते हैं तथा सूत्र और अनुव्यंजन की दृष्टिसे सुनिश्चित होते हैं, रोगीका सेवा करने वा करवानेमें समर्थ होता है; असंतोष (=अरुचि) को दूर करनेमें समर्थ होता है, उत्पन्न कौकृत्यको धर्मानुसार दूर करनेमें समर्थ होता है; उत्पन्न (मिथ्या-) दृष्टिका धर्मानुसार विवेचन करनेमें समर्थ होता है; शीलको उन्नत करनेमें नियुक्त करनेमें समर्थ होता है; चित्तको उन्नत करनेमें नियुक्त करनेमें समर्थ होता है तथा प्रज्ञाको उन्नत करनेमें नियुक्त करनेमें समर्थ होता है। उपालि! दूसरेको उपसम्पन्न करनेवाले भिक्षुमें ये दस गुण होने चाहिए।"

५. निस्सयसुत्त

"भन्ते! दूसरेको आश्रय देनेवाले (=अपनी देख-भालमें रखनेवाले) भिक्षुमें कितने गुण होने चाहिए?"

"उपालि! दूसरेको आश्रय देनेवाले भिक्षुमें ये दस गुण होने चाहिए। कौनसे दस? उपालि! भिक्षु शीलवान होता है.......शिक्षापदोंको सम्यक

प्रकार ग्रहण करता है; बहुश्रुत होता है.......तथा (सम्यक) दृष्टि द्वारा बींधे गए होते हैं; उसके द्वारा भिक्षु प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष विस्तारपूर्वक हृदयंगम किए गए होते हैं, सुविभक्त होते हैं, सुपरिचित होते हैं तथा सूत्र और अनु-व्यंजनकी दृष्टिसे सुनिश्चित होते हैं; रोगीकी सेवा करने या करानेमें समर्थ होता है; असंतोष (—अरुचि) को दूर करनेमें समर्थ होता है, उत्पन्न कौकृत्यको धर्मानुसार दूर करनेमें समर्थ होता है; उत्पन्न (मिथ्या–) दृष्टिका धर्मानुसार विवेचन करनेमें समर्थ होता है; शीलको उन्नत करनेमें.........चित्तको उन्नत करनेमें...... तथा प्रज्ञाको उन्नत करनेमें नियुक्त करनेमें समर्थ होता है। उपालि! दूसरेको आश्रय देनेवाले भिक्षुमें ये दस गुण होने चाहिए।"

६. सामणेरसुत्त

"भन्ते! किसीको श्रामणेर बनाकर अपने पास रखनेवाले भिक्षुमें कितने गुण होने चाहिए?

"उपालि! किसीको श्रामणेर बना कर अपने पास रखने वाले भिक्षुमें दस गुण होने चाहिए? कौनसे दस? उपालि! भिक्षु शीलवान होता है.... शिक्षा-पदोंको सम्यक प्रकार ग्रहण करता है; बहुश्रुत होता है.......तथा (सम्यक्) दृष्टि द्वारा बींधे गए होते हैं; उसके द्वारा भिक्षु-प्राप्तिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्राप्ति-मोक्ष विस्तारपूर्वक हृदयंगम किए गए होते हैं; सुविभक्त होते हैं। सुपरिचित होते हैं तथा सूत्र और अनुव्यंजन की दृष्टिसे सुनिश्चित होते हैं; रोगीकी सेवा करने या करानेमें समर्थ होता है; असन्तोष (=अरुचि) को दूर करनेमें समर्थ होता है; उत्पन्न कौकृत्यको धर्मानुसार दूर करनेमें समर्थ होता है; उत्पन्न (मिथ्या–) दृष्टिका धर्मानुसार विवेचन करनेमें समर्थ होता है; शीलको उन्नत करनेमें.......चित्तको उन्नत करनेमें.........तथा प्रज्ञाको उन्नत करनेमें नियुक्त करनेमें समर्थ होता ह। उपालि! किसीको श्रामणेर बनाकर अपने पास रखनेवाले भिक्षुमें दस गुण होने चाहिए।"

७. संघभेदसुत्त

"भन्ते! संघ-भेद, संघ-भेद कहा जाता है। भन्ते! क्या होनेसे संघ-भेद (=संघ-कलह) होता है?"

"उपालि! भिक्षु अधर्मको धर्म करके प्रकट करते हैं; धर्मको अधर्म करके प्रकट करते हैं; अविनयको विनय करके प्रकट करते हैं; विनयको अविनय करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा भाषण नहीं किया गया है, कहा नहीं गया है,

उसे तथागत द्वारा भाषित, कहा गया, करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा भाषण किया गया है, कहा गया है, उसे तथागत द्वारा भाषण नहीं किया गया, कहा नहीं गया, करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा आचरण नहीं किया गया है, उसे तथागत द्वारा आचरित करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा आचरण किया गया है, उसे तथागत द्वारा अनाचरित करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा प्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा प्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं। वे इन दस बातोंको लेकर एक दूसरेसे दूर दूर हो जाते हैं, विनय-कर्मोंको पृथक-पृथक करते हैं, प्रातिमोक्षका पृथक-पृथक पारायण करते हैं। उपालि! इन बातोंके होनेसे संघ-भेद (=संघमें कलह) हो जाता है।

८. संघसाम्मग्गीसुत्त

"भन्ते! संघ-सामग्री, संघ-सामग्री कहा जाता है। किन बातोंके होनेसे संघ-सामग्री (=संघकी एकता) होती है?"

"उपालि! भिक्षु अधर्मको अधर्म करके प्रकट करते हैं; धर्मको धर्म करके प्रकट करते हैं; अविनयको अविनय करके प्रकट करते हैं; विनयको विनय करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा भाषण नहीं किया गया, कहा नहीं गया, उसे तथागत द्वारा भाषण नहीं किया गया, कहा नहीं गया, करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा भाषण किया गया है, कहा गया है, उसे तथागत द्वारा भाषित, कहा गया, करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा आचरण नहीं किया गया है, उसे तथागत द्वारा आचरण नहीं किया गया, करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा आचरण किया गया है, उसे तथागत द्वारा आचरित करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा प्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा प्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं। वे इन दस बातोंको लेकर एक दूसरेसे दूर-दूर नहीं होते हैं, विनय कर्मोंको पृथक पृथक नहीं करते हैं, प्रातिमोक्षका पृथक पृथक पारायण नहीं करते हैं। उपालि! इन बातोंके होनेसे संघ-सामग्री (=संघकी एकता) होती है।

९. पठमआनंदसुत्त

उस समय आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्दने भगवानसे

यह कहा। भन्ते! संघ-भेद, संघ-भेद कहा जाता है। क्या होनेसे संघ-भेद होता है?

आनन्द! भिक्षु अधर्मको धर्म करके प्रकट करते हैं; धर्मको अधर्म करके प्रकट करते हैं, अविनयको विनय करके प्रकट करते हैं.......जो कुछ तथागत द्वारा प्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं। वे इन दस बातोंको लेकर एक दूसरेसे दूर-दूर हो जाते हैं, विनय-कर्मोंको पृथक-पृथक करते हैं, प्रातिमोक्षका पृथक पृथक पारायण करते हैं। आनन्द! इन बातोंके होनेसे संघ-भेद हो जाता है।

"भन्ते! जो संघकी एकतामें फूट पैदा करता है, उसको इसका क्या फल मिलता है?"

"आनन्द! एक कल्प भर तक 'किल्विष' में दुख पाता है।"

"भन्ते! इस 'कल्पभर किल्विषमें' का क्या अभिप्राय है?"

"आनन्द! कल्प भर तक नरकमें दुख भोगता है।"

अपायिको नेरयिको, कप्पट्ठो संघभेदको।
वग्गरतो अधम्मट्ठो, योगक्खेमा पधंसति।
संघं समग्गं भिन्दित्वा, कप्पं निरयम्हि पच्चति।"

(जो संघमें फूट डालता है, वह कल्प-भर तक नरक-वास करता है। जो अधर्म-स्थित फूट डाल कर आनन्दित होता है, उसका कल्याण (=योगक्षेम) जाता रहता है। जो समग्र संघमें फूट डालता है, वह कल्पभर तक नरकमें भुगतता है।)

१०. दुतियआनंदसुत्त

"भन्ते! 'संघ-सामग्री' 'संच-सामग्री' कहते हैं। क्या होनेसे संघ-सामग्री (=संघकी एकता) होती है?"

"आनन्द! भिक्षु, अधर्मको अधर्म करके प्रकट करते हैं; धर्मको धर्म करके प्रकट करते हैं; अविनयको अविनय करके प्रकट करते हैं; विनयको विनय करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा भाषण नहीं किया गया है, कहा नहीं गया है, उसे तथागत द्वारा अभाषित नहीं कहा गया, करके प्रकट करते हैं, जो कुछ तथागत द्वारा भाषण किया गया है, कहा गया है, उसे तथागत द्वारा भाषण किया गया, कहा गया, करके प्रकट करते हैं, जो कुछ तथागत द्वारा आचरण नहीं किया गया है, उसे तथागत द्वारा अनाचरित करके प्रकट करते हैं, जो कुछ तथागत द्वारा आचरण किया गया है, उसे तथागत द्वारा आचरित करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा

अप्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा प्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा प्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं। वे इन दस बातोंको लेकर एक दूसरेसे दूर-दूर नहीं होते हैं, विनय-कर्मोंको पृथक-पृथक नहीं करते हैं, प्रातिमोक्षका पृथक-पृथक पारायण नहीं करते हैं। आनन्द! इन बातोंके होनेसे संघकी सामग्री (=एकता) होती है।

"भन्ते! जो फूट पड़े संघमें एकता उत्पन्न करता है, उसको इसका क्या फल मिलता है?"

"आनन्द! वह ब्रह्म-पुण्यको प्राप्त होता है।"

"भन्ते! यह ब्रह्म-पुण्य क्या है?"

"आनन्द! वह कल्पग्गी-भर तक स्वर्गमें आनन्द भोगता है—

सुखा संघस्स सामग्गी, समग्गानं च अनुग्गहो।
समग्गरत्तो धम्मट्ठो, योगक्खेमा न धंसति।
संघ समग्गं कत्वान, कप्पं सग्गम्हि मोदति

(संघकी सामग्री (=एकता) सुखद है। एक हुए संघका अनुग्रह (—एकता) सुखदायक है। जो संघकी एकतामें आनन्दित रहता है, ऐसा धर्म-स्थित कल्याण (=योग क्षेम) से च्युत नहीं होता। जो संघकी एकताका सम्पादन करता है, वह कल्प भर तक स्वर्गमें आनन्दित होता है।)

५. आक्रोश-वर्ग

१. विवादसुत्त

उस समय आयुष्मान उपालि जहाँ भगवान थे वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको प्रणाम कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान उपालिने भगवानसे यह कहा—

"भन्ते! क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे भिक्षु-संघमें झगड़ा-कलह-विग्रह-विवाद पैदा हो जाता है?"

"उपालि! भिक्षु अधर्मको धर्म करके प्रकट करते हैं; धर्मको अधर्म करके प्रकट करते हैं; अविनयको विनय करके प्रकट करते हैं; विनयको अविनय करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा भाषण नहीं किया गया है, कहा नहीं गया है, उसे तथागत द्वारा भाषित, कहा गया, करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा भाषण किया गया है, कहा गया है, उसे तथागत द्वारा भाषण नहीं किया गया, नहीं

कहा गया, करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा आचरण नहीं किया गया, उसे तथागत द्वारा आचरण किया गया, करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा आचरण किया गया, उसे तथागत द्वारा अनाचरित करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा प्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा प्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं। उपालि! यह हेतु है, यह कारण है जिससे भिक्षु-संघमें झगड़ा-कलह-विग्रह-विवाद पैदा हो जाता है।"

२. पठमविवादमूलसुत्त

"भन्ते! विवाद-मूल (=झगड़ेके कारण) कौनसे हैं?".

"उपालि! विवाद-मूल (=झगड़ेके कारण) ये दस हैं। कौनसे दस? उपालि! भिक्षु अधर्मको धर्म करके प्रकट करते हैं, धर्मको अधर्म करके प्रकट करते हैं; अविनयको विनय करके प्रकट करते हैं, विनयको अविनय करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा भाषण नहीं किया गया है, कहा नहीं गया है, उसे तथागत द्वारा भाषित, कहा गया करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा भाषण किया गया है, कहा गया है, उसे तथागत द्वारा अभाषित, नहीं कहा गया, करके प्रकट करते हैं; जो कुछ तथागत द्वारा आचरण नहीं किया गया, उसे तथागत द्वारा आचरित करके प्रकट करते हैं, जो कुछ तथागत द्वारा आचरण किया गया, उसे तथागत द्वारा आचरण नहीं किया गया, करके प्रकट करते हैं, जो कुछ तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा प्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं, जो कुछ तथागत द्वारा प्रज्ञप्त है, उसे तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त करके प्रकट करते हैं। उपालि! ये दस विवाद-मूल (=झगड़े-की जड़) हैं।

३. दुतियविवादमूलसुत्त

"भन्ते! विवाद-मूल (=झगड़ेकी जड़) कौन-कौन-सी बातें हैं?"

"उपालि! विवाद-मूल दस हैं? कौनसे दस?

"उपालि! भिक्षु जो 'दोष' '(=आपत्ति) नहीं है, उसे 'दोष' (=आपत्ति) करके प्रकट करता है; जो 'दोष' है, उसे दोष नहीं (=अनापत्ति) करके प्रकट करता है; जो हलका दोष (=लहुक आपत्ति) है, उसे भारी दोष (=गरुक आपत्ति) करके प्रकट करता है; जो भारी दोष (=गरु कआपत्ति) है, उसे हलका दोष (=लहुक आपत्ति) करके प्रकट करता है; जो गम्भीर (=दुट्ठुल्ल) दोष है, उसे सामान्य दोष (=अदुट्ठुल्ल आपत्ति) करके प्रकट

करता है; जो सामान्य दोष (=अदुट्ठुल्ल आपत्ति) है, उसे गम्भीर दोष (दुट्ठुल्ल) आपत्ति करके प्रकट करता है, असम्पूर्ण दोष (=सावशेष आपत्ति) को सम्पूर्ण दोष (=अनवशेष आपत्ति) करके प्रकट करता है; सम्पूर्ण दोष (=अनवशेष आपत्ति) को असम्पूर्ण दोष (=सावशेष आपत्ति) करके प्रकट करता है; स-प्रतिकर्म दोष (=सप्पटिकम्म आपत्ति) को अ-प्रतिकर्म दोष करके प्रकट करता है, अ-प्रतिकर्म दोषको स-प्रतिकर्म दोष करके प्रकट करता है। उपालि! ये दस विवाद-मूल (=झगड़ेके कारण) हैं।

४. कुसिनारसुत्त

एक समय भगवान कुशीनाराके वलिहरण वन-खण्डमें विहार करते थे। वहाँ भगवानने भिक्षुओंको निमंत्रित किया = 'भिक्षुओ।' उन भिक्षुओंने भगवान्‌को 'भदन्त' कहकर प्रतिवचन दिया। भगवान्‌ने यह कहा—"भिक्षुओ, जो भिक्षु दूसरेपर दोषारोपण करनेवाला हो, जो दूसरेपर दोषारोपण करना चाहता हो, उसे अपनेमें पाँच गुणों (=बातों) का होना देखना चाहिए और अपनेमें पाँच गुण (=बातें) विद्यमान करने चाहिए। अपनेमें कौनसे पाँच गुणोंका होना देखना चाहिए? भिक्षुओ, जो भिक्षु दूसरेपर दोषारोपण करनेवाला हो, जो दूसरेपर दोषारोपण करना चाहता हो, उसे अपने बारेमें इस प्रकार विचार करना चाहिए—क्या मैं सम्पूर्ण रूपसे शुद्ध शारीरिक कर्मसे युक्त हूँ, समन्वित हूँ—निर्दोष, निर्मल कर्मसे! क्या मुझमें ये गुण हैं, अथवा नहीं हैं? भिक्षुओ, यदि वह शुद्ध शारीरिक-कर्मसे युक्त नहीं होता, समन्वित नहीं होता—निर्दोष, निर्मल, कर्मसे, तो उसे दूसरे यह कहने वाले होते हैं—"आयुष्मान्! (पहले) अपने शारीरिक कर्मको संभालें।"

फिर भिक्षुओ, जो भिक्षु दूसरेपर दोषारोपण करनेवाला हो, जो दूसरेपर दोषारोपण करना चाहता हो, उसे अपने बारेमें इस प्रकार विचार करना चाहिए—क्या मैं सम्पूर्ण रूपसे शुद्ध वाणीके कर्मोंसे युक्त हूँ, समन्वित हूँ—निर्दोष, निर्मल कर्मसे। क्या मुझमें ये गुण हैं, अथवा नहीं हैं। भिक्षुओ, यदि वह शुद्ध वाणीके कर्मसे युक्त नहीं होता, समन्वित नहीं होता—निर्दोष, निर्मल कर्मसे, तो उसे दूसरे यह कहनेवाले होते हैं—"आयुष्मान! (पहले) अपने वाणीके कर्मको संभालें।"

फिर भिक्षुओ, जो भिक्षु दूसरेपर दोषारोपण करनेवाला हो, जो दूसरेपर दोषारोपण करना चाहता हो, उसे अपने बारेमें इस प्रकार विचार करना चाहिए—क्या मेरे मनमें अपने सहब्रह्मचारियोंके प्रति मैत्री-भावना है, अद्वेष है? क्या मुझमें यह (मैत्री-) धर्म है अथवा नहीं है? भिक्षुओ, यदि उस भिक्षुके मनमें अपने सह-

ब्रह्मचारियोंके प्रति मैत्री-भावना नहीं होती, अद्वेष नहीं होता, तो उसे दूसरे यह कहनेवाले होते हैं—आयुष्मान ! (पहले) अपने सह-ब्रह्मचारियोंके प्रति मैत्री-चित्तका अभ्यास करें।"

फिर भिक्षुओ, जो भिक्षु दूसरेपर दोषारोपण करनेवाला हो, जो दूसरेपर दोषारोपण करना चाहता हो, उसे अपने बारेमें सोचना चाहिए—क्या मैं बहुश्रुत हूँ, श्रुतके धारण करनेवाला, श्रुतका संग्रह करनेवाला; जो आदिमें कल्याण कारक, मध्यमें कल्याण-कारक तथा अन्तमें कल्याण-कारक, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहलाते हैं, क्या मेरे द्वारा वे धर्म धारण किए गए हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए हैं, तथा (सम्यक्) दृष्टि द्वारा बींधे गए हैं ? मुझमें ये धर्म हैं, अथवा नहीं हैं ? भिक्षुओ, यदि वह भिक्षु, बहुश्रुत नहीं होता, श्रुतके धारण करनेवाला नहीं होता, श्रुतका संग्रह करनेवाला नहीं होता, जो आदिमें कल्याण-कारक, मध्यमें कल्याण-कारक तथा अन्तमें कल्याण-कारक, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित, सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध 'ब्रह्मचर्य' कहलाते हैं, यदि वे धर्म उस भिक्षुके द्वारा धारण किए गये नहीं होते हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए नहीं होते हैं तथा (सम्यक्-) दृष्टि द्वारा बींधे नहीं गए होते हैं, तो उसे दूसरे यह कहनेवाले होते हैं—"आयुष्मान ! (पहले) आप आगम (शास्त्र) का अभ्यास करें।"

फिर भिक्षुओ, जो भिक्षु दूसरेपर दोषारोपण करनेवाला हो, जो दूसरेपर दोषारोपण करना चाहता हो, उसे अपने बारेमें सोचना चाहिए—क्या मेरे द्वारा भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष विस्तार-पूर्वक हृदयंगम किए गए हैं, सुवि-भक्त, सुपरिचित तथा सूत्र और अनुव्यंजनकी दृष्टिसे सुनिश्चित; मुझमें ये धर्म हैं, अथवा नहीं हैं। भिक्षुओ, यदि उस भिक्षुके द्वारा भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष विस्तारपूर्वक हृदयंगम नहीं किए गए रहते हैं, सुविभक्त, सुपरिचित तथा सूत्र और अनुव्यंजन की दृष्टिसे सुनिश्चित; और यदि वह यह पूछनेपर कि आयुष्मान, इस बारेमें भगवान्‌ने क्या कहा है, इसका उत्तर नहीं दे सकता, तो उसे दूसरे यह कहने-वाले होते हैं—"आयुष्मान् ! (पहले) विनय —भिक्षु-नियमोंको सीखें।" भिक्षुको इन पाँच गुणोंके अपनेमें होनेकी बातको देखना चाहिए।

"कौनसे पाँच गुण (=बातें) अपनेमें विद्यमान करने चाहिए ?"
'मैं समय देखकर बोलूंगा, अनुपयुक्त समयपर नहीं; सत्य बात बोलूंगा, असत्य नहीं; मधुर वाणी बोलूंगा, कठोर नहीं; सप्रयोजन बोलूंगा, निष्प्रयोजन नहीं; मैत्री-

पूर्वक बोलूँगा, मनमें द्वेष-भावना रखकर नहीं—इन पाँच गुणोंको अपनेमें विद्यमान करना चाहिए।

भिक्षुओ, जो भिक्षु दूसरेपर दोषारोपण करनेवाला हो, जो दूसरेपर दोषारोपण करना चाहता हो, उसे अपनेमें पाँच गुणोंका होना चाहिए तथा अपनेमें पाँच गुण विद्यमान करने चाहिए। इसके बाद ही किसीपर दोषारोपण करना चाहिए।

५. राजन्तेपुरप्पवेसनसुत्त

भिक्षुओ, राजाके रनिवास (=अन्तःपुर) में जानेके दस दुष्परिणाम होते हैं। कौनसे दस ? भिक्षुओ, राजा पटरानीके साथ बैठा होता है। तब या तो पटरानी भिक्षुको देखकर हँसती है, या भिक्षु पटरानीको देखकर हँसता है। तब राजाके मनमें होता है कि या तो इन्होंने कुकर्म किया होगा, या करेंगे। भिक्षुओ राजाके रनिवासमें जानेका यह पहला दुष्परिणाम होता है।

फिर भिक्षुओ, राजाको बहुतसे काम-काज रहते हैं। उसे यह याद नहीं रहता कि वह अमुक स्त्रीके पास गया था। उस स्त्रीको राजासे गर्भ रह जाता है। तब राजाके मनमें होता है, यहाँ प्रव्रजितके अतिरिक्त कोई नहीं आता-जाता, यह प्रव्रजितका ही कृत्य होगा। भिक्षुओ, राजाके रनिवासमें जानेका यह दूसरा दुष्पारिणाम होता है।

फिर भिक्षुओ, राजाके रनिवासमेंसे किसी एक रत्नकी चोरी हो जाती है। तब राजाके मनमें होता है—यहाँ प्रव्रजितके अतिरिक्त कोई नहीं आता-जाता। यह प्रव्रजित का ही कृत्य होगा। भिक्षुओ, राजाके रनिवासमें जानेका यह तीसरा दुष्परिणाम होता है।

फिर भिक्षुओ, राजाके रनिवासकी भीतरी रहस्यपूर्ण बात बाहर प्रकट हो जाती है। तब राजाके मनमें होता है—यहाँ प्रव्रजितके अतिरिक्त कोई नहीं आता जाता। यह प्रव्रजितका ही कृत्य होगा। भिक्षुओ, राजाके रनिवासमें जानेका यह चौथा दुष्परिणाम होता है।

फिर भिक्षुओ, राजाके रनिवासमें या तो पिता-पुत्र (के मरवाने) की कामना करता है, या पुत्र पिताके मरवानेकी कामना करता है। उनके मनमें होता है—'यहाँ प्रव्रजितके अतिरिक्त कोई नहीं आता-जाता है। यह प्रव्रजितकी ही करतूत होगी।' भिक्षुओ, राजाके रनिवासमें जानेका यह पाँचवाँ दुष्परिणाम होता है।

फिर भिक्षुओ, राजा नीचे पदपर आसीन व्यक्ति को ऊँचे पदपर आसीन करता है। जिन्हें यह अच्छा नहीं लगता, उनके मनमें होता है—'यहाँ प्रव्रजितके

अतिरिक्त कोई नहीं आता-जाता है। यह प्रव्रजितकी ही करतूत होगी।' भिक्षुओ, राजाके रनिवासमें जानेका यह छठा दुष्परिणाम होता है।

फिर भिक्षुओ, राजा ऊँचे-पदपर आसीन व्यक्तिको नीचे-पदपर अपदस्थ करता है। जिन्हें यह अच्छा नहीं लगता, उनके मनमें होता है—'यहाँ प्रव्रजितके अतिरिक्त कोई नहीं आता-जाता। यह प्रव्रजित की ही करतूत होगी।' भिक्षुओ, राजाके रनिवासमें जानेका यह सातवाँ दुष्परिणाम है।

फिर भिक्षुओ, राजा असमयपर सेना लेकर चढ़ाईकी तैयारी करता है। जिन्हें यह अच्छा नहीं लगता, उनके मनमें होता है—'यहाँ प्रव्रजितके अतिरिक्त कोई नहीं आता-जाता। यह प्रव्रजितकी ही करतूत होगी।' भिक्षुओ, राजाके रनिवास-में जानेका यह आठवाँ दुष्परिणाम है।

फिर भिक्षुओ, राजा असमयपर चढ़ाई कर मार्गमेंसे लौट आता है। जिन्हें यह अच्छा नहीं लगता, उन के मनमें होता है—'यहाँ प्रव्रजितके अतिरिक्त कोई नहीं आता-जाता। यह प्रव्रजितकी ही करतूत होगी।' भिक्षुओ, राजाके रनिवासमें जानेका यह नौवाँ दुष्परिणाम है।

फिर भिक्षुओ, राजाके रनिवासमें हाथियोंकी मस्ती, घोड़ोंकी मस्ती, रथोंकी मस्ती तथा दिलको लुभानेवाले रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श रहते हैं, ये प्रव्रजित के लिए अहितकर हैं। भिक्षुओ, राजाके रनिवासमें जानेका यह दसवाँ दुष्परिणाम होता है।

६. सक्कसुत्त

एक समय भगवान शाक्य जनपदमें, कपिलवस्तुमें न्यग्रोधाराममें विहार कर रहे थे। उस समय बहुतसे शाक्य-उपासक उपोसथके दिन जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठे। जिस समय शाक्य उपासक एक ओर बैठे हुए थे, भगवानने उन्हें यह पूछा—

"शाक्यो! क्या तुम अष्टांग उपोसथ-व्रतका पालन करते हो?"

"भन्ते! कभी हम अष्टांग उपोसथ-व्रत रखते हैं, कभी नहीं रखते हैं।"

"शाक्यो! यह तुम्हारे लिए हानिकर है, यह हितकर नहीं है कि तुम इस प्रकारके शोक-भयसे युक्त जीवन के रहते, मरण-भयसे युक्त जीवनके रहते, कभी अष्टांग उपोसथ-व्रत रखते हो, कभी अष्टांग उपोसथ-व्रत नहीं रखते।

"शाक्यो! क्या तुम यह मानते हो कि कोई आदमी जीविकाके किसी न किसी साधनसे, बिना अकुशल कर्म किए, दिनमें आधा कार्षापण कमा सकता

है? यह कहना अनावश्यक है कि वह आदमी होशियार होगा और मेहनती होगा?"

"भन्ते! हाँ।"

"शाक्यो! क्या तुम यह मानते हो कि कोई आदमी जीविकाके किसी-न-किसी साधनसे, बिना अकुशल कर्म किए, दिनमें एक कार्षापण कमा सकता है? यह कहना अनावश्यक है कि वह आदमी होशियार होगा, मेहनती होगा?"

"भन्ते! हाँ।"

"शाक्यो! क्या तुम यह मानते हो कि कोई आदमी जीविकाके किसी न किसी साधनसे, बिना अकुशल कर्म किए, दिनमें दो कार्षापण......तीन कार्षापण ....चार कार्षापण......पाँच कार्षापण.......छह कार्षापण..... सात कार्षापण.......आठ कार्षापण........नौ कार्षापण........दस.... कार्षापण........बीस कार्षापण.......तीस कार्षापण...... चालीस.... कार्षापण..........पचास कार्षापण..........सौ कार्षापण कमा सकता है? यह कहना अनावश्यक है कि वह आदमी होशियार होगा, मेहनती होगा?'

"भन्ते! हाँ।"

"शाक्यो! क्या तुम यह मानते हो कि वह आदमी दिन प्रतिदिन सौ सौ कार्षापण कमाता हुआ, जो जो कमाए उसे जमा करता हुआ, सौ वर्षकी आयु होनेपर बहुत-सी धन-राशि एकत्र कर ले सकता है?"

"भन्ते! हाँ।"

"शाक्यो! क्या तुम यह मानते हो कि वह आदमी उस भोग (के साधनों) के रहते, उस भोग (के साधनों) के हेतुसे, उस भोग (के साधनों) के कारण एक रात भी, आधी-रात भी, एक दिन भी, आधे दिन भी, सर्वांशमें सुखी रह सकता है?"

"भन्ते! नहीं।"

"ऐसा किसलिए?"

"भन्ते! काम-भोगके जितने साधन हैं, अनित्य हैं, तुच्छ हैं, मृषा हैं, व्यर्थ हैं।"

"शाक्यो! मेरा श्रावक यदि मेरे कहनेके अनुसार दस वर्ष भी प्रमाद रहित हो, प्रयत्न शील हो, सतत जागरुक रहकर आचरण करे तो वह सौ वर्ष भी, दस हजार वर्ष भी, लाख वर्ष भी सर्वांशमें सुखी रह सकता है। वह निश्चयसे सकृदागामी, अनागामी या स्रोतापन्न हो सकता है। शाक्यो! दस वर्षकी बात रहने दो।

मेरा श्रावक यदि मेरे कहनेके अनुसार नौ वर्ष.......आठ वर्ष......सात वर्ष ......छह वर्ष.......पाँच वर्ष.......चार वर्ष......तीन वर्ष...... दो वर्ष........एक वर्ष भी प्रमादरहित हो, प्रयत्नशील हो, सतत जागरूक रहकर आचरण करे तो वह सौ वर्ष भी, दस हजार वर्ष भी, लाख वर्ष भी सर्वांशमें सुखी रह सकता है। वह निश्चयसे सकृदागामी, अनागामी या स्रोतापन हो सकता है। शाक्यो! एक वर्षकी बात रहने दो। मेरा श्रावक यदि मेरे कहनेके अनुसार दस महीने भी प्रमाद रहित हो, प्रयत्न शील हो, सतत जागरूक रकहर आचरण करे तो वह सौ वर्ष भी, दस हजार वर्ष भी, लाख वर्ष भी सर्वांशमें सुखी रह सकता है। वह निश्चयसे सकृदागामी, अनागामी वा स्रोतापन हो सकता है। शाक्यो! दस महीनेकी बात रहने दो। मेरा श्रावक यदि मेरे कहनेके अनुसार नौ महीने......आठ महीने ....सात महीने.......छह महीने.......पाँच महीने......चार... महीने........तीन महीने.......दो महीने.......एक महीने......आधे महीने भी प्रमाद-रहित हो, प्रयत्न शील हो, सतत जागरूक रहकर आचरण करे तो वह सौ वर्ष भी, दस हजार वर्ष भी, लाख वर्ष भी सर्वांशमें सुखी रह सकता है। वह निश्चित रूपसे सकृदागामी, अनागामी वा स्रोतापन्न हो सकता है। शाक्यो! आधे महीनेकी बात रहने दो। मेरा श्रावक यदि मेरे कहनेके अनुसार दस रात-दिन भी प्रमाद-रहित हो, प्रयत्न-शील हो, सतत जागरूक रहकर आचरण करे तो वह सौ वर्ष भी, दस हजार वर्ष भी, लाख वर्ष भी सर्वांशमें सुखी रह सकता है। वह निश्चित रूपसे सकृदागामी, अनागामी वा स्रोतापन्न हो सकता है। शाक्यो! दस रात-दिनकी बात रहने दो। मेरा श्रावक यदि मेरे कहनेके अनुसार नौ रात-दिन......आठ रात-दिन.......सात रात-दिन.......छह रात-दिन......पाँच रात-दिन ....चार रात-दिन.......तीन रात-दिन.....दो रात-दिन......... .....एक रात-दिन भी प्रमाद-रहित हो, प्रयत्नशील हो, सतत जागरूक रहकर आचरण करे तो वह सौ वर्ष भी, दस हजार वर्ष भी, लाख वर्ष भी सर्वांशमें सुखी रह सकता है। वह निश्चित रूपसे सकृदागामी, अनागामी वा स्रोतापन्न हो सकता है। शाक्यो! यह तुम्हारे लिए हानिकर है, यह हितकर नहीं है कि तुम इस प्रकारके शोक-भयसे युक्त जीवनके रहते, मरण-भयसे युक्त जीवनके रहते, कभी अष्टांग उपोसथ-व्रत रखते हो, कभी अष्टांग उपोसथ-व्रत नहीं रखते हो।"

"भन्ते! आजसे हम भविष्यमें अष्टांग उपोसथ-व्रतका नियमसे पालन करेंगे।"

७. महालिसुत्त

एक समय भगवान वैशालीके महावनकी कूटागार शालामें विहार करते थे। तब महालि लिच्छवि जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए महालि लिच्छविने भगवानसे यह पूछा—

"भन्ते! अशुभ कर्मके किए जानेमें, अशुभ कर्मकी प्रवृत्तिमें क्या हेतु होता है, क्या कारण होता है?"

"महालि! अशुभ-कर्मके किए जानेमें, अशुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें लोभ हेतु होता है, लोभ कारण होता है। महालि! अशुभ-कर्मके किए जानेमें, अशुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें द्वेष हेतु होता है, द्वेष कारण होता है। महालि! अशुभ-कर्मके किए जानेमें, अशुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें मोह (= मूढ़ता) हेतु होता है, मोह कारण होता है। महालि! अशुभ-कर्मके किए जानेमें, अशुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें उलटे ढंगसे विचार करना (—अयोनिसो मनसिकार) हेतु होता है, उलटे ढंगसे विचार करना कारण होता है। महालि! अशुभ-कर्मके किए जानेमें अशुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें मिथ्यात्वकी ओर झुका हुआ चित्त हेतु होता है, मिथ्यात्वकी ओर झुका हुआ चित्त कारण होता है। महालि! अशुभ-कर्मके किए जानेमें, अशुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें यह हेतु होता है, यह कारण होता है।"

"भन्ते! शुभ-कर्मके किए जानेमें, शुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें क्या हेतु है, क्या कारण होता है?"

"महालि! शुभ-कर्मके किए जानेमें, शुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें अलोभ हेतु होता है, अलोभ कारण होता है। महालि! शुभ-कर्मके किए जानेमें शुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें अद्वेष हेतु होता है, अद्वेष कारण होता है। महालि! शुभ-कर्मके किए जानेमें, शुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें अमोह (= विद्या) हेतु होता है, अमोह कारण होता है। महालि! शुभ-कर्मके किए जानेमें ठीक ढंगसे विचार करना हेतु होता है, ठीक ढंगसे विचार करना कारण होता है। महालि! शुभ-कर्मके किए जानेमें, शुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें सम्यकत्वकी ओर झुका हुआ चित्त हेतु होता है, सम्यकत्वकी ओर झुका हुआ चित्त कारण होता है। महालि! शुभ-कर्मके किए जानेमें, शुभ-कर्मकी प्रवृत्तिमें यह हेतु होता है, यह कारण होता है। महालि! यदि लोकमें ये दस धर्म न हों तो इस लोकमें इसका कुछ पता न लगे कि यह अधार्मिक चर्या है, विषम-चर्या है, और यह धार्मिक-चर्या है, सम-चर्या है। लेकिन महालि! क्योंकि लोकमें ये दस धर्म हैं,

इसीलिए पता लगता है कि यह अधार्मिक-चर्या है, विषय-चर्या है, यह धार्मिक-चर्या है, सम-चर्या है।

८. पब्बजितअभिण्हसुत्त

भिक्षुओ, इन दस बातोंपर प्रव्रजितको निरंतर विचार करते रहना चाहिए। कौन-सी दस बातोंपर? 'मैं विवर्णताको प्राप्त हुआ हूँ', इस बातपर प्रव्रजितको निरन्तर विचार करते रहना चाहिए। 'मेरी जीविका (=भिक्षा) पराश्रित है,' इस बातपर प्रव्रजितको निरंतर विचार करते रहना चाहिए। 'मेरी चर्या (=उठना-बैठना) विशेष प्रकारकी होनी चाहिए', इस बातपर प्रव्रजित को निरंतर विचार करते रहना चाहिए।' कहीं मेरा अपना-आप मेरी निन्दा तो नहीं करता', इस बातपर प्रव्रजितको निरंतर विचार करते रहना चाहिए। 'कहीं विज्ञ सहब्रह्मचारी शीलकी दृष्टिसे मुझे दोषी तो नहीं ठहराते', इस बातपर प्रव्रजितको निरंतर विचार करते रहन चाहिए। 'मेरे जितने भी प्रेम-भाजन हैं, स्नेह-भाजन हैं, उन सबमें परिवर्तन होनेवाला है, उन सबका नाश होने वाला है', इस बातपर प्रव्रजितको निरन्तर विचार करते रहना चाहिए। 'मैं कर्मका हूँ, कर्मका दायाद हूँ, कर्मसे उत्पन्न हूँ, कर्म-बन्धु हूँ, कर्मकी शरण हूँ, जो भी भला-बुरा कर्म करूँगा, उसकी जिम्मेदारी मुझपर होगी, इस बातपर प्रव्रजितको निरंतर विचार करते रहना चाहिए। 'मेरे रात दिन किस प्रकार व्यतीत होते हैं, इस बातपर प्रव्रजितको निरन्तर विचार करते रहना चाहिए। क्या एकान्त (=शून्यागार) में मेरा मन लगता है,' इस बातपर प्रव्रजितको निरन्तर विचार करते रहना चाहिए। 'क्या मैंने उत्तर-मनुष्य-धर्म, आर्य-ज्ञान-दर्शन-विशेष को साक्षात कर लिया है, जिससे यदि मृत्युके समय मेरे सहब्रह्मचारी मुझसे प्रश्न करें तो मुझे लज्जित न होना पड़े,' इस बातपर प्रव्रजित को निरन्तर विचार करते रहना चाहिए। भिक्षुओ, इन दस बातोंपर प्रव्रजितको निरन्तर विचार करते रहना चाहिए।

९. सरीरट्ठधम्मसुत्त

भिक्षुओ, शरीरमें ये दस स्वाभाविक बातें (=धर्म) हैं। कौन-सी दस? शीत, उष्णता, भूख, प्यास, पाखाना, पेशाब, शारीरिक-संयम, वाणीका संयम, आजीविका-सम्बन्धी-संयम, पुनर्भवका कारण होनेवाला भव-संस्कार, भिक्षुओ, शरीरमें ये दस स्वाभाविक बातें (=धर्म) हैं।

१०. भण्डनसुत्त

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। उस समय भोजनके अनन्तर भिक्षाटनसे लौटे हुए, उपस्थान शालामें बैठे हुए, इकट्ठे हुए बहुतसे भिक्षु परस्पर झगड़ा कर रहे थे, कलह कर रहे थे, विवाद कर रहे थे, एक दूसरेको मुख रूपी आयुधसे बींध रहे थे।

तब भगवान शामके समय ध्यानावस्थासे उठ, जहाँ उपस्थानशाला थी, वहाँ पहुँचे। जाकर बिछे आसनपर विराजमान हुए। बैठकर भगवानने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बतचीत कर रहे हो? तुम्हारे बीचमें क्या बातचीत चल रही है?"

"भन्ते! भोजनके अनन्तर, भिक्षाटनसे लौटे हुए, उपस्थानशालामें बैठे हुए, इकट्ठे हुए, हम बहुतसे भिक्षु परस्पर झगड़ा कर रहे हैं, कलह कर रहे हैं, विवादकर रहे हैं, एक दूसरेको मुख रूपी आयुधसे बींध रहे हैं।"

"भिक्षुओ, तुम जो श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हुए प्रव्रजित कुल पुत्र हो, यह तुम्हारे योग्य नहीं है कि तुम परस्पर झगड़ा कर रहे हो, कलह कर रहे हो, विवाद कर रहे हो, एक दूसरेको मुख रूपी आयुध से बींध रहे हो।

"भिक्षुओ, ये दस बातें (—धर्म) ऐसे हैं, जो स्मरणीय हैं, जो प्रियकर हैं, जो गौरव उत्पन्न करनेवाले हैं, जो (लोक—) संग्रहका कारण होते हैं, जो अविवादके लिए, सामग्री (—समग्र-भाव) के लिए तथा एकताके लिए होते हैं। कौनसे दस? भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्षके नियमोंको पालन करता हुआ, अपने आचरणको व्यवस्थित रखता हुआ तथा छोटे-से-छोटे दोषोंके करनेसे भी डरता हुआ विचरता है। वह शिक्षा-पदोंको सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु शीलवान होता है...... शिक्षा-पदोंको सम्यक् प्रकार ग्रहण करता है, यह (बात) भी स्मरणीय है, प्रियकर है, गौरव उत्पन्न करनेवाली है, (लोक-) संग्रहका कारण होती है, अविवादके लिए, सामग्री (=समग्र-भाव) के लिए तथा एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु बहुश्रुत होता है, श्रुतको धारण करनेवाला, श्रुतका संग्रह करनेवाला, जो आदिमें कल्याणकारक, मध्यमें कल्याणकारक तथा अन्तमें कल्याण कारक, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहलाते हैं, उसके द्वारा वैसे धर्म बहु-श्रुत धारण किए गए होते हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए, मनके द्वारा परिचित किए गए तथा (सम्यक्)— दृष्टि द्वारा बींधे गए होते हैं।

भिक्षुओ, यह जो भिक्षु बहुश्रुत होता है.....बींधे गए होते हैं, यह (बात) भी स्मरणीय है, प्रियकर है, गौरव उत्पन्न करनेवाली है, (लोक–) संग्रहका कारण होती है, अविवादके लिए, सामग्री (—समग्र-भाव) के लिए तथा एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु अच्छी संगतिमें रहनेवाला होता है, भली संगतिमें सद्संगतिमें। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु अच्छी संगतिमें.......सद्संगतिमें यह (बात) भी स्मरणीय है, प्रियकर है, गौरव उत्पन्न करने वाली है, (लोक–) संग्रहका कारण होती है, अविवादके लिए, सामग्री (–समग्र–भाव) के लिए तथा एकता के लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, सुवच होता है, उचित बातको सुननेवाला, हितकर बातको ग्रहण करनेमें समर्थ।

भिक्षुओ, यह जो भिक्षु सुवच होता है......ग्रहण करनेमें समर्थ, यह (बात) भी स्मरणीय है, प्रियकर है, गौरव उत्पन्न करनेवाली है, (लोक) संग्रहका कारण होती है, अविवादके लिए, सामग्री (–समग्र-भाव) के लिए तथा एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु यह जो सहब्रह्मचारियोंके छोटे-मोटे काम होते हैं, उनके करनेमें दक्ष होता है, आलस्य-रहित होता है, उनके करनेके उपायके बारेमें ढंग के बारेमें विचार करनेवाला, उनका संविधानकरनेमें समर्थ। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु सहब्रह्मचारियोंके छोटे-मोटे काम होते हैं, उनके करनेमें दक्ष होता है, आलस्य–रहित...... करनेमें समर्थ, यह (बात) भी स्मरणीय है, प्रियकर है, गौरव उत्पन्न करनेवाली है, (लोक–) संग्रहका कारण होती है, अविवादके लिए, सामग्री (–समग्र-भाव) के लिए तथा एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु धर्म-कामी होता है, प्रिय आचरणवाला, धर्म तथा विनयको लेकर उदार–प्रमुदताके भावसे युक्त। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु धर्म-कामी होता है......उदार-प्रमुदताके भावसे युक्त। यह (बात) भी स्मरणीय है, प्रियकर है, गौरव उत्पन्न करनेवाली है, (लोक–) संग्रहका कारण होती है, अविवादके लिए, सामग्री (=समग्र-भाव) के लिए तथा एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल-कर्मोंके प्रहाणके लिए तथा कुशल-कर्मोंको सम्पादन करनेके लिए प्रयत्न-शील होता है। वह दृढ़-पराक्रमी होता है। कुशल-कर्मों के प्रति, उसमें तनिक शिथिलता नहीं होती। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु अकुशल-कर्मोंके

प्रहाणके लिए तथा कुशल-कर्मोंको सम्पादन करनेके लिए, प्रयत्नशील होता है, दृढ़-पराक्रमी होता है; कुशल-कर्मोंके प्रति उसमें शिथिलता नहीं होती; यह (बात) भी स्मरणीय है, प्रियकर है, गौरव उत्पन्न करनेवाली है, (लोक–) संग्रहका कारण होती है, अविवादके लिए, सामग्री (=समग्र-भाव)के लिए तथा एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु जैसे तैसे 'चीवर, पिण्डपात, शयनासन–ग्लान-प्रत्यय; भैषज्य-परिष्कार' से सन्तुष्ट होता है। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु जैसे तैसे 'चीवर-पिण्ड-पात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय, भैषज्य-परिष्कार' से सन्तुष्ट होता है, यह (बात) भी स्मरणीय है, प्रियकर है, गौरव उत्पन्न करनेवाली है, (लोक–) संग्रहका कारण होती है, अविवादके लिए, सामग्री (=समग्र-भाव) के लिए तथा एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु स्मृतिमान होता है, श्रेष्ठ स्मृतिसे युक्त, उसे बहुत पहले की गई बात, कही गई बात याद रहती है। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु स्मृतिमान होता है, श्रेष्ठ स्मृतिसे युक्त; उसे बहुत पहले की गई बात, कही गई बात याद रहती है; यह (बात) भी स्मरणीय है, प्रियकर है, गौरव उत्पन्न करनेवाली है, (लोक–) संग्रहका कारण होती है, अविवाद के लिए, सामग्री (=समग्र-भाव) के लिए तथा एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु प्रज्ञावान होता है, उदयास्त-गामिनी, आर्य, बींध देनेवाली, सम्यक दुख-क्षयकी ओर ले जानेवाली प्रज्ञासे युक्त। भिक्षुओ, यह जो भिक्षु प्रज्ञावान होता है, उदयास्त-गामिनी, आर्य, बींध देनेवाली, सम्यक दुख-क्षयकी ओर ले जानेवाली प्रज्ञासे युक्त, यह (बात) भी स्मरणीय है, प्रियकर है, गौरव उत्पन्न करनेवाली है, (लोक–) संग्रहका कारण होती है, अविवादके लिए, सामग्री (=समग्र-भाव) के लिए तथा एकताके लिए होती है।

६. सचित्त वग्गो

१. सचित्तसुत्त

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। वहाँ भगवानने भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ।" उन भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवचन दिया—"भदन्त।" भगवानने यह कहा—

"भिक्षुओ! यदि भिक्षु दूसरेके चित्तका जानकार न हो तो उसे यह संकल्प करना चाहिए कि 'मैं' अपने चित्तका जानकार होऊँगा।" भिक्षुओ, उसे ऐसा ही सीखना चाहिए।

भिक्षुओ, भिक्षु अपने चित्तका जानकार कैसे होता है? भिक्षुओ, जैसे कोई शौकीन स्त्री हो या पुरुष हो या तरुण हो, वह साफ शीशेमें या स्वच्छ जल-पात्रमें अपने मुखकी छायाको देखे। यदि वह वहाँ कुछ धूलि या कालिख देखे, तो वह उसको वहाँसे हटा देनेकी कोशिश करे। यदि धूलि या कालिख नहीं देखे, तो यह सोच प्रसन्न हो कि यह मेरा सौभाग्य है कि मेरे चेहरेपर धूलि या कालिख नहीं है। इसी प्रकार भिक्षुओ, यदि भिक्षु कुशल-कर्मोंको लेकर विचार करता है तो उससे उसका बहुत हित होता है। उसे सोचना चाहिए कि मैं अधिकतया लोभ-युक्त चित्तसे विचरता हूँ, या लोभ-रहित चित्तसे; मैं अधिकतया द्वेष-युक्ता चित्तसे विचरता हूँ, अथवा द्वेष-रहित चित्तसे; मैं अधिकतया आलस्य-तन्द्रा (—थीन मिद्ध) युक्त चित्तसे विचरता हूँ, अथवा आलस्य-तन्द्रा रहित चित्तसे; मैं अधिकतया उद्धत अवस्थामें विचरता हूँ, अथवा अनुद्धत अवस्थामें; मैं अधिकतया सन्देह-युक्त हो विहार करता हूँ, अथवा सन्देह-रहित हो विहार करता हूँ, मैं अधिकतया क्रोध-युक्त रहता हूँ, या क्रोध-रहित होता हूँ, मैं अधिकतया क्लेश-युक्त च्त्तिसे विचरता हूँ या क्लेश-युक्त चित्तसे; मैं अधिकतया उत्तेजित रहता हूँ, अथवा अनुत्तेजित रहता हूँ; मैं अधिकतया आलसी बना रहता हूँ, अथवा अप्रमादी बना रहता हूँ; मैं अधिकतया एकाग्रता-रहित रहता हूँ, अथवा एकाग्रता युक्त रहता हूँ।"

भिक्षुओ, यदि विचार करनेपर भिक्षु यह जाने कि मैं अधिकतया लोभ-युक्त चित्तसे विचरता हूँ; मैं अधिकतया द्वेष-युक्त चित्तसे विचरता हूँ; मैं अधिकतया आलस्य-तन्द्रा युक्त चित्तसे विचरता हूँ; मैं अधिकतया उद्धत अवस्थामें विचरता हूँ; मैं अधिकतया सन्देह-युक्त हो विहार करता हूँ; मैं अधिकतया क्रोध-युक्त हो रहता हूँ; मैं अधिकतया क्लेश-चित्तसे विचरता हूँ; मैं अधिकतया उत्तेजित रहता हूँ; मैं अधिकतया आलसी बना रहता हूँ तथा मैं अधिकतया एकाग्रता-रहित रहता हूँ; तो भिक्षुओ, उस भिक्षुको उन उन पाप-स्वरूप अकुशल-धर्मोंके प्रहाणके लिए असाधारण संकल्प करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए, उत्साह दिखाना चाहिए, प्रयास करना चाहिए, बाधा-रहित कोशिश करनी चाहिए, स्मृत्ति और सम्प्रजन्यको उपस्थित करना चाहिए। जिस प्रकार भिक्षुओ, यदि किसीके कपड़ोंमें आग लग जाय वा बालोंमें आग लग जाय तो वह उन कपड़ों वा सिरके बालोंमें लगी आगको बुझानेके लिए असाधारण संकल्प करेगा, प्रयत्न करेगा, उत्साह दिखाएगा, प्रयास करेगा, बाधा-रहित कोशिश करेगा तथा स्मृति और सम्प्रजन्यको उपस्थित रखेगा; इसी प्रकार भिक्षुओ, उस भिक्षुको उन उन पाप स्वरूप अकुशल-धर्मोंके प्रहाणके लिए

असाधारण संकल्प करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए, उत्साह दिखाना चाहिए, प्रयास करना चाहिए, बाधा-रहित कोशिश करनी चाहिए, स्मृति और सम्प्रजन्यको उपस्थित रखना चाहिए।

भिक्षुओ, यदि विचार करनेपर भिक्षु यह जाने कि मैं अधिकतया लोभ-रहित चित्तसे विचरता हूँ, मैं अधिकतया द्वेष-रहित चित्तसे विचरता हूँ, मैं अधिकतया आलस्य-तन्द्रा रहित चित्तसे विचरता हूँ; मैं अधिकतया अनुद्धत अवस्थामें विचरता हूँ, मैं अधिकतया सन्देह-रहित हो विचरता हूँ, मैं अधिकतया क्रोध-रहित हो रहता हूँ; मैं अधिकतया क्लेश-युक्त चित्तसे विचरता हूँ; मैं अधिकतया अनुत्तेजित रहता हूँ, मैं अधिकतया अप्रमादी बना रहता हूँ तथा मैं अधिकतया एकाग्रता-युक्त रहता हूँ, तो भिक्षुओ, उस भिक्षुको चाहिए कि उन कुशल-धर्मोपर प्रतिष्ठित हो, आस्रवोंके क्षयके लिए उत्तरोत्तर प्रयास करे।

२. सारिपुत्तसुत्त

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको निमंत्रित किया—"आयुष्मानो भिक्षुओ!" उन भिक्षुओंने "आयुष्मान्" कहकर आयुष्मान् सारिपुत्रको प्रतिवचन दिया। आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—

"आयुष्मानो, यदि भिक्षु दूसरेके चित्तका जानकार न हो, तो उसे यह संकल्प करना चाहिए कि 'मैं' अपने चित्तका जानकार होऊँगा।" आयुष्मानो, उसे ऐसा ही करना चाहिए।

"आयुष्मानो, भिक्षु अपने चित्तका जानकार कैसे होता है? आयुष्मानो, जैसे कोई शौकीन स्त्री हो या पुरुष हो, या तरुण हो, वह साफ शीशेमें या स्वच्छ जल-पात्रमें अपने मुखकी छायाको देखे। यदि वह वहाँ कुछ धूलि या कालिख देखे, तो वह उसको वहाँसे हटा देनेकी कोशिश करे। यदि धूलि या कालिख नहीं देखे, तो यह सोच प्रसन्न हो कि यह मेरा सौभाग्य है कि मेरे चेहरेपर धूलि या कालिख नहीं है इसी प्रकार आयुष्मानो! यदि भिक्षु कुशल-कर्मोंको लेकर विचार करता है तो इससे उसका बहुत हित होता है। उसे सोचना चाहिए कि मैं अधिकतया लोभ-युक्त चित्तसे विचरता हूँ, या लोभ-रहित चित्तसे; मैं अधिकतया द्वेष-युक्त चित्तसे विचरता हूँ, अथवा द्वेष-रहित चित्तसे; मैं अधिकतया आलस्य-तन्द्रा (=थीन मिद्ध) युक्त चित्तसे विचरता हूँ, अथवा आलस्य-तन्द्रा रहित चित्तसे; मैं अधिकतया उद्धत अवस्थामें विचरता हूँ, अथवा अनुद्धत अवस्थामें; मैं अधिकतया सन्देह-युक्त हो विहार करता

हूँ, अथवा सन्देह-रहित हो विहार करता हूँ; मैं अधिकतया क्रोध-युक्त रहता हूँ, या क्रोध-रहित रहता हूँ; मैं अधिकतया क्लेश-युक्त चित्तसे विचरता हूँ या क्लेश-रहित चित्तसे; मैं अधिकतया उत्तेजित रहता हूँ, अथवा अनुत्तेजित रहता हूँ; मैं अधिकतया आलसी बना रहता हूँ, वा अप्रमादी बना रहता हूँ तथा मैं अधिकतया एकाग्रता-रहित रहता हूँ या एकाग्रता-युक्त रहता हूँ ?"

"आयुष्मानो ! यदि विचार करनेपर भिक्षु यह जाने कि 'म' अधिकतया लोभ-युक्त चित्तसे विचरता हूँ.........मैं अधिकतया एकाग्रता-रहित रहता हूँ,' तो आयुष्मानो ! उस भिक्षुको उन उन पाप-स्वरूप अकुशल-धर्मोंके प्रहाणके लिए असाधारण संकल्प करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए, उत्साह दिखाना चाहिए, प्रयास करना चाहिए, बाधा-रहित कोशिश करनी चाहिए, स्मृति तथा सम्प्रजन्यको उपस्थित करना चाहिए। जिस प्रकार आयुष्मानो ! यदि किसीके कपड़ोंमें आग लग जाय वा (सिरके) बालों में आग लग जाए, तो वह उन कपड़ोंमें वा सिरके बालोंमें लगी आगको बुझानेके लिए असाधारण संकल्प करेगा, प्रयत्न करेगा, उत्साह दिखायेगा, प्रयास करेगा, बाधा-रहित कोशिश करेगा; इसी प्रकार आयुष्मानो ! उस भिक्षुको उन-उन पाप-स्वरूप अकुशल-धर्मोंके प्रहाणके लिए असाधारण संकल्प करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए, उत्साह दिखाना चाहिए, प्रयास करना चाहिए, बाधा-रहित कोशिश करनी चाहिए, स्मृति और सम्प्रजन्य को उपस्थित रखना चाहिए।

आयुष्मानो ! यदि विचार करनेपर भिक्षु यह जाने कि मैं अधिकतया लोभ-रहित चित्तसे विचरता हूँ........मैं अधिकतया एकाग्रता-युक्त रहता हूँ, तो आयुष्मानो ! उस भिक्षुको चाहिए कि उन कुशल-धर्मोंपर प्रतिष्ठित हो, आस्रवोंके क्षयके लिए उत्तरोत्तर प्रयास करे।

३. ठितिसुत्त

भिक्षुओ, कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें मैं यथावत् स्थितिकी भी प्रशंसा नहीं करता, परिहानि (=अवनति) की तो बात ही क्या ? भिक्षुओ, मैं कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें वृद्धि (=उन्नति) की ही प्रशंसा करता हूँ, न यथावत् स्थितिकी ओर न परिहानि (=अवनति) की।

भिक्षुओ, कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें, न यथावत् स्थिति और न वृद्धि, किन्तु हानि कैसे होती है ? भिक्षुओ, भिक्षुमें श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग, प्रज्ञा, तथा प्रतिमान आदि जितने धर्म होते हैं, उनकी न यथापूर्व स्थिति होती है, न वृद्धि। भिक्षुओ, कुशल-

धर्मोंके सम्बन्धमें, यह हानि ही है, न यथावत् स्थिति है और न वृद्धि है। भिक्षुओ, इस प्रकार कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें, यह हानि ही है, न यथावत् स्थिति है और न वृद्धि।

भिक्षुओ, कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें यथावत् स्थिति कैसे होती है, न हानि और न वृद्धि? भिक्षुओ, भिक्षुमें श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग, प्रज्ञा तथा प्रतिमान आदि जितने भी धर्म होते हैं, उनकी यथापूर्व स्थिति होती है; न हानि और न वृद्धि। भिक्षुओ; कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें यह यथावत् स्थिति होती है, न हानि और न वृद्धि।

भिक्षुओ, कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें वृद्धि कैसे होती है, न यथावत् स्थिति और न हानि? भिक्षुओ, भिक्षुमें श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग, प्रज्ञा तथा प्रतिमान आदि जितने भी धर्म होते हैं, उनमें वृद्धि होती है; न यथावत् स्थिति और न हानि। भिक्षुओ, इस प्रकार कुशल-धर्मोंके सम्बन्धमें वृद्धि होती है, न स्थिति और न हानि।

"भिक्षुओ, यदि भिक्षु दूसरेके चित्तका जानकार न हो, तो उसे यह संकल्प करना चाहिए कि 'मैं' 'अपने चित्तका जानकार होऊँगा।' उसे ही ऐसा करना चाहिए।

भिक्षुओ, भिक्षु अपने चित्तका जानकार कैसे होता है? भिक्षुओ, जैसे कोई शौकीन स्त्री हो या पुरुष हो या तरुण हो, वह साफ शीशेमें या स्वच्छ जल-पात्रमें अपने मुखकी छायाको देखे। यदि वह वहाँ कुछ धूलि या कालिख देखे, तो वह उसे वहाँसे हटा देनेकी कोशिश करे। यदि धूलि या कालिख नहीं देखे, तो यह सोच प्रसन्न हो कि यह मेरा सौभाग्य है कि मेरे चेहरेपर धूलि या कालिख नहीं है। इसी प्रकार भिक्षुओ, यदि भिक्षु कुशल-कर्मोंको लेकर विचार करता है तो उससे उसका बहुत हित होता है। उसे सोचना चाहिए कि मैं अधिकतया लोभ-युक्त चित्तसे विचरता हूँ, या लोभ-रहित चित्तसे; मैं अधिकतया द्वेष-युक्त चित्तसे विचरता हूँ, अथवा द्वेष-रहित चित्तसे; मैं अधिकतया आलस्य-तन्द्रा (=थीन मिद्ध) युक्त से विचरता हूँ, अथवा आलस्य-तन्द्रा रहित चित्तसे; मैं अधिकतया उद्धत अवस्थामें विचरता हूँ, अथवा अनुद्धत अवस्थामें ! मैं अधिकतया सन्देह-युक्त विहार करता हूँ, अथवा सन्देह-रहित हो विहार करता हूँ; मैं अधिकतया क्रोध-युक्त रहता हूँ, या क्रोध-रहित होता हूँ; मैं अधिकतया क्लेश-युक्त चित्तसे विचरता हूँ, या क्लेश-रहित चित्तसे; मैं अधिकतया उत्तेजित रहता हूँ, अथवा अनुत्तेजित रहता हूँ; मैं अधिकतया आलसी बना रहता हूँ, अथवा अप्रमादी बना रहता हूँ; मैं अधिकतया एकाग्रता-युक्त रहता हूँ अथवा एकाग्रता-रहित रहता हूँ।

भिक्षुओ, यदि विचार करनेपर भिक्षु यह जाने कि मैं अधिकतया लोभ-युक्त चित्तसे विचरता हूँ, मैं अधिकतया द्वेष-युक्त चित्तसे विचरता हूँ, मैं अधिकतया आलस्य-तन्द्रा युक्त चित्तसे विचरता हूँ, मैं अधिकतया उद्धत अवस्थामें विचरता हूँ, मैं अधिकतया सन्देह-युक्त हो विहार करता हूँ, मैं अधिकतया क्रोध-युक्त हो रहता हूँ, मैं अधिकतया क्लेश-युक्त चित्तसे विचरता हूँ, मैं अधिकता उत्तेजित रहता हूँ, मैं अधिकतया आलसी बना रहता हूँ तथा मैं अधिकतया एकाग्रता-रहित रहता हूँ; तो भिक्षुओ, उस भिक्षुको उन-उन पाप-स्वरूप अकुशल-धर्मोंके प्रहाणके लिए असाधारण संकल्प करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए, उत्साह दिखाना चाहिए, प्रयास करना चाहिए, बाधा-रहित कोशिश करनी चाहिए, स्मृति और सम्प्रजन्यको उपस्थित करना चाहिए।

जिस प्रकार भिक्षुओ, यदि किसीके कपड़ोंमें आग लग जाय वा बालोंमें आग लग जाय तो वह उन कपड़ों वा सिरके बालोंमें लगी आगको बुझानेके लिए असाधारण संकल्प करेगा, प्रयत्न करेगा, उत्साह दिखाएगा, प्रयास करेगा, बाधा-रहित कोशिश करेगा तथा स्मृति और सम्प्रजन्यको उपस्थित रखेगा; इसी प्रकार भिक्षुओ, उस भिक्षुको उन उन पाप-स्वरूप अकुशल-धर्मोंके प्रहाणके लिए असाधारण संकल्प करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए, उत्साह दिखाना चाहिए, प्रयास करना चाहिए, बाधा-रहित कोशिश करनी चाहिए, स्मृति और सम्प्रजन्यको उपस्थित रखना चाहिए।

भिक्षुओ, यदि विचार करनेपर भिक्षु यह जाने कि मैं अधिकतया लोभ-रहित चित्तसे विचरता हूँ, मैं अधिकतया द्वेष-रहित चित्तसे विचरता हूँ; मैं अधिकतया अनुद्धत अवस्थामें विचरता हूँ, मैं अधिकतया सन्देह-रहित हो विहार करता हूँ, मैं अधिकतया क्रोध-रहित हो रहता हूँ, मैं अधिकतया क्लेश-युक्त चित्तसे विचरता हूँ, मैं अधिकतया अनुत्तेजित रहता हूँ, मैं अधिकतया अप्रमादी बना रहता हूँ तथा मैं अधिकतया एकाग्रता-युक्त रहता हूँ, तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको चाहिए कि उन कुशल-धर्मोंपर प्रतिष्ठित रहकर, आस्रवोंके क्षयके लिए उत्तरोत्तर प्रयास करे।

४. समथसुत्त

भिक्षुओ, यदि भिक्षु दूसरेके चित्तका जानकार न हो, तो उसे यह संकल्प करना चाहिए कि, 'मैं अपने चित्तका जानकार होऊँगा।' उसे ऐसा ही करना चाहिए।

भिक्षुओ, भिक्षु अपने चित्तका जानकार कैसे होता है? भिक्षुओ, जैसे कोई शौकीन स्त्री हो या पुरुष हो या तरुण हो, वह साफ शीशेमें या स्वच्छ जल-पात्रमें

अपने मुखकी छायाको देखे। यदि वह वहाँ कुछ धूलि या कालिख देखे, तो वह उसे वहाँसे हटा देनेकी कोशिश करे। यदि धूलि या कालिख नहीं देखे, तो यह सोच प्रसन्न हो कि यह मेरा सौभाग्य है कि मेरे चेहरेपर धूलि या कालिख नहीं है। इसी प्रकार भिक्षुओ, यदि भिक्षु कुशल-कर्मोंको लेकर विचार करता है तो उससे उसका बहुत हित होता है। उसे सोचना चाहिए कि क्या मैं चित्तके शमथ (= शान्ति) का लाभी हूँ, अथवा मैं चित्तके शमथ (= शान्ति) का लाभी नहीं हूँ ? क्या मैं प्रज्ञाके धर्म विपश्यनाका लाभी हूँ, अथवा मैं प्रज्ञाके धर्म विपश्यनाका लाभी नहीं हूँ ? '

भिक्षुओ, यदि विचार करनेपर भिक्षु यह जाने कि मैं चित्तके शमथका लाभी हूँ, किन्तु प्रज्ञाके धर्म विपश्यनाका लाभी नहीं हूँ, तो भिक्षुओ, उस भिक्षुको चाहिए कि अपने चित्तके शमथ (= शान्ति) पर प्रतिष्ठित रहकर प्रज्ञाके धर्म विपश्यनाकी प्राप्तिके लिए प्रयास करे। वह आगे चलकर चित्तके शमथके साथ-साथ प्रज्ञाके धर्म विपश्यनाका भी लाभी होता है।

भिक्षुओ, यदि विचार करनेपर भिक्षु यह जाने कि मैं प्रज्ञाके धर्म 'विपश्यना' का लाभी हूँ, किन्तु चित्तके 'शमथ' का लाभी नहीं हूँ, तो भिक्षुओ, उस भिक्षुको चाहिए कि प्रज्ञाके धर्म 'विपश्यना' पर प्रतिष्ठित होकर चित्तके 'शमथ' की प्राप्तिके लिए प्रयास करे। वह आगे चलकर प्रज्ञाके धर्म 'विपश्यना' के साथ-साथ चित्तके 'शमथ' का भी लाभी हो जाता है।

भिक्षुओ, यदि विचार करनेपर भिक्षु यह जाने कि मैं न चित्तके 'शमथ' का लाभी हूँ, और न प्रज्ञाके धर्म 'विपश्यना' का लाभी हूँ, तो भिक्षुओ, उस भिक्षुको उन कुशल-धर्मोंकी प्राप्तिके लिए असाधारण संकल्प करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए, उत्साह दिखाना चाहिए, प्रयास करना चाहिए, बाधा-रहित कोशिश करनी चाहिए, स्मृति और सम्प्रजन्यको उपस्थित रखना चाहिए।

जिस प्रकार भिक्षुओ, यदि किसीके कपड़ोंमें आग लग जाय वा बालोंमें आग लग जाय तो वह उन कपड़ों वा सिरके बालोंमें लगी आगको बुझानेके लिए असाधारण संकल्प करेगा, प्रयत्न करेगा, उत्साह दिखाएगा, प्रयास करेगा, बाधा-रहित कोशिश करेगा, तथा स्मृति और सम्प्रजन्यको उपस्थित रखेगा; इसी प्रकार भिक्षुओ, उस भिक्षुको उन-उन कुशल-धर्मोंकी प्राप्तिके लिए असाधारण संकल्प करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए, उत्साह दिखाना चाहिए, प्रयास करना चाहिए, बाधा-रहित कोशिश करनी चाहिए, स्मृति और सम्प्रजन्यको उपस्थित रखना

चाहिए। वह आगे चलकर चित्तके शमथके साथ-साथ प्रज्ञाके धर्म 'विपश्यना' का भी लाभी होता है।

भिक्षुओ, यदि विचार करनेपर भिक्षु यह जाने कि मैं चित्तके शमथ (=शान्ति) का लाभी हूँ, तथा प्रज्ञाके धर्म 'विपश्यना' का भी लाभी हूँ, तो भिक्षुओ, उस भिक्षुको चाहिए कि उन कुशल-धर्मोंपर प्रतिष्ठित रहकर, आस्रवोंके क्षयके लिए उत्तरोत्तर प्रयास करे।

भिक्षुओ, चीवर भी दो तरहका होता है, धारण करने योग्य भी और न धारण करने योग्य भी; भिक्षुओ, पिण्डपात (=भिक्षा) भी दो तरहका होता है, ग्रहण करने योग्य भी और न ग्रहण करने योग्य भी; भिक्षुओ, शयनासन भी दो तरहका होता है, सेवन करने योग्य भी और न सेवन करने योग्य भी; भिक्षुओ, ग्राम-निगम भी दो तरहका होता है, निवास करने योग्य भी, निवास न करने योग्य भी; भिक्षुओ, जनपद-प्रदेश भी दो तरहका होता है, रहने योग्य भी, न रहने योग्य भी; भिक्षुओ, आदमी भी दो तरहका होता है, संगति करने योग्य भी, संगति न करने योग्य भी।

भिक्षुओ, चीवर भी दो तरहका होता है, धारण करने योग्य भी, और धारण न करने योग्य भी—यह कहा गया है। यह क्यों कहा गया है? भिक्षुओ, जिस चीवरके बारेमें यह जाने कि 'इस चीवरके धारण करनेसे मेरे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्मोंका क्षय होता है;' ऐसा चीवर नहीं धारण करना चाहिए। भिक्षुओ, जिस चीवरके बारेमें यह जाने कि 'इस चीवरके धारण करनेसे मेरे कुशल-धर्म बढ़ते हैं, अकुशल-धर्मोंका क्षय होता है;' ऐसा चीवर धारण करना चाहिए। भिक्षुओ, चीवर भी दो तरहका होता है, धारण करने योग्य भी, और धारण न करने योग्य भी—यह जो कहा गया, यह उक्त अर्थमें ही कहा गया।

भिक्षुओ, पिण्डपात (=भिक्षा) भी दो तरहका होता है, ग्रहण करने योग्य भी और न ग्रहण करने योग्य भी—यह कहा गया है। यह क्यों कहा गया है? भिक्षुओ, जिस पिण्ड-पातके बारेमें यह जाने कि इस पिण्ड-पातको ग्रहण करनेसे मेरे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्मोंका क्षय होता है;' ऐसा पिण्ड-पात नहीं ग्रहण करना चाहिए। भिक्षुओ, जिस पिण्ड-पातके बारेमें यह जाने कि 'इस पिण्ड-पातको ग्रहण करनेसे मेरे कुशल-धर्म बढ़ते हैं, अकुशल-धर्मोंका क्षय होता है', ऐसा पिण्ड-पात ग्रहण करना चाहिए। भिक्षुओ, पिण्ड-पात भी दो तरहका होता है, ग्रहण करने योग्य भी, ग्रहण न करने योग्य भी—यह जो कहा गया, यह इसी अर्थमें कहा गया।

भिक्षुओ, शयनासन भी दो तरहका होता है, सेवन करने योग्य भी और न सेवन करने योग्य भी—यह कहा गया है। यह क्यों कहा गया है? भिक्षुओ, जिस शयनासनके बारेमें यह जाने कि इस शयनासनके सेवन करनेसे मेरे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्मोंका क्षय होता है; ऐसे शयनासनका सेवन नहीं करना चाहिए। भिक्षुओ, जिस शयनासनके बारेमें यह जाने कि इस शयनासनको ग्रहण करनेसे मेरे कुशल-धर्म बढ़ते हैं, अकुशल-धर्मोंका क्षय होता है; ऐसे शयनासनका सेवन करना चाहिए। भिक्षुओ, शयनासन भी दो तरहका होता है, सेवन करने योग्य भी, सेवन न करने योग्य भी—यही जो कहा गया, यह इसी अर्थमें कहा गया।

भिक्षुओ, ग्राम-निगम भी दो तरहका होता है, निवास करने योग्य भी, निवास न करने योग्य भी—यह कहा गया है। यह क्यों कहा गया है? भिक्षुओ, जिस ग्राम-निगमके बारेमें यह जाने कि इस ग्राम-निगममें निवास करनेसे मेरे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्मोंका क्षय होता है; ऐसे ग्राम-निगममें निवास नहीं करना चाहिए। भिक्षुओ, जिस ग्राम-निगमके बारेमें यह जाने कि इस ग्राम-निगममें निवास करनेसे मेरे कुशल-धर्म बढ़ते हैं, अकुशल-धर्मोंका क्षय होता है, ऐसे ग्राम-निगममें निवास करना चाहिए। भिक्षुओ, ग्राम-निगम भी दो तरहका होता है, निवास करने योग्य भी, निवास न करने योग्य भी—यह जो कहा गया, यह इसी अर्थमें कहा गया।

भिक्षुओ, जनपद-प्रदेश भी दो तरहका होता है, रहने योग्य भी, न रहने योग्य भी—यह कहा गया है। यह क्यों कहा गया है? भिक्षुओ, जिस जनपद-प्रदेशके बारेमें यह जाने कि इस जनपद-प्रदेशमें रहनेसे मेरे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्मोंका क्षय होता है; ऐसे जनपद प्रदेशमें नहीं रहना चाहिए। भिक्षुओ, जिस जन-प्रदेशके बारेमें यह जाने कि इस जन-पद-प्रदेशमें रहनेसे मेरे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, अकुशल-धर्मोंका क्षय होता है; ऐसे जन-प्रद-पदेशमें रहना चाहिए, । भिक्षुओ, जनपद-प्रदेश भी दो तरहका होता है, रहने योग्य भी, न रहने योग्य भी—यह जो कहा गया, यह इसी अर्थमें कहा गया।

भिक्षुओ, आदमी भी दो तरहके होते हैं, संगति करने योग्य भी, संगति न करने योग्य भी—यह कहा गया है। यह क्यों कहा गया है? भिक्षुओ, जिस आदमीके बारेमें यह जाने कि इस आदमीकी संगति करनेसे मेरे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्मोंका क्षय होता है; ऐसे आदमीकी संगति नहीं करनी चाहिए। भिक्षुओ, जिस आदमीके बारेमें यह जाने कि इस आदमीकी संगति करनेसे मेरे कुशल-धर्म बढ़ते हैं, अकुशल-धर्मोंका क्षय होता है; ऐसे आदमीकी संगतिमें रहना चाहिए।

भिक्षुओ, आदमी भी दो तरहके होते हैं, संगति करने योग्य भी, संगति न करने योग्य भी—यह जो कहा गया, यह इसी अर्थमें कहा गया।

५. परिहानसुत्त

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको, "आयुष्मान् भिक्षुओ," कहकर सम्बोधित किया। उन भिक्षुओने आयुष्मान सारिपुत्रको 'आयुष्मान्' कहकर प्रति-वचन दिया। आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—

"आयुष्मानो! अवनति-परायण (परिहानधम्म) अवनति-परायण आदमी कहलाता है, उन्नतिशील (अपरिहानधम्म) उन्नतिशील आदमी कहलाता है। आयुष्मान्! भगवानने कैसे आदमीको अवनति-परायण कहा है, कैसे आदमीको उन्नतिशील कहा है?"

"आयुष्मान! हम (भगवानके) इस भाषितका अर्थ जाननेके लिए आयुष्मान् सारिपुत्रके पास दूरसे भी चलकर आ सकते हैं। अच्छा होगा, यदि आयुष्मान सारिपुत्र ही इस भाषित का अर्थ स्पष्ट करें। आयुष्मान् सारिपुत्रसे सुनकर भिक्षु उस अर्थको ग्रहण करेंगे।"

"तो आयुष्मानो, सुनो। अच्छी तरहसे मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"आयुष्मान्! अच्छा" कह, उन भिक्षुओंने आयुष्मान सारिपुत्रको प्रति-वचन दिया। आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—

"आयुष्मानो! भगवान्ने कैसे आदमीको अवनति-परायण आदमी कहा है? आयुष्मानो! एक भिक्षु अश्रुत-धर्मको नहीं सुनता है, जो सुने धर्म हैं, उन्हें भुला देता है, जिन धर्मोंको उसने पहले अपने चित्तसे स्पर्श नहीं किया है—वे धर्म उसके चित्तमें उत्पन्न नहीं होते हैं तथा वह अविज्ञातको नहीं जानता है। आयुष्मानो! भगवान्ने एसे आदमीको अवनति—परायण आदमी कहा है।"

"आयुष्मानो! भगवानने कैसे आदमीको उन्नतिशील आदमी कहा है? आयुष्मानो! एक भिक्षु अश्रुत-धर्मको सुनता है; जो सुने धर्म हैं, उन्हें नहीं भुलाता है; जिन धर्मोंको उसने पहले चित्तसे स्पर्श नहीं किया है, वे धर्म उसके चित्तमें उत्पन्न होते हैं तथा वह अविज्ञातको जानता है। आयुष्मानो! भगवानने ऐसे आदमीको उन्नति-शील आदमी कहा है।

"आयुष्मानो! यदि भिक्षु अपने चित्तका जानकार न हो, तो उसे यह संकल्प करना चाहिए कि 'मैं' अपने चित्तका जानकार होऊँगा।' आयुष्मानो! उसे ऐसा ही सीखना चाहिए।

आयुष्मानो ! भिक्षु अपने चित्तका जानकार कैसे होता है ? आयुष्मानो ! जैसे कोई शौकीन स्त्री हो या पुरुष हो या तरुण हो, वह साफ़ शीशेमें या स्वच्छ जल-पात्रमें अपने मुखकी छायाको देखे। यदि वह वहाँ कुछ धूलि या कालिख़ देखे, तो वह उसे वहाँसे हटा देनेकी कोशिश करे। यदि धूलि या कालिख नहीं देखे, तो यह सोच प्रसन्न हो कि यह मेरा सौभाग्य है कि मेरे चेहरेपर धूलि या कालिख़ नहीं है। इसी प्रकार आयुष्मानों ! यदि भिक्षु कुशल-कर्मोंको लेकर विचार करता है तो उससे उसका बहुत हित होता है। उसे सोचना चाहिए कि क्या मैं अधिकतया लोभ-मुक्त चित्तसे विचरता हूँ ? क्या मुझमें लोभ-रहित चित्त है अथवा नहीं है ? क्या मैं अधिकतया द्वेष-मुक्त चित्तसे विचरता हूँ ? क्या मुझमें द्वेष-मुक्त चित्त है अथवा नहीं है ? क्या मैं अधिकतया आलस्य-तन्द्रा-मुक्त चित्तसे विचरता हूँ ? क्या मुझमें आलस्य-तन्द्रा-मुक्त चित्त है वा नहीं है ? क्या मैं अधिकतया अनुद्धत्त अवस्थामें विचरता हूँ ? क्या मुझमें अनुद्धत्त अवस्था है वा नहीं है ? क्या मैं अधिकतया सन्देह-रहित अवस्थामें विहार करता हूँ ? क्या मुझमें सन्देह-रहित अवस्था है वा नहीं है ? क्या मैं अधिकतया क्रोध-मुक्त हो विहरता हूँ ? क्या मुझमें क्रोध-मुक्त अवस्था है वा नहीं है ? क्या मैं अधिकतया क्लेश-मुक्त चित्तसे विचरता हूँ ? क्या मुझमें क्लेश-मुक्त चित्त है अथवा नहीं है ? क्या मैं धर्म-प्रमुदताका लाभी हूँ ? क्या मुझमें धर्म-प्रमुदता है ? क्या मैं चित्तके 'शमथ' (=शान्ति) का लाभी हूँ ? क्या मुझमें चित्तकी शान्ति है ? क्या मैं प्रज्ञाके धर्म 'विपश्यना' का लाभी हूँ ? क्या मुझमें प्रज्ञाका धर्म 'विपश्यना' है ?

आयुष्मानो ! यदि भिक्षु विचार करनेपर यह देखे कि ये सभी कुशल-धर्म उसमें नहीं हैं, तो आयुष्मान् ! उस भिक्षुको इन सभी कुशल-धर्मोंकी प्राप्तिके लिए असाधारण संकल्प करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए, उत्साह दिखाना चाहिए, प्रयास करना चाहिए, बाधा-रहित कोशिश करनी चाहिए, स्मृति तथा सम्प्रजन्यको उपस्थित करना चाहिए। जिस प्रकार आयुष्मानो ! यदि किसीके कपड़ोमें आग लग जाए वा (सिरके) बालोंमें आग लग जाए, तो वह उन कपड़ोंमें वा सिरके बालोंमें लगी आगको बुझानेके लिए असाधारण संकल्प करेगा, प्रयत्न करेगा, उत्साह दिखाएगा, प्रयास करेगा, बाधा-रहित कोशिश करेगा, स्मृति तथा सम्प्रजन्य उपस्थित करेगा; इसी प्रकार आयुष्मानो ! उस भिक्षुको उन सभी कुशल-धर्मोंकी प्राप्तिके लिए असाधारण संकल्प करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए, उत्साह दिखाना चाहिए, प्रयास करना चाहिए, बाधा-रहित कोशिश करनी चाहिए, स्मृति तथा सम्प्रजन्यको उपस्थित करना चाहिए।

आयुष्मानो ! यदि भिक्षु विचार करनेपर यह देखे कि कोई कोई कुशल-धर्म उसमें हैं, कोई कोई कुशल-धर्म उसमें नहीं हैं, तो आयुष्मानो ! भिक्षुको जो कुशल-धर्म अपनेमें दिखाई दें, उन कुशल-धर्मोंपर स्थिर रह, जो कुशल-धर्म अपनेमें दिखाई न दें, उन कुशल-धर्मोंकी प्राप्तिके लिए असाधारण संकल्प करे, प्रयत्न करे, उत्साह दिखाए, प्रयास करे, बाधा-रहित कोशिश करे, स्मृति तथा सम्प्रजन्य उपस्थित करे। आयुष्मानो ! जैसे यदि किसीके कपड़ेमें आग लग जाए वा (सिरके) बालोंमें आग लग जाय, तो वह उसी वस्त्रकी वा सिरकी आगको बुझानेके लिए असाधारण संकल्प करे, प्रयत्न करे, उत्साह दिखाए, प्रयास करे, बाधा-रहित कोशिश करे, स्मृति तथा सम्प्रजन्य स्थापित करे; इसी प्रकार आयुष्मानो ! उस भिक्षुको चाहिए कि जो कुशल-धर्म अपनेमें दिखाई दें, उनपर प्रतिष्ठित होकर, जो कुशल-धर्म अपनेमें दिखाई न दें, उन कुशल-धर्मोंकी प्राप्तिके लिए असाधारण संकल्प करे, प्रयत्न करे, उत्साह दिखाए, प्रयास करे, बाधा-रहित कोशिश करे, स्मृति तथा सम्प्रजन्य उपस्थित करे।

आयुष्मानो ! यदि भिक्षु विचार करनेपर देखे कि ये सभी कुशल-धर्म उसमें हैं, तो आयुष्मानो ! उस भिक्षुको चाहिए कि उन कुशल-धर्मोंपर प्रतिष्ठित रहकर आस्रवोंके क्षयके लिए उत्तरोत्तर प्रयास करे।

६. पठमसञ्ञासुत्त

भिक्षुओ, ये दस संज्ञाएँ हैं, जिनका अभ्यास करनेसे, जिनमें वृद्धि करनेसे महान फलकी प्राप्ति होती है, महान शुभ-परिणामकी प्राप्ति होती है, अमृतकी प्राप्ति होती है, अमृतपर समाप्ति होती है। कौनसी दस ? अशुभ-संज्ञा, मरण-संज्ञा, आहारके बारेमें प्रतिकूल-संज्ञा, सभी लोगोंके प्रति वैराग्य (= अनभिरति)-संज्ञा, अनित्य-संज्ञा, अनित्यके प्रति दुःख-संज्ञा, दुक्खके प्रति अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, वैराग्य-संज्ञा तथा निरोध-संज्ञा। भिक्षुओ, ये दस संज्ञाएँ हैं, जिनका अभ्यास करनेसे, जिनमें वृद्धि करनेसे महान फलकी प्राप्ति होती है, महान शुभ-परिणामकी प्राप्ति होती है, अमृतकी प्राप्ति होती है, अमृतपर समाप्ति होती है।

७. दुतियसञ्ञासुत्त

भिक्षुओ, ये दस संज्ञाएँ हैं, जिनका अभ्यास करनेसे, जिनमें वृद्धि करनेसे, महान फलकी प्राप्ति होती है, महान शुभ-परिणामकी प्राप्ति होती है, अमृतकी प्राप्ति होती है, अमृतपर सामाप्ति होती है। कौनसी दस ? अनित्य-संज्ञा, अनात्म-संज्ञा, मरण-संज्ञा, आहारके बारेमें प्रतिकूल-संज्ञा, सभी लोगोंके बारेमें वैराग्य (–अनभिरति)–संज्ञा, अस्थि-संज्ञा, कीड़े-पड़े मृत शरीरकी संज्ञा,

छेद पड़े मृत शरीरकी संज्ञा तथा फूल गए मृत शरीरकी संज्ञा। भिक्षुओ, ये दस संज्ञाएँ हैं, जिनका अभ्यास करनेसे, जिनमें वृद्धि करनेसे, महान फलकी प्राप्ति होती है, महान शुभ-परिणामकी प्राप्ति होती है, अमृतकी प्राप्ति होती है, अमृतपर समाप्ति होती है।

८. मूलकसुत्त

"भिक्षुओ, यदि दूसरे सम्प्रदायोंके परिव्राजक ऐसा पूछें कि आयुष्मानो, सभी धर्मों (=आस्तित्वों-क्रियाओं) का मूल क्या है? सभी धर्मोंकी उत्पत्ति कहाँसे होती है? सभी धर्मोंका समुदय कहाँसे होता है? सभी धर्म कहाँ आकर मिलते हैं? सभी धर्मोंमें प्रमुख क्या है? सभी धर्मोंमें अधिपति क्या है? सभी धर्मोंमें श्रेष्ठतम (—उत्तर) क्या है? सभी धर्मोंका सार क्या है? सभी धर्मोंका तल क्या है? सभी धर्मोंका अन्त क्या है? तो उन परिव्राजकों द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर तुम उन दूसरे सम्प्रदायोंके परिव्राजकों को क्या उत्तर दोगे?"

"भन्ते! भगवान् ही धर्मके मूल हैं, भगवान् ही धर्मके नेता हैं, (हम) भगवान् की ही शरण हैं। अच्छा हो कि भगवान् ही इस कथन का स्पष्टीकरण करें। भगवान्से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।"

"तो भिक्षुओ, सुनो। अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ।"—

"भन्ते! अच्छा," कह उन भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने यह कहा—

"भिक्षुओ, यदि दूसरे सम्प्रदायोंके परिव्राजक ऐसा पूछें कि आयुष्मानो! सभी धर्मों (—अस्तित्वों-क्रियाओं) का मूल क्या है? सभी धर्मोंकी उत्पत्ति कहाँसे होती है? सभी धर्मोंका समुदाय कहाँसे होता है? सभी धर्म कहाँ आकर मिलते हैं? ....सभी धर्मोंका अन्त क्या है?' तो उन दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकों द्वारा उक्त प्रकार से पूछे जानेपर तुम उन्हें इस प्रकारसे उत्तर दो—

आयुष्मानो! सभी धर्मोंका मूल छन्द (=संकल्प) है, सभी धर्मोंकी उत्पत्ति मनकी प्रवृत्तिसे होती है, सभी धर्मोंका समुदय स्पर्श (=इन्द्रियों तथा विषयोंके संयोग) से होता है, सभी धर्म वेदना (—सुख-दुख-अदुख-असुख वेदना) मे आकर मिलते हैं, सभी धर्मोंमें समाधि प्रमुख है, सभी धर्मोंपर स्मृति (=जागरूकता) का आधिपत्य है, सभी धर्मोंमें प्रज्ञा श्रेष्ठ है, सभी धर्मोंका सार विमुक्ति है, सभी धर्मोंका तल अमृत है, सभी धर्मोंका अन्त निर्वाण है।' भिक्षुओ, दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकोंके उक्त प्रकारसे पूछनेपर, तुम उनका उक्त प्रकारसे उत्तर दो।

९. पब्बज्जासुत्त

इसलिए भिक्षुओ, ऐसा सीखना चाहिए—हमारा चित्त प्रव्रज्याके अनुसार परिचित चित्त होगा, उत्पन्न पाप-स्वरूप अकुशल धर्म चित्तको अपने अधिकारमें नहीं रख सकेंगे; हमारा चित्त अनित्य-संज्ञा-परिचित चित्त होगा; हमारा चित्त अनात्म-संज्ञा-परिचित चित्त होगा; हमारा चित्त अशुभ-संज्ञा परिचित चित्त होगा; हमारा चित्त दुष्परिणामों (—आदीनव) से परिचित चित्त होगा; हमारा चित्त लोकके सम-विषम-भावको जानकर उस संज्ञासे परिचित चित्त होगा; हमारा चित्त लोकके भव तथा विभवका जानकार हो उस संज्ञासे परिचित चित्त होगा, हमारा चित्त लोकके समुदय तथा अस्तका जानकार हो, उस संज्ञासे परिचित चित्त होगा ; हमारा चित्त प्रहाण-संज्ञासे परिचित चित्त होगा; हमारा चित्त वैराग्य-संज्ञा से परिचित चित्त होगा; तथा हमारा चित्त निरोध संज्ञासे परिचित चित्त होगा। भिक्षुओ, इसी प्रकार सीखना चाहिए।

भिक्षुओ, क्योंकि भिक्षुका चित्त प्रव्रज्याके अनुसार परिचित चित्त होता है इसलिए उसके चित्तको उत्पन्न पाप-स्वरूप अकुशल-धर्म अपने अधिकारमें नहीं रख सकते; उसका चित्त अनित्य-संज्ञा-परिचित चित्त होता है; उसका चित्त अनात्म-संज्ञा-परिचित चित्त होता है; उसका चित्त अशुभ-संज्ञा-परिचित चित्त होता है; उसका चित्त दुष्परिणामोंसे परिचित चित्त होता है; उसका चित्त लोकके सम-विषम भावको जानकर उस संज्ञासे परिचित चित्त होता है; उसका चित्त लोकके भव तथा विभवका जानकार हो उस संज्ञासे परिचित चित्त होता है; उसका चित्त लोकके समुदय तथा अस्तका जानकार हो, उस संज्ञासे परिचित चित्त होता है; उसका चित्त प्रहाण संज्ञासे परिचित चित्त होता है; उसका चित्त वैराग्य-संज्ञासे परिचित होता है तथा उसका चित्त निरोध-संज्ञासे परिचित चित्त होता है। भिक्षुओ, ऐसे भिक्षुके सम्बन्धमें दो फलोंमेंसे एक फलकी आशा रखनी चाहिए—इसी शरीरमें अर्हत्व-प्राप्ति, अन्यथा उपाधि-शेष रहनेपर अनागामी-भाव।

१०. गिरिमानन्दसुत्त

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान गिरिमानन्द बीमार थे, दुखी भी, बहुत अधिक रोगी थे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् आनन्दने भगवानसे यह कहा—

"भन्ते! आयुष्मान् गिरिमानन्द बीमार है, दुखी हैं, बहुत अधिक रोगी है! भन्ते! अच्छा होगा यदि आप कृपा कर वहाँ पधारें, जहाँ आयुष्मान् गिरिमानन्द है।"

"आनन्द! यदि तू गिरिमानन्द भिक्षुको सुना कर दस संज्ञाओंको कहे। इसकी पूरी सम्भावना है कि उन दस संज्ञाओंको सुननेसे आयुष्मान् गिरिमानन्दका रोग वहीं शान्त हो जाय।

"कौन-सी दस संज्ञाएँ? अनित्य-संज्ञा, अनात्म-संज्ञा, अशुभ-संज्ञा, दुष्परिणाम (—आदीनव)-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, वैराग्य-संज्ञा, निरोध-संज्ञा, समस्त लोकके प्रति अनभिरति-संज्ञा, सभी संस्कारोंके प्रति अनिच्छा-संज्ञा तथा आनापान स्मृति।

"आनन्द! अनित्य-संज्ञा कौन-सी है? आनन्द! भिक्षु अरण्य-गत होकर या वृक्षकी छायामें बैठकर अथवा एकान्त-स्थानमें बैठकर यह विचार करता है—रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, संज्ञा अनित्य है, संस्कार अनित्य हैं तथा विज्ञान अनित्य है।' इस प्रकार पाँचों उपादान-स्कन्धोंके प्रति अनित्यदर्शी हो विचरता है। आनन्द! इसे कहते हैं अनित्य संज्ञा।

"आनन्द! अनात्म-संज्ञा कौन-सी है? आनन्द! भिक्षु अरण्य-गत होकर या वृक्षकी छायामें बैठकर अथवा एकान्त-स्थानमें बैठकर यह विचार करता है—चक्षु अनात्म है, रूप अनात्म हैं, श्रोत्र अनात्म है, शब्द अनात्म हैं, घ्राण अनात्म है, गन्ध अनात्म है, जिव्हा अनात्म है, रस अनात्म हैं, काय (=शरीर) अनात्म है, स्प्रष्टव्य अनात्म है, मन अनात्म है तथा धर्म (=मनके विषय) अनात्म है। इस प्रकार वह छह भीतरी-बाहरी आयतनोंके प्रति अनात्मानुपश्यी हो विहार करता है। आनन्द! इसे कहते हैं अनात्म-संज्ञा।

"आनन्द! अशुभ-संज्ञा कौन-सी है? आनन्द! भिक्षु पाँवके तलवेसे ऊपर, केश-मस्तकसे नीचे, त्वचा तक सारे शरीरको नाना प्रकारकी गंदगीसे भरा हुआ देखता है—इस शरीरमें हैं केश, रोम, नाखून, दाँत, त्वचा, माँस, नसें, अस्थि, अस्थि-भेद, वृक, हृदय, यकृत, क्लोमन, प्लीहणक, फेफड़ा, आँत, (वड़ी), आन्त (छोटी), उदर, पाखाना, पित्त, श्लेष्म, पीप, रक्त, पसीना, मेदस्, आँसू, चर्बी, थूक, सींढ़, लसिका तथा मूत्र।' इस प्रकार शरीरके प्रति अशुभ (=गंदगी) की दृष्टि रखता है। आनन्द! इसे कहते हैं अशुभ-संज्ञा।

"आनन्द! दुष्परिणाम (—आदी नव)-संज्ञा कौन-सी है? आनन्द! भिक्षु अरण्य-गत होकर या वृक्षकी छायामें बैठकर अथवा एकान्त-वासमें बैठकर

विचार करता है—यह शरीर बहुतसे दुखोंका घर है, बहुतसे दुष्परिणामोंका घर है। इस शरीरमें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, जैसे—चक्षु-रोग, कानका रोग, नाकका रोग, जिह्वाका रोग, शरीर (=चमड़ी) का रोग, कर्ण-रोग, मुँहका रोग, दान्तोंका रोग, होंठोंका रोग, खाँसी, दमा, जुकाम, दाह, ज्वर, कुक्षि-रोग, मूर्छा, जुलाब, शूल, हैजा, कुष्ठ, कोड़े, कोढ़, तपेदिक, अर्धांग, दाद, खाज, खुजलाहट, नरवस (?), विचर्चिका, लोहित-पित्त, मधुमेह, अंश-भाग, फुंसी, भगन्दर, पित्तज रोग, श्लेषमज रोग, वायुज रोग, सन्निपातिक रोग, ऋतु-परिवर्तनसे उत्पन्न रोग, विषम चर्यासे उत्पन्न रोग, आकस्मिक कष्ट, कर्मफलसे उत्पन्न रोग, शीत, ऊष्ण, भूख, प्यास, पाखाना तथा पेशाब।' इस प्रकार वह इस शरीरके दुष्परिणामों (—आदीनवों) का विचार करता हुआ विचरता है। आनन्द! इसे कहते हैं आदीनव-संज्ञा।

"आनन्द! प्रहाण-संज्ञा कौन-सी है? आनन्द! भिक्षुके मनमें जो काम-वितर्क उत्पन्न होता है उसे वह बना रहने नहीं देता है, त्याग देता है, दूर कर देता है, नष्ट कर देता है तथा अभाव-प्राप्त कर देता है। उसके मनमें जो द्वेष (–व्यापाद) वितर्क पैदा होता है, उसे वह बना रहने नहीं देता है, त्याग देता है, दूर कर देता है, नष्ट कर देता है तथा अभाव-प्राप्त कर देता है। उसके मनमें जो विहिंसा-वितर्क उत्पन्न होता है उसे वह बना रहने नहीं देता है, त्याग देता है, दूर कर देता है, नष्ट कर देता है तथा अभाव-प्राप्त कर देता है। उसके मनमें जो जो पाप-स्वरूप अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं, उन्हें वह बना रहने नहीं देता है, त्याग देता है, दूर कर देता है, नष्ट कर देता है तथा अभाव-प्राप्त कर देता है। आनन्द! इसे कहते हैं प्रहाण-संज्ञा।

"आनन्द! विराग-संज्ञा किसे कहते हैं? आनन्द! भिक्षु अरण्य-गत होकर या वृक्षकी छायामें बैठकर अथवा एकान्त-स्थानमें बैठकर यह विचार करता है—'यही शान्त है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन, सभी उपाधियोंका प्रतिनिसर्ग, तृष्णाका क्षय, विराग, निर्वाण है।" आनन्द! इसे कहते हैं विराग-संज्ञा।

"आनन्द! निरोध-संज्ञा किसे कहते हैं? आनन्द! भिक्षु अरण्य-गत होकर या वृक्षकी छायामें बैठकर या एकान्त-स्थानमें बैठकर यह विचार करता है—'यही शान्त है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन, सभी उपाधियोंका प्रतिनिसर्ग, तृष्णाका क्षय, विराग, निर्वाण है।' आनन्द! इसे कहते हैं निरोध-संज्ञा।

"आनन्द ! सभी लोकोंके प्रति अनभिरति संज्ञा कौन-सी है ? आनन्द ! लोकमें जो उपादान हैं, जो चित्तके अधिष्ठान-अभिनिवेश-अनुशय हैं, उनको त्यागते हुए, पुनः उत्पन्न होने न देते हुए विचरता है। आनन्द ! इसे कहते हैं सभी लोकोंके प्रति अनभिरति-संज्ञा।

"आनन्द ! सभी संस्कारोंके प्रति अनिच्छा-संज्ञा क्या है ? आनन्द ! भिक्षु सभी संस्कारोंसे मुँह फेरता है, विमुख होता है तथा जिगुप्सा करता है। आनन्द ! इसे कहते है सभी संस्कारोंके प्रति अनिच्छा-संज्ञा।

"आनन्द ! आनापान स्मृति किसे कहते हैं ? आनन्द ! भिक्षु अरण्य-गत होकर, वृक्षकी छायामें अथवा एकान्त-स्थानमें पालथी मारकर, शरीरको सीधे रख, स्मृतिको सामने उपस्थित कर बैठता है। वह स्मृतिमान होकर साँस लेता है स्मृतिमान होकर साँस छोड़ता है, वह लम्बी साँस लेते समय जानता है कि मैं लम्बी साँस ले रहा हूँ। वह लम्बी-साँस छोड़ते समय जानता है कि मैं लम्बी साँस छोड़ रहा हूँ। वह छोटी साँस लेते समय जानता है कि मैं छोटी साँस ले रहा हूँ। वह छोटी साँस छोड़ते समय जानता है कि मैं छोटी साँस छोड़ रहा हूँ। वह 'सारे शरीरके लिए संवेदन शील' साँस लेनेका अभ्यास करता है। वह 'सारे शरीरके लिए संवेदन शील' साँस छोड़नेका अभ्यास करता है। वह 'काम-संस्कारको शान्त करते हुए' साँस लेनेका अभ्यास करता है। वह 'काम संस्कारको शान्त करते हुए' साँस छोड़नेका अभ्यास करता है। वह 'प्रीति संवेदन शील' साँस लेनेका अभ्यास करता है। वह 'प्रीति संवेदन शील' साँस छोड़नेका अभ्यास करता है। वह 'सुख-संवेदन-शील' साँस लेनेका अभ्यास करता है। वह 'सुख-संवेदन-शील' साँस छोड़नेका अभ्यास करता है। वह 'चित्त संस्कारोंके लिए संवेदन शील' साँस लेनेका अभ्यास करता है। वह 'चित्त-संस्कारोंके लिए संवेदन-शील' साँस छोड़नेका अभ्यास करता है। वह 'चित्त संस्कारको शान्त करते हुए' साँस लेनेका अभ्यास करता है। वह 'चित्त-संस्कारको शान्त करते हुए' साँस छोड़नेका अभ्यास करता है। वह 'चित्तके लिए संवेदन-शील' साँस लेनेका अभ्यास करता है। वह 'चित्तके लिए संवेदन शील' साँस छोड़नेका अभ्यास करता है। वह चित्तको प्रमुदित करते हुए ...... चित्तको एकाग्र करते हुए .... चित्तको विमुक्त करते हुए ...... अनित्यानुपश्यी हो .... विरागानुपश्यी हो .... निरोधानुपश्यी हो .... प्रतिनिसर्गानु-पश्यी हो साँस लेनेका अभ्यास करता है। वह प्रतिनिसर्गानुपश्यी हो साँस छोड़नेका अभ्यास करता है। भिक्षुओ, इसे कहते हैं आनापान स्मृति।

"आनन्द! यदि तू गिरिमानन्द भिक्षुको सुनाकर इन दस संज्ञाओंको कहे, तो इसकी पूरी सम्भावना है कि इन दस संज्ञाओंके सुननेसे आयुष्मान् गिरिमानन्दका रोग वहीं शान्त हो जाय।"

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के पाससे इन दस संज्ञाओंको ग्रहण कर जहाँ आयुष्मान् गिरिमानन्द थे, वहाँ पहुँचे। समीप जाकर आयुष्मान् गिरिमानन्दको ये संज्ञाएँ कह सुनाईं। तब इन दस संज्ञाओंके सुननेसे आयुष्मान् गिरिमानन्दका जो रोग था, वहीं शान्त हो गया। आयुष्मान् गिरिमानन्द उस रोगसे उठ खड़े हुए। आयुष्मान् गिरिमानन्दका वह रोग मूलतः जाता रहा।

७. यमक वर्ग

१. अविज्जासुत्त

'भिक्षुओ, इससे पहले 'अविद्या' न थी, इसके बाद 'अविद्या' हुई, इस प्रकार 'अविद्या' की पूर्व-कोटि (=आरम्भका सिरा) नहीं दिखाई देता। भिक्षुओ, यह कहा जाता है, लेकिन यह दिखाई देता है कि ऐसा होनेसे 'अविद्या' की उत्पत्ति होती है।

"भिक्षुओ, अविद्याको भी मैं प्रत्ययाश्रित (—साहारं) कहता हूँ, बिना प्रत्यय (—आहार) के नहीं। 'अविद्या' का प्रत्यय क्या है? इसका उत्तर है— पाँच नीवरण। भिक्षुओ, पाँच नीवरणोंको भी मैं प्रत्ययाश्रित (—आहार आश्रित) कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। पाँच-नीवरणोंका 'आहार' क्या है? इसका उत्तर है— तीन प्रकारके दुश्चरित। भिक्षुओ, तीन दुश्चरितोंको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। तीनों दुश्चरितोंका आहार क्या है? इसका उत्तर है— इन्द्रियोंका असंयम। भिक्षुओ, इन्द्रियोंका असंयम भी आहार-आश्रित है, बिना आहारके नहीं। इन्द्रियोंके असंयमनका आहार क्या है? इसका उत्तर है—स्मृति-सम्प्रजन्यसे हीन होना। भिक्षुओ, स्मृति-सम्प्रजन्यसे हीन होनेको भी मैं आहाराश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। स्मृति-सम्प्रजन्यके अभावका आहार क्या है? इसका उत्तर है ठीक ढंगसे विचार न करना (—अयोनिसो मनसिकारो)। भिक्षुओ, मैं अयोनिसो मनसिकारको भी आहाराश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। अयोनिसो मनसिकारका आहार क्या है? इसका उत्तर है—अश्रद्धा। भिक्षुओ, मैं अश्रद्धाको भी आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। अश्रद्धाका क्या आहार है? इसका उत्तर है असद्धर्मका सुनना। भिक्षुओ, असद्धर्मके सुननेको भी मैं आहार-

आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। असद्धर्म-श्रवणका क्या आहार है? इसका उत्तर है असत्पुरुष-संगति।

भिक्षुओ, असत्पुरुष-संगतिकी पूर्ति असद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति करती है। असद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति अश्रद्धाकी पूर्ति करती है। अश्रद्धाकी पूर्ति अयोनिसो-मनसिकार-की पूर्ति करती है। अयोनिसो मनसिकार (=बेढंगे विचार) की पूर्ति अस्मृति-असम्प्रजन्यकी पूर्ति करती है। अस्मृति-असम्प्रजन्यकी पूर्ति इन्द्रिय-असंयमकी पूर्ति करती है। इन्द्रिय-असंयमकी पूर्ति तीनों दुश्चरितोंकी पूर्ति करती है। तीनों दुश्चरितोंकी पूर्ति पाँच नीवरणोंकी पूर्ति करती है। पाँच नीवरणोंकी पूर्ति 'अविद्या' की पूर्ति करती है। इस प्रकार यह 'अविद्या' का आहार होता है और 'अविद्या' की पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जैसे पर्वतके ऊपर भारी वर्षा होनेसे वह जल ढलानकी ओर बहता हुआ गुफा-दरारोंको भर देता है, गुफा-दरारोंको भरता हुआ छोटे तालाबोंको भरता है, छोटे-तालाबोंको भरता हुआ बड़े-तालाबोंको भरता है, बड़े तालाबोंको भरता हुआ छोटी नदियोंको भरता है, छोटी नदियोंको भरता हुआ महानदियोंको भरता है, तथा महानदियोंको भरता हुआ महासमुद्र सागरको भरता है; इस प्रकार इस महासमुद्र सागरका आहार होता है और उसकी पूर्ति होती है।

इसी प्रकार भिक्षुओ, असत्पुरुष-संगतिकी पूर्ति असद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति करती है। असद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति अश्रद्धाकी पूर्ति करती है। अश्रद्धाकी पूर्ति अयोनिसो मनसिकार (=बेढंगे विचार) की पूर्ति करती है। अयोनिसो मनसिकारकी पूर्ति अस्मृति असम्प्रजन्यकी पूर्ति करती है। अस्मृति-असम्प्रजन्यकी पूर्ति इन्द्रिय-असंयमकी पूर्ति करती है। इन्द्रिय-असंयमकी पूर्ति तीनों दुश्चरितोंकी पूर्ति करती है। तीनों दुश्चरितोंकी पूर्ति पाँच नीवरणोंकी पूर्ति करती है। पाँच नीवरणोंकी पूर्ति अविद्याकी पूर्ति करती है। इस प्रकार यह 'अविद्या' का आहार होता है और 'अविद्या' की पूर्ति होती है।

"भिक्षुओ, विद्या-विमुक्तिको भी मैं प्रत्ययाश्रित कहता हूँ, बिना प्रत्यय (=आहार) के नहीं। विद्या 'विमुक्ति' का प्रत्यय क्या है? इसका उत्तर है—सात बोधि-अंग। भिक्षुओ, सात बोधि-अंगोंको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। सात बोधि-अंगोंका क्या आहार है? इसका उत्तर है—चारों स्मृति-उपस्थान। भिक्षुओ, चारों स्मृति-उपस्थानोंको भी मैं आहार-आश्रित

कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। चारों स्मृति-उपस्थानोंका क्या आहार है? इसका उत्तर है—तीनों सुचरित्र। भिक्षुओ, तीनों सुचरित्रों (=तीनों शुभ-कर्मों) को भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। तीनों शुभ-कर्मोंका क्या आहार है? इसका उत्तर है—इन्द्रिय-संयम। भिक्षुओ, इन्द्रिय-संयमको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। इन्द्रिय संयमका क्या आहार है? इसका उत्तर है—स्मृति-सम्प्रजन्य। भिक्षुओ स्मृति-सम्प्रजन्यको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। स्मृति-सम्प्रजन्यका क्या आहार है? इसका उत्तर है योनिसो-मनसिकार (=यथार्थ ढंगसे विचार करना)। भिक्षुओ, योनिसो मनसिकारको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। योनिसो-मनसिकारका क्या आहार है? इसका उत्तर है—श्रद्धा। भिक्षुओ, श्रद्धाको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहार के नहीं। श्रद्धाका क्या आहार है? इसका उत्तर है—सद्धर्म-श्रवण। सद्धर्म-श्रवणको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। सद्धर्म-श्रवणका क्या आहार है? इसका उत्तर है—'सत्पुरुष-संगति।'

इस प्रकार भिक्षुओ, सत्पुरुष-संगतिकी पूर्ति सद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति करती है। सद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति श्रद्धाकी पूर्ति करती है। श्रद्धाकी पूर्ति योनिसो मनसिकारकी पूर्ति करती है। योनिसो मनसिकारकी पूर्ति स्मृति-सम्प्रजन्यकी पूर्ति करती है। स्मृति-सम्प्रजन्यकी पूर्ति इन्द्रिय-संयमकी पूर्ति करती है। इन्द्रिय-संयमकी पूर्ति तीनों शुभ-कर्मों की पूर्ति करती है। तीनों शुभ-कर्मोंकी पूर्ति चारों स्मृति-उपस्थानोंकी पूर्ति करती है। चारों स्मृति उपस्थानोंकी पूर्ति सातों बोधि-अंगोंकी पूर्ति करती है। सातों-बोधि अंगोंकी पूर्ति विद्या-विमुक्तिकी पूर्ति करती है। इस प्रकार इस विद्या-विमुक्तिका आहार होता है और उसकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जैसे पर्वतके ऊपर भारी वर्षा होनेसे वह जल ढलानकी ओर बहता हुआ गुफा-दरारोंको भर देता है, गुफा-दरारोंको भरता हुआ छोटे-तालाबोंको भरता है, छोटे-तालाबोंको भरता हुआ बड़े तालाबोंको भरता है, बड़े तालाबोंको भरता हुआ छोटी नदियोंको भरता है, छोटी नदियोंको भरता हुआ बड़ी नदियोंको भरता है तथा बड़ी नदियोंको भरता हुआ महासमुद्र सागरको भरता है; इस प्रकार इस महासमुद्र सागरका आहार होता है और उसकी पूर्ति होती है।

इसी प्रकार भिक्षुओ, सत्पुरुष-संगतिकी पूर्ति सद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति करती है। सद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति श्रद्धाकी पूर्ति करती है। श्रद्धाकी पूर्ति योनिसो मनसिकारकी पूर्ति करती है। योनिसो मनसिकार की पूर्ति स्मृति-सम्प्रजन्यकी पूर्ति करती है।

स्मृति-सम्प्रजन्यकी पूर्ति इन्द्रिय-संयमकी पूर्ति करती है। इन्द्रिय-संयमकी पूर्ति तीनों शुभ-कर्मोंकी पूर्ति करती है। तीनों शुभ-कर्मोंकी पूर्ति चारों स्मृति उपस्थानोंकी पूर्ति करती है। चारों स्मृति-उपस्थानोंकी पूर्ति सातों बोधि-अंगोंकी पूर्ति करती है। सातों बोधि-अंगोंकी पूर्ति विद्या-विमुक्ति की पूर्ति करती है। इस प्रकार इस विद्या-विमुक्तिका आहार होता है और इसकी पूर्ति होती है।

२. तण्हासुत्त

"भिक्षुओ, इससे पहले 'भव-तृष्णा' न थी, इसके बाद 'भव-तृष्णा' हुई, इस प्रकार भव-तृष्णाकी पूर्व-कोटि (=आरम्भका सिरा) नहीं दिखाई देती। भिक्षुओ, यह कहा जाता है, लेकिन यह दिखाई देता है कि ऐसा होनेसे भव-तृष्णाकी उत्पत्ति होती है।

"भिक्षुओ, भव-तृष्णाको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। भव-तृष्णाका प्रत्यय (=आहार) क्या है ? इसका उत्तर है—अविद्या। भिक्षुओ, अविद्याको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। अविद्याका आहार क्या है ? इसका उत्तर है—पाँच नीवरण। भिक्षुओ, पाँच नीवरणोंको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। पाँच नीवरणोंका आहार क्या है ? इसका उत्तर है—तीन प्रकारके दुष्कर्म। भिक्षुओ, तीन प्रकारके दुष्कर्मोंको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। तीन प्रकारके दुष्कर्मोंका आहार क्या है ? इसका उत्तर है—इन्द्रियोंका असंयम। भिक्षुओ, इन्द्रियोंका असंयम भी आहार-आश्रित है, बिना आहारके नहीं। इन्द्रियोंके असंयमका आहार क्या है ? इसका उत्तर है—स्मृति सम्प्रजन्यसे हीन होना। भिक्षुओ, स्मृति-सम्प्रजन्यसे हीन होनेको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। स्मृति-सम्प्रजन्यके अभावका आहार क्या है ? इसका उत्तर है—अयोनिसो मनसिकार (=ठीक ढंगसे विचार न करना।) भिक्षुओ, अयोनिसो मनसिकारको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। अयोनिसो मनसिकारका आहार क्या है ? इसका उत्तर है—अश्रद्धा। भिक्षुओ, अश्रद्धाको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। अश्रद्धाका क्या आहार है ? इसका उत्तर है—असद्धर्मका सुनना। भिक्षुओ, असद्धर्मके सुननेको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। असद्धर्मके श्रवणका क्या आहार है ? इसका उत्तर है—असत्पुरुष संगति।

भिक्षुओ, असत्पुरुष संगतिकी पूर्ति असद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति करती है। असद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति अश्रद्धाकी पूर्ति करती है। अश्रद्धाकी पूर्ति अयोनिसो मनसिकार-

की पूर्ति करती है। अयोनिसो मनसिकार (=बेढंगे विचार) की पूर्ति अस्मृति-असम्प्रजन्य' की पूर्ति करती है। अस्मृति-असम्प्रजन्यकी पूर्ति इन्द्रिय-असंयमकी पूर्ति करती है। इन्द्रिय-असंयमकी पूर्ति तीनों दुश्चरितोंकी पूर्ति करती है। तीनों दुश्चरितोंकी पूर्ति पाँच नीवरणोंकी पूर्ति करती है। पाँच नीवरणोंकी पूर्ति 'अविद्या' की पूर्ति करती है। 'अविद्या' की पूर्ति भव-तृष्णाकी पूर्ति करती है। इस प्रकार यह भव-तृष्णाका आहार होता है और भव-तृष्णाकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जैसे पर्वतके ऊपर भारी वर्षा होनेसे वह जल ढलानकी ओर बहता हुआ गुफा-दरारोंको भर देता है, गुफा-दरारोंको भरता हुआ छोटे तालाबोंको भरता है, छोटे तालाबोंको भरता हुआ बड़े तालाबोंको भरता है, बड़े तालाबोंको भरता हुआ छोटी नदियोंको भरता है, छोटी नदियोंको भरता हुआ महानदियोंको भरता है तथा महानदियोंको भरता हुआ महासमुद्र सागरको भरता है; इस प्रकार इस महासमुद्र सागरका आहार होता है और उसकी पूर्ति होती है।

इसी प्रकार भिक्षुओ, असत्पुरुष-संगतिकी पूर्ति असद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति करती है। असद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति अश्रद्धाकी पूर्ति करती है। अश्रद्धाकी पूर्ति अयोनिसो मनसिकार (=बेढंगे विचार) की पूर्ति करती है। अयोनिसो मनसिकारकी पूर्ति अस्मृति असम्प्रजन्यकी पूर्ति करती है। अस्मृति-असम्प्रजन्यकी पूर्ति इन्द्रिय-असंयमकी पूर्ति करती है। इन्द्रिय-असंयमकी पूर्ति तीनों दुष्कर्मोंकी पूर्ति करती है। तीनों दुष्कर्मोंकी पूर्ति पाँच नीवरणोंकी पूर्ति करती है। पाँच नीवरणोंकी पूर्ति 'अविद्या-की पूर्ति करती है। 'अविद्या' की पूर्ति भव-तृष्णाकी पूर्ति करती है। इस प्रकार यह भव-तृष्णाका आहार होता है और भव तृष्णाकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, विद्या-विमुक्तिको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। 'विद्या-विमुक्ति' का प्रत्यय क्या है? इसका उत्तर है—सात बोधि-अंग। भिक्षुओ, सात बोधि-अंगोंको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। सात बोधि-अंगोंका क्या आहार है? इसका उत्तर है—चारों स्मृति उपस्थान। भिक्षुओ, चारों स्मृति-उपस्थानोंको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। चारों स्मृति-उपस्थानोंका क्या आहार है? इसका उत्तर है—तीनों शुभ कर्म। भिक्षुओ, तीनों शुभ-कर्मोंको भी मैं आहार आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। तीनों शुभ-कर्मोंका क्या आहार है? इसका उत्तर है—इन्द्रिय-संयम। भिक्षुओ, इन्द्रिय-संयमको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। इन्द्रिय-संयमका क्या आहार है? इसका उत्तर है—स्मृति-सम्प्रजन्य। भिक्षुओ

स्मृति-सम्प्रजन्यको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। स्मृति-सम्प्रजन्यका क्या आहार है? इसका उत्तर है—योनिसो मनसिकार। भिक्षुओ, योनिसो मनसिकारको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। योनिसो मनसिकारका क्या आहार है? इसका उत्तर है—श्रद्धा। भिक्षुओ, श्रद्धाको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ बिना आहारके नहीं। श्रद्धाका क्या आहार है? इसका उत्तर है—सद्धर्म-श्रवण। सद्धर्म-श्रवणको भी मैं आहार-आश्रित कहता हूँ, बिना आहारके नहीं। सद्धर्म-श्रवणका क्या आहार है? इसका उत्तर है—सत्पुरुष-संगति।

इस प्रकार भिक्षुओ, सत्पुरुष-संगतिकी पूर्ति सद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति करती है। सद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति श्रद्धाकी पूर्ति करती है। श्रद्धाकी पूर्ति योनिसो मनसिकारकी पूर्ति करती है। योनिसो मनसिकारकी पूर्ति स्मृति सम्प्रजन्यकी पूर्ति करती है। स्मृति-सम्प्रजन्यकी पूर्ति इन्द्रिय-संयमकी पूर्ति करती है। इन्द्रिय-संयमकी पूर्ति तीनों शुभ-कर्मोंकी पूर्ति करती है। तीनों शुभ-कर्मोंकी पूर्ति चारों स्मृति-उपस्थानोंकी पूर्ति करती है। चारों स्मृति उपस्थानोंकी पूर्ति सातों बोधि-अंगोंकी पूर्ति करती है। सातों बोधि-अंगोंकी पूर्ति विद्या-विमुक्तिकी पूर्ति करती है। इस प्रकार इस विद्या-विमुक्तिका आहार होता है और उसकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जैसे पर्वतके ऊपर भारी वर्षा होनेसे वह जल ढलानकी ओर....। इस प्रकार इस महासमुद्र सागरका आहार होता है और उसकी पूर्ति होती है।

इसी प्रकार भिक्षुओ,सत्पुरुष-संगतिकी पूर्ति सद्धर्म-श्रवणकी पूर्ति करती है... इस प्रकार इस विद्या-विमुक्तिका आहार होता है और उसकी पूर्ति होती है।

३. निट्ठंगसुत्त

भिक्षुओ, जिनकी मेरे प्रति निष्ठा है, वे सब (सम्यक्-) दृष्टि प्राप्त हैं। उन (सम्यक्-) दृष्टि प्राप्त व्यक्तियोंमें से पाँच तरहके व्यक्तियोंको यहीं निर्वाण प्राप्त हो जाता है, तथा पाँच तरहके व्यक्तियोंको यहाँ न होकर, निर्वाण प्राप्त होता है। वे पाँच प्रकारके व्यक्ति कौनसे हैं, जिनको यहीं निर्वाण प्राप्त हो जाता है? जो अधिक-से-अधिक सात जन्म और ग्रहण करेगा, जो एक जन्मसे दूसरे जन्मको जाता है (=कोलंकोल), जो एक ही जन्म और ग्रहण करेगा, जो एक ही बार और इस संसारमें आयेगा (=सकृदागामी) तथा जिसने इसी शरीरमें अर्हत्व लाभ कर लिया है—इन पाँच प्रकारके व्यक्तियोंको यहीं निर्वाण प्राप्त हो जाता है।

किन पाँच प्रकारके व्यक्तियोंको यहीं निर्वाण नहीं प्राप्त होता है? जो (अनागामी) किसी स्वर्ग-विशेषमें उत्पन्न होकर वहींसे निर्वाण प्राप्त होता है;

जो जन्म-मरणके कालको सीमित कर निर्वाणको प्राप्त होता है; जो बिना संस्कार (=शरीर) के निर्वाणको प्राप्त होता है; जो संस्कार (=शरीर) के साथ निर्वाणको प्राप्त होता है, जो ऊर्ध्व-श्रोत उच्चतम (=अकनिष्ठ) को प्राप्त होकर निर्वाण प्राप्त होता है—इन पाँच प्रकारके व्यक्तियोंको यहीं निर्वाण प्राप्त नहीं होता है।

भिक्षुओ, जिनकी मेरे प्रति निष्ठा है, वे सब (सम्यक्–) दृष्टि प्राप्त हैं। उन (सम्यक्) दृष्टि प्राप्त व्यक्तियोंमेंसे पाँच तरहके व्यक्तियोंको यहीं निर्वाण प्राप्त हो जाता है, तथा पाँच तरहके व्यक्तियोंको यहाँ न होकर, निर्वाण प्राप्त होता है।[1]

४. अवेच्चप्पसन्नसुत्त

भिक्षुओ, जिनकी मुझमे अटूट श्रद्धा है, वे सब स्रोतापन्न हैं। उन स्रोतापन्न व्यक्तियोंमेंसे पाँच तरहके व्यक्तियोंको यहीं निर्वाण प्राप्त हो जाता है, तथा पाँच तरहके व्यक्तियोंको यहाँ न होकर निर्वाण प्राप्त होता है। वे पाँच प्रकारके व्यक्ति कौनसे हैं, जिनको यहीं निर्वाण प्राप्त हो जाता है? जो अधिक-से-अधिक सात जन्म और ग्रहण करेगा, जो एक जन्मसे दूसरे जन्मको जाता है, जो एक ही जन्म और ग्रहण करेगा, जो एक ही बार और इस संसारमें आयेगा (=सकृदागामी) तथा जिसने इसी शरीरमें अर्हत्व लाभ कर लिया है—इन पाँच प्रकारके व्यक्तियोंको यहीं निर्वाण प्राप्त हो जाता है।

किन पाँच प्रकारके व्यक्तियोंको यहाँ न होकर निर्वाण प्राप्त होता है? जो (अनागामी) अपने जीवन-कालमें किसी स्वर्ग विशेषको प्राप्त होता है, जो जन्म-मरणके कालको सीमित कर परिनिर्वाणको प्राप्त होता है; जो बिना संस्कारके परिनिर्वाण को प्राप्त होता हैं; जो संस्कारके साथ परिनिर्वाणको प्राप्त होता है, जो ऊर्ध्व-स्रोत अकनिष्ठको प्राप्त होनेवाला है—इन पाँच प्रकारके व्यक्तियोंको यहाँ न होकर निर्वाण प्राप्त होता है।

भिक्षुओ, जिनकी मुझमें अटूट श्रद्धा है वे सब स्रोतापन्न हैं। उन स्रोतापन्न व्यक्तियोंमेंसे पाँच तरहके व्यक्तियोंको यहीं निर्वाण प्राप्त हो जाता है; पाँच तरहके व्यक्तियोंको यहाँ न होकर, निर्वाण प्राप्त होता है।

---

१. निर्वाण-प्राप्त करनेवालोंका यह दस प्रकारका वर्गीकरण अस्पष्ट ही है। (अनु०)

५. पठमसुखसुत्त

एक समय आयुष्मान सारिपुत्र मगध (जनपद) के नालिका-ग्राममें विहार करते थे। उस समय सामण्डकानि परिव्राजक जहाँ आयुष्मान सारिपुत्र थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर आयुष्मान सारिपुत्रका कुशल-क्षेम पूछा। कुशल-क्षेमकी बात-चीत समाप्त हो चुकनेपर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए सामण्डकानि परिव्राजकने आयुष्मान सारिपुत्रको यह कहा—

"सारिपुत्र! 'सुख' क्या है? 'दु:ख' क्या है?"

"आयुष्मान्! जन्म लेना दुख है; जन्म न लेना सुख है। आयुष्मान्! जन्म होनेपर इस 'दुख' को सम्भव मानना चाहिए—सर्दी, गरमी, भूख, प्यास, पाखाना, पेशाब, आगका स्पर्श, दण्डका स्पर्श, शस्त्रका स्पर्श तथा रिश्तेदार और मित्र भी आकर रुष्ट हो जाते हैं। आयुष्मान्! जन्म होनेपर इस 'दुख' को सम्भव मानना चाहिए।

आयुष्मान्! जन्म न होनेपर इस 'सुख' को सम्भव मानना चाहिए—सर्दीका न होना, गरमीका न होना, भूखका न लगना, प्यासका न लगना, पाखानेका न लगना, पेशाबका न लगना, आगका स्पर्श न होना, दण्डका स्पर्श न होना, शस्त्रका स्पर्श न होना, तथा रिश्तेदारों और मित्रोंका रुष्ट न होना। आयुष्मान! जन्म न होनेपर इस 'सुख' को सम्भव मानना चाहिए।

६. दुतियसुखसुत्त

एक समय आयुष्मान सारिपुत्र मगध (जनपद) के नालिका-ग्राममें विहार करते थे। उस समय सामण्डकानि परिव्राजक जहाँ आयुष्मान सारिपुत्र थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर आयुष्मान सारिपुत्रका कुशल-क्षेम पूछा। कुशल-क्षेमकी बातचीत समाप्त हो चुकनेपर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए सामण्डकानि परिव्राजकने आयुष्मान सारिपुत्रको यह कहा—

"सारिपुत्र! इस बुद्ध-शासन (=धर्म-विनय) में क्या 'सुख' है और क्या 'दुख' है?"

आयुष्मान्! इस बुद्ध-शासन (=धर्म-विनय) में मनका न लगना (=अनभिरति) दुख है और मनका लगना (=अभिरति) सुख है। आयुष्मान्! मनका न लगना (=अनभिरति) होनेपर इस दुखकी सम्भावना है—चलते समय भी सुख अनुकूलताका अनुभव नहीं करता, खड़ा हुआ भी ...... बैठा हुआ भी ...... लेटा हुआ भी .... ग्राम गया हुआ भी ...... अरण्य गया हुआ भी .... वृक्षकी

छायामें गया हुआ भी.......एकान्त-स्थानमें गया हुआ भी.......खुले आकाशके नीचे गया हुआ भी........तथा भिक्षुओंके मध्य गया हुआ भी सुख अनुकूलताका अनुभव नहीं करता। आयुष्मान्! मनका न लगना (=अनभिरति) होनेंपर इस दुखकी सम्भावना है।

आयुष्मान्! मनका लगना (=अभिरति) होनेपर इस सुखकी सम्भावना है—चलते समय भी सुख अनुकूलताका अनुभव करता है.......खड़ा हुआ भी ...,...बैठा हुआ भी......लेटा हुआ भी.......ग्राम गया हुआ भी...... अरण्य गया हुआ भी.......वृक्षकी छायामें गया हुआ भी.......एकान्त-स्थानमें गया हुआ भी.........खुले आकाशके नीचे गया हुआ भी......तथा भिक्षुओंके मध्य गया हुआ भी सुख अनुकूलताका अनुभव करता है। आयुष्मान! मनका लगना होनेपर इस 'सुख' की सम्भावना है।

७. पठमनळकपानसुत्त

एक समय भगवान कोशल(जनपद) में महान भिक्षु संघ सहित चारिका करते हुए जहाँ कोशल (जनपद) के लोगोंका नळकपान नामका निगम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान नळकपानके पलास-वनमें विहार कर रहे थे। उस समय भगवान उपोसथके दिन भिक्षु संघसे घिरे हुए विराजमान थे। तब भगवानने रात्रिके बहुतसे भागमें भिक्षु संघको धार्मिक-कथा द्वारा (मार्ग) दिखा, प्रेरित कर, उत्साहित कर, हर्षित कर, जब यह देखा कि भिक्षु संघ मौन है, तो आयुष्मान सारिपुत्रको सम्बोधित किया—

"सारिपुत्र! भिक्षुसंघ आलस्य-तन्द्रा रहित है। तुम्हें भिक्षु-संघको धार्मिक-कथा कहना अच्छा लगे। मेरी पीठमें दर्द हो रहा है। मैं लेटूँगा।"

"भन्ते! अच्छा" कह आयुष्मान सारिपुत्रने भगवानको प्रतिवचन दिया।

तब भगवानने संघाटी (चीवर) को चौहरा बिछवाया और उसपर (वे) दाहिनी करवट सिंह-शैय्यासे लेटे, पैरपर पैर रख, स्मृति तथा सम्प्रजन्यसे युक्त, उठनेके संकल्पको मनमें जगह देकर। उस समय आयुष्मान सारिपुत्रने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"आयुष्मान् भिक्षुओ।"

उन भिक्षुओंने "हाँ आयुष्मान्" कहकर सारिपुत्रको प्रतिवचन दिया। आयुष्मान सारिपुत्रने यह कहा—

"आयुष्मानो! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा नहीं है... लज्जा नहीं है.....भय नहीं है वीर्य (=कोशिश) नहीं है....प्रज्ञा नहीं है, उसके

जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी अवनति ही होती है, उन्नति नहीं। आयुष्मान्, जैसे चन्द्रमाके कृष्ण-पक्षमें चन्द्रमाके जो रात-दिन बीतते हैं, उनमें चन्द्रमाके वर्णका, मण्डलका, आभाका, विस्तारका ह्रास ही होता है। उसी प्रकार आयुष्मानो ! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा नहीं है......लज्जा नहीं है......भय नहीं है.....वीर्य (= कोशिश) नहीं है.......प्रज्ञा नहीं है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी अवनति ही होती है, उन्नति नहीं।

"आयुष्मानो ! जो अश्रद्धावान व्यक्ति है, उसका ह्रास होता ही है; आयुष्मानो ! जो लज्जा-रहित व्यक्ति है, उसका ह्रास होता ही है; आयुष्मानो ! जो (पाप–) भीरु व्यक्ति नहीं है, उसका ह्रास होता ही है; आयुष्मानो ! जो आलसी व्यक्ति उसका ह्रास होता ही है; आयुष्मानो ! जो दुष्प्रज्ञ व्यक्ति है, उसका ह्रास होता ही है; आयुष्मानो ! जो क्रोधी व्यक्ति है, उसका ह्रास होता ही है; आयुष्मानो ! जो निर्दयी व्यक्ति है, उसका ह्रास होता ही है; आयुष्मानो ! जो पापेच्छ व्यक्ति है, उसका ह्रास होता ही है; आयुष्मानो ! जो कुसंगतिमें रहनेवाला व्यक्ति है, उसका ह्रास होता ही है,; आयुष्मानो ! जो मिथ्या-दृष्टि व्यक्ति है, उसका ह्रास होता ही है।

आयुष्मानो ! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा है.....लज्जा है.......डर है.....वीर्य है.......प्रज्ञा है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी उन्नति ही होती है, अवनति नहीं। भिक्षुओ, जैसे चन्द्रमाके शुक्ल-पक्षमें चन्द्रमाके जो रात-दिन बीतते हैं, उनमें चन्द्रमाके वर्णका, मण्डलका, आभाका, विस्तारका विकास ही होता है। इसी प्रकार आयुष्मानो ! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा है.......लज्जा है........डर है.....वीर्य है........प्रज्ञा है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी उन्नति ही होती है, अवनति नहीं।

"आयुष्मानो ! जो श्रद्धावान व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है; आयुष्मानो ! जो लज्जा-शील व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है; आयुष्मानो ! जो (पाप–) भीरु व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है; आयुष्मानो ! जो अप्रमादी व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है; आयुष्मानो ! जो प्रज्ञावान व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है; आयुष्मानो ! जो शान्त व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है; आयुष्मानो ! जो दयावान व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है; आयुष्मानो ! जो अलेच्छ व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है; आयुष्मानो !

जो सुसंगतिमें रहनेवाला व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है; आयुष्मानो! जो सम्यक्-दृष्टि व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है।"

तब भगवानने उठकर आयुष्मान सारिपुत्रको सम्बोधित किया—सारिपुत्र! बहुत अच्छा। बहुत अच्छा। सारिपुत्र! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा नहीं है......लज्जा नहीं है......भय नहीं है......वीर्य नहीं है......प्रज्ञा नहीं है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी अवनति ही होती है, उन्नति नहीं। सारिपुत्र! जैसे चन्द्रमाके कृष्ण-पक्षमें चन्द्रमाके जो रात-दिन बीतते हैं, उनमें चन्द्रमाके वर्णका, मण्डलका, आभाका, विस्तारका ह्रास होता ही है। इसी प्रकार सारिपुत्र! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा नहीं है......प्रज्ञा नहीं है, उसके जो भी रात-दिन......उन्नति नहीं।

"सारिपुत्र! जो अश्रद्धावान व्यक्ति है, उसका ह्रास होता ही है;....जो लज्जा-रहित व्यक्ति है....जो (पाप-) भीरू व्यक्ति नहीं है....जो आलसी व्यक्ति है.......जो दुष्प्रज्ञ व्यक्ति है.......जो क्रोधी व्यक्ति है.......जो निर्दयी व्यक्ति है........जो पापेच्छ व्यक्ति है......जो कुसंगतिमें रहनेवाला व्यक्ति है....जो मिथ्या-दृष्टि व्यक्ति है, उसका ह्रास होता ही है।

सारिपुत्र! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा है.....लज्जा है......डर है......वीर्य है......प्रज्ञा है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी उन्नति ही होती है, अवनति नहीं। सारिपुत्र! जैसे चन्द्रमाके शुक्ल पक्षमें चन्द्रमाके जो रात-दिन बीतते हैं, उनमें चन्द्रमाके वर्णका, मण्डलका, आभाका, विस्तारका विकास ही होता है। इसी प्रकार सारिपुत्र! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा है......लज्जा है.......डर है.......वीर्य है.......प्रज्ञा है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी उन्नति ही होती है, अवनति नहीं।

"सारिपुत्र! जो श्रद्धावान व्यक्ति है, उसका विकास होता ही है....जो लज्जा-शील व्यक्ति है.......जो (पाप-) भीरु व्यक्ति है......जो अप्रमादी व्यक्ति है......जो प्रज्ञावान व्यक्ति है......जो शान्त व्यक्ति है......जो दयावान व्यक्ति है.........जो अल्पेच्छ व्यक्ति है....जो सुसंगतिमें रहनेवाला व्यक्ति है.......जो सम्यक्-दृष्टि व्यक्ति है उसका सारिपुत्र! विकास होता ही है।

८. दुतिय नळकपानसुत्त

एक समय भगवान् नळकपानके पलास-वनमें विहार करते थे। उस समय भगवान उपोसथके दिन भिक्षु संघसे घिरे विराजमान थ। तब भगवानने रात्रिके बहुतसे भागमें भिक्षु-संघको धार्मिक कथा द्वारा (मार्ग) दिखा, प्रेरित कर, उत्साहित कर, हर्षित कर, जब यह देखा कि भिक्षु-संघ मौन है, तो आयुष्मान सारिपुत्रको सम्बोधित किया—

"सारिपुत्र! भिक्षु-संघ आलस्य-तन्द्रा रहित है। तुम्हें भिक्षु-संघको धार्मिक-कथा कहना अच्छा लगे। मेरी पीठमें दर्द हो रहा है। मैं लेटूंगा।" "भन्ते! अच्छा" कह आयुष्मान सारिपुत्रने भगवान्को प्रतिवचन दिया।

तब भगवानने संघाटी (चीवर) को चौहरा बिछवाया और उसपर (वे) दाहिनी करवट, सिंह शैय्यासे लेटे, पैरपर पैर रख, स्मृति तथा सम्प्रजन्यसे युक्त, उठनेके संकल्पको मनमें जगह देकर। उस समय आयुष्मान सारिपुत्रने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"आयुष्मान् भिक्षुओ!"

उन भिक्षुओंने "हाँ आयुष्मान्!" कहकर सारिपुत्रको प्रतिवचन दिया। आयुष्मान सारिपुत्रने यह कहा—

"आयुष्मानो! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा नहीं है.... लज्जा नहीं है.....भय नहीं है....वीर्य नहीं है.....प्रज्ञा नहीं है....ध्यानसे सुनता नहीं है.....धर्मको धारण करता नहीं है.....अर्थका विचार करता नहीं है.....धर्मानुसार आचरण नहीं है.....अप्रमाद नहीं है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी अवनति ही होती है, उन्नति नहीं। आयुष्मानो! जैसे चन्द्रमाके कृष्ण-पक्षमें चन्द्रमाके जो रात-दिन बीतते हैं, उनमें चन्द्रमाके वर्णका, मण्डलका, आभाका, विस्तारका ह्रास ही होता है। इसी प्रकार आयुष्मानो! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा नहीं है.....लज्जा नहीं है.....भय नहीं है.....वीर्य (=कोशिश) नहीं है.....प्रज्ञा नहीं है..... ध्यानसे सुनता नहीं है.....धर्मको धारण करता नहीं है.....अर्थका विचार करता नहीं है...धर्मानुसार आचरण करता नहीं है...अप्रमाद नहीं है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी अवनति ही होती है, उन्नति नहीं।

आयुष्मानो! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा है....लज्जा है.....डर है.....वीर्य है.....प्रज्ञा है.....ध्यानसे सुनता है.....धर्मको

धारण करता है....अर्थका विचार करता है.....धर्मानुसार आचरण करता है.......अप्रमाद है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी उन्नति ही होती है, अवनति नहीं। आयुष्मानो! जैसे चन्द्रमाके शुक्ल पक्षमें चन्द्रमाके जो रात-दिन बीतते हैं, उनमें चन्द्रमाके वर्णका, मण्डलका, आभाका, विस्तारका विकास ही होता है। इसी प्रकार आयुष्मानो! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा है.....लज्जा है.....डर है.....वीर्य है.....प्रज्ञा है......ध्यानसे सुनता है.......धर्मको धारण करता है......अर्थका विचार करता है.....धर्मानुसार आचरण करता है.....अप्रमाद है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी उन्नति ही होती है, अवनति नहीं।

तब भगवानने उठकर आयुष्मान सारिपुत्रको सम्बोधित किया—"सारि-पुत्र! बहुत अच्छा। बहुत अच्छा। सारिपुत्र! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा नहीं है......लज्जा नहीं है.....भय नहीं है.....वीर्य नहीं है.....प्रज्ञा नहीं है......ध्यानसे सुनता नहीं है......धर्मको धारण करता नहीं है.......अर्थका विचार करता नहीं है.....धर्मानुसार आचरण करता नहीं है.....अप्रमाद नहीं है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी अवनति ही होती है, उन्नति नहीं। सारिपुत्र! जैसे चन्द्रमाके कृष्ण-पक्षमें चन्द्रमाके जो रात-दिन बीतते हैं, उनमें चन्द्रमाके वर्णका, मण्डलका, आभाका, विस्तारका ह्रास ही होता है। इसी प्रकार सारिपुत्र! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा नहीं है......अप्रमाद नहीं है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल धर्मोंके प्रति उसकी अवनति ही होती है, उन्नति नहीं।

सारिपुत्र! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा है.....लज्जा है......डर है.....वीर्य है....प्रज्ञा है.....ध्यानसे सुनता है.....धर्मको धारण करता है...... अर्थका विचार करता है.. ..धर्मानुसार आचरण करना है.. ..अप्रमाद है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी उन्नति ही होती है, अवनति नहीं। सारिपुत्र! जैसे चन्द्रमाके शुक्ल पक्षमें चन्द्रमाके जो रात-दिन बीतते हैं, उनमें चन्द्रमाके वर्णका, मण्डलका, आभाका, विस्तार-का विकास ही होता है। इसी प्रकार सारिपुत्र! जिस किसीके मनमें कुशल-धर्मोंके प्रति श्रद्धा है.....अप्रमाद है, उसके जो भी रात-दिन बीतते हैं, उनमें कुशल-धर्मोंके प्रति उसकी उन्नति ही होती है, अवनति नहीं।

९. पठमकथावत्थुसुत्त

एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार कर रहे थे। उस समय बहुतसे भिक्षु भिक्षाटनसे लौट, पिण्डपात (= भिक्षा) ग्रहण कर चुकनेके अनन्तर उपस्थान-शालामें इकट्ठे होकर बैठे रहनेपर अनेक प्रकारकी व्यर्थकी बातचीतमें संलग्न थे, जैसे—राजाओं सम्बन्धी बातचीत, चोरों सम्बन्धी बातचीत, महामात्यों सम्बन्धी बातचीत, सेना सम्बन्धी बातचीत, भय सम्बन्धी बातचीत, युद्ध सम्बन्धी बातचीत, भोजन (= अन्न) सम्बन्धी बातचीत, पेय (पदार्थ) सम्बन्धी बातचीत, वस्त्रों सम्बन्धी बातचीत, शयन सम्बन्धी बातचीत, (पुष्प—) मालाओं सम्बन्धी बातचीत, सुगन्धियों सम्बन्धी बातचीत, रिश्तेदारों सम्बन्धी बातचीत, वाहनों सम्बन्धी बातचीत, ग्रामों सम्बन्धी बातचीत, निगमों सम्बन्धी बातचीत, नगरों सम्बन्धी बातचीत, जनपदों सम्बन्धी बातचीत, स्त्रियों सम्बन्धी बातचीत, शूरों सम्बन्धी बातचीत (सुरा सम्बन्धी बातचीत ?), रात्रि-यात्राओं (= विशिखा) सम्बन्धी बातचीत, कुम्भों (= तीर्थ स्थानों) सम्बन्धी बातचीत, पूर्व प्रेत (= मृत सम्बन्धियों) सम्बन्धी बातचीत, नाना प्रकारके जीवों सम्बन्धी बातचीत, लोक-निर्माण (कर्तृवाद) सम्बन्धी बातचीत, सामुद्रिक (= फलित ज्योतिष) सम्बन्धी बातचीत, भवाभव सम्बन्धी बातचीत।

तब भगवान शामके समय ध्यानावस्थासे उठ, जहाँ उपस्थानशाला थी, वहाँ पधारे। पधारकर विछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवानने भिक्षुओंसे पूछा—"भिक्षुओ,! इस समय इकट्ठे बैठे क्या बातचीत कर रहे थे? इस समय तुम लोगोंमें क्या बातचीत चल रही थी?"

"भन्ते! भिक्षाटनसे लौट, पिण्डपात (= भिक्षा) ग्रहण कर चुकनेके अनन्तर, उपस्थान-शालामें इकट्ठे होकर बैठे रहनेपर हम अनेक प्रकारकी व्यर्थकी बातचीतमें संलग्न थे, जैसे—'राजाओं सम्बन्धी बातचीत.... भवाभव सम्बन्धी बातचीत।"

"भिक्षुओ, ये तुम्हारे लिए—ऐसे कुलपुत्रोंके लिए जो श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुए हैं—योग्य नहीं है कि तुम अनेक प्रकारकी बेकारकी बातचीतमें संलग्न रहो, जैसे राजाओं सम्बन्धी बातचीत, चोरों सम्बन्धी बातचीत, महामात्यों सम्बन्धी बातचीत, सेना सम्बन्धी बातचीत, भय सम्बन्धी बातचीत, युद्ध सम्बन्धी बातचीत, भोजन (= अन्न), सम्बन्धी बातचीत, पेय (= पदार्थ) सम्बन्धी बातचीत, वस्त्रों सम्बन्धी बातचीत, शयन सम्बन्धी बातचीत, (पुष्प =) मालाओं सम्बन्धी बातचीत, सुगन्धियों सम्बन्धी बातचीत, रिश्तेदारों सम्बन्धी बातचीत,

वाहनों सम्बन्धी बातचीत, ग्रामों सम्बन्धी बातचीत, निगमों सम्बन्धी बातचीत, नगरों सम्बन्धी बातचीत, जनपदों सम्बन्धी बातचीत, स्त्रियों सम्बन्धी बातचीत, शूरों सम्बन्धी बातचीत (सुरा सम्बन्धी बातचीत ?), रात्रि-यात्राओं (= विशिखा) सम्बन्धी बातचीत, कुम्भों (= तीर्थ स्थानों) सम्बन्धी बातचीत, पूर्व-प्रेत (मृत सम्बन्धियों) सम्बन्धी बातचीत, नाना प्रकारके जीवों सम्बन्धी बातचीत, लोक-निर्माण (—कर्तृवाद) सम्बन्धी बातचीत, सामुद्रिक (= फलित ज्योतिष) सम्बन्धी बातचीत, भवाभव सम्बन्धी बातचीत।

"भिक्षुओ, ये दस कथा-प्रकरण हैं। कौनसे दस ? अल्पेच्छ-कथा, सन्तुष्टि-कथा, प्रविवेक-कथा, असंसर्ग-कथा, वीर्यारम्भ-कथा, शीलकथा, समाधि-कथा, प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति-कथा तथा विमुक्ति-ज्ञान दर्शन कथा। भिक्षुओ, ये दस कथा वस्तु (= प्रकरण) हैं।

"भिक्षुओ, यदि तुम इन्हीं दस कथा-प्रकरणों को लेकर बातचीत करते रहो, तो दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकोंका तो कहना ही क्या, ये जो महाऋद्धिमान, महानु-भाव वाले चन्द्रमा तथा सूर्य हैं, तुम इनको भी अपने तेजसे अभिभूत कर दोगे।"

१०. दुतिय कथावत्थुसुत्त

एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार कर रहे थे। उस समय बहुतसे भिक्षु, भिक्षाटनसे लौट, पिण्डपात (= भिक्षा) ग्रहण कर चुकनेके अनन्तर, उपस्थान-शालामें इकट्ठे होकर बैठे रहनेपर, अनेक प्रकारकी व्यर्थकी बातचीतमें संलग्न थे, जैसे—राजाओं सम्बन्धी बातचीत..... भवाभव सम्बन्धी बातचीत।

भिक्षुओ, ये दस प्रशंसनीय बातें हैं। कौन-सी दस ? भिक्षुओ, भिक्षु स्वयं अल्पेच्छ होता है तथा दूसरे भिक्षुओंके साथ अल्पेच्छाकी बातचीत करनेवाला होता है। स्वयं अल्पेच्छ भिक्षु होना, तथा अल्पेच्छताकी बात-चीत करनेवाला भिक्षु होना—यह प्रशंसनीय बात है।

स्वयं सन्तुष्ट होता है तथा दूसरे भिक्षुओंके साथ सन्तोषकी बातचीत करने-वाला होता है। स्वयं सन्तुष्ट भिक्षु होना, तथा सन्तोषकी बातचीत करनेवाला भिक्षु होना—यह प्रशंसनीय बात है।

स्वयं एकान्त-सेवी होता है तथा दूसरे भिक्षुओंके साथ एकान्त-सेवनकी बातचीत करनेवाला होता है। स्वयं एकान्त-सेवी भिक्षु होना, तथा एकान्त-सेवनकी बातचीत करनेवाला भिक्षु होना—यह प्रशंसनीय बात है।

स्वयं अनासक्त होता है तथा दूसरे भिक्षुओंसे अनासक्ति (=असंसर्ग) की बातचीत करनेवाला होता है। स्वयं अनासक्त भिक्षु होना तथा अनासक्तिकी बातचीत करनेवाला भिक्षु होना—यह प्रशंसनीय बात है।

स्वयं प्रयत्न करनेवाला होता है तथा दूसरे भिक्षुओंसे प्रयत्नारम्भ करनेकी बातचीत करनेवाला होता है। स्वयं प्रयत्न करनेवाला भिक्षु होना, तथा प्रयत्नारम्भ-की बातचीत करनेवाला भिक्षु होना—यह प्रशंसनीय बात है।

स्वयं शीलवान होता है तथा दूसरे भिक्षुओंसे शील-सम्पदाकी बातचीत करनेवाला होता है। स्वयं शीलवान भिक्षु होना, तथा शील-सम्पदाकी बातचीत करनेवाला भिक्षु होना—यह प्रशंसनीय बात है।

स्वयं समाधि-लाभी होता है तथा दूसरे भिक्षुओंसे समाधि-लाभकी बात-चीत करनेवाला होता है। स्वयं समाधि-लाभी भिक्षु होना तथा समाधि-सम्पदाकी बातचीत करनेवाला भिक्षु होना—यह प्रशंसनीय बात है।

स्वयं प्रज्ञायुक्त होता है तथा दूसरे भिक्षुओंसे प्रज्ञा-सम्पदाकी बातचीत करनेवाला होता है। स्वयं प्रज्ञायुक्त भिक्षु होना तथा प्रज्ञासम्पदाकी बातचीत करनेवाला भिक्षु होना—यह प्रशंसनीय बात है।

स्वयं विमुक्तियुक्त होता है तथा दूसरे भिक्षुओंसे विमुक्ति-सम्पदाकी बातचीत करनेवाला होता है। स्वयं विमुक्तियुक्त भिक्षु होना तथा विमुक्ति-सम्पदाकी बातचीत करनेवाला भिक्षु होना—यह प्रशंसनीय बात है।

स्वयं विमुक्ति-ज्ञान-दर्शनयुक्त होता है तथा दूसरे भिक्षुओंसे विमुक्ति-ज्ञान-दर्शनकी बातचीत करनेवाला होता है। स्वयं विमुक्ति ज्ञान-दर्शन युक्त भिक्षु होना तथा विमुक्ति-ज्ञान-दर्शनकी बातचीत करनेवाला भिक्षु होना—यह प्रशंसनीय बात है।

८—आकङ्ख वर्ग

१. आकङ्ख सुत्त

एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ!" उन भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवचन दिया—"भदन्त"। भगवानने यह कहा—

भिक्षुओ, शीलवान होकर विचरो, प्रातिमोक्षके नियमोंको पालन करते हुए, अपने आचरणको व्यवस्थित रखते हुए, छोटेसे छोटे दोषोंके करनेमें भी डरते हुए, शिक्षा-पदोंका सम्यक प्रकार अभ्यास करो।

"भिक्षुओ, यदि भिक्षुकी यह आकांक्षा हो कि मैं अपने सब्रह्मचारियोंका प्रिय बनूं, उन्हें अच्छा लगूं, उनका सत्कार–भाजन बनूं, तो उसे चाहिए कि वह शीलकी ही पूर्तिमें लगे, अन्दरूनी चित्त–शान्तिको प्राप्त करे, ध्यानी हो, विपश्यना-भावनासे युक्त हो तथा एकान्त–सेवी (= शून्यागारोंको बढ़ानेवाला)हो।

भिक्षुओ, यदि भिक्षुकी यह आकांक्षा हो कि उसे चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय, भैषज्य–परिष्कारोंकी प्राप्ति हो, तो उसे चाहिए कि वह शीलकी पूर्तिमें लगे, अन्दरूनी चित्त-शान्तिको प्राप्त करे, ध्यानी हो, विपश्यना–भावनासे युक्त हो तथा एकान्त-सेवी (= शून्यागारोंको बढ़ानेवाला) हो।

भिक्षुओ, यदि भिक्षुकी यह आकांक्षा हो कि मैं जिन (गृहस्थोंके लिए) चीवर–पिण्डपात–शयनासन–ग्लान–प्रत्यय, भैषज्य-परिष्कारोंका उपभोग करता हूँ, उनके ये उपकार उनको महान फल महान शुभ-परिणाम देनेवाले हों, तो उसे चाहिए कि वह शीलकी पूर्तिमें लगे .....एकान्त-सेवी हो।

भिक्षुओ, यदि भिक्षुकी यह आकांक्षा हो कि जो मेरे परलोकगत रक्त-सम्बन्धी हैं और जो प्रसन्न-चित्त रहकर अनुस्मरण करते हैं, उनको (यह दान) महान फल, महान् शुभ परिणाम देनेवाला हो, तो उसे चाहिए कि वह शीलकी पूर्तिमें लगे.......एकान्त-सेवी हो।

भिक्षुओ, यदि भिक्षुकी यह आकांक्षा हो कि मैं जैसे-तैसे चीवर-पिण्डपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कारसे सन्तुष्ट रहूँ, तो उसे चाहिए कि वह शीलकी पूर्तिमें लगे।.......एकान्त-सेवी हो।

भिक्षुओ, यदि भिक्षुकी यह आकांक्षा हो कि मैं शीत-उष्ण, भूख, प्यास, डांस-मच्छर, हवा-धूपमें रेंगनेवाले जानवरोंके स्पर्शको सहन कर सकूँ; दुरुक्त, दुरागत वचनोंको सहन कर सकूँ तथा दुखद, तीव्र, प्रखर, कटु, प्रतिकूल, बुरी लगनेवाली, प्राण हरण करनेवाली शारीरिक पीड़ाओंको सहन कर सकूँ, तो उसे चाहिए कि वह शीलकी पूर्तिमें लगे ......एकान्तसेवी हो।

भिक्षुओ, यदि भिक्षुकी यह आकांक्षा हो कि मैं अरति-रतिको सहन करनेवाला होऊँ, अरति-रतिको मुझे न सहन करना पड़े, मैं उत्पन्न अरति-रतिको अभिभूत करके विहार करूँ, तो उसे चाहिए कि वह शीलकी पूर्तिमें लगे ......एकान्तसेवी हो।

भिक्षुओ, यदि भिक्षुकी यह आकांक्षा हो कि मैं भय-भैरवको सहन करनेवाला होऊँ, भय-भैरवको मुझे न सहन करना पड़े, मैं उत्पन्न भय-भैरवको अभिभूत करके विहार करूँ, तो उसे चाहिए कि वह शीलकी पूर्तिमें लगे ....एकान्तसेवी हो।

भिक्षुओ, यदि भिक्षुकी यह आकांक्षा हो कि मैं इसी जन्ममें सुखद चारों चैतसिक ध्यानोंको अनायास, आसानीसे प्राप्त कर सकनेवाला होऊँ, तो उसे चाहिए कि वह शीलकी पूर्तिमें लगे........एकान्त-सेवी हो।

"भिक्षुओं, यदि भिक्षुकी आकांक्षा हो कि मैं आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूँ, तो उसे चाहिए कि वह शीलकी पूर्तिमें लगे, अन्दरूनी चित्त-शान्तिको प्राप्त करे, ध्यानी हो, विपश्यना-भावनासे युक्त हो तथा एकान्त-सेवी (=शून्यागारोंको बढ़ानेवाला) हो।

"भिक्षुओ, शीलवान होकर विचरो, प्रातिमोक्षके नियमोंको पालन करते हुए, अपने आचरणको व्यवस्थित रखते हुए, छोटे-से-छोटे दोषोंके करनेमें भी डरते हुए, शिक्षा पदोंका सम्यक प्रकारसे अभ्यास करो," यह जो कहा गया, यह उक्त अर्थमें ही कहा गया।

२. कण्टक सुत्त

एक समय भगवान वैशालीके महावनकी कूटागार-शालामें बहुतसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थविर शिष्यों—आयुष्मान चाल, आयुष्मान उपचाल, आयुष्मान् कुक्कुट, आयुष्मान कळिम्भ, आयुष्मान निकट तथा आयुष्मान कटिस्सह—के साथ विहार करते थे।

उस समय बहुतसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध लिच्छवी अच्छी-अच्छी सवारियोंपर चढ़कर, आगे-पीछे चलते हुए, बड़ा शोर-हल्ला मचाते हुए, भगवानके दर्शनके लिए सारे बनको गाह रहे थे। तब उन आयुष्मानोंके मनमें यह हुआ— बहुतसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लिच्छवी अच्छी-अच्छी सवारियोंपर चढ़कर, आगे पीछे चलते हुए, बड़ा शोर-हल्ला मचाते हुए, भगवानके दर्शनके लिए सारे बनको गाह रहे हैं। भगवानने 'शब्द'को ध्यानोंका 'कण्टक' कहा है। हम जहाँ गो-शृंग-शाल-वन है वहाँ चलें। वहाँ हम बिना शोर-शराबेके सुखपूर्वक रह सकेंगे। तब वे आयुष्मान जहाँ गो-शृंग-शाल वन था, वहाँ पहुँचे। वहाँ वे आयुष्मान बिना शोर शराबेके सुखपूर्वक रहने लगे।

तब भगवानने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—भिक्षुओ! इस समय चाल कहाँ है, उपचाल कहाँ है, कुक्कुट कहाँ है, कळिम्भ कहाँ है, निकट कहाँ है, कटिस्सह कहाँ है; भिक्षुओ, वे स्थविर श्रावक कहाँ चले गए हैं।"

"भन्ते! उन आयुष्मानोंका यह विचार हुआ, ये बहुतसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लिच्छवी अच्छी-अच्छी सवारियोंपर चढ़कर, आगे-पीछे चलते हुए, बड़ा शोर-हल्ला मचाते हुए, भगवानके दर्शनके लिए सारे वनको गाह रहे हैं।......वहाँ हम बिना शोर-शराबेके सुख-पूर्वक रह सकेंगे।" तब वे आयुष्मान जहाँ गो-शृंग-शाल वन है, वहाँ चले गए। वहाँ वे आयुष्मान बिना शोर-शराबेके सुख-पूर्वक रह सकते हैं।"

"भिक्षुओ, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। जैसे उन महान श्रावकोंने सम्यक प्रकार समझ कर कहा है ठीक, वैसे ही मैंने भी कहा है कि ध्यानोंके लिए शब्द कण्टक है।

"भिक्षुओ, ये दस काँटे हैं। कौनसे दस? एकान्तमें रहनेकी इच्छा रखनेवालेके लिए मण्डलीमें रहना काँटा है, अशुभ (= असुन्दर) रूपकी भावना करनेवालेके लिए शुभ (= सुन्दर) की ओर ध्यान देना काँटा है, इन्द्रिय-संयमीके लिए रातको होनेवाले तमाशे आदि देखना काँटा है, ब्रह्मचर्य्यके लिए स्त्रियोंकी संगतिमें रहना काँटा है, प्रथम-ध्यानके लिए शब्द (= आवाज) काँटा है, द्वितीय-ध्यानके लिए वितर्क-विचार काँटा, तृतीय-ध्यानके लिए प्रीति काँटा है, चतुर्थ-ध्यानके लिए साँसका आना-जाना हैं काँटा है, तथा जो संज्ञा-वेदनाके निरोधकी अवस्थाको प्राप्त हो गया है, उसके लिए संज्ञा काँटा है, वेदना काँटा है, राग काँटा है, द्वेष काँटा है और मोह काँटा है।

"भिक्षुओ, बिना काँटेके विचरो। भिक्षुओ, निष्कण्टक होकर विचरो। भिक्षुओ, बिना काँटेके—निष्कण्टक होकर विचरो। भिक्षुओ, अर्हत बिना काँटेके होते हैं। भिक्षुओ, अर्हत निष्कण्टक होते हैं। भिक्षुओ, अर्हत बिना-काँटेके—निष्कण्टक होते हैं।

३. इट्ठधम्म सुत्त

भिक्षुओ, ये दस बातें (= धर्म) ऐसी हैं, जो इष्ट हैं, आकर्षक हैं, अच्छी हैं, किन्तु लोकमें दुर्लभ हैं। कौन-सी दस? भोग्य-पदार्थ इष्ट हैं, आकर्षक हैं, अच्छे हैं, किन्तु लोकमें दुर्लभ हैं। वर्ण (= सौन्दर्य) इष्ट है, आकर्षक है, अच्छा है, किन्तु लोकमें दुर्लभ है। आरोग्य इष्ट है, आकर्षक है, अच्छा है, किन्तु लोकमें दुर्लभ है। शील इष्ट है, आकर्षक है, अच्छा है, किन्तु लोकमें दुर्लभ है। ब्रह्मचर्य इष्ट है, आकर्षक है, अच्छा है, किन्तु लोकमें दुर्लभ है। मित्र इष्ट हैं, आकर्षक हैं, अच्छे है; किन्तु लोकमें दुर्लभ हैं। बहुश्रुत (= विद्वान) होना इष्ट है, आकर्षक है, अच्छा है; किन्तु लोकमें दुर्लभ है। प्रज्ञा इष्ट है, आकर्षक है, अच्छी है; किन्तु लोकमें दुर्लभ

हैं। धर्म इष्ट हैं, आकर्षक हैं, अच्छे हैं; किन्तु लोकमें दुर्लभ हैं। स्वर्ग (=सुख) इष्ट है, आकर्षक है, अच्छा है, किन्तु लोकमें दुर्लभ है।

"भिक्षुओ, ये जो दस बातें (=धर्म) इष्ट हैं, आकर्षक हैं, अच्छी हैं, किन्तु लोकमें दुर्लभ हैं; इन दस बातों (=धर्मों) में दस बाधक-कारण हैं। आलस्य, अनुत्साह भोग्य पदार्थोंकी प्राप्तिमें बाधा डालता है। बनाव-श्रृंगार नहीं करना वर्ण (=सौन्दर्य) की प्राप्तिमें बाधा डालता है। प्रतिकूल चर्या स्वास्थ्यकी प्राप्तिमें बाधा डालती है। कुसंगति सदाचारके लिए खतरनाक है। इन्द्रियोंका असंयम ब्रह्मचर्यके लिए खतरनाक है। अविश्वास मैत्रीके लिए खतरनाक है। अपुनरावृत्ति बहुश्रुतपनके लिए खतरनाक है। (गुरुकी) सेवा न करना तथा (गुरुसे) प्रश्न न पूछना प्रज्ञाके लिए खतरनाक है, ध्यान-भावनामें न लगना (=अननुयोग) तथा प्रत्यवेक्षणाका न करना (लोकोत्तर) धर्मोंके लिए खतरनाक है। मिथ्याचरण स्वर्ग (=सुख) की प्राप्तिमें खतरनाक है। भिक्षुओ, ये जो दस बातें (=धर्म) इष्ट हैं, आकर्षक हैं, अच्छे हैं, किन्तु लोकमें दुर्लभ हैं, इन दस बातोंकी प्राप्तिमें ये दस बाधक-कारण हैं।

भिक्षुओ, ये जो दस बातें (=धर्म) इष्ट हैं, आकर्षक हैं, अच्छे हैं, किन्तु लोकमें दुर्लभ हैं; इन दस बातोंकी प्राप्तिमें ये दस सहायक-कारण (=आहार) हैं। उत्साह तथा आलस्यका न होना भोग्य-पदार्थोंका आहार है। बनाव-श्रृंगार करना शरीर-सौन्दर्यका आहार है। अनुकूल चर्या आरोग्यका आहार है। सत्संगति सदाचारका आहार है। इन्द्रिय-संयम ब्रह्मचर्यका आहार है। विश्वास मैत्रीका आहार है। पुनरावृत्ति बहुश्रुतपन (=विद्वत्ता))का आहार है। (गुरुकी) सेवा तथा (गुरुसे) प्रश्न पूछना प्रज्ञाका आहार है। ध्यान-भावनामें लगना तथा प्रत्यवेक्षणा (लोकोत्तर) धर्मोंका आहार है। सम्यक आचरण स्वर्ग (=सुखों) का आहार है। भिक्षुओ, इन दस इष्ट, आकर्षक, अच्छी बातों(=धर्मों)के लिए ये दस आहार हैं।

४. वड्ढि सुत्त

भिक्षुओ, जो आर्य-श्रावक इन दस बातोंमें वृद्धिको प्राप्त होता है, वह आर्य-उन्नतिको प्राप्त करनेवाला होता है, सारके ग्रहण करनेवाला तथा श्रेष्ठके ग्रहण करनेवाला कौन-सी दस बातोंमें? क्षेत्र-वस्तुमें अभिवृद्धि होती है, धन-धान्यकी दृष्टिसे वृद्धि होती है, पुत्र-कलत्रकी दष्टिसे वृद्धि होती है, नौकर-चाकर की दृष्टिसे वृद्धि होती है, (गौ-बैल आदि) जानवरोंकी दृष्टिसे वृद्धि होती है, श्रद्धाकी दृष्टिसे वृद्धि होती है, शीलकी दृष्टिसे वृद्धि होती है, श्रुत (=विद्या) की दृष्टिसे वृद्धि

होती है, त्यागकी दृष्टिसे वृद्धि होती है तथा प्रज्ञाकी दृष्टिसे वृद्धि होती है। भिक्षुओ, जो आर्य-श्रावक इन दस बातोंमें वृद्धि को प्राप्त होता है, वह आर्य-उन्नतिको प्राप्त करनेवाला होता है, सारके ग्रहण करनेवाला तथा श्रेष्ठके ग्रहण करनेवाला।

धनेन धञ्ञेन च योध वड्ढति,
पुत्तेहि दारेहि चतुप्पदेहि च।
स भोगवा होति यसस्सि पूजितो,
ञातीहि मित्तेहि अथोपि राजुभि॥
सद्धाय सीलेन च योध वड्ढति,
पञ्ञाय चागेन सुतेन चूभयं।
सो तादिसो सप्पुरिसो विचक्खणो,
दिट्ठेव धम्मे उभयेन वड्ढति॥

(जो धन-धान्य, पुत्र-कलत्र, तथा ढोर-पशुओंकी दृष्टिसे वृद्धिको प्राप्त होता है, वह ऐश्वर्य-सम्पन्न आदमी, रिश्तेदारों, मित्रों तथा सरकार (=राजाओं) द्वारा यशस्वी होता है, आदृत होता है। जो श्रद्धा, शील, प्रज्ञा, त्याग तथा बहुश्रुतपनकी दृष्टिसे वृद्धिको प्राप्त होता है। वह बुद्धिमान सत्पुरुष इसी शरीरमें दोनों दृष्टियोंसे उन्नत होता है।

५. मिगसाला सुत्त

एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। तब आयुष्मान आनन्द पूर्वाह्नमें चीवर पहनकर, पात्र तथा चीवर ले, जहाँ मृगशाला उपासिकाका घर था, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर बिछे आसनपर बैठे। तब मृगशाला उपासिका जहाँ आयुष्मान आनन्द थे, वहाँ पहुँची और जाकर आयुष्मान आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी हुई मृगशाला उपासिकाने आयुष्मान आनन्दसे प्रश्न किया :—

"भन्ते आनन्द! भगवानने कैसे इस दुर्ज्ञेय धर्मका उपदेश दिया है कि परलोकमें ब्रह्मचारी तथा अब्रह्मचारी दोनोंकी समान गति होती है। भन्ते! मेरा पिता (पुराण) ब्रह्मचारी था—ग्राम्य मैथुन-धर्मसे विरत रहनेवाला। उसके मरनेपर भगवानने कहा—"वह सकृदागामी होकर मरा है। वह तुषित-लोकमें उत्पन्न होगा। "भन्ते! मेरा पितामह ऋसिदत्त उत्तम अब्रम्हचारी था, अपनी पत्नीसे संतुष्ट रहनेवाला। उसके मरनेपर भी भगवानने कहा—'वह सकृदागामी होकर मरा है। वह तुषित लोकमें उत्पन्न होगा।"

"भन्ते आनन्द! भगवानने कैसे इस दुर्ज्ञेय धर्मका उपदेश दिया है कि परलोकमें ब्रह्मचारी तथा अब्रह्मचारी दोनोंकी समान गति होती है?" ऐसा कहनेपर भन्ते! मैंने मृगशाला उपासिकाको यह कहा—"बहन। हाँ, भगवानने ऐसा ही भविष्य-कथन (=व्याकरण) किया है।"

"आनन्द! कहाँ तो वह मूर्ख मृगशाला उपासिका, कच्ची-बुद्धिवाली और कच्ची प्रज्ञावाली और कहाँ आदमियोंकी इहलोक तथा परलोक सम्बन्धी गतिका ज्ञान!

"आनन्द! संसारमें दस तरहके व्यक्ति हैं। कौनसे दस तरहके? आनन्द! एक आदमी 'दुश्शील' होता है। उसे न चित्तकी विमुक्तिका और न प्रज्ञाकी विमुक्तिका यथार्थ ज्ञान (=अनुभव) होता है, जिसे प्राप्त होनेसे उसकी दुश्शीलताका सम्पूर्ण निरोध हो सकता है। उसने न (धर्म) श्रवण किया होता है, न बहुश्रुतपन किया होता है, न (सम्यक्) दृष्टि द्वारा बींधा होता है और समय-समयपर धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति-प्रामोद्यकी प्राप्ति भी नहीं की होती। शरीरके न रहनेपर, मरनेपर वह हीन-अवस्थाको प्राप्त होता है, विशेषको नहीं। वह हीन-मार्गी ही होता है, विशेष-मार्गी नहीं।

"आनन्द! एक (दूसरा) आदमी 'दुश्शील' होता है। उसे चित्तकी विमुक्तिका, प्रज्ञाकी विमुक्तिका यथार्थ ज्ञान (=अनुभव) होता है, जिसे प्राप्त होनेसे उसकी दुश्शीलताका सम्पूर्ण-निरोध हो सकता है। उसने (धर्म—) श्रवण किया होता है, बहुश्रुतपन किया होता है, (सम्यक्) दृष्टि द्वारा बींधा होता है और समय-समयपर धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति-प्रामोद्यकी प्राप्तिकी होती है। शरीरके न रहनेपर, मरनेपर वह विशेष अवस्थाको प्राप्त होता है, हीनको नहीं; वह विशेष-मार्गी होता है, हीन-मार्गी नहीं।

"अब आनन्द! तुलना करनेवाले (=प्रमाणिका) तुलना करते हैं—'इसमें भी वे ही गुण रहे, दूसरेमें भी वे ही गुण रहे। इनमें एक हीन-अवस्थाको और दूसरा विशेष-अवस्थाको क्यों प्राप्त हुआ है?' आनन्द! ऐसा करना उनके लिए दीर्घकाल तक अहितकर, दुखदायक होता है।

"आनन्द! इन दोनों दुश्शील आदमियोंमें जिसे चित्तकी विमुक्तिका, प्रज्ञाकी विमुक्तिका यथार्थ ज्ञान (=अनुभव) होता है, जिसे प्राप्त होनेसे उसकी दुश्शीलताका सम्पूर्ण निरोध हो सकता है। उसने धर्म-श्रवण किया होता है, बहुश्रुत-पन किया होता है, (सम्यक्—) दृष्टि द्वारा बींधा होता है और समय-समयपर

धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति-प्रामोद्यकी प्राप्ति की होती है। आनन्द! यह जो दूसरा आदमी है, वह पहले आदमीकी अपेक्षा श्रेष्ठतर है, प्रणीततर है। ऐसा किसलिए? आनन्द! इस आदमीमें धर्म-स्रोत बहता है। तथागतको छोड़कर इसके रहस्य (=अन्तर) को दूसरा कौन जान सकता है। इसलिए आनन्द! आदमियोंका तौलना (=प्रमाण करना) मत करो, आदमियोंकी तुलना मत करो। आनन्द! या तो मैं ही लोगोंकी नाप-जोखकर सकता हूँ, अन्यथा मेरे ही समान अन्य कोई।

"आनन्द! एक आदमी 'शीलवान' होता है। उसे न चित्तकी विमुक्तिका और न प्रज्ञाकी विमुक्तिका यथार्थ ज्ञान (=अनुभव) होता है, जिससे उसका 'शील' सम्पूर्ण रूपसे निरुद्ध होता है। उसने न (धर्म) श्रवण किया होता है, न बहुश्रुतपन किया होता है, न (सम्यक्) दृष्टि द्वारा बींधा होता है और न समय-समयपर धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति-प्रामोद्य की प्राप्ति ही की होती है। शरीरके न रहनेपर, मरनेपर वह हीन अवस्थाको प्राप्त होता है, विशेषको नहीं; वह हीन-मार्गी ही होता है, विशेष मार्गी नहीं।

"आनन्द! एक आदमी 'शीलवान' होता है। उसे चित्तकी विमुक्तिका, और प्रज्ञाकी विमुक्तिका यथार्थ ज्ञान (=अनुभव) होता है, जिससे उसका शील सम्पूर्ण रूपसे निरुद्ध होता है। उसने (धर्म—) श्रवण किया होता है, बहुश्रुतपन किया होता है, (सम्यक्) दृष्टि द्वारा बींधा होता है और समय समयपर धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति-प्रामोद्यकी प्राप्तिकी होती है। शरीरके न रहनेपर, मरनेपर वह विशेष अवस्थाको प्राप्त होता है, हीनको नहीं; वह विशेषमार्गी ही होता है, हीन मार्गी नहीं।

"अब आनन्द! तुलना करनेवाले तुलना करते हैं......अन्यथा मेरे ही समान अन्य कोई।

"आनन्द! एक आदमी 'राग-बहुल' होता है। उसे न चित्तकी विमुक्तिका और न प्रज्ञाकी विमुक्तिका यथार्थ ज्ञान (=अनुभव) होता है, जिससे उसका 'राग' सम्पूर्ण रूपसे निरुद्ध हो सकता है। उसने न (धर्म—) श्रवण किया होता है, न बहुश्रुतपन किया होता है, न (सम्यक्) दृष्टि द्वारा बींधा होता है और न समय समयपर धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति-प्रामोद्यकी ही प्राप्ति की होती है। शरीरके न रहनेपर, मरनेपर वह हीन अवस्थाको प्राप्त होता है, विशेषको नहीं; वह हीन-मार्गी ही होता है, विशेष-मार्गी नहीं।

"आनन्द! एक आदमी 'राग-बहुल' होता है। उसे चित्तकी विमुक्तिका और प्रज्ञाकी विमुक्तिका यथार्थ ज्ञान होता है, जिससे उसका राग सम्पूर्ण रूपसे निरुद्ध होता है। उसने (धर्म) श्रवण किया होता है, बहुश्रुतपन किया होता है, (सम्यक——) दृष्टि द्वारा बींधा होता है और समय समयपर धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति-प्रामोद्यकी ही प्राप्ति की होती है। शरीरके न रहनेपर, मरनेपर वह विशेष अवस्थाको प्राप्त होता है, हीनको नहीं; वह विशेष मार्गी ही होता है, हीन-मार्गी नहीं।

"अब आनन्द! तुलना करनेवाले तुलना करते हैं......अन्यथा मेरे ही समान अन्य कोई।

आनन्द! एक आदमी 'क्रोधी' होता है। उसे न चित्तकी विमुक्तिका और न प्रज्ञाकी विमुक्तिका यथार्थ-ज्ञान होता है, जिससे उसका 'क्रोध' सम्पूर्ण रूपसे निरुद्ध हो सकता है। उसने न (धर्म—) श्रवण किया होता है, न बहुश्रुतपन किया होता है, न (सम्यक्)—दृष्टि द्वारा बींधा होता है और न समय समयपर धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति-प्रामोद्यकी ही प्राप्ति की होती है। शरीरके न रहनेपर, मरनेपर, वह हीनावस्थाको प्राप्त होता है, विशेषको नहीं; वह हीन-मार्गी ही होता है, विशेष-मार्गी नहीं।

"आनन्द! एक आदमी 'क्रोधी' होता है। उसे चित्तकी विमुक्तिका, और प्रज्ञाकी विमुक्तिका, यथार्थ ज्ञान होता है, जिससे उसका 'क्रोध' सम्पूर्ण रूपसे निरुद्ध होता है। उसने (धर्म—) श्रवण किया होता है, बहुश्रुतपन किया होता है, (सम्यक–) दृष्टि द्वारा बींधा होता है और समय समयपर (धर्म—) श्रवणके ही द्वारा प्रीति-प्रामोद्यकी प्राप्ति की होती है। शरीरके न रहनेपर, मरनेपर, वह विशेष अवस्थाको प्राप्त होता है, हीनको नहीं; वह विशेष-मार्गी ही होता है, हीन-मार्गीनहीं।

"अब आनन्द! तुलना करनेवाले तुलना करते हैं......अन्यथा मेरे ही समान अन्य कोई।

"आनन्द! एक आदमी 'उद्धत' होता है। उसे न चित्तकी विमुक्तिका और न प्रज्ञाकी विमुक्तिका यथार्थ-ज्ञान होता है, जिससे उसका 'उद्धतपन' सम्पूर्ण रूपसे निरुद्ध हो सकता है। उसने न (धर्म—) श्रवण किया होता है, न बहुश्रुतपन किया होता है, न (सम्यक्—) दृष्टि द्वारा बींधा होता है और न समय-समयपर धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति-प्रामोद्यकी ही प्राप्ति की होती है। शरीरके न रहने मरनेपर, वह हीनावस्थाको प्राप्त होता है, विशेषको नहीं; वह हीन-मार्गी ही होता है, विशेष-मार्गी नहीं।

आनन्द ! एक आदमी 'उद्धत' होता है। उसे चित्तकी विमुक्ति और प्रज्ञाकी विमुक्तिका यथार्थ-ज्ञान होता है, जिससे उसका 'उद्धतपन' सम्पूर्ण रूपसे निरुद्ध हो जाता है। उसने धर्म-श्रवण किया होता है, बहुश्रुतपन किया होता ह, (सम्यक्)– दृष्टि द्वारा बींधा होता है और समय समयपर धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति प्रामोद्यकी ही प्राप्तिकी होती है। शरीरके न रहनेपर, मरनेपर, वह विशेष अवस्थाको को प्राप्त होता है, हीनको नहीं; वह विशेष-मार्गी ही होता है, हीन-मार्गी नहीं।

"अब आनन्द ! तुलना करनेवाले (= प्रामाणिका) तुलना करते हैं— 'इसमें भी वे ही गुण रहे, दूसरे में भी वे ही गुण रहे। इनमें एक हीन-अवस्थामेंको दूसरा विशेष-अवस्थाको क्यों प्राप्त हुआ है ?'

आनन्द ! ऐसा करना उनके लिए दीर्घ काल तक अहितकर, दुखदायक होता है।

"आनन्द ! इन दोनों 'उद्धत' आदमियोंमें जिसे चित्तकी विमुक्तिका, प्रज्ञाकी विमुक्तिका, यथार्थ ज्ञान (= अनुभव) होता है, जिसे होनेसे उसके उद्धतपनका सम्पूर्ण निरोध होता है; उसने धर्म-श्रवण किया होता है, बहुश्रुतपन किया होता है, (सम्यक्–) दृष्टि द्वारा बींधा होता है और समय-समयपर धर्म-श्रवणके द्वारा प्रीति-प्रामोद्यकी प्राप्तिकी होती है। आनन्द ! यह जो दूसरा आदमी है, यह पहले आदमीकी अपेक्षा श्रेष्ठतर है, प्रणीततर है। ऐसा किसलिए ? आनन्द ! इस आदमीमें धर्म-श्रोत बहता है। तथागतको छोड़कर इस रहस्य (= अन्तर) को दूसरा कौन जान पड़ता है। इसलिए आनन्द ! आदमियोंका तौलना (= प्रमाण करना) मत करो, आदमियों-की तुलना मत करो। आनन्द ! या तो मैं ही लोगोंकी नाप-जोख कर सकता हूँ, अन्यथा मेरे ही समान अन्य कोई।

"आनन्द ! कहाँ तो वह मूर्ख मृगशाला उपासिका, कच्ची बुद्धिवाली और कच्ची प्रज्ञावाली और कहाँ आदमियोंकी इहलोक तथा परलोक सम्बन्धी गतिका ज्ञान !

"आनन्द ! जिस 'शील' से पुराण युक्त था, उसी 'शील' से ऋषिदत्त युक्त हुआ; पुराणने ऋषिदत्तकी गतिको नहीं जाना। आनन्द ! जिस प्रकारकी प्रज्ञासे ऋषिदत्त युक्त था, उसी प्रकारकी प्रज्ञासे पुराण युक्त हुआ; ऋषिदत्तने पुराणकी गतिको नहीं जाना।

"आनन्द ! ये दोनों आदमी एक-एक अंगसे हीन रहे।

६ तयोधम्म सुत्त

भिक्षुओ, यदि ये तीन बातें (= धर्म) लोकमें न हों, तो न लोकमें तथागत, सम्यक् सम्बुद्ध उत्पन्न हों और न तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय (= बुद्ध-शासन) दीप्तिको प्राप्त हो। कौनसी तीन बातें (= धर्म)? जन्म, जरा तथा मरण। भिक्षुओ, यदि ये तीन बातें लोकमें न हों, तो न लोकमें तथागत, सम्यक् सम्बुद्ध उत्पन्न हों और न तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय (= बुद्ध शासन) दीप्तिको प्राप्त हो। भिक्षुओ, क्योंकि ये तीन बातें लोकमें हैं, इसीलिए लोकमें तथागत, सम्यक् सम्बुद्ध उत्पन्न होते हैं, और तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय (= बुद्ध -शासन) दीप्ति को प्राप्त होता है।

भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई जन्म, जरा तथा मृत्युसे मुक्त हो सके। किन तीन बातोंका? राग, द्वेष तथा मोहका। भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई जन्म, जरा तथा मृत्युसे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई राग, द्वेष तथा मोहसे मुक्त हो सके। किन तीन बातोंका? सत्काय दृष्टि; विचिकित्सा (= संशय) तथा शील-व्रत-परामर्शका। भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई राग, द्वेष तथा मोहसे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा तथा शील-व्रत-परामर्शसे मुक्त हो सके। किन तीन बातोंका? उल्टे ढंगसे विचार करने (= अयोनिसो-मनसिकार), कुमार्ग-सेवन तथा तथा चित्तकी जड़ता। भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा तथा शील-व्रत-परामर्शसे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई अयोनिसो मनसिकार, कुमार्ग-सेवन तथा चित्तकी जड़तासे मुक्त हो सके। किन तीन बातोंका? मूढ़-स्मृतिका, असम्प्रजन्यका तथा चित्तके विक्षेपका। भिक्षुओ बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए यह असम्भव है कि कोई अयोनिसो मनसिकार, कुमार्ग-सेवन तथा चित्तकी जड़तासे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई मूढ़-स्मृतिसे, असम्प्रजन्यसे तथा चित्तके विक्षेपसे मुक्त हो सके। किन तीन बातोंका? आर्योंका दर्शन करनेकी अनिच्छाका, आर्य-धर्मका श्रवण करनेकी अनिच्छा-

का, तथा उपालम्भ-चित्तका। भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए यह असम्भव है कि कोई मूढ़-स्मृतिसे, असम्प्रजन्यसे तथा चित्तके विक्षेपसे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई आर्यों (=श्रेष्ठ जनों) के दर्शन करनेकी अनिच्छासे, आर्य-धर्मका श्रवण करनेकी अनिच्छासे तथा उपालम्भ चित्तसे विमुक्त हो सके। कौन-सी तीन बातोंका? उद्धतपनका, असंयमका तथा दुश्शीलताका। भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई आर्योंके दर्शन करनेकी अनिच्छासे, आर्य-धर्मका श्रवण करनेकी अनिच्छासे तथा उपालम्भ-चित्तसे विमुक्त हो सके।

भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए यह असम्भव है कि कोई उद्धतपनसे ,असंयमसे तथा दुश्शीलतासे मुक्त हो सके। कौनसी तीन बातोंका? अश्रद्धाका, निर्दयताका तथा आलस्यका। भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए, यह असम्भव है कि कोई उद्धतपनसे, असंयमसे तथा दुश्शीलतासे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए यह असम्भव है कोई अश्रद्धासे, निर्दयतासे तथा आलस्यसे मुक्त हो सके। कौनसी तीन बातोंका? अगौरवका, दुर्वचनताका तथा बुरी संगतिका। भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए यह असम्भव है कि कोई अश्रद्धासे, निर्दयतासे तथा आलस्यसे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए यह असम्भव है कि कोई अगौरवसे, दुर्वचनतासे तथा बुरी संगतिसे मुक्त हो सके। कौनसी तीन बातोंका? निर्लज्जताका, पाप-भीरु न होनेका तथा प्रमादी होनेका। भिक्षुओ, बिना इन तीन बातोंका परित्याग किए यह असम्भव है कि कोई अगौरवसे, दुर्वचनतासे तथा बुरी संगति से मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, जो निर्लज्ज होता है, वह पाप करनेमें निर्भय होता है तथा प्रमादी होता है। जो प्रमादी होता है, उसके लिए यह असम्भव है कि वह अगौरवका, दुर्वचनता का तथा बुरी संगतिका परित्याग कर सके। जो बुरी संगतिमें रहता है, उसके लिए यह असम्भव है कि वह अश्रद्धाका त्याग कर सके, निर्दयताका त्याग कर सके तथा आलस्यका त्याग कर सके। जो आलसी होता है, उसके लिए यह असम्भव है कि वह उद्धतपनका त्याग कर सके, असंयमका त्याग कर सके तथा दुश्शीलताका त्याग कर सके जो दुश्शील होता है, उसके लिए यह असम्भव है कि वह श्रेष्ठ जनों (=आर्यों) के दर्शनकी अनिच्छाका त्याग कर सके, आर्य-धर्म सुननेकी अनिच्छाका त्याग कर सके तथा

उपालम्भ-चित्तका त्याग कर सके। जो उपालम्भ-चित्त वाला होता है, उसके लिए यह असम्भव है कि वह मूढ़-स्मृतिका त्याग कर सके, असम्प्रजन्य-भावका त्याग कर, सके तथा चित्तके विक्षेपका त्याग कर सके। जो अनेकाग्र(= विक्षिप्त) चित्त होता है, उसके लिए यह असम्भव है कि वह अयोनिसो मनसिकारका त्याग कर सके, कुमार्ग-सेवनका त्याग कर सके तथा चित्तकी जड़ताका त्याग कर सके। जो चित्त जड़तासे युक्त होता है, उसके लिए असम्भव है कि वह सत्काय-दृष्टिका त्याग कर सके विचिकित्सा (= संशय)का त्याग कर सके तथा शील-व्रत-परामर्श का त्याग कर सके। जो विचिकित्सा (= संशय) से युक्त होता है, उसके लिए यह असम्भव है कि वह रागका त्याग कर सके, द्वेषका त्याग कर सके तथा मोहका त्याग कर सके। जो राग, द्वेष तथा मोहसे मुक्त नहीं है, उसके लिए यह असम्भव है कि वह जन्म, जरा तथा मरणका त्याग कर सके।

भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग कर सकनेसे यह सम्भव है कि कोई जन्म, जरा तथा मृत्युसे मुक्त हो सके। किन तीन बातोंका? राग, द्वेष तथा मोहका। भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग कर सकनेसे यह सम्भव है कि कोई जन्म, जरा तथा मृत्युसे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग कर सकनेसे यह सम्भव है कि कोई राग, द्वेष तथा मोहसे मुक्त हो सके। किन तीन बातोंका? सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा(= संशय) तथा शीलव्रत-परामर्शका। भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग कर सकनेसे यह सम्भव है कि कोई राग, द्वेष तथा मोहसे मुक्त हो सके

भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग कर सकनेसे यह सम्भव है कि कोई सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा तथा शील-व्रत-परामर्शसे मुक्त हो सके। किन तीन बातोंका बातोंका? उल्टे ढंगसे विचार करने (= अयोनिसो मनसिकार) का, कुमार्ग सेवनका तथा चित्तकी जड़ताका। भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग कर सकनेसे यह सम्भव है कि कोई सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा तथा शील-व्रत-परामर्शसे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह सम्भव है कि कोई अयोनिसो मनसिकार, कुमार्ग-सेवन तथा चित्तकी जड़तासे मुक्त हो सके। किन तीन बातोंका? मूढ़-स्मृतिका, असम्प्रजन्यका तथा चित्तके विक्षेप का। भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह सम्भव है कि कोई अयोनिसो मनसिकार, कुमार्ग-सेवन तथा चित्तकी जड़तासे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह सम्भव है कि कोई मूढ़-स्मृतिका, असम्प्रजन्यका तथा चित्तके विक्षेपका त्याग कर सके। किन तीन बातोंका? आर्योंका दर्शन करनेकी अनिच्छाका, आर्य-धर्मका श्रवण करनेकी अनिच्छाका तथा उपालम्भ-चित्तका। भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह सम्भव है कि कोई मूढ़-स्मृतिका, असम्प्रजन्यका तथा चित्तके विक्षेपका त्याग कर सके।

भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह सम्भव है कि कोई आर्यों के दर्शन करनेकी अनिच्छाका, आर्य-धर्मका श्रवण करनेकी अनिच्छाका तथा उपालम्भ-चित्तका परित्यागकर सके। किन तीन बातोंका? उद्धतपनका, असंयमका तथा दुश्शीलताका। भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह सम्भव है कि कोई आर्योंके दर्शन करनेकी अनिच्छाका, आर्य-धर्मका श्रवण करनेकी अनिच्छाका तथा उपालम्भ-चित्तका परित्याग कर सके।

भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह सम्भव है कि कोई उद्धतपनसे, असंयमसे तथा दुश्शीलतासे मुक्त हो सके। कौनसी तीन बातोंका? अश्रद्धाका, निर्दयताका तथा आलस्यका। भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह-सम्भव है कि कोई उद्धतपनसे, असंयमसे तथा दुश्शीलतासे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह सम्भव है कि कोई अश्रद्धासे, निर्दयतासे तथा आलस्यसे मुक्त हो सके। कौन-सी तीन बातोंका? अगौरवका, दुर्वचनताका तथा बुरी संगतिका। भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे, यह सम्भव है कि कोई अश्रद्धासे, निर्दयतासे तथा आलस्यसे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह सम्भव है कि कोई अगौरवसे, दुर्वचनतासे तथा बुरी संगतिसे मुक्त हो सके। कौन-सी तीन बातोंका? निर्लज्जताका, पाप-भीरु न होनेका तथा प्रमादी होनेका। भिक्षुओ, इन तीन बातोंका परित्याग करनेसे यह सम्भव है कि कोई अगौरवसे, दुर्वचनतासे तथा बुरी संगतिसे मुक्त हो सके।

भिक्षुओ, जो लज्जाशील होता है, वह पाप करनेमें भीरु होता है तथा अप्रमादी होता है। जो अप्रमादी होता है उसके लिए यह सम्भव है कि वह अगौरवका, दुर्वचनताका तथा बुरी संगतिका परित्याग कर सके। जो बुरी संगतिमें नहीं रहता है, उसके लिए यह सम्भव है कि वह अश्रद्धाका, निर्दयताका तथा आलस्यका त्याग

कर सके। जो प्रयत्नशील होता है, उसके लिए यह सम्भव है कि वह उद्धतपनका, असंयमका तथा दुश्शीलताका त्याग कर सके। जो शीलवान होता है, उसके लिए यह सम्भव है कि वह श्रेष्ठ जनोंके दर्शनकी अनिच्छाका, आर्य-धर्म सुननेकी अनिच्छाका तथा उपालम्भ-चित्तका त्याग कर सके। जो उपालम्भ चित्तसे मुक्त होता है, उसके लिए यह सम्भव है कि वह मूढ़-स्मृतिका त्याग कर सके, असम्प्रजन्य भावका त्याग कर सके तथा चित्तके विक्षेपका त्याग कर सके। जो एकाग्रचित्त होता है, उसके लिए सम्भव है कि वह अयोनिसो मनसिकार (=बेढंगे विचार) का, कुमार्ग-सेवनका तथा चित्तकी जड़ताका त्याग कर सके। जो चित्तकी जड़तासे मुक्त होता है, उसके लिए यह सम्भव है कि वह सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा तथा शील-व्रत परा-मर्शका त्याग कर सके। जो विचिकित्सा (=संशय) से मुक्त होता है, उसके लिए यह सम्भव है कि वह रागका त्याग कर सके, द्वेषका त्याग कर सके तथा मोहका त्याग कर सके। जो राग-द्वेष तथा मोहसे मुक्त है, उसके लिए यह सम्भव है कि जन्म, जरा तथा मरणका परित्याग कर सके।

७. काक सुत्त

भिक्षुओ, कौवेमें दस दुर्गुण (=असद्धर्म) होते हैं। कौनसे दस? वह दुस्साहसी होता है, प्रगल्भ होता है, लोभी होता है, पेटू होता है, लालची होता है, निर्दयी होता है, दुर्बल होता है, ओरवित (= निम्न रुचिका ?) होता है, मूढ़-स्मृति होता है तथा नीच होता है। इस प्रकार भिक्षुओ, पापी-भिक्षुमें भी दस दुर्गुण (=असद्धर्म) होते हैं। कौनसे दस? वह दुस्साहसी होता है, प्रगलभ होता है, लोभी होता है, पेटू होता है, लालची होता है, निर्दयी होता है, दुर्बल होता है, ओरवित (= निम्न रुचिका ?) होता है, मूढ़-स्मृति होता है तथा नीच होता है। भिक्षुओ, पापी भिक्षुमें ये दस दुर्गुण होते हैं।

८. निगण्ठ सुत्त

भिक्षुओ, निर्ग्रन्थोंमें दस दुर्गुण (=असद्धर्म) होते हैं। कौनसे दस? भिक्षुओ, निर्ग्रन्थ अश्रद्धावान होते हैं। भिक्षुओ, निर्ग्रन्थ दुश्शील होते हैं। भिक्षुओ, निर्ग्रन्थ निर्लज्ज होते हैं। भिक्षुओ, निर्ग्रन्थ पाप-भीरु नहीं होते। भिक्षुओ, निर्ग्रन्थ असत्पु-रुषोंकी संगति में रहनेवाले होते हैं। भिक्षुओ, निर्ग्रन्थ आत्म-प्रशसक तथा परनिन्दक होते हैं। भिक्षुओ, निर्ग्रन्थ दुनियादार, जिद्दी तथा हठी होते हैं। भिक्षुओ, निर्ग्रन्थ ढोंगी होते हैं। भिक्षुओ, निर्ग्रन्थ पापेच्छ होते हैं तथा भिक्षुओ, निर्ग्रन्थ कुसंगतिमें रहने वाले होते हैं। भिक्षुओ, निर्ग्रन्थोंमें ये दस दुर्गुण होते हैं।

९. आघातवत्थु सुत्त

भिक्षुओ, ये दस बातें विद्वेषका कारण होती हैं। कौनसी दस? 'उसने मेरा अनर्थ किया,' सोच वैर बाँधता है, 'वह मेरा अनर्थ करता है,' सोच वैर बाँधता है, 'वह मेरा अनर्थ करेगा' सोच वैर बाँधता है। 'उसने मेरे प्रिय जनका, अनुकूल जनका अनर्थ किया है' सोच वैर बाँधताहै, 'वह मेरे प्रिय जनका, अनुकूल जनका अनर्थ करता है' सोच वैर बाँधता है,' वह मेरे प्रिय जनका, अनुकूल जनका अनर्थ करेगा' सोच वैर बाँधता है। 'उसने मेरे अप्रिय जनका, प्रतिकूल जनका हित (= अर्थ) किया है' सोच वैर बाँधता है, 'वह मेरे अप्रिय जनका, प्रतिकूल जनका अर्थ (= हित) करता है, सोच वैर बाँधता है, वह मेरे अप्रिय जनका, प्रतिकूल जनका हित (= अर्थ) करेगा' सोच वैर बाँधता है। वह बेमौके गुस्सा होता है। भिक्षुओ, ये दस बातें विद्वेषका कारण हैं।

१०. आघातपटिविनय सुत्त

भिक्षुओ, ये दस बातें हैं, जिनसे विद्वेषका शमन होता है। कौनसी दस? 'उसने मेरा अनर्थ किया है, (न करे) यह कहाँ मिलेगा' सोच विद्वेषका शमन करता है। 'वह मेरा अनर्थ करता है, (न करे) यह कहाँ मिलेगा' सोच विद्वेषका शमन करता है। 'वह मेरा अनर्थ करेगा, (न करे) यह कहाँ मिलेगा' सोच विद्वेषका शमन करता है। उसने मेरे प्रिय जनका, अनुकूल जनका अनर्थ किया, (न करे) यहाँ मिलेगा, सोच विद्वेषका शमन करता है। 'वह मेरे प्रिय जनका, अनुकूल जनका अनर्थ करता है,.... ....न करे, यह कहाँ मिलेगा' सोच विद्वेषका शमन करता है। 'वह मेरे प्रिय जनका अनुकूल जनका अनर्थ करेगा, (न करे) कहाँ मिलेगा' सोच विद्वेषका शमन करता है। वह अकारण क्रोधित नहीं होता। भिक्षुओ, ये दस बातें हैं, जो विद्वेषका शमन करनेवाली हैं।

९—थेर वग्ग

१. वाहन सुत्त

एक समय भगवान चम्पामें, जाकर पुष्करिणीके किनारे विचर रहते थे। उस समय आयुष्मान वाहन जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको प्रणाम कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान वाहनने भगवानको यह कहा—

"भन्ते! ऐसी कितनी बातें (= धर्म) हैं, जिनसे तथागत आसक्त नहीं हैं, निर्लिप्त नहीं हैं, विमुक्त हैं, तथा अबाधित चित्तसे विहार करते हैं?"

"वाहन! तथागत दस विषयों (=धर्मों) में आसक्त नहीं हैं, निर्लिप्त हैं, विमुक्त हैं तथा अबाधित चित्तसे विहार करते हैं। किन दस विषयोंमें? वाहन! तथागत रूपमें आसक्त नहीं हैं, निर्लिप्त हैं, विमुक्त हैं तथा अबाधित चित्तसे विहार करते करते हैं। वाहन! तथागत वेदनामें......विहार करते हैं। वाहन! तथागत संज्ञामें...... विहार करते हैं। वाहन! तथागत संस्कारमें.......विहार करते हैं। वाहन! तथागत विज्ञानमें.........विहार करते हैं। वाहन! तथागत जन्ममें........विहार करते हैं। वाहन! तथागत जरामें......विहार करते हैं। वाहन! तथागत मरणमें.......विहार करते हैं। वाहन! तथागत दुखोंमें........विहार करते हैं। वाहन! तथागत क्लेश (=चित्त मैल) में आसक्त नहीं हैं, निर्लिप्त हैं, विमुक्त हैं तथा अबाधित चित्तसे विहार करते हैं। वाहन! जैसे कमल या पद्म या पुण्डरीक पानीमें पैदा होता है, पानीमें बढ़ता है, पानीसे बाहर निकलकर स्थिर होता है किन्तु जलसे लिप्त नहीं होता। इसी प्रकार वाहन! तथागत इन दस विषयोंमें आसक्त नहीं हैं, निर्लिप्त हैं, विमुक्त हैं तथा अबाधित चित्तसे विहार करते हैं।

२. आनन्द सुत्त

उस समय आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान आनन्दको भगवान ने यह कहा—

"आनन्द! इसकी संभावना नहीं है कि कोई भिक्षु अश्रद्धावान हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द! इसकी संभावना नहीं है कि कोई भिक्षु दुश्शील हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द! इसकी संभावना नहीं है कि कोई भिक्षु अल्पश्रुत हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द! इसकी संभावना नहीं है कि कोई भिक्षु 'दुर्वच' हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द! इसकी संभावना नहीं है कि कोई भिक्षु कुसंगतिमें रहता हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द! इसकी संभावना नहीं है कि कोई भिक्षु आलसी हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द ! इसकी संभावना नहीं है कि कोई भिक्षु मूढ़स्मृति हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना नहीं है कि कोई भिक्षु असन्तुष्ट हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना नहीं है कि कोई भिक्षु, पापेच्छ हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना नहीं है कि कोई भिक्षु 'मिथ्या-दृष्टि' हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना नहीं है कि कोई भिक्षु इन दस दुर्गुणोंसे युक्त हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु श्रद्धावान हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो, वृद्धि हो।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु शीलवान हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो, वृद्धि हो।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु, बहुश्रुत हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो, वृद्धि हो।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु 'सुवच' हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो, उसकी वृद्धि हो।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु सुसंगतिमें रहता हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो, वृद्धि हो।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु अप्रमादी हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो, वृद्धि हो।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु उपस्थित-स्मृति हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो, वृद्धि हो।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु सन्तुष्ट हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो, वृद्धि हो।

"आनन्द ! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु अल्पेच्छ हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में उसकी उन्नति हो, वृद्धि हो।

"आनन्द! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु सम्यक्-दृष्टि हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध शासन) में उसकी उन्नति हो, वृद्धि हो।

"आनन्द! इसकी सम्भावना है कि कोई भिक्षु इन दस सद्गुणोंसे युक्त हो और इस धर्म-विनय (=बुद्ध शासन) में उसकी उन्नति हो सके, वृद्धि हो सके।

३. पुण्णिय सुत्त

तब आयुष्मान पूर्णीय जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान पूर्णीयने भगवानसे यह कहा—

"भन्ते! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है कि कभी तो तथागतकी धर्म-देशना स्पष्ट रूपसे समझमें आ जाती है, कभी स्पष्ट रूपसे समझमें नहीं आती?"

पूर्णीय! यदि भिक्षु केवल श्रद्धावान होता है, समीप जानेवाला नहीं होता तो तथागतकी धर्म-देशना स्पष्ट नहीं होती।......सेवामें उपस्थित नहीं रहता ......सेवामें उपस्थित रहता है, प्रश्न नहीं पूछता......प्रश्न पूछता है किन्तु ध्यान देकर धर्मोपदेश नहीं सुनता......ध्यान देकर धर्मोपदेश सुनता है लेकिन सुनकर धर्मको याद नहीं रखता......सुनकर धर्मोंको याद रखता है किन्तु धारण किए हुए धर्मोंके अर्थपर विचार नहीं करता......धारण किए हुए धर्मोंके अर्थपर विचार करता है, किन्तु धर्म तथा अर्थको जानकर तदनुसार आचरण नहीं करता.... धर्म तथा अर्थको जानकर तदनुसार आचरण करता है, किन्तु कल्याणकर, प्रिय, विश्वस्त, बुद्धिप्रधान, अर्थ को प्रकट करनेवाली वाणी बोलने वाला नहीं होता...... कल्याणकर, प्रिय, विश्वस्त, बुद्धिप्रधान, अर्थको प्रकट करनेवाली वाणी बोलने वाला होता है, किन्तु अपने सब्रह्मचारियोंका (मार्ग—) दर्शक नहीं होता, प्रेरित करनेवाला, उत्साहित करनेवाला तथा हर्षित करनेवाला, तो तथागतकी धर्म-देशना स्पष्ट नहीं होती।

पूर्णीय! जब भिक्षु श्रद्धावान होता है, समीप जानेवाला होता है, सेवामें उपस्थित रहनेवाला होता है; प्रश्न पूछनेवाला होता है; ध्यान देकर धर्मोपदेश सुननेवाला होता है, सुनकर धर्मको याद रखनेवाला होता है; धारण किए हुए धर्मोंके अर्थपर विचार करता है; धर्म तथा अर्थको जान कर तदनुसार आचरण करता है; कल्याणकर, प्रियकर, विश्वस्त, बुद्धिप्रधान, अर्थको प्रकट करनेवाली वाणी बोलने-वाला होता है, अपने सब्रह्मचारियोंका (मार्ग–) दर्शक होता है, प्रेरित करनेवाला, उत्साहित करनेवाला तथा हर्षित करने वाला, तो तथागतकी धर्म-देशना स्पष्ट होती है।

पूर्णीय! इन दस गुणोंसे युक्त भिक्षुको तथागतकी देशना सर्वांशमें स्पष्ट होती है।

४. ब्याकरण सुत्त

उस समय आयुष्मान महामौद्गल्यायनने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"आयुष्मान भिक्षुओ।" उन भिक्षुओंने आयुष्मान महामौद्गल्यायनको प्रतिवचन दिया—"आयुष्मानो।" आयुष्मान महामौद्गल्यायनने यह कहा—

"आयुष्मानो! यहाँ एक भिक्षु अपने अर्हत्व होनेकी घोषणा करता है:—'जन्म क्षीण हो गया है, ब्रह्मचर्य-वास (का उद्देश्य) पूरा हो गया, जो करना था वह सम्पन्न हो गया, अब यहाँ उत्पन्न होनेकी कारण शेष नहीं रहा—यह जानता हूँ।' उस भिक्षुसे तथागत या तथागतके कोई ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जानमें समर्थ होते हैं, चर्चा करते हैं, प्रश्न पूछते हैं तथा बातचीत करते हैं। जब तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उससे चर्चा करते हैं, प्रश्न पूछते हैं, बातचीत करते हैं[1] तो वह घबरा जाता है, चिन्तामें पड़ जाता है, दुखी होता है, कष्ट पाता है, अत्यन्त कष्ट पाता है।

"तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल, होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उसके चित्तको अपने चित्तसे जानकर, अपने मनमें सोचते हैं—यह आयुष्मान क्या अपने अर्हत होनेकी घोषणा करता है—'जन्म क्षीण हो गया है; ब्रह्मचर्य-वास (का उद्देश्य) पूरा हो गया है; जो करना था, वह सम्पन्न हो गया; अब यहाँ उत्पन्न होनेका कारण शेष नहीं रहा—यह जानता हूँ।'

तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं उसके चित्तको अपने चित्तसे इस प्रकार जानते हैं—'यह आयुष्मान्! क्रोधी है। बहुधा क्रोधकी अवस्थामें ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार क्रोधी होना अपनी हानि करना है।

"यह आयुष्मान निर्दयी है। बहुधा निर्दयता-युक्त चित्त लिए ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार निर्दयी होना अपनी हानि करना है।

"यह आयुष्मान ढोंगी है। बहुधा ढोंग-युक्त चित्त लिए ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार ढोंगी होना अपनी हानि करना है।

"आयुष्मान दुष्ट है। बहुधा दुष्ट चित्त लिए ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार दुष्ट होना अपनी हानि करना है।

आयुष्मान ईर्षालु है। बहुधा ईर्षालु चित्त लिए ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनय के अनुसार ईर्षालु होना अपनी हानि करना है।

आयुष्मान मात्सर्य-युक्त है। बहुधा मात्सर्य-युक्त चित्त लिए ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार मात्सर्य-युक्त होना अपनी हानि करना है।

आयुष्मान शठ है। बहुधा शठता-युक्त चित्त लिए ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार शठ होना अपनी हानि करना है।

आयुष्मान मायावी है। बहुधा मायावी चित्त लिए ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार मायावी होना अपनी हानि करना है।

आयुष्मान पापेच्छ है। बहुधा पापी चित्त लिए ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार पापेच्छ होना अपनी हानि करना है।

इस आयुष्मानको अभी और करणीय शेष है, लेकिन इसे जो सामान्य प्राप्ति (—विशेषाधिगम) हुई है, उससे यह बीचमें ही रुक गया है।

आयुष्मानो! वह भिक्षु इन दस दुर्गुणोंको बिना त्यागे इस धर्म-विनयमें उन्नतिको प्राप्त होगा, वृद्धिको प्राप्त होगा—इस की सम्भावना नहीं है।

आयुष्मानो! वह भिक्षु इन दस दुर्गुणोंको त्याग देनेसे इस धर्म-विनयमें उन्नतिको प्राप्त होगा, वृद्धिको प्राप्त होगा—इसकी सम्भावना है।

५. कत्थी सुत्त

एक समय आयुष्मान महाचन्द्र चेदी (जनपद) के सहजाति (नगर) में विहार करते थे। वहाँ आयुष्मान महाचन्द्रने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"आयुष्मान भिक्षुओ!" उन भिक्षुओंने "आयुष्मान" कह कर आयुष्मान महाचन्द्रको प्रतिवचन दिया। आयुष्मान महाचन्द्रने यह कहा—

आयुष्मान! कोई-कोई भिक्षु अध्यात्म-प्राप्ति (—अधिगम) के बारेमें बोलने वाला होता है, व्यर्थ बोलने वाला—"मैं प्रथम-ध्यानको प्राप्त करता हूँ, और उस ध्यानसे उठता (—रहित होता) भी हूँ, मैं दूसरे ध्यानको प्राप्त करता हूँ, और उस ध्यानसे उठता हूँ, मैं तृतीय-ध्यानको प्राप्त करता हूँ, और उस ध्यानसे उठता (—रहित होता) भी हूँ, मैं चतुर्थ ध्यान को प्राप्त करता हूँ और उस ध्यानसे उठता (—रहित) भी होता हूँ, मैं आकाशानञ्चायतन ध्यानको प्राप्त करता हूँ और उस ध्यानसे उठता (—रहित होता) भी हूँ, मैं विज्ञानञ्चायतन ध्यानको प्राप्त करता हूँ

और उस ध्यानसे उठता (--रहित होता) भी हूँ, मैं आकिञ्चायतन ध्यानको प्राप्त करता हूँ और उस ध्यानसे उठता (—रहित होता) भी हूँ, मैं न संज्ञा-न असंज्ञा ध्यानको प्राप्त करता हूँ और उस ध्यानसे उठता (—रहित) भी होता हूँ।'

"उस भिक्षुसे तथागत या तथागतके कोई ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उससे चर्चा करते हैं, प्रश्न पूछते है, बातचीत करते हैं। जब तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरे दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उससे चर्चा करते हैं, प्रश्न पूछते हैं, बात चीत करते हैं तो वह घबरा जाता है, चिन्तामें पड़ जाता है, दुखी होता है, कष्ट पाता है, अत्यन्त कष्ट पाता है।

तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उसके चित्तको अपने चित्तसे जानकर, अपने मनमें सोचते हैं—यह आयुष्मान अध्यात्म-प्राप्ति (—अधिगम) के बारेमें क्या बोलने वाला होता है, व्यर्थ बोलनेवाला—'मैं प्रथम-ध्यानको प्राप्त करता हूँ.....और उस ध्यानसे उठता (—रहित) भी होता हूँ।'

तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान प्राप्त होते हैं दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उसके चित्तको अपने चित्तसे जानते हैं—यह आयुष्मान दीर्घकालसे खंडितशील है, छिद्र-युक्त है, दोषोंसे समन्वित है तथा इसकी चादर पर धब्बे हैं। यह शीलोंके प्रति शान्त वृत्तिवाला, शान्त चरितवाला नहीं है। यह आयुष्मान दुश्शील है। तथागत के धर्म-विनयके अनुसार दुश्शील होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'अश्रद्धावान' है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार 'अश्रद्धावान' होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान अल्पश्रुत है, आचार-रहित है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार अल्पश्रुत होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'दुर्वच' है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार 'दुर्वच' होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'कुसंगति' में रहता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार 'कुसंगति' में रहना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'आलसी' है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार 'आलसी' होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'मूढ़-स्मृति' है। तथागतके धर्म-विनय' के अनुसार 'मूढ़-स्मृति' होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'ढोंगी' है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार 'ढोंगी' होना अपनी हानि करना है।

यह आयुष्मान 'दूभर' है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार 'दूभर' होना अपनी हानि करना है।

यह आयुष्मान 'दुष्प्रज्ञ' है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार 'दुष्प्रज्ञ' होना अपनी हानि करना है।

'आयुष्मानो! जैसे कोई एक मित्र अपने मित्रको कहे–'मित्र! जब तुझे धनकी जरूरत हो, मुझसे माँग लेना। मैं तुझे धन दूँगा।' धनकी किसी आवश्यकताके आ पड़नेपर वह मित्र अपने मित्रको कहे–'मित्र! मुझे धन अपेक्षित है। धन दे।' वह उसे कहे–'अच्छा मित्र! यहाँ खोदो।' उसे खोदनेपर वहाँ कुछ न मिले। वह कहे–'मित्र! तूने मुझे व्यर्थ कहा, तूने मुझे झूठ-मूठ कहा कि यहाँ खोदो।' वह कहे–'मित्र! मैंने तुझे व्यर्थ नहीं कहा, मैं ने तुझे झूठ-मूठ नहीं कहा कि यहाँ खोदो। अच्छा, यहाँ खोदो।' वहाँ खोदनेसे भी उसे कुछ न मिले। वह कहे–'मित्र! तूने मुझे व्यर्थ कहा, तूने मुझे झूठ-मूठ कहा कि यहाँ खोदो!' वह कहे–'मित्र! मैंने तुझे व्यर्थ नहीं कहा, मैं ने तुझे झूठ-मूठ नहीं कहा कि यहाँ खोदो। अच्छा, यहाँ खोदो!' वहाँ खोदनेसे भी उसे कुछ न मिले। वह कहे–'मित्र! तूने मुझे व्यर्थ कहा, तू ने मुझे झूठ-मूठ कहा कि यहाँ खोदो।' वह उत्तर दे–'मित्र! मैं ने तुझे व्यर्थ नहीं कहा, मैं ने तुझे झूठ-मूठ नहीं कहा मैं ही पगला गया हूँ। मेरा ही चित्त ठिकाने नहीं है।

इसी प्रकार आयुष्मानो! कोई-कोई भिक्षु अध्यात्म-प्राप्ति (—अधिगम) के बारेमें बोलनेवाला होता है, व्यर्थ बोलनेवाला–'मैं प्रथम-ध्यानको प्राप्त करता हूँ और उस ध्यानसे उठता (—रहित होता) भी हूँ; मैं दूसरे ध्यानको प्राप्त करता हूँ, और उस ध्यानसे उठता भी हूँ; मैं तृतीय-ध्यानको प्राप्त करता हूँ, और उस ध्यानसे उठता भी हूँ; मैं चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त करता हूँ और उस ध्यानसे उठता भी हूँ; मैं आकाशानञ्चायतन ध्यानको प्राप्त करता हूँ और उस ध्यानसे उठता भी हूँ; मैं विज्ञानञ्चायतन ध्यानको प्राप्त करता हूँ और उस ध्यानसे उठता भी हूँ; मैं आकिञ्चान्यायतन ध्यानको प्राप्त करता हूँऔर उस ध्यानसे उठता भी हूँ; मैं न संज्ञा-न-असंज्ञा ध्यानको प्राप्त करता हूँ और उस ध्यानसे उठता भी हूँ।

उस भिक्षुके तथागत या तथागतके कोई ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उससे चर्चा करते हैं, प्रश्न पूछते हैं, बातचीत करते हैं। जब तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उससे चर्चा करते हैं, प्रश्न पूछते हैं, बातचीत करते हैं तो वह घबरा जाता है, चिन्तामें पड़ जाता है, दुखी होता है, कष्ट पाता है, अत्यन्त कष्ट पाता है।

उसे भिक्षुकसे तथागत या तथागतके कोई ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उसके चित्तको अपने चित्तसे जानकर, अपने मनमें सोचते हैं—यह आयुष्मान अध्यात्म-प्राप्ति (—अधिगम) के बारेमें क्या बोलनेवाला होता है, व्यर्थ बोलने-वाला—"मैं प्रथम-ध्यानको प्राप्त करता हूँ ....और उस ध्यानसे उठता भी हूँ।"

तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, उसके चित्तको अपने चित्तसे जानते हैं—यह आयुष्मान दीर्घकालसे खण्डित-शील है, छिद्र-युक्त है, दोषोंसे समन्वित है तथा इस की चादरपर धब्बे हैं। यह शीलोंके प्रति शान्त वृत्तिवाला, शान्त चरित-वाला नहीं है। यह आयुष्मान दुश्शील है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार दुश्शील होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान अश्रद्धावान है। तथागत के 'धर्म-विनय' के अनुसार 'अश्रद्धावान होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'अल्पश्रुत' है, आचार-रहित है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार अल्पश्रुत होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'दुर्वच' है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार 'दुर्वच होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'कुसंगति में रहता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार 'कुसंगति' में रहना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'आलसी' है। तथागतके 'धर्म-विनय' के अनुसार 'आलसी' होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'मूढ़-स्मृति' है। तथागतके 'धर्म-विनय' के अनुसार 'मूढ़-स्मृति' होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'ढोंगी' है। तथागतके 'धर्म-विनय' के अनुसार 'ढोंगी' होना अपनी हानि करता है।

'यह आयुष्मान 'दूभर' है। तथागतके 'धर्म-विनय' के अनुसार 'दूभर' होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान 'दुष्प्रज्ञ' है। तथागतके 'धर्म-विनय' के अनुसार 'दुष्प्रज्ञ' होना अपनी हानि करना है।

आयुष्मानो! वह भिक्षु इन दस दुर्गुणोंको बिना त्यागे, इस धर्म-विनयमें उन्नतिको प्राप्त होगा, वृद्धिको प्राप्त होगा--इसकी सम्भावना नहीं है।

आयुष्मानो! वह भिक्षु इन दस दुर्गुणोंको त्याग देनेसे इस धर्म-विनयमें उन्नतिको प्राप्त होगा, वृद्धिको प्राप्त होगा--इसकी सम्भावना है।

६. अधिमान सुत्त

एक समय आयुष्मान महाकाश्यप राजगृहके वेळुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। वहाँ आयुष्मान महाकाश्यपने भिक्षुओंको सम्बोधित किया--"आयुष्मानो भिक्षुओ।" उन भिक्षुओंने आयुष्मान महाकाश्यपको 'आयुष्मान' कहकर प्रतिवचन दिया। आयुष्मान महाकाश्यपने यह कहा--

"आयुष्मानो! यहाँ एक भिक्षु अपने अर्हत्वकी घोषणा करता है--'जन्म क्षीण हो गया है, ब्रह्मचर्य-वास (का उद्देश्य) पूरा हो गया है, जो करना था वह सम्पन्न हो गया, अब यहाँ उत्पन्न होनेका कारण शेष नहीं रहा--यह जानता हूँ।' उस भिक्षुसे तथागत या तथागतके कोई ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, चर्चा करते हैं, प्रश्न पूछते हैं तथा बातचीत करते हैं। जब तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उससे चर्चा करते हैं, प्रश्न पूछते हैं, बातचीत करते हैं तो वह घबरा जाता है, चिन्तामें पड़ जाता है, दुखी होता है, कष्ट पाता है, अत्यन्त कष्ट पाता है।

तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उसके चित्तको अपने चित्तसे जानकर, अपने मनमें सोचते हैं--यह आयुष्मान क्या अपने अर्हत्वकी घोषणा करता है--'जन्म क्षीण हो गया है; ब्रह्मचर्य-

वास (का उद्देश्य) पूरा हो गया है; जो करना था, वह सम्पन्न हो गया है; अब यहाँ उत्पन्न होनेका कारण शेष नहीं रहा—यह जानता हूँ।'

तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उसके चित्तको अपने चित्तसे इस प्रकार जानते हैं—यह आयुष्मान अभिमानी है, अहंकारी है; जो प्राप्त नहीं है, उसे प्राप्त कहता है, जो कृत नहीं है, उसे कृत कहता है; जो हस्तगत नहीं है, उसे हस्तगत कहता है। यह अभिमानसे अपने अर्हत्वकी घोषणा करता है—जन्म क्षीण हो गया; ब्रह्मचर्य-वास (का उद्देश्य) पूरा हो गया है; जो करना था, वह सम्पन्न हो गया है; अब यहाँ उत्पन्न होनेका कारण शेष नहीं रहा—यह जानता हूँ।'

तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उसके चित्तको अपने चित्तसे जानकर, अपने मनमें सोचते हैं—यह आयुष्मान किस कारणसे अभिमानी है, अहंकारी है, जो प्राप्त नहीं है, उसे प्राप्त कहता है; जो कृत नहीं है, उसे कृत कहता है; जो हस्तगत नहीं है, उसे हस्तगत कहता है। यह अभिमानसे अपने अर्हत्वकी घोषणा करता है—जन्म क्षीण हो गया; ब्रह्मचर्य-वास (का उद्देश्य) पूरा हो गया है; जो करता था, वह सम्पन्न हो गया है; अब यहाँ उत्पन्न होनेका कारण शेष नहीं रहा—यह जानता हूँ।

तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उसके चित्तको अपने चित्तसे इस प्रकार जानते हैं—यह आयुष्मान बहुश्रुत है, श्रुतका संग्रह करनेवाला; जो आदि में कल्याणकारक, मध्यमें कल्याण-कारक तथा अन्तमें कल्याणकारक धर्म हैं, जो शब्द तथा अर्थोंके द्वारा केवल परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं, वैसे धर्म इसके द्वारा बहुश्रुत होते हैं, धारण किए गए होते हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए होते हैं, मन द्वारा परीक्षित किए गए होते हैं तथा दृष्टि द्वारा अनुविद्ध होते हैं। इसलिए यह आयुष्मान अभिमानी है, अहंकारी है; जो प्राप्त नहीं है, उसे प्राप्त कहता है; जो कृत नहीं है, उसे कृत कहता है, जो हस्तगत नहीं है, उसे हस्तगत कहता है। यह अभिमानसे अपने अर्हत्वकी घोषणा करता है—जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचार्य-वास(का उद्देश्य) पूरा हो गया; जो करना था, वह सम्पन्न हो गया;अब यहाँ उत्पन्न होनेका कारण शेष नहीं रहा—यह जानता हूँ।

तथागत या तथागतके ऐसे श्रावक जो ध्यानी होते हैं, ध्यान-प्राप्त होते हैं, दूसरेके चित्तकी बात जाननेमें कुशल होते हैं, दूसरेके चित्तका रहस्य जाननेमें समर्थ होते हैं, उसके चित्तको अपने चित्तसे इस प्रकार जानते हैं—यह आयुष्मान लोभी है, बहुधा लोभकी ही अवस्थामें विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार लोभी होना अपनी हानि करना है।

'यह आयुष्मान क्रोधी है, बहुधा क्रोधकी ही अवस्थामें विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार क्रोधी स्वभावका होना अपनी हानि करना है।

"यह आयुष्मान आलस्य-तन्द्रा युक्त है, बहुधा आलस्य-तन्द्राकी ही अवस्थामें विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार आलस्य-तन्द्रा युक्त रहना अपनी हानि करना है।

"यह आयुष्मान उद्धत है, बहुधा उद्धत अवस्थामें ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार उद्धत होना अपनी हानि करना है।

"यह आयुष्मान संशयालु है, बहुधा संशयकी अवस्थामें ही विचरता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार संशयालु होना अपनी हानि करना है।

यह आयुष्मान 'बहुधन्धी' है, बहुधा कुछ-न-कुछ करनेमें ही लगा रहता है, उसीमें रस लेता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार हमेशा कुछ-न-कुछ करनेमें ही फँसे रहना अपनी हानि करना है।

यह आयुष्मान बातूनी है, बहुधा कुछ-न-कुछ बोलनेमें ही लगा रहता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार सदैव कुछ-न-कुछ बोलनेमें लगा रहना अपनी हानि करना है।

यह आयुष्मान निद्रालु है; बहुधा सोता ही रहता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार बहुधा सोते रहना अपनी हानि करना है।

यह आयुष्मान प्रायः 'जमात' में रहता है; बहुधा लोगोंसे घिरा रहता है। तथागतके धर्म-विनयके अनुसार बहुधा लोगोंसे घिरा रहना भी अपनी हानि करना है।

इस आयुष्मानको अभी और करणीय शेष है, लेकिन इसे जो सामान्य प्राप्ति (—विशेषाधिगम) हुई है, उससे यह बीचमें ही रुक गया है।

आयष्मानो! वह भिक्षु इन दस दुर्गुणोंको बिना त्यागे, इस धर्म-विनयमें उन्नतिको प्राप्त होगा, वृद्धिको प्राप्त होगा—इसकी सम्भावना नहीं है।

आयुष्मानो! वह भिक्षु इन दस दुर्गुणोको त्याग देनेसे इस धर्म-विनयमें उन्नतिको प्राप्त होगा—इसकी सम्भावना है।

७. नप्पिय सुत्त

उस समय भगवानने काल-कृत (—मृत) भिक्षुको लेकर भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ।" उन भिक्षुओंने 'भदन्त' कहकर भगवानको प्रतिवचन दिया! भगवानने यह कहा—

"भिक्षुओ, एक भिक्षु विवाद-प्रिय होता है। वह विवाद (=झगड़े) की शान्तिका प्रशंसक नहीं होता। यह बात न प्रियकर होती है, न गौरवार्ह होती है, न वृद्धिके लिए होती है, न श्रामण्यके लिए होती है और न एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु शिक्षाकामी नहीं होता है। वह शिक्षाकामी होनेका प्रशंसक नहीं होता। यह बात न प्रियकर होती है, न गौरवार्ह होती है, न वृद्धिके लिए होती है, न श्रामण्यके लिए होती है और न एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु पापेच्छ होता है। वह इच्छाको संयत रखनेका प्रशंसक नहीं होता। यह बात भी न प्रियकर होती है न गौरवार्ह होती है, न वृद्धिके लिए होती है, न श्रामण्यके लिए होती है और न एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु क्रोधी स्वभावका होता है। वह क्रोधको काबूमें रखनेका प्रशंसक नहीं होता। यह बात भी न प्रियकर होती है, न गौरवार्ह होती है, न वृद्धिके लिए होती है, न श्रामण्यके लिए होती है और न एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु निर्दयी होता है। वह निर्दयताको संयत रखनेका प्रशंसक नहीं होता। यह बात भी न प्रियकर होती है, न गौरवार्ह होती है, न वृद्धिके लिए होती है, न श्रामण्यके लिए होती है और न एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु शठ होता है। वह शठताको वशमें रखनेका प्रशंसक नहीं होता। यह बात भी न प्रियकर होती है, न गौरवार्ह होती है, न वृद्धिके लिए होती है, न श्रामण्यके लिए होती है और न एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु मायावी होता है। वह 'माया' के फेरमें न पड़नेका प्रशंसक नहीं होता। यह बात भी न प्रियकर होती है, न गौरवार्ह होती है, न वृद्धिके लिए होती है, न श्रामण्यके लिए होती है और न एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु (लोकोत्तर) धर्मोंकी ओर ध्यान देनेवाला नहीं होता। वह ध्यान देनेका प्रशंसक नहीं होता। यह बात भी न प्रियकर होती है, न गौरवार्ह होती है, न वृद्धिके लिए होती है, न श्रामण्यके लिए होती है और न एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु ध्यान लगानेवाला नहीं होता। वह ध्यान लगानेका प्रशंसक नहीं होता। यह बात भी न प्रियकर होती है, न गौरवार्ह होती है, न वृद्धिके लिए होती है, न श्रामण्यके लिए होती है और न एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु अपने सब्रह्मचारियोंकी सेवा-शूश्रुषा करनेवाला नहीं होता। वह सेवा-सुश्रूषाका प्रशंसक नहीं होता। यह बात भी न प्रियकर होती है, न गौरवार्ह होती है, न वृद्धिके लिए होती है, न श्रामण्यके लिए होती है और न एकताका कारण होती है।

भिक्षुओ, इस प्रकारके भिक्षुके मनमें यह इच्छा उत्पन्न हो सकती है—'कितना अच्छा हो, यदि मेरे सब्रह्मचारी मेरा सत्कार करें, गौरव करें, मुझे मानें तथा मुझे पूजें।' किन्तु उसके सब्रह्मचारी न उसका सत्कार करते हैं, न गौरव करते हैं, न उसे मानते हैं और न पूजते हैं। यह किसलिए? क्योंकि भिक्षुओ, जो उसके विज्ञ सब्रह्मचारी होते हैं उन्हें दिखाई देता है कि उसके दुर्गुण पूर्ववत अप्रहीण हैं।

भिक्षुओ, जैसे किसी घटिया घोड़के मनमें ऐसी इच्छा उत्पन्न हो—'क्या अच्छा हो, यदि आदमी मुझे श्रेष्ठ घोड़ेका स्थान दें, श्रेष्ठ भोजन (=घास-दाना) दें, बढ़िया मालिश करें।' किन्तु आदमी न उसे श्रेष्ठ घोड़ेका स्थान देते हैं, न श्रेष्ठ घास-दाना देते हैं और न बढ़िया मालिश करते हैं। ऐसा किसलिए? भिक्षुओ, क्योंकि उन विज्ञ मनुष्योंका उस घटिया घोड़ेकी शठताएँ (=दुर्गुण), दुष्टपन, बुराइयाँ, टेढ़ेपन अप्रहीण दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार भिक्षुओ, ऐसे भिक्षुके मनमें चाहे यह कितनी भी इच्छा उत्पन्न हो—'कितना अच्छा हो, यदि मेरे सब्रह्मचारी मेरा सत्कार करें, गौरव करें, मुझे मानें तथा मुझे पूजें।' किन्तु उसके सब्रह्मचारी न उसका सत्कार करते हैं, न गौरव करते हैं, न उसे मानते हैं और न पूजते हैं। यह किसलिए? क्योंकि भिक्षु जो उसके विज्ञ सब्रह्मचारी होते हैं, उन्हें दिखाई देता है कि उसके दुर्गुण पूर्ववत अप्रहीण हैं।

भिक्षुओ, एक भिक्षु विवाद-प्रिय नहीं होता। वह विवादको शान्त करनेका प्रशंसक होता है। यह बात प्रियकर होती है गौरवार्ह होती है, वृद्धिके लिए होती है, श्रामण्यके लिए होती है और एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु शिक्षाकामी होता है। वह शिक्षाकामी होनेका प्रशंसक होता है। यह बात भी प्रियकर होती है, गौरवार्ह होती है, वृद्धिके लिए होती है, श्रामण्यके लिए होती है और एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु अल्पेच्छ होता है। वह इच्छाको संयत रखनेका प्रशंसक होता है। यह बात भी ......एकताके लिए होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु अक्रोधी होता है। वह क्रोधको काबूमें रखनेका प्रशंसक होता है। यह बात भी......एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु दयावान होता है। वह निर्दयताको संयत रखनेका प्रशंसक होता है। यह बात भी ......एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु शठ नहीं होता है। वह शठताको वशमें रखनेका प्रशंसक होता है। यह बात भी .....एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु मायावी नहीं होता है। वह 'माया' के फेरमें न पड़नेका प्रशंसक होता है। यह बात भी.......एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु (लोकोत्तर) धर्मोंकी ओर ध्यान देनेवाला होता है। वह ध्यान देनेका प्रशंसक होता है। यह बात भी....एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, एक भिक्षु ध्यान लगानेवाला होता है। वह ध्यान लगानेका प्रशंसक होता है। यह बात भी .....एकताका कारण होती है।

फिर भिक्षुओ, भिक्षु अपने सब्रह्मचारियोंकी सेवा-सुश्रूषा करनेवाला होता है। वह सेवा-सुश्रूषाका प्रशंसक होता है। यह बात भी प्रियकर होती है, गौरवार्ह होती है, वृद्धिके लिए होती है, श्रामण्यके लिए होती है और एकताका कारण होती है।

भिक्षुओ, इस प्रकारके भिक्षुके मनमें यह इच्छा उत्पन्न हो सकती है--'कितना अच्छा हो, यदि मेरे सब्रह्मचारी मेरा सत्कार करें, गौरव करें, मुझे मानें तथा मुझे पूजें।' उसके सब्रह्मचारी उसका सत्कार करते हैं, गौरव करते हैं, उसे मानते हैं और उसे पूजते हैं। यह किसलिए? क्योंकि भिक्षुओ, जो उसके विज्ञ सब्रह्मचारी होते हैं, उन्हें दिखाई देते है कि उसके दुर्गुण नष्ट हो गए हैं।

भिक्षुओ, जैसे किसी बढ़िया घोड़के मनमें ऐसी इच्छा उत्पन्न हो--'क्या अच्छा हो यदि आदमी मुझे श्रेष्ठ घोड़ेका स्थान दें, श्रेष्ठ भोजन (=घास-दाना) दें, बढ़िया मालिश करें।' आदमी उसे श्रेष्ठ घोड़ेका स्थान देते हैं, श्रेष्ठ घास-दाना देते हैं तथा बढ़िया मालिश करते हैं। ऐसा किसलिए? भिक्षुओ, क्योंकि उन विज्ञ पुरुषोंको उस (श्रेष्ठ) घोड़ेकी शठताएँ, दुष्टपन, बुराइयाँ तथा टेढ़पन प्रहीण दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार भिक्षुओ, ऐसे भिक्षुके मनमें चाहे कितनी भी इच्छा उत्पन्न हो--"कितना अच्छा हो, यदि मेरे सब्रह्मचारी मेरा सत्कार करें, गौरव करें, मुझे

मानें तथा मुझे पूजें।' उसके सब्रह्मचारी उसका सत्कार करते हैं, गौरव करते हैं उसे मानते हैं और पूजते हैं। यह किसलिए? क्योंकि भिक्षुओ, जो उसके विज्ञ सब्रह्मचारी होते हैं, उन्हें दिखाई देता है कि उसके दुर्गुण नष्ट हो गए हैं।

८. अक्कोसक सुत्त

भिक्षुओ, जो भिक्षु आक्रोश (=गाली देना) करनेवाला होता है, अगौरव करनेवाला होता है, श्रेष्ठ ब्रह्मचारियोंकी निन्दा-अपमान करनेवाला होता है, इसकी सम्भावना है कि वह दस विपत्तियोंमेंसे किसी एक विपत्तिमें पड़ जाए। कौन-सी दस विपत्तियाँ? अप्राप्तको प्राप्त न कर सके, प्राप्त हाथसे चला जाए, उसे सद्धर्म स्पष्ट नहीं होता, सद्धर्मके बारेमें अहंकारी हो जाता है और श्रेष्ठ जीवनमें उसका मन रमण नहीं करता है, किसी गम्भीर दोषका दोषी हो जाता है, किसी भयानक रोगका खतरा उपस्थित हो जाता है, उन्माद या चित्त-विक्षेपको प्राप्त हो जाता है, मूढ़ता (=बेहोशी) की अवस्थामें मृत्युको प्राप्त होता है तथा शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर अपाय-दुर्गति—नरकमें उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, जो भिक्षु आक्रोश (=गाली देना) करनेवाला होता है, अगौरव करनेवाला होता है, श्रेष्ठ ब्रह्मचारियोंकी निन्दा-अपमान करनेवाला होता है; उसकी सम्भावना है कि वह इन दस विपत्तियोंमेंसे किसी एक विपत्तिमें पड़ जाए।"

९. कोकालिक सुत्त

उस समय कोकालिक भिक्षु जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे कोकालिक भिक्षुने भगवानसे यह कहा—

"भन्ते! सारिपुत्र-मौद्गल्यायन पापेच्छु हैं, वे बुरी इच्छाओंके वशीभूत हैं।"

"कोकालिक! ऐसा मत कह। कोकालिक! ऐसा मत कह। कोकालिक! सारिपुत्र-मौद्गल्यायन
सारिपुत्र-मौद्गल्यायनके प्रति मनमें श्रद्धा उत्पन्न कर। सारिपुत्र-मौद्गल्यायन
श्रद्धेय हैं।"

दूसरी बार भी कोकालिक भिक्षुने भगवानको यह कहा—

"भन्ते! आप मेरे चाहे, जितने श्रद्धा-भाजन हों चाहे जितने विश्वसनीय
"भन्ते! आप मेरे चाहे, जितने श्रद्धा-भाजन हों चाहे जितने विश्वसनीय हों; किन्तु सारिपुत्र-मौद्गल्यायन पापेच्छु हैं, वे बुरी इच्छाओंके वशीभूत हैं।"

"कोकालिक! ऐसा मत कह। कोकालिक! ऐसा मत कह। कोकालिक! सारिपुत्र-मौद्गल्यायनके प्रति मनमें श्रद्धा उत्पन्न कर। सारिपुत्र-मौद्गल्यायन श्रद्धेय हैं।"

तीसरी बार भी कोकालिक भिक्षुने भगवानको यह कहा—

"भन्ते ! आप मेरे चाहे जितने श्रद्धा-भाजन हों; चाहे जितने विश्वसनीय हों, किन्तु सारिपुत्र-मौद्गल्यायन पापेच्छ हैं, वे बुरी इच्छाओंके वशीभूत हैं।"

"कोकालिक ! ऐसा मत कह। कोकालिक ! ऐसा मत कह। कोकालिक ! सारिपुत्र-मौद्गल्यायनके प्रति मनमें श्रद्धा उत्पन्न कर। सारिपुत्र-मौद्गल्यायन श्रद्धेय हैं।"

उस समय कोकालिक भिक्षु आसनसे उठ भगवानको प्रणाम कर, प्रदक्षिणा कर चले गए। उठकर चले जानेके थोड़े ही समय बाद कोकालिक भिक्षुके सारे बदनपर सरसोंके दानों-जैसी फुंसियाँ उग आईं। सरसोंके दानोंसे बढ़कर वह मूँगके दानोंके समान हो गईं। मूँगके दानोंसे बढ़कर वे चनेके दानोंके समान हो गईं। चनेके दानोंके समान होकर उन्नाव (की गुठली) के समान हो गईं। उन्नावकी गुठलीके समान होकर उन्नावके फलके समान हो गईं। उन्नावके फलके समान होकर आँवलेके समान हो गईं। आँवलेके समान होकर तेन्दुवेके समान हो गई। तेन्दुवेके समान होकर कच्चे बेलके समान हो गई। कच्चे बेलके समान होकर (पके) बेलके समान हो गईं। पके बेलके समान होकर फूट गईं। उनमेंसे रक्त और पीप बहने लगी। वह विष निगल गई मछलीकी तरह (तड़पता हुआ) केलेके पत्तोंपर पड़ा था।

तब तुरु नामका प्रत्येक-ब्रह्मा जहाँ कोकालिक भिक्षु था वहाँ पहुँचा। जाकर, आकाशमें कहकर उसने कोकालिक भिक्षुको इस प्रकार सम्बोन्धित किया—

"कोकालिक ! सारिपुत्र-मौद्गल्यायनके प्रति मनमें श्रद्धा उत्पन्न कर। सारिपुत्र-मौद्गल्यायन श्रद्धेय हैं।"

"आयुष्मान। तू कौन है ?"

"मैं तुरु नामका प्रत्येक-ब्रह्मा हूँ।"

"आयुष्मान ! क्या तेरे बारेमें भगवान वे यह भविष्य कथन नहीं किया है कि तू अनागामी होगा। तो यहाँ क्यों आया है ? देख, यह तेरा अपराध है।"

तब तुरु प्रत्येक–ब्रह्माने कोकालिक भिक्षुओंको गाथाओंमें उत्तर दिया—

"पुरिसस्स हि जातस्स, कुठारी जायते मुखे।
याय छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासितं भणं।।
यो निन्दियं पसंसति
तं वा निन्दति यो पसंसियो।

विचिनाति मुखेन सो कलिं,
कलिना तेन सुखं न विन्दति ।।

(आदमीके जन्मके साथ, उसके मुँहमें कुल्हाड़ी पैदा होती है। मूर्ख आदमी दुष्ट वचनोंका प्रयोग कर उस कुल्हाड़ीसे अपने आपको काट लेता है। जो निन्दनीयकी प्रशंसा करता है, अथवा प्रशंसनीय की निन्दा करता है, वह अपने मुँहसे अपराध करता है और उस अपराधके फलस्वरूप सुखको प्राप्त नहीं होता।

अप्पमत्तको अयं कलि,
यो अक्खेसु धनपराजयो।
सब्बस्सा पि सहा पि अत्तना,
अयमेव महत्तरो कलि।
यो सुगतेसु मनं पदूसये ।।

(जुओंमें जो धनकी हानि है, यह छोटी ही हानि है—अपनी और अपने सर्वस्व की। यह जो सुगतके प्रति मनमें द्वेष रखता है—यही बड़ी हानि है।)

सतं सहस्सानं निरब्बुदानं
छत्तिंसति पञ्च च अब्बुदानि।
यमरियगरही निरयं उपेति,
वाचं मनं च पणिधाय पापकं ।।

(जो आर्य (=श्रेष्ठ) की निन्दा करनेवाला है, वह दुष्ट मन और वाणीके कारण जिन नरकोंको जाकर प्राप्त होता है, वे हैं एक लाख छत्तीस निरब्बुद तथा पांच अब्द।)

तब कोकालिक भिक्षु उसी रोगसे मर गया। सारिपुत्र-मौद्गल्यायनके प्रति मनमें द्वेष रखनेके कारण कोकालिक भिक्षु मरनेपर 'पद्म' नामके नरकमें पैदा हुआ।

तब प्रकाशमान सहम्पति ब्रह्मा सम्पूर्ण ज्योत्सनापूर्ण रात्रिमें सारे जेतवनको आलोकित कर जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवानको प्रणाम कर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुए सहम्पति ब्रह्माने भगवानसे यह कहा—"भन्ते! कोकालिक भिक्षु मर गया है। भन्ते! मरनेपर कोकिलिक भिक्षु 'पद्म' नामक नरकमें उत्पन्न हुआ है, क्योंकि उसने सारिपुत्र-मौद्गल्यायनके प्रति मनमें द्वेष रखा था।" सहम्पति ब्रह्माने यह कहा। यह कह भगवानको अभिवादन कर सहम्पति ब्रह्मा वहीं अन्तर्धान हो गया।

उस रातके समाप्त होनेपर भगवानने भिक्षुओंको सम्बोधित किया— भिक्षुओ! आजकी रात प्रकाशमान सहम्पति ब्रह्मा सम्पूर्ण ज्योत्सनापूर्ण रात्रिमें सारे जेतवनको आलोकित कर जहाँ मैं था, वहाँ पहुँचा। पास जाकर मुझको प्रणाम कर एक ओर खड़ा हुआ। भिक्षुओ! एक ओर खड़े हुए सहम्पति ब्रह्माने मुझसे कहा— भन्ते! कोकालिक भिक्षु मर गया है। भन्ते! मरनेपर कोकालिक भिक्षु 'पद्म' नरकमें उत्पन्न हुआ है, क्योंकि उसने सारिपुत्र-मौद्गल्यायनके प्रति मनमें द्वेष रखा था।" भिक्षुओ! सहम्पति ब्रह्माने यह कहा। इतना कह, मुझे अभिवादन कर, प्रदक्षिणाकर, वह वहीं अन्तर्धान हो गया।

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवानसे पूछा—

"भन्ते! 'पद्म' नरकमें रहनेकी आयु-गणना कितनी है?"

"भिक्षु! 'पद्म' नरकमें रहनेकी आयु-गणना बहुत लम्बी है। यह कह सकना आसान नहीं कि उतने वर्ष, या इतने सौ वर्ष, या इतने हजार वर्ष, या इतने लाख वर्ष।"

"भन्ते! क्या उपमा दी जा सकती है?"

"भिक्षु! उपमा दी जा सकती है—भिक्षु। जैसे तिलोंका बीस खारीका ढेर। उसमेंसे एक आदमी सौ-सौ वर्षके बाद एक-एक तिल निकाले। भिक्षुओ कोशलका बीस खारीका तिलोंका ढेर शीघ्र समाप्त हो सकता है, लेकिन एक अर्बुद नरक नहीं। भिक्षु! बीस अर्बुद नरकोंके समान है एक निरब्बुद नरक। बीस निरब्बुद नरकोंके समान है एक अबब नरक। बीस अबब नरकोंके बराबर है एक अटट नरक। बीस अटट नरकोंके समान है एक अहह नरक। बीस अहह नरकोंके समान है एक कुमुद नरक। बीस कुमुद नरकोंके समान है एक सोगन्धिक नरक। बीस सोगन्धिक नरकोंके समान है एक उत्पलक नरक। बीस उत्पलक नरकोंके समान है एक पुण्डरीक नरक। बीस पुण्डरीक नरकोंके समान है एक पद्म निरक। भिक्षु! कोकालिक भिक्षु 'पद्म' नरकमें उत्पन्न हुआ है, क्योंकि उसने अपने मनमें सारिपुत्र-मौद्गल्यायनके प्रति द्वेष रखा। भगवानने यह कहा। इसके आगे सुगत, शास्ताने यह कहा—

पुरिसस्स हि जातस्स, कुठारी जायते मुखे।
याय छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासितं भणं॥

यो निन्दियं पसंसति,
तं वा निन्दति यो पसंसियो
विचिनाति मुखेन सो कलिं,

कलिना तेन सुखं न विन्दति।।
अप्पमत्तको अयं कलि,
यो अक्खेसु धनपराजयो,
सब्बसा पि सहा पि अत्तना,
अयमेव महत्तरो कलि।
यो सुगतेसु मनं पदूसये।।
सतं सहस्सानं निरब्बुदानं,
छत्तिंसति पञ्च च अब्बुदानि।
यमरियगरही निरयं उपेति,
वाचं मनं च पणिधाय पापकं।।

(अर्थ—ऊपर आ हीं गया है।)

१०. खीणासवबल सुत्त

उस समय आयुष्मान सारिपुत्र जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान सारिपुत्रको भगवानने यह कहा—

'सारिपुत्र! क्षीणास्रवके ऐसे बल कितने हैं जिनके होनेसे क्षीणास्रव भिक्षु यह स्वीकार करता है कि 'मेरे आस्रव क्षीण हो गए हैं।'

"भन्ते! क्षीणास्रव भिक्षुके ऐसे दस 'बल' हैं, जिनके होनेसे क्षीणास्रव भिक्षु आस्रवोंका क्षय होना स्वीकार करता है कि 'मेरे आस्रव क्षीण हो गए हैं।' वे कौनसे दस बल हैं? भन्ते! क्षीणास्रव भिक्षुने अपनी प्रज्ञासे सभी संस्कारोंको यथार्थ रूपसे अनित्य करके अच्छी तरह देखा होता है। भन्ते! यह भी क्षीणास्रव भिक्षुका 'बल' होता है, जिसके होनेसे क्षीणास्रव भिक्षु आस्रवोंका क्षीण होना स्वीकार करता है कि 'मेरे आस्रव क्षीण हो गए हैं।'

फिर भन्ते! क्षीणास्रव भिक्षु द्वारा सभी काम-भोग जलते हुए अंगारोंके समान अच्छी तरहसे देखे गए होते हैं। भन्ते! यह भी क्षीणास्रव भिक्षुका 'बल' होता है, जिसके होनेसे क्षीणास्रव भिक्षु आस्रवोंका क्षीण होना स्वीकार करता है कि 'मेरे आस्रव क्षीण हो गए हैं।'

फिर भन्ते! क्षीणास्रव भिक्षुका चित्त विवेक (=एकान्त-सेवन) की ओर झुका होता है, विवेककी ओर ही लुढ़कनेवाला, विवेककी ओर ही भार-युक्त,

विवेक-स्थित, नैष्कर्म्यमें रत, सभी सास्रव धर्मोंसे रहित। भन्ते! यह भी क्षीणास्रव भिक्षुका 'बल' होता है जिसके होनेसे क्षीणास्रव भिक्षु आस्रवोंका क्षीण होना स्वीकार करता है कि 'मेरे आस्रव क्षीण हो गए हैं'।

फिर भन्ते! क्षीणास्रव भिक्षु द्वारा चारों स्मृति-उपस्थानोंका सम्यक् अभ्यास किया रहता है। भन्ते! यह भी क्षीणास्रव भिक्षुका 'बल' होता हैं, जिसके होनेसे क्षीणास्रव भिक्षु आस्रवोंका क्षीण होना स्वीकार करता है कि 'मेरे आस्रव क्षीण हो गए हैं।'

फिर भन्ते! क्षीणास्रव भिक्षु द्वारा चारों सम्यक प्रधानोंका अभ्यास किया रहता है.......चारो ऋद्धि-पादोंका......पाँचों इन्द्रियोंका....पाँचों बलोंका......सात बोधि-अंगोंका.....तथा आर्य अष्टांगिक-मार्गका सम्यक अभ्यास किया रहते हैं। भन्ते! यह भी क्षीणास्रव भिक्षुका 'बल' होता है, जिसके होनेसे क्षीणास्रव भिक्षु आस्रवोंका क्षीण होना स्वीकार करता है कि 'मेरे आस्रव क्षीण हो गए हैं।'

भन्ते! ये क्षीणास्रव भिक्षुके दस बल हैं, जिनसे युक्त होनेके कारण क्षीणास्रव भिक्षु यह स्वीकार करता है कि 'मेरे आस्रव क्षीण हो गए हैं।'

१०. उपालि वर्ग

१. कामभोगी सुत्त

एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। तब अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक गृहपतिको भगवानने यह कहा—

हे[1] गृहपति! इस लोकमें दस प्रकारके काम-भोगी हैं। कौनसे दस प्रकारके? गृहपति! एक काम-भोगी अधर्मसे, दुस्साहससे काम-भोगोंके साधनोंको एकत्र करता है। वह उनसे अपने आपको सुखी करता है, संतृप्त करता है, न किसीको कुछ देता है और न कोई पुण्य-कार्य करता है।

---

१. पालिमें काम-भोगी हिन्दीकी तरह संकुचित अर्थमें रूढ़ नहीं है। काम-भोगके साधन एक प्रकारसे भौतिक-साधनोंके पर्याय हैं। (अनु०)।

"हे गृहपति ! एक काम-भोगी अधर्मसे, दुस्साहससे काम-भोगोंके साधनोंको एकत्र करता है,। वह उनसे आप आपको सुखी करता है, संतृप्त करता है, दूसरोंको बाँटता है तथा पुण्य-कर्म करता है।

"हे गृहपति ! एक काम-भोगी धर्माधर्मसे तथा बिना दुस्साहस किए और दुस्साहस करके भी काम-भोगोंके साधनोंको खोजता है। वह उन साधनोंसे न अपने आपको सुखी करता है, न तृप्त करता है, न दूसरोंको देता है और न पुण्य-कर्म करता है।

"हे गृहपति ! एक काम-भोगी धर्माधर्मसे तथा बिना दुस्साहस किए और दुस्साहस करके भी काम-भोगोंके साधनोंको खोजता है। वह उन साधनोंसे अपने आपको सुखी करता है, संतृप्त करता है, (किन्तु) न दूसरोंको देता है, न पुण्य-कर्म करता है।

"हे गृहपति ! एक काम-भोगी धर्माधर्मसे तथा बिना दुस्साहस किए और दुस्साहस करके भी काम-भोगोंके साधनोंको खोजता है। वह उन साधनोंसे अपने आपको सुखी करता है, संतृप्त करता है, दूसरोंको देता है तथा पुण्य-कर्म भी करता है।"

"हे गृहपति ! एक काम-भोगी धर्मसे, बिना दुस्साहस किए काम-भोगोंके साधनोंको खोजता है। वह उन साधनोंसे न अपने आपको सुखी करता है, संतृप्त करता है; न दूसरोंको देता है और न पुण्य-कर्म करता है।

"हे गृहपति ! एक काम-भोगी धर्मसे, बिना दुस्साहस किए काम-भोगोंके साधन खोजता है। वह उन साधनोंसे अपनेको सुखी करता है, संतृप्त करता है, (किन्तु) न किसीको देता है, न पुण्य-कर्म करता है।

"हे गृहपति ! एक काम-भोगी धर्मसे, बिना दुस्साहस किए काम-भोगोके साधन-खोजता है। वह उन साधनोंसे अपनेको सुखी करता है, संतृप्त करता है, दूसरोंको देता है तथा पुण्य-कर्म करता है। वह उन भोगोंको आसक्त होकर, मूर्छित होकर, उलझकर, दुष्परिणामोंकी ओरसे उदासीन हो, अमुक्त-प्रज्ञ हो भोगता है।

"हे गृहपति ! एक काम-भोगी धर्मसे, बिना दुस्साहस किए काम-भोगोंके साधन खोजता है। वह उन साधनोंसे अपनेको सुखी करता है, संतृप्त करता है, दूसरोंको देता है तथा पुण्य-कर्म करता है। वह उन भोगोंको अनासक्त रह, अमूर्छित रह, बिना उलझे, दुष्परिणामोंकी ओरसे सावधान रह, मुक्त-प्रज्ञ हो भोगता है।

"हे गृहपति! जो काम-भोगी अधर्मसे, दुस्साहससे काम-भोगके साधनोंको खोजता है; अधर्मसे, दुस्साहससे काम-भोगोंके साधनोंको खोज उनसे न अपनेको सुखी करता है, संतृप्त करता है; न दूसरोंको देता है तथा न पुण्य करता है; ऐसा काम-भोगी हे गृहपति! तीन दृष्टियोंसे निन्दनीय है। वह अधर्मसे, दुस्साहससे काम-भोगके साधनोंको खोजता है—यह पहली दृष्टि है, जिससे वह निन्दनीय है। वह 'न अपनेको सुखी करता है, न संतृप्त करता है'—यह दूसरी दृष्टि है, जिससे वह निन्दनीय है। वह 'न किसीको देता है, न पुण्य करता है।' यह तीसरी दृष्टि है, जिससे वह निन्दनीय है। हे गृहपति! यह काम-भोगी इन तीन दृष्टियोंसे निन्दनीय है।

हे गृहपति! जो काम-भोगी अधर्मसे, दुस्साहससे काम-भोगके साधनोंको खोजता है; अधर्मसे, दुस्साहससे काम-भोगोंके साधनोंको खोज उनसे अपनेको सुखी करता है, संतृप्त करता है, (किन्तु) न बाँटता है, न पुण्य-कर्म करता है। गृहपति! ऐसा काम-भोगी दो दृष्टियोंसे निन्दनीय होता है, परन्तु एक दृष्टिसे प्रशंसनीय। वह अधर्मसे, दुस्साहससे काम-भोगोंके साधनोंको खोजता है—यह पहली दृष्टि है जिससे वह निन्दनीय है। 'अपने आपको सुखी करता है, संतृप्त रखता है'—इस एक दृष्टिसे प्रशंसनीय है। 'न बाँटता है, और न पुण्य करता है' इस दूसरी दृष्टिसे निन्दनीय है। गृहपति! ऐसा काम-भोगी, इन दो दृष्टियोंसे निन्दनीय है, एक दृष्टिसे प्रशंसनीय है।

'हे गृहपति! जो काम-भोगी अधर्मसे, दुस्साहससे काम-भोगके साधनोंको खोजता है; अधर्मसे दुस्साहससे खोजे हुए काम-भोगके साधनोंसे अपनेको सुखी करता है, संतृप्त करता है; (साथ ही) बाँटता भी है और पुण्य-कर्म भी करता है। गृहपति! ऐसा काम-भोगी दो दृष्टियोंसे प्रशंसनीय होता है, एक दृष्टिसे निन्दनीय होता है। वह अधर्मसे, दुस्साहससे काम-भोगोंके साधनोंको खोजता है; इस एक दृष्टिसे वह निन्दनीय है। 'वह अपने आपको सुखी रखता है, संतृप्त करता है'—इस पहली बातमें वह प्रशंसनीय है। वह बाँटता है तथा पुण्य-कर्म करता है—इस दूसरी दृष्टिसे वह प्रशंसनीय है। गृहपति! यह काम-भोगी उस एक दृष्टिसे निन्दनीय है, किन्तु दो दृष्टियोंसे प्रशंसनीय हैं।

"हे गृहपति! जो काम-भोगी धर्म-अधर्मसे, बिना दुस्साहसके तथा दुस्साहससे काम-भोगके साधनोंको खोजता है। वह धर्म-अधर्मसे, बिना दुस्साहससे तथा दुस्साहससे काम-भोगके साधनोंको खोजकर न अपने आपको सुखी करता है, न संतृप्त करता है, न बाँटता है और न पुण्य-कर्म करता है। गृहपति! ऐसा काम भोगी एक अंशमें

प्रशंसनीय होता है तथा तीन अंशोंमें निन्दनीय होता है। वह 'धर्मसे तथा बिना दुस्साहस किए' भोगके साधनोंको खोजता है, इस अंशमें वह प्रशंसनीय है। किन्तु वह 'अधर्मसे तथा दुस्साहससे' भी काम-भोगके साधनोंको खोजता है, इस एक अंशमें वह निन्दनीय है। 'न अपनेको सुखी करता है और न संतृप्त करता है'; इस दूसरी दृष्टिसे भी वह निन्दनीय है। 'न बाँटता है, न पुण्य करता है'; इस तीसरी दृष्टिसे भी वह निन्दनीय है। गृहपति ! यह काम-भोगी इस एक दृष्टिसे प्रशंसनीय है, तीन दृष्टियोंसे निन्दनीय है।

"हे गृहपति ! जो काम-भोगी धर्म-अधर्मसे, बिना दुस्साहस तथा दुस्साहससे काम-भोगके साधनोंको खोजता है; वह धर्म-अधर्मसे बिना दुस्साहससे तथा दुस्साहससे काम-भोगके साधनोंको खोज कर अपने आपको सुखी करता है, संतृप्त करता है। (किन्तु) वह न बाँटता है, न पुण्य-कर्म करता है। गृहपति! ऐसा काम-भोगी दो अंशोंमें प्रशंसनीय है, दो अंशोंमें निन्दनीय है। वह 'धर्मसे, बिना दुस्साहस किए' काम-भोगके साधन खोजता है, इस दृष्टिसे प्रशंसनीय है। (किन्तु) साथ ही वह 'अधर्म से तथा दुस्साहससे' भी काम-भोगके साधन खोजता है, इस दृष्टिसे निन्दनीय है। वह 'अपने आपको सुखी करता है तथा संतृप्त करता है'; इस दूसरी दृष्टिसे प्रशंसनीय है। वह 'न बाँटता है न पुण्य-कर्म करता है'; इस दृष्टिसे निन्दनीय है। गृहपति ! ऐसा काम-भोगी दो दृष्टियोंसे प्रशंसनीय तथा दो दृष्टियोंसे निन्दनीय होता है।

"हे गृहपति ! जो काम-भोगी धर्म-अधर्मसे, बिना दुस्साहसके तथा दुस्साहससे काम-भोगोंके साधनोंको खोजता है। वह धर्म-अधर्मसे, बिना दुस्साहसके तथा दुस्साहससे काम-भोगोंके साधनोको खोजकर अपने आपको सुखी करता ह, संतृप्त करता है, बाँटता है, पुण्य करता है। गृहपति ! ऐसा काम-भोगी तीन अंशोंमें प्रशंसनीय है, एक अंशमें निन्दनीय है। वह 'धर्मसे, बिना दुस्साहस किए' काम-भोगके साधन खोजता है, इस दष्टिसे प्रशंसनीय है। (किन्तु) साथ ही वह 'अधर्मसे तथा दुस्साहससे' भी काम-भोगोंके साधन खोजता है, इस दृष्टिसे निन्दनीय है। वह 'अपने आपको सुखी करता है, संतप्त करता है', इस दष्टिसे प्रशंसनीय है। वह 'बाँटता है, पुण्य कर्म करता है' इस दष्टिसे भी प्रशंसनीय है। गृहपति ! ऐसा काम-भोगी तीन दृष्टियोंसे प्रशंसनीय है, एक दृष्टिसे निन्दनीय है।

"हे गृहपति ! जो काम-भोगी, बिना दुस्साहस किए, धर्मसे काम-भोगके साधनोंको खोजता है, वह बिना दुस्साहस किए, धर्मसे काम-भोगके साधनोंको खोजकर न अपनेको सुखी करता है, न संतृप्त करता है, न बाँटता है और न पुण्य-कर्म करता

है। गृहपति ! ऐसा काम-भोगी एक अंशमें प्रशंसनीय है, दो दृष्टियोंसे निन्दनीय है। वह 'बिना दुस्साहस किए धर्मसे' काम भोगके साधनोंको खोजता है, इस दृष्टिसे प्रशंसनीय है। वह 'न अपनेको सुखी करता है, न संतृप्त करता है' इस दृष्टिसे निन्दनीय है। वह 'न बाँटता है, न पुण्य-कर्म करता है', इस दृष्टिसे निन्दनीय है। गृहपति ! यह काम-भोगी एक अंशमें प्रशंसनीय है, दो दृष्टियोंसे निन्दनीय है।

"हे गृहपति ! जो काम-भोगी, बिना दुस्साहस किए, धर्मसे काम भोगके साधनोंको खोजता है, वह 'बिना दुस्साहस किए, धर्मसे' काम-भोगके साधनोंको खोजकर अपने आपको सुखी करता है, संतृप्त करता है, (किन्तु) न बाँटता है और न पुण्य-कर्म करता है। गृहपति ! ऐसा काम-भोगी दो अंशोंमें प्रशंसनीय है, एक दृष्टिसे निन्दनीय है। वह 'बिना दुस्साहस किए, धर्मसे' काम-भोगके साधनोंको खोजता है, इस अंशमें वह प्रशंसनीय है। वह 'अपने आपको सुखी करता है, प्रणीत करता है', इस अंशमें भी वह प्रशंसनीय है। किन्तु वह 'न बाँटता है, न पुण्य-कर्म करता है', इस दृष्टिसे निन्दनीय है। गृहपति ! ऐसा काम-भोगी इन दो अंशोंमें प्रशंसनीय है, इस एक दृष्टिसे निन्दनीय है।

"हे गृहपति ! जो काम-भोगी 'बिना दुस्साहस किये, धर्मसे' काम-भोगके साधनोंको खोजता है, वह 'बिना दुस्साहस किए, धर्मसे' काम-भोगके साधनोंको खोजकर अपने आपको सुखी करता है, संतृप्त करता है, बाँटता है, पुण्य-कर्म करता है, (किन्तु) उन काम-भोगोंको वह आसक्त होकर मूर्छित होकर, उलझकर, दुष्परिणामों-की ओरसे उदासीन हो, अमुक्त-प्रज्ञ हो भोगता है। हे गृहपति ! ऐसा काम-भोगी तीन अंशोंमें प्रशंसनीय है किन्तु एक दृष्टिसे निन्दनीय है। वह 'बिना दुस्साहस किए, धर्मसे' काम-भोगके साधनोंको खोजता है; इस प्रथम दृष्टिसे वह प्रशंसनीय है। वह 'अपने आपको सुखी करता है, संतृप्त करता है', इस दूसरी दृष्टिसे भी वह प्रशंसनीय है। वह 'बाँटता है, पुण्य-कर्म करता है'; इस तीसरी दृष्टिसे भी वह प्रशंसनीय है। (किन्तु) उन काम-भोगोंको आसक्त होकर, मूर्छित होकर, उलझकर, दुष्परिणामोंकी ओरसे उदासीन हो, अमुक्त-प्रज्ञ हो भोगता है; इस एक दृष्टिसे वह निन्दनीय है। हे गृहपति ! ऐसा काम-भोगी इन तीन अंशोंमें प्रशंसनीय होता है, एक दृष्टिसे निन्दनीय होता है।

"हे गृहपति ! एक काम-भोगी, 'बिना दुस्साहस किए, धर्मसे' काम-भोगके साधनोंको खोजता है। वह 'बिना दुस्साहस किए, धर्मसे' काम-भोगके साधनों-को खोजकर, अपने आपको सुखी करता है, संतृप्त करता है, बाँटता है, पुण्य-कर्म

करता है। वह उन भोगोंको अनासक्त रहकर, अमूर्छित रहकर, बिना उलझे, दुष्प
रिणामोंकी ओरसे सावधान रह, मुक्त-प्रज्ञ हो भोगता है। हे गृहपति! ऐसा काम-
भोगी चारों अंशोंमें प्रशंसनीय है। वह 'बिना दुस्साहस किए, धर्मसे काम-भोगके
साधनोंको खोजता है; इस एक दृष्टिसे भी वह प्रशंसनीय है। वह 'अपनेको सुखी
करता है, संतृप्त करता है'; इस दृष्टिसे भी वह प्रशंसनीय है। वह 'बाँटता है, पुण्य-
कर्म करता है'; इस दृष्टिसे भी वह प्रशंसनीय है। वह उन भोगोंको 'अनासक्त
रहकर अमूर्छित रहकर बिना उलझे, दुष्परिणामोंकी ओरसे सावधान रह, मुक्त-प्रज्ञ
हो भोगता है; इस दृष्टिसे भी वह प्रशंसनीय है। गृहपति! ऐसा काम-भोगी इन
चारों अंशोंमें प्रशंसनीय है।

"गृहपति! इस लोकमें ये दस प्रकारके काम-भोगी हैं। गृहपति! इन
दस प्रकारके काम-भोगियोंमें जो यह एक काम-भोगी 'बिना दुस्साहस किए, धर्मसे'
काम-भोगके साधनोंको खोजता है, 'बिना दुस्साहस किए, धर्मसे' काम-भोगके साधनोंको
खोजकर अपनेको सुखी करता है, संतृप्त करता है, (भोग-सामग्री को) बाँटता
है, पुण्य-कर्म करता है; जो उन भोगोंको अनासक्त रहकर, अमूर्छित रहकर, बिना
उलझे, दुष्परिणामोंकी ओरसे सावधान रह, मुक्त-प्रज्ञ हो भोगता है; वह इन दसों
प्रकारके काम-भोगियोंमें अग्र है, श्रेष्ठ है, प्रमुख है, उत्तम है तथा प्रवर है। गृहपति!
जैसे गौसे दूध होता है, दूधसे दही होता है, दहीसे नवनीत होता है, नवनीतसे घी
(=सर्पी) होता है, सर्पीसे भी सर्पी-माण्ड श्रेष्ठ कहलाता है। इसी प्रकार गृहपति!
इन दस प्रकारके काम-भोगियोंमें जो यह एक काम-भोगी 'बिना दुस्साहस किए,
धर्मसे' काम-भोगके साधनोंको खोजता है, 'बिना दुस्साहस किए, धर्मसे' काम-भोगके
साधनोंको खोजकर अपनेको सुखी करता है, संतृप्त करता है,)भोग-सामग्रीको)
बाँटता है, पुण्य-कर्म करता है; जो उन भोगोंको अनासक्त रहकर, अमूर्छित रहकर,
बिना उलझे, दुष्परिणामोंकी ओरसे सावधान रहकर, मुक्त-प्रज्ञ हो भोगता है—वह
इन दसों प्रकारके काम-भोगियोंमें अग्र है, श्रेष्ठ है, प्रमुख है, उत्तम है तथा प्रवर है।

२. भय सुत्त

उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर
भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपतिको
भगवानने यह कहा—

"हे गृहपति! जब आर्य-श्रावकके पाँच भयों तथा वैरोंका उपशमन हो
गया हो, जब वह चारों स्रोतापत्ति अंगोंसे युक्त हो, जब उसने प्रज्ञासे आर्य-ज्ञानको

सम्यक प्रकारसे देख लिया हो, तो यदि वह चाहे तो वह स्वयं अपने बारेमें घोषणा कर सकता है—'मेरा नरक-गमन क्षीण हो गया है, मेरा पशु-पक्षी योनिमें जन्म ग्रहण करना क्षीण हो गया है, मेरा प्रेत होकर उत्पन्न होना क्षीण हो गया है, मेरा अपाय, दुर्गतिमें पड़ना असम्भव हो गया है। मैं स्रोतापन्न हो गया हूँ, मेरे पतनकी सम्भावना नहीं रही। मुझे निश्चित रूपसे बोधि लाभ होगा।"

"कौनसे पाँच भयों वैरोंका उपशमन हो गया रहता है? गृहपति! किसी प्राणी-हिंसा करनेवालेके मनमें प्राणी-हिंसा करनेके परिणाम-स्वरूप इस लोकमें भी भय-वैर उत्पन्न होते हैं, परलोकमें भी भय-वैर उत्पन्न होते हैं, चैतसिक-दुख दौर्मनस्य भी पैदा होते हैं; प्राणी-हिंसासे विरत होनेपर उसके मनमें न इस लोकमें भय-वैर पैदा होता है, न परलोकमें भय-वैर पैदा होता है, न चैतसिक दुख दौर्मनस्य पैदा होते हैं। इस प्रकार प्राणी-हिंसासे जो विरत हो गया है, उसके लिए वे भय-वैर शान्त हो गए रहते हैं।

"गृहपति! जो चोरी करनेवाले.........काम-भोग सम्बन्धी मिथ्या-चार करनेवाले.........झूठ बोलनेवाले.........सुरा-मेरय, मद्य, प्रमाद स्थानोंका सेवन करनेवालेके मनमें सुरा-मेरय, मद्य, प्रमाद-स्थानों (=नशीली वस्तुओं) का सेवन करनेके परिणाम-स्वरूप इस लोकमें भी भय-वैर उत्पन्न होते हैं, परलोकमें भी भय-वैर उत्पन्न होते हैं, चैतसिक दुख-दौर्मनस्य पैदा होते हैं; सुरा, मेरय, मद्य आदि नशीली चीजोंसे विरत होनेपर उसके मनमें न इसी लोकमें भय-वैर पैदा होता है, न परलोकमें भय-वैर पैदा होता है, न चैतसिक दुख-दौर्मनस्य पैदा होते हैं। इस प्रकार सुरा, मेरय, मद्य आदि नशीली चीजोंके सेवनसे जो विरत हो गया है, उसके लिए वे भय-वैर शान्त हो गए रहते हैं। ये पाँच भय-वैर शान्त हो गए रहते हैं।

"वह किन चार स्रोतापत्ति अंगोंसे युक्त होता है? गृहपति! आर्य-श्रावक, बुद्धके प्रति अविचल श्रद्धायुक्त होता है, 'वह भगवान है.........बुद्ध भगवान हैं; धर्मके प्रति अविचल श्रद्धा-युक्त होता है, 'भगवान द्वारा धर्म सु-आख्यात है, सांदृष्टिक है, अकालिक है, इसके बारेमें कहा जा सकता है कि आओ और स्वयं देख लो, यह उन्नतिकारक है, इसे प्रत्येक विज्ञ आदमी स्वयं साक्षात कर सकता है'; धर्मके प्रति अविचल श्रद्धा-युक्त होता है, 'भगवानका श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न है, भगवानका श्रावक-संघ ऋजु-मार्गी है, भगवानका श्रावक-संघ न्याय-मार्गी है, भगवानका श्रावक

संघ श्रेष्ठ मार्गारूढ़ है, ये जो आर्य-पुद्गलोंके चार जोड़े हैं[1] अर्थात आठ वर्गोंके लोग हैं—यहीं भगवानका श्रावक-संघ हैं। यह आदर करने योग्य है, आतिथ्य करने योग्य है, यह दक्षिणार्ह है, यह हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य है तथा यह लोगोंके लिए अनुपम पुण्य-क्षेत्र है। वह आर्य-श्रेष्ठ शीलसे युक्त होता है—अखण्डित शीलसे, छिद्र-रहित शीलसे, निर्मल शीलसे, शुद्ध शीलसे, स्वतन्त्र-शीलसे, विज्ञों द्वारा प्रशंसित शीलसे, स्वच्छ शीलसे तथा समाधिकी ओर अग्रसर करनेवाले शीलसे।' इस प्रकार इन चार स्रोतापत्ति अंगोंसे युक्त होता है।

"उसका कौन-सा आर्य-ज्ञान प्रज्ञाके द्वारा दृष्ट होता है, अच्छी तरह बींधा गया होता है? गृहपति! आर्य-श्रावक इस प्रकार विचार करता है—'ऐसा होनेपर, ऐसा होता है; इसकी उत्पत्ति होनेपर इसकी उत्पत्ति होती है; इसके न होनेपर, ऐसा नहीं होता; इसका निरोध होनेपर, इसका निरोध होता है—जैसे अविद्याके होनेपर संस्कार; संस्कारोंके होनेपर विज्ञान; विज्ञानके होनेपर नाम-रूप; नाम-रूपके होनेपर छह (इन्द्रिय—) आयतन; छह (इन्द्रिय—) आयतनोंके होनेपर स्पर्श; स्पर्शके होनेपर वेदना; वेदनाके होनेपर तृष्णा; तृष्णाके होनेपर उपादान; उपादानके होनेपर भव; भवके होनेपर जाति, जरा, मान, शोक, परिदेव (=रोना-पीटना), दुख-दौर्मनस्य तथा पश्चात्ताप उत्पन्न होते हैं; इसी प्रकार इस सारेके सारे दुख-स्कन्धका समुदय होता है। (इसी प्रकार) अविद्याका मूलतः वैराग्य-निरोध होनेपर संस्कारोंका निरोध होता है....इस तरह इस सारेके सारे दुख-स्कन्धका निरोध होता है।' उसके द्वारा यह आर्य-ज्ञान प्रज्ञासे सम्यक् प्रकार सुदृष्ट होता है, अच्छी तरह बींधा गया होता है।

"हे गृहपति! जब आर्य-श्रावकके पाँच भयों तथा वैरोंका उपशमन हो गया हो, जब वह चारों स्रोतापत्ति अंगोंसे युक्त हो, जब उसने प्रज्ञासे आर्य-ज्ञानको सम्यक् प्रकारसे देख लिया हो, तो यदि वह चाहे तो वह स्वयं अपने बारेमें घोषणा कर सकता है—'मेरा नरक-गमन क्षीण हो गया है; मेरा पशु-पक्षी योनिमें जन्म ग्रहण करना क्षीण हो गया है; मेरा प्रेत होकर उत्पन्न होना क्षीण हो गया है; मेरा अपाय, दुर्गतिमें पड़ना असम्भव हो गया है। मैं स्रोतापन्न हो गया हूँ। मेरे पतनकी सम्भावना नहीं रही। मुझे निश्चित रूपसे बोधि-लाभ होगा।"

---

१. स्रोतापत्ति मार्ग-प्राप्त, स्रोपत्ति फल प्राप्त; (२) सकृदागामी मार्ग प्राप्त, सकृदागामी फल प्राप्त; (३) अनागामी मार्ग-प्राप्त, अनागामी फल प्राप्त; (४) अर्हत मार्ग प्राप्त, अर्हत फल प्राप्त।

३. किंदिट्ठिक सुत्त

एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करते थे। तब अनाथपिण्डिक गृहपति दिनके मध्याह्नमें ही भगवानके दर्शनके लिए निकला। तब अनाथपिण्डिक गृहपतिके मनमें यह हुआ—"यह भगवानका दर्शन करनेके लिए असमय है। भगवान ध्यान-मग्न होंगे। योगाभ्यासी भिक्षुओंका दर्शन करनेके लिए भी यह असमय है। योगाभ्यासी भिक्षु भी ध्यान-मग्न होंगे। तब तक मैं जहाँ दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकोंका आश्रम है, वहाँ चलूं।"

तब अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ दूसरे सम्प्रदायके तैर्थिकोंका आश्रम था, वहाँ गया। उस समय दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजक इकट्ठे बैठे हल्ला मचाते हुए, शोर मचाते हुए, नाना प्रकारकी बेकार बातचीत कर रहे थे। उन परिव्राजकोंने अनाथपिण्डिक गृहपतिको दूरसे ही, आते देखा। देखकर उन्होंने परस्पर तय किया—'आप लोग अल्प-शब्द हो जाएँ। आप लोग हल्ला न करें। यह श्रमण गौतमका श्रावक अनाथपिण्डिक गृहपति आश्रमकी ओर आ रहा है। श्रावस्तीमें श्रमण गौतमके जितने भी श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य हैं, उनमें यह अनाथपिण्डिक गृहपति एक है। ये लोग अल्प-शब्दको चाहनेवाले हैं, अल्प-शब्दके अभ्यासी हैं और अल्प-शब्दका गुणानुवाद करनेवाले हैं। सम्भव है यह देख कि यह परिषद अल्प-शब्द है, वह इधर ही चला आए।" तब दूसरे सम्प्रदायोंके वे परिव्राजक रूप हो गए।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ दूसरे सम्प्रदायोंके परिव्राजक थे, वहाँ गया। पास जाकर उन दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकोंसे कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेपर वह एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपतिसे दूसरे सम्प्रदायके उन परिव्राजकोंने यह पूछा—

"गृहपति! बताओ कि श्रमण-गौतमकी क्या दृष्टि (= मत) है?"

"भन्ते! मैं भगवानके सभी मतोंसे परिचित नहीं हूँ।।"

"गृहपति! यदि तू श्रमण गौतमके सभी मतोंसे परिचित नहीं है, तो यह ही कह कि भिक्षुओंकी दृष्टि (= मत) क्या है?"

"भन्ते! मैं भिक्षुओंके भी सभी मतोंसे परिचित नहीं हूँ?"

"गृहपति! यदि तू श्रमण गौतमके सभी मतोंसे परिचित नहीं है और यदि तू भिक्षुओंके भी सभी मतोंसे परिचित नहीं है, तो गृहपति! तू यह ही बता कि तेरी अपनी दृष्टि (= मत) क्या है?"

"भन्ते! हमारे लिए यह कठिन नहीं है कि हम अपनी दृष्टि (= मत) बता सकें। लेकिन आयुष्मानो! पहले आप अपनी दृष्टियाँ (= मत) बताएँ। बादमें हमारे लिए भी अपनी दृष्टि (= मत) बताना कठिन नहीं होगा।"

ऐसा कहनेपर एक परिव्राजकने अनाथपिण्डिक गृहपतिको इस प्रकार कहा—"गृहपति! मेरी दृष्टि (= मत) यह है कि लोक (= विश्व) शाश्वत है, यही मत सत्य है, दूसरे मत व्यर्थ हैं।"

एक दूसरे परिव्राजकने अनाथपिण्डिक गृहपतिसे कहा—"गृहपति! मेरी दृष्टि (= मत) यह है कि लोक (= विश्व) अशाश्वत है, यही मत सत्य है, दूसरे मत व्यर्थ हैं।"

एक और परिव्राजकने भी अनाथपिण्डिक गृहपतिसे कहा—"गृहपति! मेरी दृष्टि (= मत) यह है कि लोक (= विश्व) सान्त है.......लोक अनन्त है.......जीव तथा शरीर एक ही है........जीव अन्य है, शरीर अन्य है.........तथागत मरनेके अनन्तर रहते हैं........तथागत मरनेके अनन्तर नहीं रहते........तथागत मरनेके अनन्तर रहते भी हैं, नहीं भी रहते हैं......तथागत मरनेके अनन्तर न रहते हैं और न नहीं रहते हैं, यही मत सत्य है, दूसरे मत व्यर्थ हैं।"

ऐसा कहनेपर अनाथपिण्डिक गृहपतिने उन परिव्राजकोंको यह कहा—'आयुष्मानो! आप ने जो यह कहा कि लोक (= विश्व) शाश्वत है, यही मत सत्य है, और मत व्यर्थ हैं, तो आपकी दृष्टि (= मत) अपने ही स्वतन्त्र भ्रमका परिणाम है अथवा किसी दूसरेसे सुनी-सुनाई बात है। यह दृष्टि (= मत) उत्पन्न है, संस्कृत है, चित्तज है, प्रतीत्य-समुत्पन्न है। जो कुछ भी उत्पन्न है, संस्कृत है, चित्तज है, प्रतीत्य-समुत्पन्न है, वह अनित्य है। जो कुछ भी 'अनित्य' है, वह 'दुख' है। जो कुछ दुख है, उसीमें आप लीन हैं, उसीमें आप आसक्त हैं।

"भन्ते! जिस आयुष्मानने यह कहा कि लोक (= विश्व) अशाश्वत है, यही मत सत्य है, और मत असत्य हैं, और मत व्यर्थ हैं—यही गृहपति! मेरी दृष्टि है', तो उस आयुष्मानकी यह दृष्टि (= मत) या तो उसके स्वतन्त्र भ्रमका परिणाम है, अथवा किसी दूसरेसे सुनी-सुनाई बात है। वह दृष्टि (= मत) उत्पन्न है, संस्कृत है, चित्तज है, प्रतीत्य-समुत्पन्न है। जो कुछ भी उत्पन्न है, संस्कृत है, चित्तज है, प्रतीत्य-समुत्पन्न है—वह अनित्य है। जो कुछ भी 'अनित्य' है, वह 'दुख' है। जो कुछ दुख है, उसीमें यह आयुष्मान लीन है, उसीमें आसक्त है।

"भन्ते! जिस आयुष्मानने यह भी कहा है कि लोक सान्त है...... लोक अनन्त है...... जो शरीर है वही जीव है...... शरीर अन्य है, जीव अन्य है .... तथागत मरनेके अनन्तर रहते हैं..... तथागत मरनेके अनन्तर नहीं रहते...... तथागत मरनेके अनन्तर रहते भी हैं और नहीं भी रहते...... तथागत मरनेके अनन्तर न रहते हैं और न नहीं रहते हैं, गृहपति! यह मेरा मत है', तो उस आयुष्मानकी भी यह दृष्टि (= मत) या तो उसके स्वतन्त्र भ्रमका परिणाम है, अथवा किसी दूसरेसे सुनी-सुनाई बात है। वह दृष्टि (= मत) भी उत्पन्न है, संस्कृत है, चित्तज है, प्रतीत्य-समुत्पन्न है। जो कुछ भी उत्पन्न है, संस्कृत है, चित्तज है, प्रतीत्य-समुत्पन्न है—वह 'दुख' है। जो कुछ दुख है, उसीमें यह आयुष्मान लीन है, उसीमें आसक्त है।"

ऐसा कहनेपर उन परिव्राजकोंने अनाथपिण्डिक गृहपतिको यह कहा—'गृहपति! हम सबने अपने अपने मत व्यक्त कर दिए। गृहपति! अब तुम बताओ कि तुम्हारी दृष्टि (= मत)) क्या है?"

"भन्ते! जो कुछ उत्पन्न है, संस्कृत है, चित्तज है, प्रतीत्य समुत्पन्न है—वह सब 'अनित्य' है। जो कुछ 'अनित्य' है, वह 'दुख' है। जो 'दुख' है, वह न मेरा है, न वह मैं हूँ, न वह मेरा 'आतमा' है—भन्ते! यही मेरी दृष्टि (= मत) है।"

"गृहपति! जो कुछ उत्पन्न है, संस्कृत है, चित्तज है, प्रतीत्य-समुत्पन्न है—वह सब अनित्य है। जो कुछ 'अनित्य' है, वह 'दुख' है। जो 'दुख' है, हे गृहपति! तू उसीमें लीन है, उसीमें आसक्त है।"

"भन्ते! जो कुछ उत्पन्न है, संस्कृत है, चित्तज है, प्रतीत्य-समुत्पन्न है—वह सब अनित्य है। जो कुछ 'अनित्य' है, वह 'दुख' है। जो 'दुख' है, वह न मेरा है, न वह मैं हूँ, न वह मेरा आतमा है—इस प्रकार मैंने इसे प्रज्ञासे यथार्थ रूपसे जान लिया है। इससे आगेके निस्सरण (= मुक्ति) को यथार्थ रूपसे जानता हूँ।

ऐसा कहे जानेपर वह परिव्राजक चुप हो गए, निस्तेज हो गए। उनके कन्धे गिर गए, मुँह झुक गए। वे कुछ सोचते हुएसे, मूढ़की तरह बैठ गए। तब अनाथ-पिण्डिक गृहपति यह देख कि वे परिव्राजक चुप हो गए, निस्तेज हो गए, उनके कन्धे गिर गए, मुँह झुक गए, वे कुछ सोचते हुएसे, मूढ़की तरह बैठ गए; आसनसे उठ भगवानके पास जा पहुँचा। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए अनाथ पिण्डिक गृहपतिने उन परिव्राजकोंके साथ जितनी बातचीत हुई थी, वह सब भगवानको कह सुनाई।

"गृहपति ! बहुत अच्छा। बहुत अच्छा। इसी प्रकार समय-समयपर धर्मानुसार उन मूर्खोंका मुँह बन्द कर देना चाहिए।"

तब भगवानने अनाथपिण्डिक गृहपतिका धार्मिक-कथासे (मार्ग-) प्रदर्शन किया, धर्मकी ओर झुकाया, प्रेरित किया, प्रदर्शित किया। तब भगवान द्वारा धार्मिक कथासे (मार्ग-) प्रदर्शित किया गया, धर्मकी ओर झुकाया गया, प्रेरित किया गया, प्रदर्शित किया गया अनाथपिण्डिक गृहपति भगवानको अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, चला गया।

अनाथपिण्डिक गृहपतिके चले जानेके थोड़े ही समय बाद भगवानने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—भिक्षुओं, इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में जो भिक्षु उपसम्पदाके हिसाबसे सौ वर्षका भी हो गया होगा, वह भी दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकोंका इसी प्रकार निग्रह करेगा, जैसे इस समय अनाथपिण्डिक गृहपतिने किया।"

४. वज्जियमाहित सुत्त

एक समय भगवान चम्पामें गग्गर पुष्करिणीके किनारे विहार कर रहे थे उस समय वज्जियमाहित गृहपति दिनके मध्याह्नमें ही भगवानके दर्शनके लिए निकला। तब वज्जियमाहित गृहपतिके मनमें हुआ—"यह भगवानका दर्शन करनेके लिए असमय है। भगवान ध्यान-मग्न होंगे। योगाभ्यासी भिक्षुओंका दर्शन करनेके लिए भी यह असमय है। योगाभ्यासी भिक्षु भी ध्यान-मग्न होंगे। तब तक मैं जहाँ दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकोंका आश्रम है, वहाँ चलूँ।"

तब वज्जियमाहित गृहपति जहाँ दूसरे सम्प्रदायके तैर्थिकोंका आश्रम था, वहाँ गया। उस समय दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजक इकट्ठे बैठे हल्ला मचाते हुए, शोर मचाते हुए, नाना प्रकारकी बेकार बातचीत कर रहे थे। उन परिव्राजकोंने वज्जियमाहित गृहपतिको दूरसे ही, आते देखा। देखकर उन्होंने परस्पर तय किया—"आप लोग अल्प शब्द हो जाएँ। आप लोग हल्ला न करें। यह श्रमण गौतमका श्रावक वज्जियमाहित गृहपति आश्रमकी ओर आ रहा है। चम्पामें श्रमण गौतमके जितने भी श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य हैं, उनमें यह वज्जियमाहित गृहपति एक है। ये लोग अल्प-शब्दको चाहनेवाले हैं, अल्प-शब्दके अभ्यासी हैं, और अल्प-शब्दका गुणानुवाद करनेवाले हैं। सम्भव है कि यह देख कि यह परिषद अल्प-शब्द है, वह इधर ही चला आए।" तब दूसरे सम्प्रदायोंके वे परिव्राजक चुप हो गए।

तब वज्जियमाहित गृहपति जहाँ दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजक थे, वहाँ गया। पास जाकर उन दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकोंसे कुशल-क्षेमकी बातचीत की।

कुशल-क्षेम पूछ चुकनेपर वह एक ओर बैठा। एक ओर बैठे वज्जियमाहित गृहपतिसे दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकोंने यह पूछा—"गृहपति! क्या सचमुच श्रमण गौतम तपस्या मात्रकी निन्दा करता है, जितने भी रुक्षजीवी तपस्वी हैं, उन सबकी सर्वांशमें गर्हा करता है, उन्हें भला-बुरा कहता है?"

"भन्ते! भगवान न सभी तपकी निन्दा करते हैं और न सभी रुक्षजीवी तपस्वियोंकी गर्हा करते हैं। भन्ते! जो गर्हा करने योग्य है, भगवान उसकी गर्हा करते हैं, जो प्रशंसा करने योग्य है, भगवान उसकी प्रशंसा करते हैं। गर्हा करने योग्यकी गर्हा करते हुए, प्रशंसा करने योग्यकी प्रशंसा करते हुए भगवान विभज्जवादी (=विभक्त-वादी) हैं। इस विषयमें भगवान एकांशवादी नहीं हैं।

ऐसा करनेपर एक परिव्राजकने वज्जियमाहित गृहपतिको यह कहा—"गृहपति! तू जरा सबर कर। तू जिस श्रमण गौतमका गुणानुवाद करता है, वह श्रमण गौतम बिना प्रज्ञाप्ति (=नियमों) के दूसरोंको विनीत (=नियमानुसार चलनेवाला) बनाता है?'

"भन्ते! इस विषयमें भी आपको धर्मानुसार कहता हूँ कि भगवानने यह कुशल (–कर्म) है, ऐसा प्रज्ञापन किया है; यह अकुशल (–कर्म) है, ऐसा भगवानने प्रज्ञापन किया है। इस प्रकार यह कुशल है, यह अकुशल है, प्रज्ञापन करनेवाले भगवान स-प्रज्ञप्ति हैं। वह भगवान बिना प्रज्ञप्तिके अनुशासन नहीं करते।"

ऐसा कहे जानेपर वे परिव्राजक चुप हो गए, निस्तेज हो गए। उनके कन्धे गिर गए, मुँह झुक गए। वे कुछ सोचते हुएसे, मूढ़की तरह बैठ गए। तब वज्जियमाहित गृहपति यह देख कि वे परिव्राजक चुप हो गए, निस्तेज हो गए, उनके कन्धे गिर गये, मुँह झुक गये, वे कुछ सोचते हुएसे, मूढ़की तरह बैठ गये; आसनसे उठ भगवानके पास जा पहुँचा। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए वज्जियमाहित गृहपतिने उन परिव्राजकोंके साथ जितनी बातचीत हुई थी, वह सब भगवानको कह सुनाई।

"गृहपति! बहुत अच्छा। बहुत अच्छा। इसी प्रकार समय-समयपर धर्मानुसार इन मूर्खोंका मुँह बन्द कर देना चाहिये। गृहपति! न मैं यही कहता हूँ, कि सभी तपोंको तपना चाहिये, और न मैं यही कहता हूँ कि सभी तपोंको नहीं तपना चाहिए। गृहपति! न मैं यही कहता हूँ कि सभी (शील–) समादानों को ग्रहण करना चाहिए, न यही कहता हूँ कि सभी समादानोंको ग्रहण नहीं करना चाहिये। गृहपति! न मैं यही कहता हूँ कि सभी प्रयासोंको करना चाहिये, न यही कहता हूँ

कि सभी प्रयासोंको नहीं करना चाहिये। गृहपति! न मैं यही कहता हूँ कि सभी प्रतिनिसर्गों (=परित्यागों) को करना चाहिये, न यही कहता हूँ कि सभी परित्यागोंको नहीं करना चाहिए। गृहपति! न मैं यही कहता हूँ कि सभी विमुक्तिसे विमुक्त होना चाहिए, न मैं यही कहता हूँ कि सभी विमुक्तिसे विमुक्त नहीं होना चाहिये।"

"गृहपति! जिस तपको तपनेसे अकुशल–धर्मोंमें वृद्धि होती हो, कुशल धर्मोंकी परिहानि होती हो, उस तपको नहीं तपना चाहिए। गृहपति! जिस तपको तपनेसे अकुशल-धर्मोंकी परिहानि होती हो, कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती हो, उस तपको तपना चाहिये।

"गृहपति! जिस (शील–) समादानको ग्रहण करनेसे अकुशल-धर्मोंमें वृद्धि होती हो, कुशल-धर्मोंकी परिहानि होती हो, उस (शील–) समादानको नहीं ग्रहण करना चाहिए। गृहपति! जिस (शील–) समादानको ग्रहण करनेसे अकुशल धर्मोंकी परिहानि होती हो, कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती हो, उस (शील–) समादानको ग्रहण करना चाहिए।

"गृहपति! जिस प्रयास (=प्रधान) को करनेसे अकुशल धर्मोंमें वृद्धि होती हो, कुशल-धर्मोंकी परिहानि होती हो, उस प्रयासको नहीं करना चाहिए। गृहपति! जिस प्रयासको ग्रहण करनेसे अकुशल धर्मोंकी परिहानि होती हो, कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती हो, उस प्रयासको करना चाहिए।

"गृहपति! जिस परित्यागके करनेसे अकुशल धर्मोंमें वृद्धि होती हो, कुशल धर्मोंकी परिहानि होती हो, उस परित्यागको नहीं करना चाहिए। गृहपति! जिस परित्यागको करनेसे अकुशल धर्मोंकी परिहानि होती हो, कुशल धर्मोंकी वृद्धि होती हो, उस परित्यागको करना चाहिए।

"गृहपति! जिस विमुक्तिसे विमुक्त होनेसे अकुशल-धर्मोंमें वृद्धि होती हो, कुशल धर्मोंकी परिहानि होती हो, उस विमुक्तिसे विमुक्त होना चाहिये। गृहपति! जिस विमुक्तिसे विमुक्त होनेसे अकुशल धर्मोंकी परिहानि होती हो, कुशल-धर्मोंकी वृद्धि होती हो, उस विमुक्तिसे विमुक्त होना चाहिए।"

तब भगवान् द्वारा धार्मिक कथासे (मार्ग–) प्रदर्शित किया गया, धर्मकी ओर झुकाया गया, प्रेरित किया गया, प्रदर्शित किया गया, वज्जियमाहित गृहपति आसनसे उठ, भगवानको अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, उठकर चला गया।

वज्जियमाहित गृहपतिके चले जानेके थोड़ी ही देर बाद भगवानने भिक्षुओंको सम्बोधित किया। भिक्षुओ ! इस धर्म-विनयमें जो भिक्षु दीर्घ-कालसे अल्प-मैल वाला होगा, वह भी दूसरे सम्प्रदायके परिव्राजकोंका इसी प्रकार निग्रह करेगा, जैसा इस समय वज्जियमाहितने किया।

५. उत्तिय सुत्त

उस समय उत्तिय परिब्राजक जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवानका कुशल-क्षेम पूछा। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेपर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए उत्तिय परिब्राजकने भगवानसे यह कहा—

"गौतम ! क्या यही बात सत्य है कि लोक शाश्वत है, और बात व्यर्थ है ?"

"उत्तिय ! मेरे द्वारा यह अव्याकृत (=बेकही) बात है कि लोक शास्वत है, और बात व्यर्थ है।"

"तो गौतम ! क्या यही बात सत्य है कि लोक अशाश्वत है, और बात व्यर्थ है ?"

"उत्तिय ! यह बात भी मेरे द्वारा अव्याकृत (=बेकही) है कि लोक अशाश्वत है, और बात व्यर्थ है।"

"गौतम ! तो क्या लोक सान्त है......लोक अनन्त है.......शरीर और जीव एक ही है........शरीर और जीव भिन्न-भिन्न है.....तथागत मरणानन्तर रहते हैं......तथागत मरणानन्तर नहीं रहते हैं......तथागत मरनेके अनन्तर रहते भी हैं, नहीं भी रहते हैं........तथागत मरनेके अनन्तर नहीं रहते हैं और नहीं भी रहते हैं, और बात व्यर्थ है ?"

"उत्तिय ! यह बात भी मेरे द्वारा अव्याकृत (=बेकही) है कि तथागत मरनेके अनन्तर नहीं रहते हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं, यही बात सत्य है, और बात व्यर्थ है।"

"गौतम ! यह कैसे है कि यह पूछनेपर कि क्या यह लोक शाश्वत है, यह बात सत्य है, और व्यर्थ है ?" आप कहते हैं, 'उत्तिय ! यह बात मेरे द्वारा अव्याकृत (=बेकही) है कि लोक शाश्वत है, यह बात सत्य है, और व्यर्थ है।

"गौतम ! यह कैसे है कि यह पूछनेपर कि क्या यह लोक अशाश्वत है, यह बात सत्य है, और व्यर्थ है ?' आप कहते हैं, 'उत्तिय ! यह बात मेरे द्वारा अव्याकृत है कि लोक अशाश्वत है, यह बात सत्य है, और व्यर्थ है।'

"गौतम ! क्या लोक सान्त है....लोक अनन्त है....जीव तथा शरीर एक ही है.....जीव तथा शरीर पृथक-पृथक हैं.....तथागत मरनेके अनन्तर रहते हैं....तथागत मरनेके अनन्तर नहीं रहते हैं....तथागत मरनेके अनन्तर होते भी हैं और नहीं भी होते हैं...तथागत मरनेके अनन्तर नहीं होते हैं और न नहीं होते हैं, यह बात सत्य है और व्यर्थ है?' आप कहते हैं, 'उत्तिय ! यह बात मेरे द्वारा अव्याकृत है कि तथागत मरनेके अनन्तर नहीं होते हैं और नहीं नहीं भी होते हैं, यही बात सत्य है, और व्यर्थ है; तो आप गौतमने क्या व्याकृत किया है?"

"उत्तिय ! मैं जानकर श्रावकोंको सत्वोंकी विशुद्धि के लिए, शोक, रोने-पीटनेके उपशमनके लिए, दुख-दौर्मनस्यके अस्तके लिए, ज्ञान की प्राप्तिके लिए तथा निर्वाणको साक्षात करनेके लिए धर्मोपदेश देता हूँ।"

"गौतम ! आप जो जानकर श्रावकोंको सत्वोंकी विशुद्धिके लिए, शोक, रोने-पीटनेके उपशमनके लिए, दुख-दौर्मनस्यके अस्तके लिए, ज्ञानकी प्राप्तिके लिए तथा निर्वाणको साक्षात करनेके लिए यह धर्मोपदेश देते हैं उससे सभी लोग (निर्वाण) की ओर ले जाये जाते हैं, अथवा आधे लोग, अथवा तीसरे हिस्सेके लोग?" उसके ऐसा कहनेपर, भगवान चुप हो गये।

उस समय आयुष्मान आनन्दके मनमें यह हुआ कि ऐसा न हो कि उत्तिय परिब्राजकके मनमें यह मिथ्या धारणा धर कर जाय कि श्रमण गौतमसे जब सर्व-उत्कर्षक प्रश्न पूछा जाता है तो श्रमण गौतम चुप्पी लगा जाता है, उत्तर नहीं देता है, समाधान नहीं करता है—यह उत्तिय परिब्राजकके लिए दीर्घकाल तक अहितकर होगा, दुखद होगा।

तब आयुष्मान आनन्दने उत्तिय परिब्राजक से कहा—"तो आयुष्मान उत्तिय ! मैं तुम्हें उपमा देता हूँ। क्योंकि कुछ विज्ञ पुरुषोंको उपमा द्वारा भी कथनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। आयुष्मान उत्तिय ! जैसे राजाका कोई प्रत्यन्त-नगर हो, जिसकी चार-दीवारी दृढ़ हो जिसका प्राकार मजबूत हो तथा जिसका तोरण सुदृढ़ हो, किन्तु उसमें एक ही द्वार हो। वहाँ कोई ऐसा द्वारपाल हो जो पण्डित हो, चतुर हो, मेधावी हो, ज्ञात लोगोंको भीतर जाने देनेवाला और अज्ञात लोगोंको भीतर न जाने देनेवाला। वह उस नगरके चारों ओर घूमे। नगरके चारों ओर घूमनेपर उसे कहीं भी प्राकारमें न कोई सन्धि (=सेंध) दिखाई दे, न विवर दिखाई दे, यहाँ

तक कि एक बिल्लीके आने-जानेकी जगह भी न दिखाई दे। उसके मनमें कभी यह विचार न आए कि इतने प्राणी इस नगरमेंसे निकलते हैं, वा प्रवेश करते हैं।

"इसी प्रकार आयुष्मान उत्तिय! तथागतके मनमें यह उत्सुकता नहीं होती कि सभी लोग निर्वाणकी ओर ले जाये जाते हैं, अथवा आधे लोग निर्वाणकी ओर ले जाये जाते हैं अथवा तीसरा हिस्सा ले जाये जाते हैं। तथागतके मनमें केवल यही होता है—जितने भी लोग निर्वाणकी ओर ले जाये गये हैं, ले जाये जा रहे रहे हैं वा ले जाये जायेंगे, वे सभी पाँच नीवरणोंका—जो चित्तके उपक्लेश हैं तथा जो प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले हैं—त्याग कर, चारों स्मृति-उपस्थानोंमें प्रतिष्ठित होकर तथा सातों बोधि-अंगोंकी भावना करके। इसी प्रकार ये लोकसे (निर्वाण की ओर) ले जाये गये हैं, ले जाये जाते हैं तथा ले जाये जायेंगे। आयुष्मान उत्तिय! तूने जो भगवानसे प्रश्न पूछा, वह दूसरी दष्टिसे पूछा। इसीलिए भगवानने तुझे उत्तर नहीं दिया।

६. कोकनुद सुत्त

एक समय आयुष्मान आनन्द राजगृहके तपोदाराममें विहार करते थे। तब आयुष्मान आनन्द रातके ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर जहाँ तपोदा (नदी) थी, वहाँ स्नान करनेके लिए गए। तपोदा नदीमें स्नान कर चुकनेके अनन्तर बाहर आ, शरीरको निचोड़ते हुए एक ही चीवर पहने खड़े थे। कोकनद परिव्राजक भी रातके ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर जहाँ तपोदा नदी थी, वहाँ स्नान करनेके लिए गया। कोकनुद परिव्राजकने आयुष्मान आनन्दको दूरसे ही आते देखा। देखकर आयुष्मान आनन्दके मनमें यह हुआ—

"आयुष्मान! तुम यहाँ कौन हो?"

"आयुष्मान! मैं भिक्षु हूँ।"

"आयुष्मान! आप किन भिक्षुओंमेंसे हैं?"

"आयुष्मान! मैं शाक्यपुत्रीय श्रमणोंमेंसे हूँ।"

"यदि आयुष्मान! प्रश्न पूछनेकी आज्ञा दें, तो मैं आयुष्मानसे कुछ प्रश्न पूछूं?"

"आयुष्मान! पूछ। सुनकर जानूंगा।"

"क्या आपकी यह दृष्टि (=मत) है कि लोक शाश्वत है, यही बात सत्य है, अन्य बात व्यर्थ है?"

"आयुष्मान! नहीं मेरी यह दृष्टि (=मत) नहीं कि लोक शाश्वत है, यही बात सत्य है, अन्य बात व्यर्थ है।"

"क्या आपकी यह दृष्टि (= मत) है कि लोक अशाश्वत है, यही बात सत्य है, अन्य बात व्यर्थ है ?"

"आयुष्मान ! नहीं मेरी यह दृष्टि (= मत) नहीं कि लोक अशाश्वत है, यही बात सत्य है, अन्य बात व्यर्थ है।"

"क्या आपकी यह दृष्टि (= मत) है कि लोक सान्त है....लोक अनन्त है....शरीर तथा जीव एक ही है....शरीर दूसरा है, जीव दूसरा है.....तथागत मरनेके अनन्तर होते हैं....तथागत मरनेके अनन्तर नहीं होते हैं.....तथागत मरनेके अनन्तर होते भी हैं और नहीं भी होते हैं.....तथागत मरनेके अनन्तर न होते हैं और न नहीं होते हैं, यही बात सत्य है, अन्य बात व्यर्थ है ?"

"आयुष्मान ! नहीं मेरी यह दृष्टि (= मत) नहीं कि तथागत मरनेके अनन्तर न होते हैं और न नहीं होते हैं, यही बात सत्य है, अन्य बात व्यर्थ है।"

"तो आप न जानते हैं, न देखते हैं ?"

"आयुष्मान ! ऐसा नहीं है कि मैं न जानता हूँ, और न देखता हूँ। आयुष्मान ! मैं जानता हूँ और देखता हूँ।"

आपसे जब यह पूछा जाता है कि क्या आपकी यह दृष्टि (=मत) है कि 'लोक शाश्वत है, यही मत सत्य है, दूसरे मत व्यर्थ हैं ?' तो आप कहते हैं कि आयुष्मान ! मेरी ऐसी दृष्टि (=मत) नहीं है कि यह लोक शाश्वत है, यही मत सत्य है, अन्य मत व्यर्थ हैं।

"आपसे जब यह पूछा जाता है कि क्या आपकी यह दृष्टि (=मत) है कि 'लोक अशाश्वत है, यही मत सत्य है, दूसरे मत व्यर्थ हैं ?' तो आप कहते हैं कि आयुष्मान। मेरी ऐसी दष्टि (=मत) नहीं है कि यह लोक अशाश्वत है, यही मत सत्य है, अन्य मत व्यर्थ हैं।

"आपसे जब यह पूछा जाता है कि क्या आपकी यह दृष्टि है कि लोक सान्त है.......लोक अनन्त है......जीव तथा शरीर एक ही है......जीव तथा शरीर भिन्न-भिन्न हैं.......तथागत मरनेके अनन्तर रहते हैं......तथागत मरनेके अनन्तर नहीं रहते......तथागत मरनेके अनन्तर न रहते हैं और न नहीं रहते हैं, यही मत सत्य है, दूसरे मत व्यर्थ हैं ?' तो आप कहते हैं कि आयुष्मान ! मेरी ऐसी दृष्टि (=मत) नहीं है कि तथागत मरनेके अनन्तर न रहते हैं और न नहीं रहते हैं, यही मत सत्य है, और मत व्यर्थ हैं।

"आपसे जब यह कहा जाता है कि तो आप न जानते हैं, न देखते हैं", तो भी आप कहते हैं कि 'आयुष्मान! मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' आपके इस प्रकारके कथनका क्या अभिप्राय है?

"आयुष्मान! 'यह लोक शाश्वत है, यही मत सत्य है, अन्य मत व्यर्थ हैं' यह एक दृष्टि (=मत) मात्र है। आयुष्मान! 'यह लोक अशाश्वत है, यही मत सत्य है, अन्य मत व्यर्थ हैं' यह भी एक दृष्टि (—मत) मात्र है। आयुष्मान! यह लोक सान्त है....... यह लोक अनन्त है...... जीव तथा शरीर एक ही है ...... जीव तथा शरीर भिन्न-भिन्न हैं...... तथागत मरनेके अनन्तर रहते हैं .... तथागत मरनेके अनन्तर नहीं रहते हैं....... तथागत मरनेके अनन्तर न रहते हैं और न नहीं रहते हैं, यही मत सत्य है, अन्य मत व्यर्थ हैं, यह भी एक दृष्टि (=मत) मात्र है।

"आयुष्मान! जितनी दृष्टियाँ हैं, जितने दृष्टि-स्थान हैं, जितने दृष्टि-अधिस्थान हैं, जितने दृष्टि-परिउपस्थान हैं, जितने दृष्टि-समुत्थान हैं तथा जितने दृष्टि-समुद्घात हैं—मैं उन्हें जानता हूँ, मैं उन्हें देखता हूँ। इन्हें जानते हुए, इन्हें देखते हुए, क्या मैं यह कहूँ कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं नहीं देखता हूँ। आयुष्मान! मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।"

"आपका क्या नाम है? आपके सब्रह्मचारी आपको क्या कहकर पुकारते हैं?"

"आयुष्मान! मेरा नाम आनन्द है। मुझे सब्रह्मचारी आनन्द कहकर पुकारते हैं।"

"यह कितने आश्चर्यकी बात है कि हम महान आचार्यके साथ बातचीत करते हुए यह न जान सके कि आप आयुष्मान आनन्द हैं। यदि हम जानते कि आप आयुष्मान आनन्द हैं, तो हमें इतना भी न सूझता। आयुष्मान आनन्द! हमें क्षमा करें।"

७. आहुनेय्य सुत्त

भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये दस गुण (=धर्म) होते हैं वह आदर करने योग्य होता है, सत्कार करने योग्य होता है, दक्षिणार्ह होता है, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य होता है तथा लोगोंके लिए पुण्य-क्षेत्र होता है। कौन-से दस गुण? भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्षके नियमोंको पालन करता हुआ, अपने आचरणको व्यवस्थित रखता हुआ तथा छोटे-से-छोटे दोषोंके करनेसे भी डरता हुआ विचरता है। वह शिक्षा-पदोंको सम्यक् प्रकार ग्रहण करता है।

"भिक्षु बहुश्रुत होता है, श्रुतका धारण करनेवाला, श्रुतका संग्रह करनेवाला, जो आदिमें कल्याणकारक, मध्यमें कल्याणकारक तथा अन्तमें कल्याणकारक, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित, सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहलाते हैं, उसके द्वारा वैसे धर्म बहु-श्रुत धारण किए गए होते हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए, मनके द्वारा परिचित किए गए तथा (सम्यक्) दृष्टि द्वारा बींधे गये होते हैं।

"भिक्षु, अच्छी संगतिमें रहनेवाला होता है, भली संगतिमें, सद्संगतिमें।"

"भिक्षु सम्यक-दृष्टि होता है, सम्यक दर्शन से युक्त।"

"भिक्षु अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंका अनुभव करता है; एक होकर अनेक हो जाता है, अनेक होकर फिर एक हो जाता है, प्रकट होता है, छिप जाता है; दीवा प्राकार (=चार दीवारी), पर्वतके आरपार जाता है जैसे आकाशमें; पृथ्वीपर भी डुबकू-डुबकू करता है, जैसे पानीमें; पानीमें भी बिना भीगे जाता है जैसे पृथ्वीपर; आकाशमें भी पालथी मारकर गमन करता है जैसे पक्षी हो; इस प्रकारके महाऋद्धिमान महाप्रतापवान चन्द्र तथा सूर्यको हाथसे स्पर्श करता है—ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाता है।

"भिक्षु दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर श्रोत्र-धातुसे दिव्य तथा मानुष, दूरके तथा समीपके शब्द सुनता है।

"वह दूसरे तत्त्वोंके, दूसरे प्राणियोंके चित्तको अपने चित्तसे जानता है—सराग चित्तको जानता है कि यह सराग चित्त है, वीतराग चित्तको जानता है कि यह वीतराग चित्त है, सद्वेष चित्तको जानता है कि यह सद्वेष-चित्त है, वीतद्वेष ..... समोह चित्त .... वीतमोह चित्त .... संक्षिप्त-चित्त ..... विक्षिप्त-चित्त .... महद्गत चित्त ...... अमहद्गत चित्त ...... स-उत्तर चित्त ... . अनुत्तर (=जिससे बढ़कर नहीं) चित्त .... समाहित चित्त (=एकाग्र) ...... असमाहित चित्त ...... विमुक्त चित्त ...... अविमुक्त चित्तको जानता है कि यह अविमुक्त-चित्त है।

"वह अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंका अनुस्मरण करता है, जैसे एक जन्मका, दो जन्मोंका, तीन जन्मोंका, चार जन्मोंका, पाँच जन्मोंका, दस जन्मोंका, बीस जन्मोंका, तीस जन्मोंका, चालीस जन्मोंका, पचास जन्मोंका, सौ जन्मोंका, हजार जन्मोंका, लाख जन्मोंका, अनेक संवर्त-कल्पोंका, अनेक विवर्त-कल्पोंका, अनेक संवर्त-विवर्त कल्पोंका कि मैं अमुक स्थानपर था, यह नाम था, यह गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा भोजन ग्रहण करता था, इस प्रकार सुख-दुखका अनुभव किया तथा इतनी आयु तक

जीवित रहा। वहाँसे च्युत होकर मैंने अमुक जगह जन्म ग्रहण किया। वहाँ भी मेरा अमुक नाम था, अमुक गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा भोजन ग्रहण करता था, इतनी आयु तक जीवित रहा। वहाँसे च्युत होकर, यहाँ उत्पन्न हुआ। इस प्रकार आकार-उद्देश्य सहित नाना जन्मोंका अनुस्मरण करता है।

"वह दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे प्राणियोंको मरते-उत्पन्न होते देखता है, हीन-योनिमें, श्रेष्ठ योनिमें, सुवर्ण या दुर्वर्ण, कर्मानुसार सुगति-प्राप्त अथवा दुर्गति-प्राप्त। वह जानता है कि ये प्राणी शरीरके वाणीके तथा मनके दुष्कर्मोंसे मुक्त हैं, ये आर्यों (=श्रेष्ठ जनों) के निन्दक हैं, ये मिथ्या-दृष्टि हैं, मिथ्या-मतके ग्रहण किए रहनेवाले; इसलिए यह शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर, अपाय, दुर्गति, नरकमें प्राप्त हुए हैं। अथवा, वह जानता है कि ये प्राणी शरीरके, वाणीके तथा मनके सुकर्मोंसे युक्त हैं, ये आर्यों (=श्रेष्ठ जनों) के प्रशंसक हैं, ये सम्यक-दृष्टि हैं, सम्यक-दृष्टिको ग्रहण किए रहनेवाले; इसीलिए ये शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर सुगति, स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुए। इस प्रकार वह दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे प्राणियोंको मरते-उत्पन्न होते देखता है, हीनयोनिमें, श्रेष्ठयोनिमें, सुवर्ण या दुवर्ण, कर्मानुसार सुगति-प्राप्त अथवा दुर्गति-प्राप्त।

"वह आस्रवोंका क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये दस गुण (=धर्म) होते हैं वह आदर करने योग्य होता है, सत्कार करने योग्य होता है, दक्षिणार्ह होता है, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य होता है तथा लोगोंके लिए पुण्य क्षेत्र होता है।

८. थेर सुत्त

भिक्षुओ, जिस स्थविर भिक्षुमें ये दस बातें होती है, वह जिस-जिस दिशामें विहार करता है, सुखपूर्वक ही विहार करता है। कौन-सी दस बातें? वह स्थविर कालज्ञ होता है, चिर-कालसे प्रव्रजित; शीलवान होता है........भली प्रकार पालन करनवाला; बहुश्रुत होता है.......भली प्रकार बींधे गए होते हैं; उसके द्वारा भिक्षु प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी प्रातिमोक्ष—दोनों—सूत्रतः तथा व्यंजनतः विस्तृत रूपसे हृदयंगम किए गये होते हैं, सुविभक्त किए गए होते हैं, सम्यक प्रकार प्रवर्तित किये गये होते हैं, सुनिश्चित किये गये होते हैं; झगड़े-झंझटको शान्त करनेमें कुशल होता है; धर्मकामी होता है, प्रिय व्यवहारवाला, धर्म तथा विनयके विषयमें व्याप्त-प्रमुदा युक्त; जैसे तैसे चीवर-पिण्डपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परि-

ष्कारसे सन्तुष्ट होता है; उसका आना-जाना संयत होता है, बस्तीमें (घरोंके अन्दर) उठना-बैठना प्रियकर होता है, वह इसी जन्ममें सुखद चारों चैतसिक ध्यानोंको आसानीसे, सरलतीसे, बहुलतासे लाभ करनेवाला होता है; वह आस्रवोंका क्षय कर अनास्रव-चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्तकर विहार करता है। भिक्षुओ, जिस स्थविर भिक्षुमें ये दस बातें होती हैं, वह जिस जिस दिशामें विहार करता है, सुखपूर्वक ही विहार करता है।

९. उपालि सुत्त

उस समय आयुष्मान उपालि जहाँ भगवान थे, वहाँ गये। पास जाकर भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान उपालिने भगवानसे यह कहा—"भन्ते ! मैं अरण्यमें एकान्त-वास करना चाहता हूँ।"

"उपालि ! अरण्यमें एकान्त-वास करना कठिन है। निर्जन स्थानमें मन लगना कठिन है। जिस भिक्षुको समाधिका लाभ नहीं है, उसके चित्तकी एकाग्रताको मानों वन हर लेते हैं। उपालि ! यदि कोई ऐसा कहता है—'मैं बिना समाधि लाभ किए अरण्यमें एकान्त-सेवन करूँगा, तो उसके बारेमें यही समझना चाहिए कि वह या तो वह (काम-वितर्कोंमें) डूब जायगा, या (क्रोध - वितर्कोंसे) ऊपर आयेगा।

"उपालि ! जैसे कोई बड़ा तालाब हो। अब सात रतन या साढ़े सात रतन ऊँचाईका कोई हाथी आये। उसके मनमें यह हो—मैं इस तालाबमें उतरकर कान धोनेकी क्रीड़ा भी करूँ तथा पीठ धोनेकी क्रीड़ा भी करूँ। कान धोनेकी क्रीड़ा भी करके, पीठ धोनेकी क्रीड़ा भी करके, स्नान कर, पानी पी, बाहर निकल यथारुचि चला जाऊँ। वह उस तालाबमें उतरे, कान धोनेकी क्रीड़ा भी करे, पीठ धोनेकी क्रीड़ा भी करे, कान धोनेकी क्रीड़ा भी करके, पीठ धोनेकी क्रीड़ा भी करके, स्नान कर, पानी पीकर, बाहर निकलकर यथारुचि चला जाय। ऐसा किसलिए ? उपालि ! उसका शरीर महान है, वह गहरे पानीके तलको स्पर्श करता है।

अब कोई खरगोश या बिल्ला आये। उसके मनमें यह हो—मैं इस तालाबमें उतरकर कान धोनेकी क्रीड़ा भी करूँ तथा पीठ धोनेकी क्रीड़ा भी करूँ। कान धोनेकी क्रीड़ा भी करके, पीठ धोनेकी क्रीड़ा भी करके, स्नान कर, पानी पी, बाहर निकल, यथारुचि चला जाऊँ। वह बिना विचार किये, सहसा उस तालाबमें कूद पड़े। उसके बारेमें यही समझना चाहिए—'या तो वह नीचे जायेगा, या ऊपर आयेगा ! ऐसा किसलिए ? उसका शरीर छोटा-सा (=परित्र) है और वह उस गहरे पानीके

तलको स्पर्श नहीं करता। इसी प्रकार उपालि ! जो ऐसा कहता है कि मैं बिना समाधि लाभ किये अरण्यमें एकान्त-सेवन करूँगा, तो उसके बारेमें यही समझना चाहिए कि तो वह डूब जायेगा, या ऊपर आयेगा।

"उपालि ! जैसे कोई बच्चा चित लेटा हुआ अपने मूल-मूत्रसे ही क्रीड़ा करता है। उपालि ! तुम क्या मानते हो, क्या यह सम्पूर्ण रूपसे मूर्खतापूर्ण बाल-क्रीड़ा नहीं है ?"

"भन्ते ! हाँ।"

"उपालि ! आगे चलकर, बड़ा होनेपर, इन्द्रियोंके विकसित होनेपर वह कुमार बच्चोंके जो खिलौने होते हैं, उनसे खेलता है, जैसे वंक[१], घटिक[२], मोक्खचिक[३], चिळ्गलक[४], पत्तागुहक[५], रथक[६] तथा धनुक[७]। उपालि ! क्या यह मानते हो कि ये क्रीड़ायें पहली क्रीड़ासे श्रेष्ठतर हैं ?"

"भन्ते ! हाँ।"

"उपालि ! आगे चलकर, बड़ा होनेपर, इन्द्रियोंके विकसित होनेपर वह पाँचों इन्द्रियोंके जो विषय हैं, उनमें अनुरक्त हो जाता है, उनको समर्पित हो जाता है, उनका अंग बन जाता है—चक्षुके विषय रूपोंको, जो इष्ट होते हैं, जो सुन्दर लगते हैं, जो 'अच्छे' होते हैं, जो प्रियकर हैं, जो कानोंके विषय हैं तथा जो मनोरंजन करते हैं; श्रोतके विषय शब्दोंको; घ्राणके विषय गन्धोंको; जिह्वाके विषय रसोंको; कामके विषय स्पर्शोंको, जो इष्ट होते हैं, जो सुन्दर लगते हैं, जो 'अच्छे' होते हैं, जो प्रियकर हैं, जो कामनाके विषय हैं तथा जो मनोरंजन करते हैं।

"उपालि ! क्या यह मानते हो कि ये क्रीड़ायें पहली क्रीड़ासे अधिक विकसित हैं ?"

"भन्ते ! हाँ।"

---

१. बच्चोंके खेलनेका छोटा-सा हल (= नगुल),.

२. बड़े डण्डेसे छोटे डण्डे डण्डेपर चोट करना (गुल्ली-डण्डा ?)

३. उलटने-पलटनेकी क्रीड़ा।

४. ताड़के पत्तों आदिसे बनाई हुई चक्री।

५. पत्तोंके मापसे बालू आदिको मापनेकी क्रीड़ा।

६. छोटा-रथ।

७. छोटा धनुष।

"उपालि ! लोकमें अर्हत, सम्यकसम्बुद्ध, विद्या तथा आचरणसे युक्त, सुगत, लोकके जानकार, अनुपम, (दुष्ट) पुरुषोंका दमन करनेके लिये सारथी, देव-मनुष्योंके शास्ता, बुद्ध, भगवान तथागत लोकमें उत्पन्न होते हैं। वह इस सदेव, सभार, सब्रह्म, लोकको, श्रमण-ब्राह्मणको सहित, देव-मनुष्य-सहित प्रजाको स्वयं जानकर, साक्षात कर प्रकट करते हैं। वह आदिमें कल्याणकारक, मध्यमें कल्याणकारक, अन्तमें कल्याण-कारक, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित, सर्वांशमें परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते हैं।

"उस धर्मको कोई गृहपति, गृहपति-पुत्र वा किसी कुलमें जन्म ग्रहण किया कोई तरुण सुनता है। उस धर्मको सुनकर उसके मनमें तथागतके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। वह उस श्रद्धासे समन्वित होनेपर इस प्रकार विचार करता है—'गृहस्थी बंधन है, धूल-पथ है, प्रव्रज्या खुला आकाश है।' घरमें रहते हुए सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका पालन करना आसान नहीं। क्यों न मैं केश तथा (दाढ़ी–) मूँछ मुड़ा, काषाय वस्त्र पहने, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँ।"

"वह आगे चलकर थोड़ी भोग-सम्पत्तिको या अधिक भोग-सम्पत्तिको छोड़; थोड़े या अधिक रिश्तेदारोंको छोड़, केश तथा (दाढ़ी–) मूँछ मुड़ा, काषाय वस्त्र पहन घरसे बे-घर हो प्रव्रजित होता है।

"वह इस प्रकार प्रव्रजित होकर भिक्षुओंका जो शिक्षा-क्रम है, उससे समन्वित होकर, प्राणी-हिंसाका त्याग कर, प्राणी-हिंसासे विरत हो विचरता है—दण्ड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, लज्जा-युक्त, दयावान तथा सभी प्राणियोंपर अनुकम्पा करनेवाला होकर।

"वह चोरा करना छोड़, चोरी करनेसे विरत हो विचरता है—दियेको ही लेनेवाला, दियेकी ही आशा करनेवाला। इस प्रकार वह पवित्र जीवन व्यतीत करता है।

"वह अब्रह्मचर्यको छोड़ ब्रह्मचारी होता है—ग्राम्य मैथुन-धर्मसे विरत रहनेवाला, दूर रहनेवाला।

"वह झूठ बोलना छोड़, झूठ बोलनेसे दूर रह, सत्य बोलनेवाला, सच्चा लोकमें यथार्थवादी होता है।"

"वह चुगली करना छोड़, चुगली करनेसे दूर रह, यहाँकी बात सुनकर वहाँ नहीं कहता कि यहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाय, वहाँकी बात सुनकर यहाँ नहीं कहता कि वहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाय। वह एक दूसरेसे पृथक पृथक होनेवालोंको मिलाता है, मिले हुओंको पृथग् नहीं होने देता। वह ऐसी वाणी बोलता है जिससे लोग इकट्ठे रहें, मिल-जुलकर रहें।

"वह कठोर वाणी छोड़, कठोर शब्दोंसे दूर रह ऐसी वाणी बोलता है जो कानोंको सुख देनेवाली, प्रेम भरी, हृदयमें बैठ जानेवाली, सभ्य, बहुत जनोंको प्रिय लगनेवाली हो।"

"वह फजूल बोलना छोड़कर, फजूल बोलनेसे दूर रहकर ऐसी वाणी बोलता है जो समयानुकूल हो, यथार्थ हो, बे-मतलब न हो, धर्मानुकूल हो, विनयानुसार हो, सम्भालकर रखने योग्य हो, तर्कानुकूल हो, संयत हो तथा हितकर हो।

"वह बीजों तथा वनस्पतिको नष्ट नहीं करता। वह एक बार खानेवाला होता है, रात्रिको न खानेवाला, विकाल-भोजनसे विरत रहनेवाला। वह नाचने-गाने-बजाने तथा तमाशे देखनेसे विरत होता है। वह माला, गन्ध, विलेपन, धारण, मण्डन आदि जितनी भी (शरीरकी) सजावटें हैं, उनसे विरत होता है। वह ऊँचे शयन तथा महान शयनसे विरत होता है। वह चाँदी-सोनेके ग्रहणसे विरत होता है। वह कच्चा अनाज ग्रहण करनेसे विरत होता है। वह कच्चा मांस ग्रहण करनेसे विरत होता है। वह स्त्रियों-कुमारियोंका ग्रहण करनेसे विरत होता है। वह दासी-दासोंका ग्रहण करनेसे विरत होता है। वह भेड़-बकरीके ग्रहणसे विरत होता है। वह मुर्गे तथा सूअरोंके ग्रहण से विरत होता है। वह हाथी-गौ-घोड़ाके ग्रहणसे विरत होता है। वह खेतों तथा (अन्य) वस्तुओंके ग्रहणसे विरत होता है। दूत-कर्म तथा संदेश लेकर आने-जानेसे विरत होता है। क्रय-विक्रयसे विरत होता है। तराजूकी ठगी, काँसे (=धातु) की ठगी तथा मापोंकी ठगी करनेसे विरत होता है। रिश्वत आदि लेने, बच्चा करने, धोखा देने तथा ठगनेसे विरत होता है। वह काटने, बध करने, बाँधने, डाका डालने, हरण करने तथा दूसरे दुस्साहसोंसे विरत होता है।

"वह शरीर ढँकनेके लिए चीवर तथा पेट भरनेके लिए भिक्षान्नसे संतुष्ट होता है। वह जहाँ-जहाँ भी जाता है अपना पात्र चीवर लेकर ही जाता है, जैसे पक्षी जहाँ-जहाँ भी उड़कर जाता है, वह हर जगह अपने पंखोंका भार साथ ले जाता है। इसी प्रकार भिक्षु शरीर ढँकनेके लिए चीवर तथा पेट भरनेके लिए भिक्षान्नसे संतुष्ट होता है। वह जहाँ-जहाँ जाता है (पात्र-चीवर) लेकर ही जाता है। वह इस आर्य-शीलसे युक्त होकर अपने भीतरी निर्दोषपनके सुखका आनन्द लेता है।

"वह अपनी आँखसे किसी सुन्दर रूपको देखता है, (किन्तु) न उसके निमित्तको और न उसके व्यंजनको ही ग्रहण करता है। वह सावधान रहता है कि चक्षुके असंयमसे कहीं लोभ-द्वेष आदि अकुशल पापमय ख्याल (उसके मनमें) घर न बना लें। उन पापमय विचारोंको दूर रखनेके लिए प्रयत्न करता है, अपनी आँखको

काबूमें रखता है, अपनी आँखपर संयम रखता है। वह अपने कानसे सुन्दर शब्द सुनता है.........नासिकासे सुगन्धि सूँघता है......जिह्वासे रस चखता है.......शरीरसे स्पर्श करता है.......मनसे मनके विषयोंको ग्रहण कर न उनके निमित्त और न उनके व्यंजनको ही ग्रहण करता है। वह सावधान रहता है कि मनके असंयमसे कही लोभ-द्वेष आदि अकुशल पापमय ख्याल (उसके मनमें) घर न बना लें। उन पापमय विचारोंको दूर रखनेके लिए प्रयत्न करता है, अपने मनको काबूमें रखता है, अपने मनपर संयम रखता है। वह इस आर्य इन्द्रिय संयमसे मुक्त होकर निर्मल सुखका अनुभव करता है।

"वह जानते हुए आता-जाता है; जानते हुए देखता-भालता है; जानते हुए सिकोड़ता-फैलाता है; जानते हुए संघाटी, पात्र-चीवरको धारण करता है; जानते हुए असन-पान खादन, आस्वादन करता है; जानते हुए पाखाना-पेशाब करता है, जानते हुए चलता, खड़ा रहता, बैठता, सोता, जागता, बोलता, चुप रहता है।

"वह इस आर्य-सदाचारसे युक्त हो, इस आर्य-इन्द्रिय संयमसे युक्त हो, स्मृति और ज्ञानसे भी युक्त हो, ऐसे एकान्तस्थानमें रहता है जैसे अरण्य, वृक्षकी छाया, पर्वत, कन्दरा, गुफा, श्मशान, जंगल, खुले आकाश तथा प्रवालके ढेरपर। वह पिण्डपात (=भिक्षाटन) से लौट, भोजन कर चुकनेपर, पालथी मार, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको सामने कर बैठता है।

"वह सांसारिक लोभोंको छोड़, लोभ-रहित चित्तवाला हो विचरता है। चित्तसे लोभको दूर करता है। वह क्रोधको छोड़, क्रोध-रहित चित्तवाला हो, सभी प्राणियोंपर दया करता हुआ विचरता है। चित्तसे क्रोधको दूर करता है। वह आलस्य-को छोड़, आलस्यसे रहित हो, रोशन-दिमाग (=आलोक-संज्ञी), स्मृति तथा ज्ञानसे युक्त विचरता है। वह चित्तसे आलस्यको दूर करता है। वह उद्धतपन तथा पछतावेको छोड़ उद्धतता-रहित शांत चित्त हो विचरता है। चित्तसे उद्धतताको दूर करता है। वह संशयको छोड़ संशय-रहित हो विचरता है। वह कुशल-धर्मोंके विषयमें संदेह-रहित होता है। चित्तसे सन्देहको दूर करता है।

"वह चित्तके उपक्लेश, प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले पाँच बन्धनोंको छोड़, काम-वितर्कसे रहित हो, बुरे विचारोंसे रहित हो प्रथम-ध्यानको प्राप्त कर विचरता है, जिसमें वितर्क और विचार है, जो एकान्त-वाससे उत्पन्न होता है।

"उपालि! तो तुम क्या मानते हो, क्या ये विहरण (=चर्या) पहली चर्याओंकी अपेक्षा श्रेष्ठतर नहीं है?"

"भन्ते! हाँ"

"उपालि! मेरे श्रावक अपनेमें इन सद्‌गुणों (=धर्मों) को देखते हुए अरण्योंमें एकान्त-वास करते हैं, लेकिन अभी उन्होंने सदर्थकी प्राप्ति नहीं की होती है।

"फिर उपालि! भिक्षु वितर्क और विचारके उपशमनसे......द्वितीय-ध्यानको प्राप्त होता है। उपालि! तो क्या मानते हो, क्या यह चर्या पहली चर्याओंसे श्रेष्ठतर नहीं है?"

"भन्ते! हाँ।"

"उपालि! मेरे श्रावक अपनेमें इन सद्‌गुणों (=धर्मों) को देखते हुए अरण्योंमें एकान्त-वास करते हैं, लेकिन अभी उन्होंने सदर्थकी प्राप्ति नहीं की होती है।

फिर उपालि! भिक्षु 'प्रीति' के वैराग्यको प्राप्त हो.......तृतीय-ध्यानको प्राप्त होता है। उपालि! तो क्या मानते हो, क्या यह चर्या पहली चर्याओंसे श्रेष्ठतर नहीं है?"

"भन्ते! हाँ।"

"उपालि! मेरे श्रावक अपनेमें इन सद्‌गुणों (=धर्मों) को देखते हुए अरण्योंमें एकान्त-वास करते हैं, लेकिन अभी उन्होंने सदर्थकी प्राप्ति नहीं की होती है।

"फिर उपालि! भिक्षु सुख (और दुख) दोनोंके प्रहाणसे......चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त होता है।.......फिर उपालि! भिक्षु सभी रूप-संज्ञाओंको पारकर, प्रतिघ-संज्ञाओंको अस्त कर, नानात्व संज्ञाको मनसे निकाल, 'आकाश अनन्त है' करके 'आकाशानञ्चायतन' को प्राप्त हो विचरता है। उपालि! तो क्या मानते हो, क्या यह चर्या पहली चर्याओंसे श्रेष्ठतर नहीं है?"

"भन्ते! हाँ।"

"उपालि! मेरे श्रावक अपनेमें इन सद्‌गुणों (=धर्मों) को देखते हुए अरण्योंमें एकान्त-वास करते हैं; लेकिन अभी उन्होंने सदर्थकी प्राप्ति नहीं की होती।

"उपालि! फिर भिक्षु सभी 'आकाशानञ्चायतन' को पार कर 'विज्ञान अनन्त है' करके 'विज्ञानञ्चायतन' को प्राप्त हो विहार करता है।........

"सभी 'विज्ञानञ्चायतन' को पार कर 'कुछ नहीं है' करके 'आकिञ्चन्यायतन' को प्राप्त हो विहार करता है।

"सभी 'आकिञ्चन्यायतन' को पार कर 'यह शान्त है, यह प्रणीत है' करके 'नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतन' को प्राप्त कर विहार करता है। उपालि! तो क्या मानते हो, क्या यह चर्या पहली चर्याओंसे श्रेष्ठतर नहीं है?"

"भन्ते! हाँ।"

"उपालि! मेरे श्रावक अपनेमें इन सद्गुणों (=धर्मों) को देखते हुए अरण्योंमें एकान्त-वास करते हैं, लेकिन अभी उन्होंने सदर्थकी प्राप्ति नहीं की होती।"

"उपालि! फिर भिक्षु सभी "नैव संज्ञा-न-असंज्ञा 'आयतन' को पार कर 'संज्ञाकी वेदना (=अनुभूति) के निरोध' को प्राप्त कर विहार करता है। उसके आस्रव प्रज्ञा-दृष्टि प्राप्त होनेसे क्षीण हो जाते हैं। उपालि! तो क्या मानते हो, क्या यह चर्या पहली चर्याओंसे श्रेष्ठतर नहीं है?"

"भन्ते! हाँ।"

"उपालि! मेरे श्रावक अपनेमें इन सद्गुणों (=धर्मों), को देखते हुए अरण्योंमें एकान्त-वास करते हैं। लेकिन अभी उन्होंने सदर्थकी प्राप्ति नहीं की होती।

"उपालि! तू संघमें ही विचर। तेरे लिए संघमें रहना ही श्रेयस्कर होगा।"

१०. अभब्ब सुत्त

"भिक्षुओ, यह असम्भव है कि बिना इन दस दुर्गुणोंको छोड़े कोई अर्हत्वकी प्राप्ति कर सके। कौनसे दस? राग, द्वेष, मोह, क्रोध, शत्रुता (=उपनाह), निर्दयता (=मुक्ष) घृणा (=पळास), ईर्षा, मात्सर्य तथा मान। भिक्षुओ, यह असम्भव है कि बिना इन दस दुर्गुणोंको छोड़े कोई अर्हत्वकी प्राप्ति कर सके।

"भिक्षुओ, यह सम्भव है कि इन दस दुर्गुणोंको छोड़ देनेसे कोई अर्हत्वकी प्राप्ति कर सके। कौनसे दस? राग, द्वेष, मोह, क्रोध, शत्रुता (=उपनाह), निर्दयता (=मुक्ष) घृणा (=पळास), ईर्षा, मात्सर्य तथा मान। भिक्षुओ, यह सम्भव है कि इन दस दुर्गुणोंको छोड़ देनेसे कोई अर्हत्व की प्राप्ति कर सके।

११. श्रमण-संज्ञा वर्ग

१. समणसञ्ञासुत्त

"भिक्षुओ, ये तीन श्रमण-संज्ञायें हैं जिनका अभ्यास बढ़ानेसे सात धर्मोंकी पूर्ति होती है। कौन-सी तीन संज्ञायें? 'मैं विवर्णताको प्राप्त हुआ हूँ', 'मेरी जीविका पराश्रित है', 'मेरी चर्या विशेष प्रकारकी होनी चाहिये'—भिक्षुओ, ये तीन श्रमण-संज्ञायें हैं जिनका अभ्यास बढ़ानेसे सात धर्मोंकी पूर्ति होती है।

"कौनसे सात धर्मोंकी ? शील-पालनमें सतत लगा रहता है; निर्लोभी होता है; अक्रोधी होता है; निरभिमानी होता है; शिक्षाकामी होता है तथा जीवनकी आवश्यकतायें हैं, ऐसा इसे होता है; तथा प्रयत्न करनेवाला होता है। भिक्षुओ, इन तीन श्रमण-संज्ञाओंका अभ्यास करनेसे इन सात धर्मोंकी पूर्ति होती है।"

२. **बोज्झंग सुत्त**

भिक्षुओ, इन सात बोधि-अंगोंका अभ्यास करनेसे, वृद्धि करनेसे तीन विद्याओं-की प्राप्ति (=पूर्ति) होती है। कौनसे सात ? स्मृति-सम्बोधि अंग, धर्म-विचय सम्बोधि-अंग, वीर्य सम्बोधि-अंग, प्रीति सम्बोधि-अंग, प्रश्रब्धि-सम्बोधि-अंग, समाधि सम्बोधि अंग तथा उपेक्षा सम्बोधि-अंग। भिक्षुओ, इन सात बोधि-अंगोंका अभ्यास करनेसे, वृद्धि करनेसे तीन विद्याओंकी प्राप्ति होती है।

"किन तीन विद्याओंकी ? भिक्षुओ, भिक्षु अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंका अनुस्मरण करता है, जैसे एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म........इस तरह आकार सहित उद्देश्य सहित पूर्व जन्मोंका अनुस्मरण करता है। वह विशुद्ध, मनुष्योत्तर दिव्य चक्षुसे.......कर्मानुसार (योनि –) प्राप्त प्राणियोंको जानता है। वह आस्रवोंका क्षय कर........साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ,इन सात बोधि-अंगोंका अभ्यास करनेसे, वृद्धि करनेसे तीन विद्याओंकी प्राप्ति होती है।

३. **मिच्छत्त सुत्त**

भिक्षुओ, मिथ्यात्व असफलताका कारण होता है, सफलताका नहीं। भिक्षुओ, मिथ्यात्व कैसे असफलताका कारण होता है, सफलताका नहीं ? भिक्षुओ, जो मिथ्या-दृष्टिवाला होता है, वह मिथ्या-संकल्पवाला हो जाता है। जो मिथ्या-संकल्पवाला होता है, वह मिथ्या-वाणीवाला हो जाता है। जो मिथ्या-वाणीवाला होता है, वह मिथ्या-कर्मान्तवाला हो जाता है। जो मिथ्या-कर्मान्तवाला होता है, वह मिथ्या-आजीविकावाला हो जाता है। जो मिथ्या-आजीविकावाला होता है, वह मिथ्या-व्यायाम (=प्रयत्न) वाला हो जाता है। जो मिथ्या-व्यायामवाला होता है, वह मिथ्या-स्मृतिवाला हो जाता है। जो मिथ्या-स्मृतिवाला होता है, वह मिथ्या-समाधिवाला हो जाता है। जो मिथ्या-समाधिवाला होता है, वह मिथ्या ज्ञानवाला हो जाता है। जो मिथ्या ज्ञानवाला होता है, वह मिथ्या-विमुक्तिवाला हो जाता है। भिक्षुओ, इस प्रकार मिथ्यात्व असफलताका कारण होता है, सफलताका नहीं।"

"भिक्षुओ, सम्यकत्व सफलताका कारण होता है, असफलताका नहीं। भिक्षुओ, सम्यकत्व कैसे सफलताका कारण होता है, असफलताका नहीं? भिक्षुओ, जो सम्यक-दृष्टिवाला होता है, वह सम्यक संकल्पवाला हो जाता है। जो सम्यक-संकल्पवाला होता है, वह सम्यक वाणीवाला हो जाता है। जो सम्यक वाणीवाला होता है, वह सम्यक कर्मान्तवाला हो जाता है। जो सम्यक कर्मान्तवाला होता है, वह सम्यक आजीविकावाला हो जाता है। जो सम्यक आजीविकावाला होता है, वह सम्यक व्यायाम (= प्रयत्न) वाला हो जाता है। जो सम्यक व्यायाम (= प्रयत्न) वाला होता है, वह सम्यक स्मृतिवाला हो जाता है। जो सम्यक स्मृतिवाला होता है, वह सम्यक समाधिवाला हो जाता है। जो सम्यक समाधिवाला होता है, वह सम्यक ज्ञानवाला हो जाता है। जो सम्यक ज्ञानवाला होता है, वह सम्यक स्मृतिवाला हो जाता है। भिक्षुओ, इस प्रकार सम्यकत्व सफलताका कारण होता है, विफलताका नहीं।

४. बीज सुत्त

भिक्षुओ, जिस आदमीकी दृष्टि मिथ्या होती है, संकल्प मिथ्या होते हैं, वाणी मिथ्या होती है, कर्मान्त मिथ्या होते हैं, आजीविका मिथ्या होती है, व्यायाम मिथ्या होता है, स्मृति मिथ्या होती है, समाधि मिथ्या होती है, ज्ञान मिथ्या होता है तथा विमुक्ति मिथ्या होती है, वह उस (मिथ्या–) दृष्टिके अनुसार जो भी शारीरिक-कर्म, वाणीका कर्म तथा मानसिक कर्म करता है, उसकी जो चेतना होती है, जो प्रार्थना (= इच्छा) होती है, जो प्रणिधि (= आकांक्षा) होती है, जो संस्कार होते हैं—वे सभी अनिष्टके लिए, असौन्दर्यके लिए, अश्रेयके लिए, अहितके लिये तथा दुखके लिये होते हैं। ऐसा किसलिये? भिक्षुओ, उसकी दृष्टि ही बुरी होती है।

भिक्षुओ, जैसे नीमका बीज हो, कोशातकी (= बेल) का बीज हो अथवा कड़ुवी लौकीका बीज हो और उसे गीली मिट्टीमें बोया जाय; वह जो भी पृथ्वीका रस खींचेगा, जो भी पानी-रस खींचेगा, वह उसे तिक्त, कड़ुवा, बेस्वाद, बनानेके लिये ही होगा। भिक्षुओ, ऐसा किसलिये? भिक्षुओ, बीज ही बुरा है। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस आदमीकी दृष्टि मिथ्या होती है, संकल्प मिथ्या होते हैं, वाणी मिथ्या होती है, कर्मान्त मिथ्या होते हैं, आजीविका मिथ्या होती है, व्यायाम मिथ्या होता है, स्मृति मिथ्या होती है, समाधिमिथ्या होती है, ज्ञान मिथ्या होता है तथा विमुक्ति मिथ्या होती है, वह उस (मिथ्या–) दृष्टिके अनुसार जो भी शारीरिक-कर्म, वाणीका कर्म तथा मानसिक कर्म करता है, उसकी जो चेतना होती है, जो प्रार्थना (= इच्छा)

होती है, जो प्रणिधि (=आकांक्षा) होती है, जो संस्कार होते हैं—वे सभी अनिष्ट के लिये, असौन्दर्यके लिये, अश्रेयके लिये, अहितके लिये तथा दुखके लिये होते हैं। ऐसा किसलिये ? भिक्षुओ, उसकी दृष्टि ही बुरी होती है।

"भिक्षुओ, जिस आदमीकी दृष्टि सम्यक होती है, संकल्प सम्यक होते हैं, वाणी सम्यक होती है, कर्मान्त सम्यक होते हैं, आजीविका सम्यक होती है, व्यायाम (=प्रयत्न) सम्यक होता है, स्मृति सम्यक होती है, समाधि सम्यक होती है, ज्ञान सम्यक होता है तथा विमुक्ति सम्यक होती है, वह उस (सम्यक) दृष्टिके अनुसार जो भी शारीरिक कर्म, वाणीका कर्म तथा मानसिक कर्म करता है, उसकी जो चेतना होती है, जो प्रार्थना होती है, जो प्रणिधि होती है, जो संस्कार होते हैं—वे सभी इष्टके लिये, सौन्दर्यके लिये, श्रेयके लिये, हितके लिये तथासुखके लिये होते हैं। ऐसा किसलिये ? लिये ? भिक्षुओ, उसकी दृष्टि ही भली होती है।

"भिक्षुओ, जैसे ऊखका बीज हो, धानका बीज हो या अंगूरका बीज हो और उसे गीली मिट्टीमें बोया जाय; वह जो भी पृथ्वीका रस खींचेगे, जो भी पानी-रस खींचेगा, वह सब स्वादके लिये, माधुर्यके लिये तथा असेचनकत्व (?) के लिये होगा। ऐसा किसलिये ? भिक्षुओ, वह बीज ही भला है। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस आदमीकी दृष्टि सम्यक होती है........तथा विमुक्ति सम्यक होती हैं, वह उस (सम्यक) दृष्टिके अनुसार जो भी शारीरिक कर्म, वाणी का कर्म तथा मानसिक कर्म करता है, उसकी जो भी चेतना होती है, जो प्रार्थना होती है, जो प्रणिधि होती है, जो संस्कार होते हैं—वे सभी इष्टके लिए, सौन्दर्यके लिये, श्रेयके लिये, हितके लिये तथा सुखके लिये होते हैं। ऐसा किसलिये ? भिक्षुओ, उसकी दृष्टि ही भली है।

५. विज्जा सुत्त

भिक्षुओ, अविद्या अकुशल-धर्मों (=बुराइयों) की पूर्वगामिनी है; निर्लज्जता तथा पाप करनेमें निडर होना, इसके ठीक पीछे-पीछे आते हैं। भिक्षुओ, जो अविद्या- ग्रसित प्राणी होता है, उसकी मिथ्या दृष्टि होती है। जो मिथ्या दृष्टिवाला होता है, वह मिथ्या-संकलपवाला हो जाता है। जो मिथ्या संकलपवाला होता है, वह मिथ्या वाणीवाला हो जाता है। जो मिथ्या वाणीवाला होता है, वह मिथ्या कर्मान्त-वाला हो जाता है। जो मिथ्या-कर्मान्तवाला होता है, वह मिथ्या-आजीविकावाला हो जाता है। जो मिथ्या-आजीविकावाला होता है, वह मिथ्या-व्यायामवाला हो जाता है। जो मिथ्या-व्यायामवाला होता है, वह मिथ्या-स्मृतिवाला हो जाता है।

जो मिथ्या-स्मृतिवाला होता है, वह मिथ्या-समाधिवाला हो जाता है। जो मिथ्या समाधिवाला होता है, वह मिथ्या-ज्ञानवाला हो जाता है। जो मिथ्या-ज्ञानवाला होता है, वह मिथ्या-विमुक्तिवाला हो जाता है।

भिक्षुओ, विद्या कुशल-धर्मोंकी पूर्वगामिनी है; लज्जा तथा (पाप–) भीरुता इसके पीछे-पीछे आते हैं। भिक्षुओ, जो विद्या-प्राप्त प्राणी होता है, उसकी सम्यक-दृष्टि होती है। जो सम्यक दृष्टिवाला होता है वह सम्यक संकल्पवाला हो जाता है। जो सम्यक संकल्पवाला होता है, वह सम्यक वाणीवाला हो जाता है। जो सम्यक वाणीवाला होता है, वह सम्यक कर्मान्तवाला हो जाता है। जो सम्यक कर्मान्त वाला होता है, वह सम्यक आजीविकावाला हो जाता है। जो सम्यक आजीविका वाला होता है, वह सम्यक व्यायाम वाला हो जाता है। जो सम्यक व्यायाम वाला होता है, वह सम्यक स्मृतिवाला हो जाता है। जो सम्यक स्मृतिवाला होता है, वह सम्यक समाधिवाला हो जाता है। जो सम्यक समाधिवाला होता है, वह सम्यक ज्ञान-वाला हो जाता है। जो सम्यक-ज्ञानवाला होता है, वह सम्यक विमुक्तिवाला हो जाता है।

६. निज्जरसुत्त

भिक्षुओ, ये दस निर्जरा वस्तुयें हैं। कौन-सी दस? भिक्षुओ, जो सम्यक-दृष्टि प्राप्त है, उसकी मिथ्या-दृष्टि झड़ जाती है। मिथ्या-दृष्टिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके झड़ जाते हैं। सम्यक-दृष्टिके कारण अनेक कुशल-कर्मोंकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जो सम्यक-संकल्प प्राप्त है, उसके मिथ्या-संकल्प झड़ जाते हैं। मिथ्या-संकल्पके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके झड़ जाते हैं। सम्यक-संकल्पके कारण अनेक कुशल कर्मोंकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जो सम्यक-वाणीवाला है, उसकी मिथ्या-वाणी झड़ जाती है। मिथ्या-वाणीके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके झड़ जाते हैं। सम्यक-वाणीके कारण अनेक कुशल-कर्मोंकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जो सम्यक कर्मान्तवाला है, उसके मिथ्या-कर्मान्त झड़ जाते हैं। मिथ्या-कर्मान्तके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके झड़ जाते हैं। सम्यक कर्मान्तके कारण, अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जिसकी सम्यक आजीविका होती है, उसकी मिथ्या आजीविका झड़ जाती है। मिथ्या-आजीविकाके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके झड़ जाते हैं। सम्यक आजीविकाके कारण अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जो सम्यक व्यायाम (= प्रयत्न) वाला है, उसका मिथ्या व्यायाम (= प्रयत्न) झड़ जाता है। मिथ्या-व्यायामके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके झड़ जाते हैं। सम्यक व्यायामके कारण अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जिसे सम्यक-स्मृति प्राप्त है, उसकी मिथ्या-स्मृति झड़ जाती है। मिथ्या-स्मृतिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके झड़ जाते हैं। सम्यक-स्मृतिके कारण अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जिसे सम्यक समाधि प्राप्त है, उसकी मिथ्या-समाधि झड़ जाती है। मिथ्या-समाधिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके झड़ जाते हैं। सम्यक-समाधिके कारण अनेक कुशल कर्मोंकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जिसे सम्यक-ज्ञान प्राप्त है, उसका मिथ्या-ज्ञान झड़ जाता है। मिथ्या-ज्ञानके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके झड़ जाते हैं। सम्यक ज्ञानके कारण अनेक कुशल-कर्मोंकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जिसे सम्यक विमुक्ति प्राप्त है, उसकी मिथ्या-विमुक्ति झड़ जाती है। मिथ्या-विमुक्तिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके झड़ जाते हैं। सम्यक विमुक्तिके कारण अनेक कुशल कर्मोंकी पूर्ति होती है।

७. धोवनसुत्त

भिक्षुओ, दक्षिण जनपदमें धोवन (= धोना) नामका नगर है। वहाँ खाना होता है, पीना होता है, खाद्य पदार्थ होते हैं, भोज्य पदार्थ होते हैं, लेह्य (= चाटने-योग्य) पदार्थ होते हैं, पेय पदार्थ होते हैं, नाचना-गाना-बजाना होता है। भिक्षुओ, यह धोना है; 'यह नहीं है'—ऐसा मैं नहीं कहता हूँ। लेकिन भिक्षुओ, यह जो धोवन है, वह हीन ग्राम्य है, अनाड़ी लोगोंके योग्य है, अनार्य है, अनर्थकर है, न निर्वेदके लिये, न वैराग्यके लिये, न निरोधके लिए, न उपशमनके लिए, न अभिज्ञाके लिये, न सम्बोधिके लिये और न होता है निर्वाणके लिये।

"भिक्षुओ ! मैं आर्य-धोवनकी देशना करता हूँ, जो धोवन सर्वांशमें निर्वेदके लिये, वैराग्यके लिये, निरोधके लिये, उपशमनके लिये, अभिज्ञाके लिये, सम्बोधिके

लिये तथा होता है निर्वाणके लिये। इस धोवनसे जन्म-ग्रहण करनेके स्वभाववाले प्राणी जन्म ग्रहण करनेसे छूट जाते हैं, जरा (=बुढ़ापे) को प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी जराको प्राप्त होनेसे छूट जाते हैं, मरणको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी मरणसे छूट जाते हैं, शोक-रोना पीटना-दुख-दौर्मनस्य पश्चातापको प्राप्त होनेके स्वभाव-वाले प्राणी शोक-रोने-पीटने-दुख-दौर्मनस्य तथा पश्चातापसे छूट जाते हैं। उस 'आर्य-धोवन' को सुनो। अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह उन भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने कहा—

"भिक्षुओ! वह आर्य-धोवन कौन-सा है, जो सर्वांशमें निर्वेदके लिये, वैराग्यके लिये, निरोधके लिये, उपशमनके लिये, अभिज्ञाके लिये, सम्बोधिके लिये और होता है निर्वाणके लिये; जिस 'आर्य-धोवन' से जन्म ग्रहण करनेके स्वभाववाले प्राणी जन्म ग्रहण करनेसे छूट जाते हैं, जरा (=बुढ़ापे)को प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी जरासे छुट जाते हैं, मरणको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी मरणसे छूट जाते हैं, शोक-रोना-पीटना-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी शोक-रोने पीटने-दुख-दौर्मनस्य पश्चातापसे छूट जाते हैं?

"भिक्षुओ, जो सम्यक दृष्टि प्राप्त है, उसकी मिथ्या-दृष्टि धुल जाती है। मिथ्या-दृष्टिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके धुल जाते हैं। सम्यक दृष्टिके कारण अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति होती है।

भिक्षुओ, जो सम्यक संकल्प प्राप्त है, उसके मिथ्या-संकल्प धुल जाते हैं.... ......सम्यक वाणीवालेकी मिथ्या-वाणी धुल जाती है.......सम्यक कर्मान्त-वालेके मिथ्या-कर्मान्त धुल जाते हैं..........सम्यक आजीविकावालेकी मिथ्या आजीविका धुल जाती है.......सम्यक व्यायाम (=प्रयत्न) वालेका मिथ्या-व्यायाम धुल जाता है......सम्यक स्मृतिवालेकी मिथ्या-स्मृति धुल जाती है...... सम्यक समाधिवालेकी मिथ्या-समाधि धुल जाती है.......सम्यक ज्ञानीका मिथ्या-ज्ञान धुल जाता है.......भिक्षुओ! जो सम्यक विमुक्ति प्राप्त है, उसकी मिथ्या-विमुक्ति धुल जाती है। मिथ्या-विमुक्तिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके धुल जाते हैं। सम्यक विमुक्तिके कारण अनेक कुशल-कर्मोंकी पूर्ति होती है। भिक्षुओ! यह है वह 'आर्य-धोवन' जो सर्वांशमें निर्वेदके लिये, वैराग्यके लिये, निरोधके लिये उपशमनके लिये, अभिज्ञाके लिये, सम्बोधिके लिये, और होता है निर्वाणके लिये; जिस 'आर्य-धोवन' से जन्म-ग्रहणके स्वभाववाले प्राणी जन्म ग्रहण करनेसे छूट जाते

हैं, जरा (=बुढ़ापे) को प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी बुढ़ापेसे छूट जाते हैं, मरणको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी मरणसे छूट जाते हैं, शोक-रोना-पीटना-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापको प्राप्त होनेके स्वभाव वाले प्राणी शोक रोने-पीटने-दुख दौर्मनस्य पश्चातापसे छूट जाते हैं।

८. तिकिच्छिकसुत्त

भिक्षुओ, चिकित्सक लोग पित्तसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके उपशमनके लिये भी, श्लेष्मासे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके उपशमनके लिये भी, वायुसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके उपशमनके लिये भी विरेचन देते हैं। भिक्षुओ, यह विरेचन होता है, यह विरेचन नहीं होता है—ऐसा मैं नहीं कहता हूँ। भिक्षुओ, यह विरेचन कभी सफल भी होता है, कभी नहीं भी होता है।

भिक्षुओ, मैं 'आर्य-विरेचन' की देशना करता हूँ, जो विरेचन सदैव सफल होता है, कभी विफल नहीं होता; जिस 'आर्य-विरेचन' से जन्म-ग्रहण करनेके स्वभाव वाले प्राणी जन्म ग्रहण करनेसे छूट जाते हैं, जरा (=बुढ़ापे) को प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी जरासे छूट जाते हैं, मरणको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी मरणसे छूट जाते हैं, शोक-रोना पीटना-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी शोक-रोने-पीटने-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापसे छूट जाते हैं। उस 'आर्य-विरेचन' को सुनो। अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह उन भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने कहा—

"भिक्षुओ! वह 'आर्य-विरेचन' कौनसा है, जो विरेचन सदैव सफल होता है, कभी विफल नहीं होता; जिस 'आर्य-विरेचन' से जन्म ग्रहण करनेके स्वभाववाले प्राणी जन्म ग्रहण करनेसे छूट जाते हैं; जरा (=बुढ़ापे) को प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी जरासे छूट जाते हैं; मरणको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी मरणसे छूट जाते हैं, शोक-रोना-पीटना-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी शोक-रोने-पीटने-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापसे छूट जाते हैं।

'भिक्षुओ, जिसे सम्यक दृष्टि प्राप्त है, उसका मिथ्या-दृष्टिका 'विरेचन' हो गया रहता है। मिथ्या-दृष्टिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके 'विरेचन' हो गये रहते हैं। सम्यक दृष्टिके कारण अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति हो गई रहती है।

भिक्षुओ, जो सम्यक संकल्प प्राप्त होता है, उसके मिथ्या संकल्पोंका 'विरेचन' हो गया रहता है........सम्यक वाणीवाले की मिथ्या-वाणीका.......सम्यक

कर्मान्तवालेके मिथ्या कर्मान्तोंको........सम्यक आजीविकावालेकी मिथ्या आजीविकाका........सम्यक व्यायाम (—प्रयत्न) वालेके मिथ्या-व्यायामका.....सम्यक स्मृतिवालेकी मिथ्या-स्मृतिका.......सम्यक समाधिवालेकी मिथ्या-समाधिका........सम्यक ज्ञानोका मिथ्या-ज्ञान.........सम्यक विमुक्ति प्राप्त की मिथ्या-विमुक्तिका 'विरेचन' हो गया रहता है। मिथ्या-विमुक्तिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके 'विरेचन' हो गये रहते हैं। सम्यक विमुक्तिके कारण अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति हो गई रहती है।

भिक्षुओ, यह हैं वह 'आर्य-विरेचन' जो सदैव सफल होता है, कभी विफल नहीं होता, जिस 'विरेचन' के कारण जन्म ग्रहण करनेके स्वभाववाले प्राणी जन्म ग्रहण करनेसे छूट जाते हैं, जराको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी जरासे छूट जाते हैं, मरणको प्राप्त होनेवाले प्राणी मरणसे छूट जाते हैं, शोक-रोना-पीटना-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी शोक-रोने-पीटने-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापसे छूट जाते हैं।

९. वमनसुत्त

भिक्षुओ, चिकित्सक लोग पित्तसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके उपशमनके लिये भी, कफसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके उपशमनके लिए भी, वायुसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके उपशमनके लिये भी 'वमन' कराते हैं। भिक्षुओ, यह 'वमन' होता है, यह 'वमन' नहीं होता है—ऐसा मैं नहीं कहता हूँ। भिक्षुओ, यह 'वमन' कभी 'सफल' भी होता है, कभी 'विफल' भी होता है।

भिक्षुओ, मैं 'आर्य-वमन' की देशना करता हूँ, जो 'वमन' सदैव सफल होता है, कभी विफल नहीं होता; जिस 'आर्य-वमन' से जन्म ग्रहण करनेके स्वभाववाले प्राणी जन्म ग्रहण करनेसे छूट जाते हैं, जराको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी जरासे छूट जाते हैं, मरणको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी मरणसे छूट जाते है, शोक-रोना-पीटना-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापको प्राप्त होनेके स्वभाव वाले प्राणी शोक-रोना-पीटना-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापसे विमुक्त हो जाते हैं। उस 'आर्य-वमन' को सुनो.........यह कहा—

"भिक्षुओ, वह 'आर्य-वमन' कौन-सा है, जो 'वमन' सदैव सफल होता है, कभी विफल नहीं होता; जिस 'आर्य-वमन' से जन्म ग्रहण करनेके स्वभाव वाले प्राणी जन्म ग्रहण करनेसे छूट जाते हैं.........शोक-रोना-पीटना-दुख-दौर्मनस्य-

पश्चातापको प्राप्त होनेके स्वभाववाले प्राणी शोक-रोना-पीटना-दुख-दौर्मनस्य-पश्चाताप से विमुक्त हो जाते हैं ?

भिक्षुओ, जिसे सम्यक दृष्टि प्राप्त है, उसकी मिथ्या-दृष्टि 'वमित' हो जाती है। मिथ्या-दृष्टिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके 'वमित' हो गये रहते हैं। सम्यक-दृष्टिके कारण अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति हो गई रहती है।

भिक्षुओ, जो सम्यक संकल्प प्राप्त होता है, उसके मिथ्या-संकल्प 'वमित' हो गये रहते हैं......... सम्यक वाणी वालोंकी मिथ्या-वाणी...... सम्यक कर्मान्तवालेके मिथ्या कर्मान्त....... सम्यक आजीविकावालेकी मिथ्या आजीविका .... सम्यक व्यायाम वाले का मिथ्या-व्यायाम .... सम्यक स्मृतिवालेकी मिथ्या-स्मृति .... सम्यक समाधिवालेकी मिथ्या समाधि....... सम्यक ज्ञानीका मिथ्या-ज्ञान .... सम्यक विमुक्ति प्राप्तकी मिथ्या-विमुक्ति 'वमित' होती है। मिथ्या-विमुक्तिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके 'वमित' हो गये होते हैं। सम्यक विमुक्तिके कारण अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति हो गई रहती है। भिक्षुओ, यह है वह 'आर्य-वमन' जो सदैव सफल होता है, कभी विफल नहीं होता है, जिस 'वमन' के कारण जन्म ग्रहण करनेके स्वभाववाले प्राणी जन्म ग्रहण करनेसे छूट जाते हैं........... शोक-रोने-पीटने-दुख-दौर्मनस्य-पश्चातापसे छूट जाते हैं।

१०. निद्धमनीयसुत्त

भिक्षुओ, ये दस बातें (= धर्म) बहिष्करणीय हैं। कौन-सी दस? भिक्षुओ! जिसे सम्यक दृष्टि प्राप्त होती है, उसकी मिथ्या-दृष्टि बहिष्कृत हो जाती है। मिथ्या-दृष्टिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके बहिष्कृत हो गये रहते हैं। सम्यक-दृष्टिके कारण अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति हो गई रहती है।

भिक्षुओ, जो सम्यक संकल्प प्राप्त होता है, उसके मिथ्या-संकल्प 'बहिष्कृत' हो गये रहते हैं......... सम्यक वाणीवालोंकी मिथ्या-वाणी....... सम्यक कर्मान्त वालोंके मिथ्या कर्मान्त .... सम्यक आजीविकावालेकी मिथ्या आजीविका........ सम्यक व्यायाम वालेका मिथ्या व्यायाम .... सम्यक स्मृतिवालेकी मिथ्या-स्मृति......... सम्यक समाधिवालेकी मिथ्या समाधि...... सम्यक ज्ञानीका मिथ्या-ज्ञान........ सम्यक विमुक्ति-प्राप्तकी मिथ्या-विमुक्ति बहिष्कृत हो गई रहती है। मिथ्या-विमुक्तिके कारण जो अनेक पाप-कर्म होते हैं, वे उसके बहिष्कृत हो गये रहते हैं। सम्यक विमुक्तिके कारण अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति हो गई रहती है। भिक्षुओ, ये दस बातें (= धर्म) बहिष्करणीय हैं।

११. पठमअसेखसुत्त

उस समय एक भिक्षु जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवानको प्रणाम कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए उस भिक्षुने भगवानको यह कहा—

"भन्ते! 'अशैक्ष', 'अशैक्ष' कहा जाता है। क्या योग्यता होनेसे भिक्षु 'अशैक्ष' होता है?"

"भिक्षु! वह भिक्षु अशैक्ष सम्यक दृष्टिसे युक्त होता है, अशैक्ष सम्यक संकल्पसे युक्त होता है, अशैक्ष सम्यक वाणीसे युक्त होता है, अशैक्ष सम्यक कर्मान्तसे युक्त होता है, अशैक्ष सम्यक आजीविकासे युक्त होता है, अशैक्ष सम्यक व्यायामसे युक्त होता है, अशैक्ष सम्यक स्मृतिसे युक्त होता है, अशैक्ष सम्यक समाधिसे युक्त होता है, अशैक्ष सम्यक ज्ञानसे युक्त होता है तथा अशैक्ष सम्यक विमुक्तिसे युक्त होता है। भिक्षु! इस प्रकार भिक्षु अशैक्ष होता है।"

१२. दुतियअसेखसुत्त

भिक्षुओ, ये दस अशैक्ष धर्म हैं। कौन-से दस?

अशैक्ष सम्यक दृष्टि, अशैक्ष सम्यक संकल्प, अशैक्ष सम्यक वाणी, अशैक्ष सम्यक कर्मान्त, अशैक्ष सम्यक आजीविका, अशैक्ष सम्यक व्यायाम, अशैक्ष सम्यक स्मृति, अशैक्ष सम्यक समाधि, अशैक्ष सम्यक ज्ञान, अशैक्ष सम्यक विमुक्ति—भिक्षुओ, ये दस अशैक्ष धर्म हैं।

१२. प्रत्योरोहणि वर्ग

१. पठमअधम्मसुत्त

भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, अनर्थको भी जानना चाहिये; धर्मको भी जानना चाहिये, अर्थ (= हित) को भी जानना चाहिये। अधर्म और अनर्थको जानकर तथा धर्म और अर्थको भी जानकर धर्मके अनुसार अर्थ (= हित) के अनुसार आचरण करना चाहिए।

भिक्षुओ, अधर्म तथा अनर्थ क्या है? मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या संकल्प, मिथ्या-वाणी, मिथ्या कर्मान्त, मिथ्या-आजीविका, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या-स्मृति, मिथ्या-समाधि, मिथ्या-ज्ञान तथा मिथ्या-विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे अधर्म तथा अनर्थ कहते हैं।

भिक्षुओ, धर्म तथा अर्थ (= हित) क्या है? सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मान्त, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक-

स्मृति, सम्यक-समाधि, सम्यक-ज्ञान, सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे धर्म तथा अर्थ (=हित) कहते हैं।

भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, अनर्थको भी जानना चाहिये; धर्मको भी जानना चाहिये, अर्थ (=हित) को भी जानना चाहिये। अधर्म और अनर्थको जानकर तथा धर्म और अर्थको भी जानकर धर्मके अनुसार अर्थ (=हित) के अनुसार आचरण करना चाहिये।

२. दुतियअधम्मसुत्त

भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, अनर्थको भी जानना चाहिये; धर्मको भी जानना चाहिये, अर्थ (=हित) को भी जानना चाहिये। अधर्म और अनर्थको जानकर तथा धर्म और अर्थको भी जानकर धर्मके अनुसार, अर्थ (=हित) के अनुसार आचरण करना चाहिए। भिक्षुओ, अधर्म क्या है? धर्म क्या है? भिक्षुओ, अनर्थ क्या है, अर्थ क्या है?

भिक्षुओ, मिथ्या-दृष्टि अधर्म है, सम्यक-दृष्टि धर्म है; मिथ्या-दृष्टिके कारण, जो अनेक अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक दृष्टिके कारण जो अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

भिक्षुओ, मिथ्या-संकल्प अधर्म है, सम्यक संकल्प धर्म है; मिथ्या संकल्पके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक संकल्पके कारण जो अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

भिक्षुओ, मिथ्या-वाणी अधर्म है; सम्यक वाणी धर्म है; मिथ्या-वाणीके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक वाणीके कारण जो अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

भिक्षुओ, मिथ्या-कर्मान्त अधर्म है; सम्यक कर्मान्त धर्म है; मिथ्या कर्मान्तके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक कर्मान्तके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है; यह अर्थ है।

भिक्षुओ, मिथ्या आजीविका अधर्म है; सम्यक आजीविका धर्म है; मिथ्या आजीविकाके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक आजीविकाके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है; यह अर्थ है।

भिक्षुओ, मिथ्या-व्यायाम (=प्रयत्न) अधर्म है; सम्यक व्यायाम धर्म है; मिथ्या व्यायामके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक आजीविकाके कारण जो अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति होती है; यह अर्थ है।

भिक्षुओ, मिथ्या-स्मृति अधर्म है; सम्यक स्मृति धर्म हैं; मिथ्या-स्मृतिके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ हैं; सम्यक स्मृतिके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है; यह अर्थ है।

भिक्षुओ, मिथ्या-समाधि अधर्म है; सम्यक समाधि धर्म हैं; मिथ्या समाधिके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं; यह अनर्थ है; सम्यक समाधिके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है; यह अर्थ है।

भिक्षुओ, मिथ्या-ज्ञान अधर्म है; सम्यक ज्ञान धर्म है; मिथ्या-ज्ञानके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक ज्ञानके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है; यह अर्थ है।

भिक्षुओ, मिथ्या-विमुक्ति अधर्म है, सम्यक विमुक्ति धर्म है; मिथ्या-विमुक्तिके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक विमुक्तिके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है; यह अर्थ है।

'भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, अर्थको भी जानना चाहिये; धर्मको भी जानना चाहिये, अर्थ (= हित) को भी जानना चाहिये। अधर्म और अनर्थको जानकर तथा धर्म और अर्थको भी जानकर धर्मके अनुसार, अर्थके अनुसार आचरण करना चाहिये'—यह जो कहा गया, यह इसी अर्थमें कहा गया।

३. ततियअधम्मसुत्त

"भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, धर्मको भी जानना चाहिये; अनर्थको भी जानना चाहिये, अर्थको भी जानना चाहिये। अधर्म तथा धर्मको जानकर, और अनर्थ तथा अर्थको जानकर धर्मके अनुसार, अर्थ (= हित) के अनुसार आचरण करना चाहिये।" भगवानने यह कहा। इतना कहकर सुगत उठे और विहारमें चले गये।

तब भगवानके चले जानेके थोड़ी ही देर बाद उन भिक्षुओंके मनमें यह हुआ—'आयुष्मानो! भगवान संक्षेपमें ही धर्मका उपदेश करें, बिना उसकी विस्तृत व्याख्या किये, आसनसे उठ, विहारमें प्रविष्ट हो गये कि 'भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, धर्मको भी जानना चाहिये; अनर्थको भी जानना चाहिये; अर्थको भी जानना चाहिये। अधर्म तथा धर्मको जानकर और अनर्थ तथा अर्थको जानकर, धर्मके अनुसार, अर्थ (= हित) के अनुसार आचरण करना चाहिये।' कौन है जो भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तारसे अव्याख्यात धर्मकी विस्तृत व्याख्या कर सके?

तब उन भिक्षुओंके मनमें यह हुआ—यह जो आयुष्मान आनन्द हैं, यह शास्ताके द्वारा प्रशंसित हैं, तथा विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा आदृत हैं। भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तारपूर्वक अव्याख्यात उपदेशको विस्तारपूर्वक समझानेमें आनन्द समर्थ हैं। हम जहाँ आयुष्मान आनन्द हैं, वहाँ चलें। चलकर आयुष्मान आनन्दसे इसकी विस्तृत व्याख्या पूछें। जैसे हमें आयुष्मान आनन्द समझायेंगे, वैसे हम धारण कर लेंगे।

तब वे भिक्षु जहाँ आयुष्मान आनन्द थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर आयुष्मान आनन्दके साथ कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेमकी बातचीत कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओंने आयुष्मान आनन्दसे कहा—

"आयुष्मान आनन्द! भगवानने हमें 'अधर्मको भी जानना चाहिये ..... आचरण करना चाहिये' संक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्या किये धर्मोपदेश दिया और आसनसे उठ विहारमें प्रविष्ट हो गये।

"आयुष्मान! भगवानके चले जानेके थोड़ी देर बाद हमारे मनमें यह हुआ—भगवानने हमें 'अधर्मको भी जानना चाहिये .....आचरण करना चाहिये' संक्षेपमें बिना विस्तृत व्याख्या किये धर्मोपदेश दिया और आसनसे उठ विहार चले गये। कौन है जो भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तारसे अव्याख्यात धर्मकी विस्तृत व्याख्या कर सके?

"आयुष्मान! तब हमारे मनमें हुआ—'यह जो आयुष्मान आनन्द हैं, यह शास्ताके द्वारा प्रशंसित हैं, तथा विज्ञ सब्रह्मचारियो द्वारा आदृत हैं। भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तृत रूपसे अव्याख्यात उपदेशको विस्तारपूर्वक समझानेमें आनन्द समर्थ हैं। हम जहाँ आयुष्मान आनन्द हैं, वहाँ चलें। चलकर आयुष्मान आनन्दसे इसकी विस्तृत व्याख्या पूछें। जैसे हमें आयुष्मान आनन्द समझायेंगे, वैसे हम धारण करेंगे।' आयुष्मान आनन्द! हमें समझायें।"

"आयुष्मानो! जैसे कोई आदमी हो, उसे 'सार' की तलाश हो, 'सार' की खोज हो, वह 'सार' का अन्वेषण करता हो, वह सारवान, महान वृक्षके खडे रहते उसके मूल और स्कन्धको छोड़ उसकी शाखाओ तथा पत्तोंमें 'सार' खोजता फिरे। इसी प्रकार आयुष्मानोंका शास्ताके उपस्थित रहते, हमसे यह जिज्ञासा प्रकट करना है। आयुष्मानों! वह भगवान जानते हुए जानते हैं, देखते हुए देखते हैं, वे चक्षुमान हैं, वे ज्ञानी हैं, वे धर्म-मूर्ति हैं, वे ब्रह्म-स्वरूप हैं, वे वक्ता हैं, वे प्रवक्ता हैं, वे अर्थकी ओर ले जानेवाले हैं, वे अमृतके दाता हैं, वे धर्म-स्वामी हैं, वे तथागत हैं। तुम्हारे

लिये इसीका योग्य समय था कि तुम भगवानके पास जाकर ही इसका यथार्थ भाव पूछते। जैसे भगवान समझाते, वैसे ग्रहण करते।

"आयुष्मान आनन्द ! निश्चय ही भगवान जानते हुए जानते हैं, देखते हुए देखते हैं; वे चक्षुमान हैं, वे ज्ञानी हैं, वे धर्म-मूर्ति हैं, वे ब्रह्म-स्वरूप हैं, वे वक्ता हैं, वे प्रवक्ता हैं, वे अर्थकी ओर ले जानेवाले हैं, वे अमृतके दाता हैं, वे धर्म-स्वामी हैं, वे तथागत हैं। यद्यपि हमारे लिये इसीका योग्य समय था कि हम भगवानके पास जाकर ही इसका यथार्थ भाव पूछते और जैसे भगवान समझाते, वैसे ही धारण करते; तो भी आयुष्मान आनन्द शास्ताके द्वारा प्रशंसित हैं, तथा विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा आदृत हैं। भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तार रूपसे अव्याख्यात उपदेशको विस्तारपूर्वक समझानेमें आनन्द समर्थ हैं। आयुष्मान आनन्द ! इसे सरल करके समझायें।"

"तो आयुष्मानो ! सुनो। अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"आयुष्मान ! बहुत अच्छा", कह, उन भिक्षुओंने आयुष्मान आनन्दको प्रतिवचन दिया। आयुष्मान आनन्दने यह कहा —

"आयुष्मानो ! यह जो भगवान संक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्या किये, आसनसे उठ, विहारमें प्रविष्ट हो गये कि 'भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, धर्मको भी जानना चाहिये। अधर्म तथा धर्मको जानकर, और अनर्थ तथा अर्थको जानकर धर्मके अनुसार, अर्थ (= हित) के अनुसार आचरण करना चाहिये।" सो आयुष्मानो, अधर्म क्या है, धर्म क्या है ? अनर्थ क्या है, अर्थ क्या है ?

"आयुष्मानो ! मिथ्या दृष्टि अधर्म है, सम्यक दृष्टि धर्म है; मिथ्या दृष्टिके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक दृष्टिके कारण जो अनेक कुशल-धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो ! मिथ्या-संकल्प अधर्म है, सम्यक संकल्प धर्म है..... ....आयुष्मानो ! मिथ्या वाणी अधर्म है, सम्यक वाणी धर्म है....आयुष्मानो ! मिथ्या कर्मान्त अधर्म है, सम्यक कर्मान्त धर्म है....आयुष्मानो ! मिथ्या आजीविका अधर्म है, सम्यक आजीविका धर्म है.....आयुष्मानो ! मिथ्या-व्यायाम अधर्म है, सम्यक व्यायाम धर्म है......आयुष्मानो, मिथ्या-स्मृति अधर्म है, सम्यक स्मृति धर्म है.......आयुष्मानो ! मिथ्या समाधि अधर्म है, सम्यक समाधि धर्म है..... आयुष्मानो ! मिथ्या ज्ञान अधर्म है, सम्यक ज्ञान धर्म है......आयुष्मानो ! मिथ्या विमुक्ति अधर्म है, सम्यक विमुक्ति धर्म है; मिथ्या विमुक्तिके कारण जो

अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक विमुक्तिके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो! यह जो भगवान तुम्हें सक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्या किये उपदेश दे आसनसे उठ, विहारमें प्रविष्ट हो गये कि 'भिक्षुओ! अधर्मको भी जानना चाहिये......आचरण करना चाहिये;' आयुष्मानो! मैं इस भगवानके द्वारा सक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्याके दिये गये उपदेशका इस प्रकार विस्तृत अर्थ जानता हूँ। आयुष्मानो! यदि इच्छा हो तो तुम भगवानके पास जाकर भी यह बात पूछ सकते हो। जैसे भगवान तुम्हें समझायें, वैसे धारण करना।"

"आयुष्मानो! बहुत अच्छा" कह वे भिक्षु आयुष्मान आनन्दके भाषणका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, आसनसे उठकर जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको प्रणाम कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवानको यह कहा——

"भगवान! यह जो संक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्याके, उपदेश देनेके अनन्तर आप उठकर विहार चले गये कि 'भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये.....आचरण करना चाहिये;' तो भन्ते! आपके चले जानेके थोड़ी ही देर बाद हमारे मनमें यह हुआ——भगवानने हमें 'अधर्म' को जानना चाहिये.....आचरण करना चाहिये' संक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्या किये, धर्मोपदेश दिया और आसनसे उठ विहार चले गये। कौन है जो भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तारसे अव्याख्यात धर्मकी विस्तृत व्याख्या कर सके?

"भन्ते! तब हमारे मनमें यह हुआ——'यह जो आयुष्मान आनन्द हैं, यह शास्ताके द्वारा प्रशंसित हैं तथा विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा आदृत हैं। भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तृत रूपसे अव्याख्यात उपदेशको विस्तारपूर्वक समझानेमें आनन्द समर्थ हैं। हम जहाँ आयुष्मान आनन्द हैं, वहाँ चलें। चलकर आयुष्मान आनन्दसे इसकी विस्तृत व्याख्या पूछें। जैसे हमें आयुष्मान समझायेंगे, वैसे ही धारण करेंगे।

"भन्ते! तब हम जहाँ आयुष्मान आनन्द थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर आयुष्मान आनन्दसे यह बात पूछी। भन्ते! आयुष्मान आनन्दने हमें इस तरह, इन पदोंसे, इन व्यंजनोंसे समझाया।"

"भिक्षुओ, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। भिक्षुओ, आनन्द पण्डित है। भिक्षुओ, आनन्द महाप्रज्ञ है। भिक्षुओ, यदि तुम मेरे पास भी आकर यही बात पूछते

तो मैं भी उसी प्रकार समझाता, जैसे आनन्दने समझाया है। यही इसका अर्थ है। इसी प्रकार इसे ग्रहण करो।"

४. अजितसुत्त

उस समय अजित परिब्राजक जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवानसे कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेपर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए अजित परिब्राजकने भगवानको यह कहा--

"हे गौतम! हमारा एक 'पण्डित' नामका साथी (--सब्रह्मचारी) है। उसने पाँच सौ चित्तस्थान सोच रखे हैं, जिनके कारण दूसरे सम्प्रदायोंके परिब्राजक अपने आपको शास्त्रार्थमें परास्त मानते हैं।"

तब भगवानने भिक्षुओंको सम्बोधित किया--

"भिक्षुओ, क्या तुम लोग पण्डितोंके गुणों (--वस्तुओं) को धारण करोगे?"

"भगवान! इसीका समय है। सुगत! इसीका समय है। भगवान भाषण करें। हम भिक्षु गण इसे सुनकर ग्रहण करेंगे।"'

"तो भिक्षुओ, सुनो। अच्छी तरहसे मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह भगवानने प्रतिवचन दिया। भगवानने यह कहा--

"भिक्षुओ! एक आदमी अधार्मिक पक्ष ग्रहण कर अधार्मिक पक्षको परास्त कर देता है; उससे अधार्मिक परिषद प्रसन्न हो जाती है। वह अधार्मिक परिषद हल्ला मचाने लगती है--

'आप पण्डित हैं। आप पण्डित हैं।'

"भिक्षुओ! एक आदमी अधार्मिक पक्ष ग्रहण कर धार्मिक पक्षको परास्त कर देता है; उससे अधार्मिक परिषद प्रसन्न हो जाती है। वह अधार्मिक परिषद हल्ला मचाने लगती है--

'आप पण्डित हैं। आप पण्डित हैं।'

"भिक्षुओ! एक आदमी अधार्मिक पक्ष ग्रहण कर धार्मिक पक्ष तथा अधार्मिक पक्षको परास्त कर देता है; उससे अधार्मिक परिषद प्रसन्न हो जाती है। वह अधार्मिक परिषद हल्ला मचाने लगती है--

'आप पण्डित हैं। आप पण्डित हैं।'

"भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, धर्मको भी जानना चाहिये, अनर्थको भी जानना चाहिये, अर्थको भी जानना चाहिये। अधर्म तथा धर्मको जानकर, और अनर्थ तथा अर्थको जानकर धर्मके अनुसार, अर्थ (=हित) के अनुसार आचरण करना चाहिये।

"भिक्षुओ, अधर्म क्या है ? धर्म क्या है ? भिक्षुओ, अनर्थ क्या है ? अर्थ क्या है ?

"भिक्षुओ, मिथ्या दृष्टि अधर्म है, सम्यक दृष्टि धर्म है; मिथ्या दृष्टिके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ हैं; सम्यक दृष्टिके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"भिक्षुओ ! मिथ्या संकल्प अधर्म है; सम्यक संकल्प धर्म है। भिक्षुओ, मिथ्या-वाणी अधर्म है; सम्यक वाणी धर्म है। भिक्षुओ, मिथ्या-कर्मान्त अधर्म है; सम्यक कर्मान्त धर्म है। भिक्षुओ, मिथ्या आजीविका अधर्म है; सम्यक आजीविका धर्म है। भिक्षुओ, मिथ्या व्यायाम अधर्म है; सम्यक व्यायाम धर्म है। भिक्षुओ, मिथ्या-स्मृति अधर्म हैं; सम्यक स्मृति धर्म है। भिक्षुओ, मिथ्या समाधि अधर्म है; सम्यक समाधि धर्म है। भिक्षुओ, सम्यक अज्ञान अधर्म है; सम्यक ज्ञान धर्म है। भिक्षुओ, मिथ्या विमुक्ति अधर्म है; सम्यक विमुक्ति धर्म है; मिथ्या विमुक्तिके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ हैं; सम्यक विमुक्तिके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है; यह अर्थ है।

"भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, धर्मको भी जानना चाहिये; अनथको भी जानना चाहिये, अर्थको भी जानना चाहिये। अधर्म तथा धर्मको जानकर, और अनर्थ तथा अर्थको जानकर, धर्मके अनुसार अर्थ (=हित) के अनुसार आचरण करना चाहिये।"—यह जो कहा गया उक्त आशयसे ही कहा गया।

५. संगारवसुत्त

उस समय संगारव ब्राह्मण जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। जाकर भगवानके साथ कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेपर वह एक ओर बैठा। एक ओर बैठे संगारव ब्राह्मणने भगवानको यह कहा—"हे गौतम ! इस ओरका किनारा क्या है, और उस पारका किनारा क्या है ?"

"ब्राह्मण ! मिथ्या दृष्टि इस ओरका किनारा है, सम्यक दृष्टि उस पारका किनारा है; मिथ्या संकल्प इस ओरका किनारा है, सम्यक संकल्प उस पारका किनारा हैं; मिथ्या वाणी इस ओरका किनारा है, सम्यक वाणी उस पारका किनारा है;

मिथ्या कर्मान्त इस ओरका किनारा है, सम्यक कर्मान्त उस पारका किनारा है; मिथ्या आजीविका इस ओरका किनारा है, सम्यक आजीविका उस पारका किनारा है; मिथ्या व्यायाम इस ओरका किनारा है, सम्यक व्यायाम उस पारका किनारा है; मिथ्या स्मृति इस ओरका किनारा है, सम्यक स्मृति उस पारका किनारा है; मिथ्या समाधि इस ओरका किनारा है, सम्यक समाधि उस पारका किनारा है; मिथ्या ज्ञान इस ओरका किनारा है, सम्यक ज्ञान उस पारका किनारा है; मिथ्या-विमुक्ति इस ओरका किनारा है; सम्यक विमुक्ति उस पारका किनारा है। ब्राह्मण! यह इस ओरका किनारा है, और यह उस पारका किनारा है।

"अप्पका ते मनुस्सेसु, ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा, तीर मेवानुधावति॥
ये च खो सम्मदक्खाते, धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं॥
कण्हं धम्मं विप्पहाय सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकमागम्य, विवेके यत्थ दूरमं॥
तत्राभिरतिमिच्छेय्य, हित्वा कामे अकिञ्चनो।
परियोदपेय्य अत्तानं, चित्तक्लेसेहि पण्डितो॥
येसं सम्बोधियंगेसु, सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदान पटिनिस्सग्गे, अनुपादाय ये रता।
खीणासवा जुतिमन्तो, ते लोक परिनिब्बुता।"

(पार जानेकी इच्छा रखनेवाले लोग थोड़े ही हैं। शेष प्रजा तो किनारेपर ही दौड़ती रहती है। जो लोग सम्यक प्रकारसे आख्यात धर्मके अनुसार आचरण करेंगे, वे इस दुस्तर, मृत्युकी सीमाको लाँघ सकेंगे। पण्डितको चाहिये कि वह कृष्ण (=पाप) कर्मको छोड़ शुक्ल (=शुभ) कर्म करे। वह घरसे बे-घर हो, दूर एकान्त-वास ग्रहण करे। काम-भोगोंको छोड़, अकिञ्चन हो, वहीं आनन्दित रहे। पण्डितको चाहिये कि अपने चित्तको निर्मल करे। जिन्होंने सम्यक प्रकारसे सम्बोधिके सात अंगोंमें चित्तको अभ्यस्त कर लिया है, जो ग्राह्य वस्तुओंको त्याग चुके हैं, जो अनासक्तिमें अनुरक्त हैं—ऐसे ही क्षीणास्रव द्युतिमान जन लोकमें परिनिर्वृत होते हैं।)

६. ओरिमतीरसुत्त

"भिक्षुओ, इस ओरके किनारेकी देशना करता हूँ, उस ओरके किनारेकी देशना करता हूँ, इसे सुनो। अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह उन भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवाचन दिया। भगवानने यह कहा—

भिक्षुओ, इस ओरका किनारा क्या है, उस पारका किनारा क्या है? मिथ्या दृष्टि इस ओरका किनारा है; सम्यक दृष्टि उस पारका किनारा है; ...... मिथ्या विमुक्ति इस ओरका किनारा है, सम्यक विमुक्ति उस पारका किनारा है। भिक्षुओ, यह इस ओरका किनारा है, यह उस पारका किनारा है।

"अप्पका ते मनुस्सेसु, ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा, तीरमेवानुधावति॥
ये च खो सम्मदक्खाते, धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं॥
कण्हं धम्मं विप्पहाय, सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकमागम्म, विवेके यत्थ दूरमं॥
तत्राभिरतिमिच्छेय्य, हित्वा कामे अकिञ्चनो।
परियोदपेय्य अत्तानं, चित्तक्लेसेहि पण्डितो॥
येसं सम्बोधियंगेसु, सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदान पटिनिस्सग्गो, अनुपादाय ये रता।
खीणासवा जुतिमन्तो, ते लोके परिनिब्बुता॥

(अर्थ ऊपर आ गया है—अनु०)

७. पठमपच्चोरोहणी सुत्त

इस समय जाणु-श्रोणी ब्राह्मण उपोसथ (—व्रत) के दिन सिरसे स्नान कर, नये रेशमका कपड़ा पहन गीली कुशा (—ग्रास) की मुठ्ठी ले, भगवानके पास एक ओर खड़ा हुआ। भगवानने देखा कि जाणु-श्रोणी ब्राह्मण उपोसथ (—व्रत) के दिन सिरसे स्नान कर, नये रेशमका कपड़ा पहन, गीली कुश— (—ग्रास) की मुठ्ठी ले, एक ओर खड़ा है। देख कर जाणु-श्रोणी ब्राह्मणसे पूछा—

"ब्राह्मण! आज उपोसथ (—व्रत) के दिन सिरसे स्नान कर, नये रेशमका बस्त्र पहन, गीली कुशा (ग्रास) की मुठ्ठी लेकर तुम क्यों खड़े हो? आज ब्राह्मण-कुलका क्या (त्योहार) है?"

"गौतम! आज ब्राह्मण कुलका प्रति-अवरोहण है।"

"ब्राह्मण! ब्राह्मणोंका प्रति-अवरोहण कैसे-कैसे होता है?"

"गौतम! ब्राह्मण उपोसथ (=व्रत) के दिन सिरसे स्नान कर, नया रेशमी वस्त्र पहन, गीले गोबरसे जमीन लीप, हरी कुशा (=ग्रास) बिखेर, बालूके ढेर तथा अग्नि-शालाके बीचमें लेटते हैं। उस रातको वे तीन बार उठकर, हाथ जोड़कर अग्निको नमस्कार करते हैं—'आपके प्रति हम अवरोहण करते हैं। आपके प्रति हम अवरोहण करते हैं।' वे बहुत से घी-तेल-मक्खनसे अग्नि (—देवता) का तर्पण करते है। उस रातके बीतनेपर ब्राह्मणोंको बढ़िया भोजन कराते हैं। गौतम! इस प्रकार ब्राह्मणोंका प्रति-अवरोहण होता है।"

"ब्राह्मण! ब्राह्मणोंका प्रति-अवरोहण दूसरी तरह होता है। आर्य-विनय (=बुद्ध-शासन) में प्रति-अवरोहण दूसरी तरह होता है।"

"गौतम! आर्य-विनय (=बुद्ध-शासन) में प्रति-अवरोहण कैसे होता है? अच्छा होगा यदि भगवान मुझे वैसे धर्मोपदेश दें, जैसे आर्य-विनयमें प्रति-अवरोहण होता है।"

"तो ब्राह्मण! सुन। अच्छी तरह मनमें धारण कर। कहता हूँ।"

"बहुत अच्छा, भगवान" कह जाणु-श्रोणी ब्राह्मणने भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने यह कहा—

"ब्राह्मण! आर्य-श्रावक इस प्रकार विचार करता है कि मिथ्या दृष्टिका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या दृष्टिका त्याग करता है, मिथ्या दृष्टिसे पृथक हो जाता है।

......मिथ्या संकल्पका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या संकल्पका त्याग करता है, मिथ्या संकल्पसे पृथक होता है।

......मिथ्या वाणीका इस लोक तथा पर लोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या वाणीका त्याग करता है, मिथ्या वाणीसे पृथक होता है।

......मिथ्या कर्मान्तका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या कर्मान्तका त्याग करता है, मिथ्या कर्मान्तसे पृथक होता है।

......मिथ्या आजीविकाका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है - वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या आजीविकाका त्याग करता है, मिथ्या आजीविकासे पृथक होता है।

......मिथ्या व्यायाम (=प्रयत्न) का इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या व्यायामका त्याग करता है, मिथ्या व्यायामसे पृथक होता है।

......मिथ्या-स्मृतिका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या स्मृतिका त्याग करता है, मिथ्या-स्मृतिसे पृथक होता है।

......मिथ्या समाधिका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या-समाधिका त्याग करता है, मिथ्या समाधिसे पृथक होता है।

......मिथ्या ज्ञानका इस लोक तथा परलोकमें दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या-ज्ञानका त्याग करता है, मिथ्या ज्ञानसे पृथक होता है।

"ब्राह्मण! वह आर्य-श्रावक इस प्रकार विचार करता है कि मिथ्या विमुक्तिका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या विमुक्तिका त्याग करता है, मिथ्या विमुक्तिसे पृथक होता है। ब्राह्मण। आर्य-विनय (=बुद्ध-शासन) में इस प्रकार प्रति-अवरोहण होता है।

"हे गौतम! ब्राह्मणोंका प्रति अवरोहण दूसरा है, आर्य-विनयका प्रति-अवरोहण दूसरा है। गौतम! ब्राह्मणोंका जो प्रति-अवरोहण है वह इस आर्य-विनयके प्रति-अवरोहणके सोलहवें हिस्सेके भी बराबर नहीं है। गौतम! बहुत सुन्दर है... गौतम! आजसे आप मुझे प्राण रहने तक अपना शरणागत उपासक समझें।"

८. दुतियपच्चोरोहणीसुत्त

भिक्षुओ! आर्य प्रति-अवरोहणको देशना करता हूँ। उसे सुनो।..... भिक्षुओ! आर्य प्रति-अवरोहण कैसे होता है? भिक्षुओ, एक आर्य-श्रावक सोचता है— मिथ्या दृष्टिका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह यह सोचकर मिथ्या दृष्टिका त्याग करता है, मिथ्या दृष्टिसे पृथक होता है मिथ्या संकलपका बुरा परिणाम होता है........मिथ्या वाणीका.....मिथ्या कर्मान्तका......... मिथ्या आजीविकाका.......मिथ्या व्यायाम का.......मिथ्या स्मृतिका.....

.....मिथ्या समाधिका......मिथ्या ज्ञानका.......मिथ्या विमुक्तिका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह यह सोचकर मिथ्या-विमुक्तिका त्याग करता है, मिथ्या विमुक्तिसे पृथक होता है। भिक्षुओ, इसे कहते हैं आर्य प्रति-अवरोहण।"

९. पुब्बंगमसुत्त

"भिक्षुओ, सूर्यके उदय होनेसे पहले सूर्योदयका पूर्व-निमित्त अरुणोदय होता है। इसी प्रकार भिक्षुओ कुशल-धर्मोंका पूर्व-निमित्त है—सम्यक दृष्टि। भिक्षुओ, जो सम्यक दृष्टि प्राप्त है, वह सम्यक संकल्प प्राप्त हो जाता है; सम्यक संकल्पवालेकी सम्यक वाणी होती है; सम्यक वाणी वालेका सम्यक कर्मान्त होता है; सम्यक कर्मान्त वालेकी सम्यक आजीविका होती है; सम्यक आजीविकावालेका सम्यक व्यायाम होता है; सम्यक व्यायामवालेकी सम्यक स्मृति होती है; सम्यक स्मृतिवालेकी सम्यक समाधि होती है; सम्यक समाधिवालेका सम्यक ज्ञान होता है तथा सम्यक ज्ञानवालेकी सम्यक विमुक्ति होती है।

१०. आसवक्खयसुत्त

"भिक्षुओ, इन दस बातों (—धर्मों) का अभ्यास करनेसे, वृद्धि करनेसे आस्रवोंका क्षय होता है। किन दस धर्मोंका? सम्यक दृष्टिका, सम्यक संकल्पका, सम्यक वाणीका, सम्यक कर्मान्तका, सम्यक आजीविकाका, सम्यक व्यायामका, सम्यक स्मृतिका, सम्यक समाधिका, सम्यक ज्ञानका तथा सम्यक विमुक्तिका। भिक्षुओ, इन दस बातों (—धर्मों) का अभ्यास करनेसे, वृद्धि करनेसे आस्रवोंका क्षय होता है।"

१३. परिशुद्ध वर्ग

१. पठमसुत्त

'भिक्षुओ, सुगत-विनय (=बुद्ध-शासन) के अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी परिशुद्ध नहीं हैं स्वच्छ नहीं हैं। कौन-सी दस? सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मान्त, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि, सम्यक ज्ञान तथा सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, सुगत-विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी परिशुद्ध नहीं हैं, स्वच्छ नहीं हैं।

२. दुतियसुत्त

भिक्षुओ, सुगत-विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी अनुत्पन्न होकर उत्पन्न नहीं होतीं ? कौन-सी दस ? सम्यक दृष्टि ...... सम्यक विमुक्ति। भिक्षओ, सुगत विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी अनुत्पन्न होकर उत्पन्न नहीं होतीं।

३. ततियसुत्त

भिक्षुओ, सुगत-विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी महान फल, महान शुभ-परिणामके देनेवाली नहीं होतीं। कौन-सी दस ? सम्यक दृष्टि .... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, सुगत विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी महान फल, शुभ परिणामके देनेवाली नहीं होतीं।

४. चतुत्थसुत्त

भिक्षुओ, सुगत-विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी राग, द्वेष तथा मोहके सर्वथा उन्मूलनके लिये नहीं होतीं। कौन-सी दस ? सम्यक दृष्टि .... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, सुगत विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी राग, द्वेष तथा मोह के सर्वथा उन्मूलनके लिये नहीं होतीं।

५. पंचमसुत्त

भिक्षुओ, सुगत-विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी सर्वांश रूपसे निर्वेदके लिये, वैराग्यके लिए, निरोधके लिये, उपशमनके लिये, अभिज्ञाके लिये, सम्बोधिके लिये तथा निर्वाणके लिये नहीं होतीं। कौन-सी दस बातें ? सम्यक दृष्टि .... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, सुगत-विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी सर्वांश रूपसे निर्वेदके लिये, वैराग्यके लिये, निरोधके लिये, उपशमनके लिये, अभिज्ञाके लिये, सम्बोधिके लिये तथा निर्वाणके लिये नहीं होतीं।

६. छट्ठसुत्त

भिक्षुओ, सुगत विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी अभ्यास करनेसे, वृद्धि करनेसे अनुत्पन्न रहकर उत्पन्न नहीं होतीं। कौन-सी दस नातें ? सम्यक दृष्टि .... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, सुगत विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी अभ्यास करनेसे, वृद्धि करनेसे अनुत्पन्न रहकर उत्पन्न नहीं होतीं।

७. सत्तमसुत्त

भिक्षुओ, सुगत-विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी अभ्यास करनेसे, वृद्धि करनेसे महान फल, महान शुभ परिणाम के देनेवाली नहीं होतीं। कौन-सी दस? सम्यक दृष्टि........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, सुगत विनयके अतिरिक्त ये दस बातें (—धर्म) अन्यत्र कहीं भी अभ्यास करनेसे, वृद्धि करनेसे, महान फल, महान शुभ परिणामके देनेवाली नहीं होती।

८. अट्ठमसुत्त

भिक्षुओ, सुगत-विनयके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी ये दस बातें (—धर्म) अभ्यास करनेपर, वृद्धि करनेपर राग, द्वेष तथा मोहके सर्वथा उन्मूलनके लिये नहीं होतीं। कौन-सी दस? सम्यक दृष्टि........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, सुगत विनयके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी ये दस बातें (—धर्म) अभ्यास करनेपर, वृद्धि करनेपर, राग-द्वेष तथा मोहके सर्वथा उन्मूलनके लिये नहीं होतीं।

९. नवमसुत्त

भिक्षुओ, सुगत-विनयके अतिरिक्त अन्यत्र कही भी ये दस बातें (—धर्म) अभ्यास करनेपर, वृद्धि करनेपर, सर्वांश रूपसे निर्वेदके लिये, वैराग्यके लिये, निरोधके लिये उपशमनके लिये, अभिज्ञाके लिये, सम्बोधिके लिये तथा निर्वाणके लिये नहीं होतीं। कौन-सी दस? सम्यक दृष्टि..........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, सुगत-विनयके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी ये दस बातें (—धर्म) अभ्यास करनेपर, वृद्धि करनेपर, सर्वांश रूपसे निर्वेदके लिये, वैराग्यके लिये, निरोधके लिये, उपशमनके लिये, अभिज्ञाके लिये, सम्बोधिके लिये तथा निर्वाणके लिये नहीं होतीं।

१०. दसमसुत्त

भिक्षुओ, ये दस मिथ्यात्व हैं। कौनसे दस? मिथ्या दृष्टि, मिथ्या-संकल्प, मिथ्या वाणी, मिथ्या कर्मान्त, मिथ्या आजीविका, मिथ्या व्यायाम, मिथ्या स्मृति, मिथ्या समाधि, मिथ्या ज्ञान तथा मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, ये दस मिथ्यात्व हैं।

११. एकादससुत्त

भिक्षुओ, ये दस सम्यकत्व हैं। कौनसे दस? सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प सम्यक वाणी, सम्यक कर्मान्त, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि, सम्यक ज्ञान तथा सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, ये दस सम्यकत्व हैं।

१४–साधु वर्ग

१. साधुसुत्त

भिक्षुओ, मैं 'साधु' की देशना करता हूँ, तथा 'असाधु' की। उसे सुनो। अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह उन भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने यह कहा—

"भिक्षुओ, असाधु किसे कहते हैं? जिसकी मिथ्या दृष्टि हो, मिथ्या संकल्प हो, मिथ्या वाणी हो, मिथ्या-कर्मान्त हो, मिथ्या आजीविका हो, मिथ्या व्यायाम हो, मिथ्या स्मृति हों, मिथ्या समाधि हो, मिथ्या ज्ञान हो तथा मिथ्या विमुक्ति हो—भिक्षुओ, उसे असाधु कहते हैं। भिक्षुओ, 'साधु' किसे कहते हैं? जिसकी सम्यक दृष्टि हो, सम्यक संकल्प हो, सम्यक वाणी हों, सम्यक कर्मान्त हो, सम्यक आजीविका हो, सम्यक व्यायाम हो, सम्यक स्मृति हो, सम्यक समाधि हो, सम्यक ज्ञान हो, सम्यक विमुक्ति हो—भिक्षुओ, उसे 'साधु' कहते हैं।

२. अरियधम्मसुत्त

भिक्षुओ, आर्य-धर्मकी देशना करता हूँ तथा अनार्य-धर्मकी। इसे सुनो। भिक्षुओ, अनार्य-धर्म किसे कहते हैं! मिथ्या-दृष्टि...... मिथ्या-विमुक्ति—भिक्षुओ, यह है अनार्य-धर्म। भिक्षुओ, आर्य-धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि.... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, यह आर्य-धर्म है।

३. अकुसलसुत्त

भिक्षुओ, अकुशलकी देशना करता हूँ, तथा कुशलकी। उसे सुनो...... भिक्षुओ, अकुशल किसे कहते हैं? मिथ्या दृष्टि......... मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, यह अकुशल है। भिक्षुओ, कुशल किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि....... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, यह कुशल है।

४. अत्थसुत्त

"भिक्षुओ, अर्थकी देशना करता हूँ तथा अनर्थकी। इसे सुनो........ भिक्षुओ, अनर्थ किसे कहते हैं? मिथ्या दृष्टि........ मिथ्या-विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं अनर्थ। भिक्षुओ, अर्थ किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि....... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे अर्थ कहते हैं।

५. धम्मसुत्त

"भिक्षुओ, धर्मकी देशना करता हूँ तथा अधर्म की। इसे सुनो.....भिक्षुओ, अधर्म क्या है? मिथ्या दृष्टि.......मिथ्या संकल्प। भिक्षुओ, यह अधर्म है। भिक्षुओ, धर्म क्या है? सम्यक दृष्टि.........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, ये धर्म है।

६. सासवसुत्त

भिक्षुओ, सास्रव धर्मकी देशना करता हूँ, तथा अनास्रवकी। इसे सुनो.....भिक्षुओ, सास्रव धर्म किसे कहते हैं? मिथ्या दृष्टि........मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, यह सास्रव धर्म कहलाता है। भिक्षुओ, अनास्रव धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि...........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे अनास्रव धर्म कहते हैं।

७. सावज्जसुत्त

भिक्षुओ, सदोष धर्मकी देशना करता हूँ, तथा निर्दोष धर्मकी। इसे सुनो...........भिक्षुओ, सदोष धर्म किसे कहते हैं? मिथ्या दृष्टि.......मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, यह सदोष धर्म कहलाता है। भिक्षुओ, निर्दोष धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, यह निर्दोष धर्म है।

८. तपनीयसुत्त

भिक्षुओ, तपानेवाले धर्मकी देशना करता हूँ, तथा न तपानेवाले धर्मकी देशना करता हूँ। इसे सुनो..........भिक्षुओ, तपानेवाला धर्म कौन-सा है? मिथ्या दृष्टि........मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, यह तपानेवाला धर्म है। भिक्षुओ, न तपानेवाला धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि .....सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, यह न तपानेवाला धर्म है।

९. आचयगामिसुत्त

भिक्षुओ, आचयगामी (=जन्मान्तरका संग्रह करनेवाले) तथा अपचयगामी (=जन्मान्तरका संग्रह न करनेवाले) धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो.......भिक्षुओ, आचयगामी धर्म कौन-सा है? मिथ्या दृष्टि......मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, यह आचयगामी धर्म कहलाता है। भिक्षुओ, अपचयगामी धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि...........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे अपचयगामी धर्म कहते हैं।

१०. दुक्खुद्रयसुत्त

भिक्षुओ, दुखदायक धर्मकी देशना करता हूँ तथा सुखदायक धर्मकी। इसे सुनो.........भिक्षुओ......दुखदायक धर्म कौन-सा है? मिथ्या दृष्टि......मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ! यह दुखदायक धर्म कहलाता है। भिक्षुओ! सुखदायक धर्म किसे कहते हैं! सम्यक दृष्टि.........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे सुखदायक धर्म कहते हैं।

११. दुक्खविपाकसुत्त

भिक्षुओ, दुख-विपाक धर्मकी देशना करता हूँ तथा सुख-विपाक धर्मकी। उसे सुनो...........भिक्षुओ, दुख-विपाक धर्म किसे कहते हैं? मिथ्या दृष्टि........मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं दुख-विपाक धर्म। भिक्षुओ, सुख-विपाक धर्म किसे कहते हैं। सम्यक दृष्टि.......सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं सुख-विपाक धर्म।

१६—आर्य वर्ग

१. आरियमग्गसुत्त

भिक्षुओ, आर्य मार्गकी देशना करता हूँ तथा अनार्य मार्गकी। उसे सुनो.........भिक्षुओ, अनार्य मार्ग किसे कहते हैं? मिथ्या दृष्टि.......मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे अनार्य मार्ग कहते हैं। भिक्षुओ, आर्य मार्ग किसे कहते है? सम्यक दृष्टि.........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे आर्य मार्ग कहते हैं।

२. कण्हमग्गसुत्त

भिक्षुओ, कृष्ण मार्गकी देशना करता हूँ, तथा शुक्ल मार्गकी। उसे सुनो........भिक्षुओ, कृष्ण मार्ग क्या है? मिथ्या दृष्टि.......मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, यह कृष्ण मार्ग है। भिक्षुओ, शुक्ल मार्ग क्या है? सम्यक दृष्टि......सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, यह शुक्ल मार्ग है।

३. सद्धम्मसुत्त

भिक्षुओ सद्धर्मकी देशना करता हूँ तथा असद्धर्मकी। उसे सुनो.......भिक्षुओ, असद्धर्म किसे कहते हैं? मिथ्या दृष्टि.........मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, सद्धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि..........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे सद्धर्म कहते है।

४. सप्पुरिसधम्मसुत्त

भिक्षुओ, सत्पुरुष धर्मकी देशना करता हूँ, असत्पुरुष धर्मकी। उसे सुनो .... भिक्षुओ, असत्पुरुष धर्म किसे कहते हैं? मिथ्या दृष्टि...... मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे असत्पुरुष धर्म कहते हैं। भिक्षुओ, सत्पुरुष धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि......... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे सत्पुरुष धर्म कहते हैं।

५. उप्पादेतब्बसुत्त

"भिक्षुओ, अपनाने योग्य धर्म तथा न अपनाने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो....... भिक्षुओ न अपनाने योग्य धर्म कौन-सा है? मिथ्या दृष्टि .... मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं, न अपनाने योग्य धर्म। भिक्षुओ, अपनाने योग्य धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि .... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे अपनाने योग्य धर्म कहते हैं।

६. आसेवितब्बसुत्त

"भिक्षुओ, सेवन करने योग्य धर्म तथा सेवन न करने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो...... भिक्षुओ सेवन न करने योग्य धर्म कौन-सा है? मिथ्या दृष्टि......... मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं न सेवन करने योग्य धर्म। भिक्षुओ, सेवन करने योग्य धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि ...... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं सेवन करने योग्य धर्म।

७. भावेतब्बसुत्त

भिक्षुओ, अभ्यास करने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ तथा अभ्यास न करने योग्य धर्मकी। उसे सुनो....... अभ्यास न करने योग्य धर्म कौन-सा है? मिथ्या दृष्टि......... मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं, अभ्यास न करने योग्य धर्म। भिक्षुओ, अभ्यास करने योग्य धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि........... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे अभ्यास करने योग्य धर्म कहते हैं।

८. बहुलीकातब्बसुत्त

भिक्षुओ, वृद्धि करने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ तथा वृद्धि न करने योग्य धर्मकी। उसे सुनो...... वृद्धि न करने योग्य धर्म कौन-सा है? मिथ्या दृष्टि .... मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं वृद्धि न करने योग्य धर्म। भिक्षुओ, वृद्धि करने योग्य धर्म कौन-सा है? सम्यक दृष्टि........ सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, यह वृद्धि करने योग्य धर्म है।

९. अनुसरितब्बसुत्त

भिक्षुओ, अनुस्मरण करने योग्य तथा अनुस्मरण न करने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो....... भिक्षुओ, अनुस्मरण न करने योग्य धर्म कौन-सा है? मिथ्या दृष्टि.......मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं अनुस्मरण न करने योग्य धर्म। भिक्षुओ, अनुस्मरण करने योग्य धर्म किसे कहते हैं? सम्यक दृष्टि..........सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं अनुस्मरण करने योग्य धर्म।

१०. सच्छिकातब्बसुत्त

"भिक्षुओ, साक्षात करने योग्य तथा साक्षात न करने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो............भिक्षुओ, साक्षात न करने योग्य धर्म कौनसा है? मिथ्या दृष्टि.......मिथ्या विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं साक्षात न करने योग्य धर्म। भिक्षुओ! साक्षात करने योग्य धर्म कौन-सा है? सम्यक दृष्टि..... सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, इसे कहते हैं साक्षात करने योग्य धर्म।

१६—पुद्गल वर्ग

१. सेवितब्बसुत्त

भिक्षुओ, जिस आदमीमें ये दस दुर्गुण हों, उसकी संगति न करनी चाहिये। कौन-से दस? उसकी मिथ्या दृष्टि होती है, उसके मिथ्या संकल्प होते हैं, उसकी मिथ्या वाणी होती है, उसके मिथ्या कर्मान्त होते हैं, उसकी मिथ्या आजीविका होती है, उसका मिथ्या व्यायाम होता है, उसकी मिथ्या स्मृति होती है, उसकी मिथ्या समाधि होती है, उसका मिथ्या ज्ञान होता है, उसकी मिथ्या विमुक्ति होती है— भिक्षुओ, जिस आदमीमें इन दस दुर्गुणोंमें से कोई एक दुर्गुण हो उसकी संगति न करनी चाहिये।

"भिक्षुओ, जिस आदमीमें ये दस सद्गुण हों, उसकी संगति करनी चाहिये। कौन-से दस? उसकी सम्यक दृष्टि होती है, उसके सम्यक संकल्प होते हैं, उसकी सम्यक वाणी होती है, उसके सम्यक कर्मान्त होते हैं, उसकी सम्यक आजीविका होती है, उसका सम्यक व्यायाम होता है, उसकी सम्यक स्मृति होती है, उसकी सम्यक समाधि होती है, उसका सम्यक ज्ञान होता है, उसकी सम्यक विमुक्ति होती है। भिक्षुओ, जिस आदमीमें ये दस सद्गुण हों, उसकी संगति करनी चाहिये।"

२-१२. भजितब्बादिसुत्तानि

भिक्षुओ, जिस आदमीमें ये दस बातें (=धर्म) हों, उसके साथ नहीं रहना चाहिये..........साथ रहना चाहिये.......उसको सेवामें नहीं रहना चाहिये............सेवामें रहना चाहिये.........वह पूज्य नहीं होता...... वह पूज्य होता है............वह प्रशंसनीय नहीं होता..........प्रशंसनीय होता है..........वह गौरवार्ह नहीं होता..........वह गौरवार्ह होता है वह प्रतिष्ठित नहीं होता.........वह प्रतिष्ठित होता है.........वह प्रसन्न करनेवाला नहीं होता है.........प्रसन्न करनेवाला होता है........वह परिशुद्ध नहीं होता........परिशुद्ध होता है...........वह अहंकार-मुक्त नहीं होता ....अहंकार मुक्त होता है............उसकी प्रज्ञा नहीं बढ़ती है............प्रज्ञा बढ़ती है.........

"वह बहुत अपुण्य लाभ करता है........बहुत पुण्य लाभ करता है। किन दस बातों (=धर्मों) से? उसकी सम्यक दृष्टि होती है, उसके सम्यक संकल्प होते हैं, उसकी सम्यक वाणी होती है, उसके सम्यक कर्मान्त होते हैं, उसकी सम्यक आजीविका होती है, उसका सम्यक व्यायाम होता है, उसकी सम्यक स्मृति होती है, उसकी सम्यक समाधि होती है, उसका सम्यक ज्ञान होता है, उसकी सम्यक विमुक्ति होती है। भिक्षुओ, जिस आदमीमें ये दस बातें (=धर्म) होती हैं, वह बहुत पुण्य लाभ करता है।

१७-जाणुश्रोणी वर्ग

१. ब्राह्मणपच्चोरोहणीसुत्त

उस समय जाणुश्रोणी ब्राह्मण उपोसथ (=व्रत) के दिन सिरसे स्नान कर नया रेशमका कपड़ा पहन, गीली कुशा (-ग्रास) की मुट्ठी ले, भगवानके पास एक ओर खड़ा हुआ। भगवानने देखा कि जाणु-श्रोणी ब्राह्मण उपोसथ (=व्रत) के दिन, सिरसे स्नान कर, नया रेशमका कपड़ा पहन, गीली कुशा (=ग्रास) की मुट्ठी ले, एक ओर खड़ा है। देखकर जाणु-श्रोणी ब्राह्मणसे पूछा—

"ब्राह्मण! आज उपोसथ (=व्रत) के दिन सिरसे स्नान कर, नये रेशमका वस्त्र पहन, गीली कुशा-(=ग्रास) की मुट्ठी लेकर, तुम क्यों खड़े हो? आज ब्राह्मण कुलका क्या (त्योहार) है?"

"गौतम! आज ब्राह्मण-कुलका प्रति-अवरोहण है।"

"ब्राह्मण! ब्राह्मणोंका प्रति-अवरोहण कैसे कैसे होता है ?"

"गौतम! ब्राह्मण उपोसथ (= व्रत)के दिन सिरसे स्नान कर, नया रेशमी वस्त्र पहन, गीले गोबरसे जमीन लीप, हरी कुशा (= ग्रास) बिखेर, बालूके ढेर तथा अग्नि-शालाके बीचमें लेटते हैं। उस रातको वे तीन बार उठकर, हाथ जोड़कर अग्निको नमस्कार करते हैं—'आपके प्रति हम अवरोहण करते हैं। आपके प्रति हम अवरोहण करते हैं।' वे बहुत से घी-तेल-मक्खनसे अग्नि-देवताका तर्पण करते हैं। उस रातके बीतनेपर ब्राह्मणोंको बढ़िया भोजन कराते हैं! गौतम। इस प्रकार ब्राह्मणोंका प्रति-अवरोहण होता है।"

"ब्राह्मण! ब्राह्मणोंका प्रति-अवरोहण दूसरी तरह होता है। आर्य-विनयमें (= बुद्ध शासन) में प्रति-अवरोहण दूसरी तरह होता है।"

"गौतम! आर्य-विनय (= बुद्ध-शासन) में प्रति-अवरोहण कैसे होता है? अच्छा होगा यदि भगवान मुझे वैसे धर्मोपदेश दें, जैसे आर्य-विनयमें प्रति-अवरोहण होता है।"

"तो ब्राह्मण! सुन। अच्छी तरह मनमें धारण कर। कहता हूँ।"

"बहुत अच्छा भगवान" कह जाणु-श्रोणी ब्राह्मणने भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने यह कहा—

ब्राह्मण! आर्य-श्रावक इस प्रकार विचार करता है, कि प्राणी-हिंसाका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर प्राणी-हिंसाका त्याग करता है, प्राणी हिंसासे पृथक हो जाता है।

......चोरीका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर चोरीका त्याग करता है, चोरीसे पृथक हो जाता है।

......काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचारोंका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचारको त्याग करता है, काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे पृथक हो जाता है।

......झूठ बोलनेका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर झूठ बोलनेका त्याग करता है, झूठ बोलनेसे पृथक हो जाता है।

......चुगलखोरीका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर चुगलखोरीका त्याग करता है, चुगलखोरीसे पृथक हो जाता है।

......कठोर बोलनेका लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर कठोर बोलनेका त्याग करता है, कठोर बोलनेसे पृथक हो जाता है।

......व्यर्थ बोलनेका लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर व्यर्थ बोलनेका त्याग करता है, व्यर्थ बोलनेसे पृथक हो जाता है।

......लोभका लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर लोभका त्याग करता है, लोभसे पृथक हो जाता है।

......द्वेष (=व्यापाद) का लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर द्वेषका त्याग करता है, द्वेषसे पृथक हो जाता है।

'ब्राह्मण! आर्य-श्रावक इस प्रकार विचार करता है कि मिथ्या दृष्टिका इस लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या दृष्टिका त्याग करता है, मिथ्या दृष्टिसे पृथक हो जाता है। ब्राह्मण! इस प्रकार आर्य-विनय (=बुद्ध-शासन) में प्रति-अवरोहण होता है।"

"हे गौतम! ब्राह्मणोंका प्रति-अवरोहण दूसरा है, आर्य-विनयका प्रति-अवरोहण दूसरा है। गौतम! ब्राह्मणोंका जो प्रति-अवरोहण है, वह इस आर्य-विनयके प्रति-अवरोहणके सोलहवें हिस्सेके भी बराबर नहीं है। गौतम! बहुत सुन्दर है........गौतम! आजसे आप मुझे प्राण रहने तक अपना शरणागत उपासक समझें।"

२. अरियपच्चोरोहणीसुत्त

"भिक्षुओ, आर्य प्रति-अवरोहणकी देशना करता हूँ। उसे सुनो। अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह उन भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने इस प्रकार कहा—

"भिक्षुओ, आर्य प्रति-अवरोहण किसे कहते हैं? भिक्षुओ, आर्य-श्रावक इस प्रकार विचार करता है कि प्राणी हिंसाका लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर प्राणी-हिंसाका त्याग करता है; प्राणी-हिंसासे पृथक हो जाता है।

......चोरीका लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर चोरीका त्याग करता है, चोरीसे पृथक हो जाता है।

......काम भोग सम्बन्धी मिथ्या चारका ....बुरा परिणाम होता है ....काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से पृथक होता है।

......झूठ बोलनेका........बुरा परिणाम होता है।

......झूठ बोलनेसे पृथक हो जाता है।

......चुगलखोरीका......बुरा परिणाम होता है।......चुगलखोरीसे पृथक हो जाता है।

......कठोर बोलनेका.......बुरा परिणाम होता है। ....कठोर बोलनेसे पृथक हो जाता है।

......व्यर्थ बोलनेका......बुरा परिणाम होता है।.......व्यर्थ बोलनेसे पृथक हो जाता है।

......लोभका......बुरा परिणाम होता है।

......लोभसे पृथक हो जाता है।

......द्वेषका.......बुरा परिणाम होता है।

......द्वेषसे पृथक हो जाता है।

"भिक्षुओ, आर्य-श्रावक इस प्रकार विचार करता है कि मिथ्या दृष्टिका लोक तथा परलोक दोनोंमें बुरा परिणाम होता है। वह इस प्रकार सोचकर मिथ्या दृष्टिका त्याग करता है, मिथ्या दृष्टिसे पृथक हो जाता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं आर्य प्रति-अवरोहण।

३. संगारवसुत्त

उस समय संगारव ब्राह्मण जहाँ भगवान थे, वहाँ गया। पास जाकर भगवानसे कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेपर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे संगारव ब्राह्मणने भगवानको यह कहा——

"भन्ते! इस ओरका किनारा क्या है, और उस ओरका किनारा क्या है?"

"ब्राह्मण! प्राणी-हिंसा करना इस ओरका किनारा है; प्राणी-हिंसासे विरति उस ओरका किनारा है। ब्राह्मण! चोरी करना इस ओरका किनारा है, चोरी करनेसे विरति उस ओरका किनारा है। काम-भोगों सम्बन्धी मिथ्याचार इस ओरका किनारा है, काम-भोगों सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरति उस ओरका किनारा है। झूठ बोलना इस ओरका किनारा है, झूठ बोलनेसे विरति उस ओरका किनारा

है। चुगलखोरी इस ओरका किनारा है, चुगलखोरीसे विरति उस ओरका किनारा है। कठोर बोलना इस ओरका किनारा है, कठोर बोलनेसे विरति उस ओरका किनारा है। व्यर्थ बोलना इस ओरका किनारा है, व्यर्थ बोलनेसे विरति उस ओरका किनारा है। लोभ इस ओरका किनारा है, लोभसे विरति उस ओरका किनारा है। द्वेष (= व्यापाद) इस ओरका किनारा है, द्वेषसे विरति उस ओरका किनारा है। मोह (= मिथ्या दृष्टि) इस ओरका किनारा है, सम्यक दृष्टि उस ओरका किनारा है। ब्राह्मण! यह इस ओरका किनारा है, यह उस पारका किनारा है।

"अप्पका ते मनुस्सेसु, ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा, तीरमेवानुधावति॥
ये च खो सम्मदक्खाते, धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं॥
कण्हं धम्मं विप्पहाय, सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकमागम्म, विवेके यत्थ दूरमं॥
तत्राभिरतिमिच्छेय्य, हित्वा कामे अकिञ्चनो।
परियोद पेय्य अत्तानं, चित्तक्लेसेहि पण्डितो॥
येसं सम्बोधियंगेसु, सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदान पटि निस्सग्गे, अनुपादाय ते रता।
खीणासवा जुतिमन्तो, ते लोके परिनिब्बुता॥"

(अर्थ—ऊपर आ ही चुका है। अनु०)

४. ओरिमसुत्त

"भिक्षुओ, इस ओरके किनारेकी देशना करता हूँ तथा उस ओरके किनारेकी देशना करता हूँ। उसे सुनो..... भिक्षुओ, इस ओरका किनारा किसे कहते हैं, उस ओरका किनारा किसे कहते हैं? भिक्षुओ, प्राणी हिंसा करना इस ओरका किनारा है, प्राणी-हिंसासे विरति उस ओरका किनारा है। चोरी इस ओरका किनारा है, चोरीसे विरति उस ओरका किनारा है। काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार इस ओरका किनारा है, काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरति उस ओरका किनारा है। झूठ बोलना इस ओरका किनारा है, झूठ बोलनेसे विरति उस ओरका किनारा है। चुगलखोरी इस ओरका किनारा है, चुगलखोरीसे विरति उस ओरका किनारा है। कठोर बोलना इस ओरका किनारा है, कठोर बोलनेसे विरति उस ओरका किनारा है। व्यर्थ बोलना इस ओरका किनारा है, व्यर्थ बोलनेसे विरति उस ओरका किनारा है। लोभ इस

ओरका किनारा है, लोभसे विरति उस ओरका किनारा है। द्वेष (=व्यापाद) इस ओरका किनारा है, व्यापादसे विरति उस ओरका किनारा है। मोह (=मिथ्या दृष्टि) इस ओरका किनारा है, सम्यक दृष्टि उस ओरका किनारा है, भिक्षुओ यह इस ओरका किनारा है, यह उस पारका किनारा है।

"अप्पका ते मनुस्सेसु, ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा, तीरमेवानुधावति ।।
ये च खो सम्मदक्खाते, धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं ।।
कण्हं धम्मं विप्पहाय, सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकमागम्म, विवेके यत्थ दूरमं ।।
तत्राभिरतिमिच्छेय्य, हित्वा कामे अकिञ्चनो।
परियोदपेय्य अत्तानं, चित्तक्लेसेहि पण्डितो।।
येसं सम्बोधियंगेसु, सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदान पटिनिस्सग्गे, अनुपादाय ये रता।
खीणासवा जुतिमन्तो, ते लोके परिनिब्बुता।"

(अर्थ—ऊपर आ ही चुका है। अनु०)

५. पठमअधम्मसुत्त

भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये तथा अनर्थको भी; धर्मको भी जानना चाहिये तथा अर्थ (=हित) को भी। अधर्म और अनर्थको जानकर; धर्म तथा अर्थको भी जानकर धर्मके अनुसार, हितके अनुसार आचरण करना चाहिये।

"भिक्षुओ, अधर्म तथा अनर्थ किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसा, चोरी, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार, झूठ, चुगली, कठोर वचन, व्यर्थ बातचीत, लोभ, द्वेष, मिथ्या दृष्टि—भिक्षुओ, यह 'अधर्म' तथा 'अनर्थ' कहलाता है।

"भिक्षुओ, धर्म तथा अर्थ किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसासे विरति, चोरीसे विरति, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरति, झूठ बोलनेसे विरति, चुगलीसे विरति, कठोर वचनसे विरति, व्यर्थ बातचीतसे विरति, निर्लोभ-पन, द्वेषका न होना तथा सम्यक् दृष्टि। भिक्षुओ, यही 'धर्म' तथा अर्थ (=हित) कहलाता है।

'भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये तथा अनर्थको भी; धर्मको भी जानना चाहिये तथा अर्थ (=हित) को भी। अधर्म और अनर्थको जानकर, धर्म

तथा अर्थको भी जानकर धर्मके अनुसार, हितके अनुसार आचरण करना चाहिये '— यह जो कहा गया, यह इसी आशयसे कहा गया।

६ दुतियअधम्मसुत्त

"भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, धर्मको भी जानना चाहिये; अनर्थको भी जानना चाहिये, अर्थको भी जानना चाहिये। अधर्म तथा धर्मको जानकर, और अनर्थ तथा अर्थको जानकर, धर्मके अनुसार, अर्थ (= हित) के अनुसार आचरण करना चाहिये।" भगवानने यह कहा। इतना कहकर सुगत उठे और विहारमें चले गये।

तब भगवानके चले जानेके थोड़ी ही देर बाद उन भिक्षुओंके मनमें यह हुआ— 'आयुष्मानो ! भगवान संक्षेपमें ही धर्मका उपदेश कर, बिना उसकी विस्तृत व्याख्या किये, आसनसे उठ, विहारमें प्रविष्ट हो गये कि 'भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, धर्मको भी जानना चाहिये; अनर्थको भी जानना चाहिये, अर्थको भी जानना चाहिये। अधर्म तथा धर्मको जानकर और अनर्थ तथा अर्थको जानकर, धर्मके अनुसार अर्थ (= हित) के अनुसार, आचरण करना चाहिये।' कौन है जो भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तारसे अव्याख्यात धर्मकी विस्तृत व्याख्या कर सके ?'

तब उन भिक्षुओंके मनमें यह हुआ—'यह जो आयुष्मान महाकात्यायन हैं, यह शास्ताके द्वारा प्रशंसित हैं, तथा विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा आदृत हैं। भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तारपूर्वक अव्याख्यात उपदेशको विस्तारपूर्वक समझानेमें आयुष्मान महाकात्यायन समर्थ हैं। हम जहाँ आयुष्मान महाकात्यायन हैं, वहाँ चलें। चलकर आयुष्मान महाकात्यायनसे इसकी विस्तृत व्याख्या पूछें। जैसे हमें आयुष्मान महाकात्यायन समझायेंगे, वैसे हम धारण कर लेंगे।

तब वे भिक्षु जहाँ आयुष्मान महाकात्यायन थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर आयुष्मान महाकात्यायनके साथ कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेमकी बातचीत कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओंने आयुष्मान महाकात्यायनसे कहा—

"आयुष्मान महाकात्यायन ! भगवानने हमें 'अधर्मको भी जानना चाहिये... आचरण करना चाहिये', संक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्या किये, धर्मोपदेश दिया और आसनसे उठ, विहारमें प्रविष्ट हो गये।

"आयुष्मान! भगवानके चले जानेके थोड़ी देर बाद हमारे मनमें यह हुआ—भगवानने हमें 'अधर्मको भी जानना चाहिये . . . . आचरण करना चाहिये', संक्षेपमें बिना विस्तृत व्याख्या किये, धर्मोपदेश दिया और आसनसे उठ विहार चले गये। कौन है जो भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तारसे अव्याख्यात धर्मकी विस्तृत व्याख्या कर सके?

"आयुष्मान! तब हमारे मनमें हुआ—'यह जो आयुष्मान महाकात्यायन हैं, यह शास्ताके द्वारा प्रशंसित हैं तथा विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा आदृत हैं। भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तृत रूपसे अव्याख्यात उपदेशको विस्तारपूर्वक समझानेमें आयुष्मान महाकात्यायन समर्थ हैं। हम जहाँ आयुष्मान महाकात्यायन हैं, वहाँ चलें। चलकर आयुष्मान महाकात्यायनसे इसकी विस्तृत व्याख्या पूछें। जैसे हमें आयुष्मान महाकात्यायन समझायेंगे, वैसे हम धारण करेंगे।' आयुष्मान महाकात्यायन! हमें समझायें।

"आयुष्मानो! जैसे कोई आदमी हो, उसे 'सार' की तलाश हो, 'सार' की खोज हो, वह 'सार'का पर्यन्वेषण करता हो; वह 'सारवान' महान वृक्ष के खड़े रहते, उसके मूल और स्कन्धको छोड़, उसकी शाखाओं और पत्तोंमें 'सार' खोजता फिरे। इसी प्रकार आयुष्मानोंका शास्ताके उपस्थित रहते, हमसे यह जिज्ञासा प्रकट करता है। आयुष्मानो! वह भगवान जानते हुए जानते हैं, देखते हुए देखते हैं, वे चक्षुमान हैं, वे ज्ञानी हैं, वे धर्म-मूर्ति हैं, वे ब्रह्मस्वरूप हैं, वे वक्ता हैं, वे प्रवक्ता हैं, वे अर्थकी ओर ले जानेवाले हैं, वे अमृतके दाता हैं, वे धर्मस्वामी हैं, वे तथागत हैं। तुम्हारे लिये इसीका योग्य समय था कि तुम भगवानके पास जाकर ही इसका यथार्थ भाव पूछते। जैसा भगवान समझाते, वैसा ग्रहण करते।"

"आयुष्मान महाकात्यायन! निश्चयसे भगवान जानते हुए जानते हैं, देखते हुए देखते हैं; वे चक्षुमान हैं, वे ज्ञानी हैं, वे धर्म-मूर्ति हैं, वे ब्रह्मस्वरूप हैं, वे वक्ता हैं, वे प्रवक्ता हैं, वे अर्थकी ओर ले जानेवाले हैं, वे अमृतके दाता हैं, वे धर्मस्वामी हैं, वे तथागत हैं। यद्यपि हमारे लिये इसीका योग्य समय था कि हम भगवानके पास जाकर ही इसका यथार्थ भाव पूछते और जैसे भगवान समझाते, वैसे ही धारण करते; तो भी आयुष्मान महाकात्यायन शास्ताके द्वारा प्रशंसित हैं तथा विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा आदृत हैं। भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तार रूपसे अव्याख्यात उपदेशको विस्तारपूर्वक समझानेमें आयुष्मान महाकात्यायन समर्थ है। आयुष्मान महाकात्यायन! इसे सरल करके समझावें।"

"तो आयुष्मानो! सुनो। अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"आयुष्मान! बहुत अच्छा" कह, उन भिक्षुओंने आयुष्मान महाकात्यायनको प्रतिवचन दिया। आयुष्मान महाकात्यायनने यह कहा—

"आयुष्मानो! यह जो भगवान संक्षेपमें बिना विस्तृत व्याख्या किये, आसनसे उठ, विहारमें प्रविष्ट हो गये कि 'भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये........ अर्थ (=हित) के अनुसार आचरण करना चाहिये;' सो आयुष्मानो! अधर्म क्या है, धर्म क्या है? अनर्थ क्या है, अर्थ क्या है?

"आयुष्मानो! प्राणी-हिंसा करना अधर्म है; प्राणी-हिंसासे विरत रहना धर्म है; प्राणी-हिंसाके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; प्राणी-हिंसासे विरत रहनेके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो! चोरी करना अधर्म है; चोरीसे विरत रहना धर्म है; चोरीके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं; यह अनर्थ है; चोरीसे विरत रहनेके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो! काम-भोगों सम्बन्धी मिथ्याचार अधर्म है; काम-भोगों सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत रहना धर्म है; काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहनेके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो! झूठ बोलना अधर्म है; झूठ बोलनेसे विरत रहना धर्म है; झूठ बोलनेके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं; यह अनर्थ है; झूठ बोलनेसे विरत रहनेके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो! चुगली खाना अधर्म है; चुगली खानेसे विरत रहना धर्म है; चुगली खानेके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं; यह अनर्थ है; चुगली खानेसे विरत रहनेसे जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो! कठोर बोलना अधर्म है; कठोर बोलनेसे विरत रहना धर्म है; कठोर बोलनेके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; कठोर बोलनेसे विरत रहनेके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो! व्यर्थ बोलना अधर्म है; व्यर्थ बोलनेसे विरत रहना धर्म है; व्यर्थ बोलनेके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उन्त्पन्न होते हैं, यह अनर्थ हैं; व्यर्थ बोलनेसे विरत रहनेके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो ! लोभ अधर्म है; लोभसे विरत रहना धर्म है; लोभके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; लोभसे विरत रहनेके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो ! व्यापाद अधर्म है, अव्यापाद (= मैत्री) धर्म है; व्यापादके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; व्यापादसे विरत रहनेके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो ! मिथ्या दृष्टि अधर्म है, सम्यक दृष्टि धर्म है; मिथ्या दृष्टिके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक दृष्टिके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"आयुष्मानो ! यह जो भगवान तुम्हें संक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्या किये, उपदेश दे, आसनसे उठ, विहारमें प्रविष्ट हो गये कि 'भिक्षुओ, अधर्म को भी जानना चाहिये .... आचरण करना चाहिये'; आयुष्मानो ! मैं उस भगवानके द्वारा, संक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्याके दिये गये उपदेशका इस प्रकार विस्तृत अर्थ जानता हूँ। आयुष्मानो ! यदि इच्छा हो तो तुम भगवानके पास जाकर भी यह बात पूछ सकते हो, जैसे भगवान तुम्हें समझायें, वैसे धारण करना।"

"आयुष्मान ! बहुत अच्छा" कह वे भिक्षु आयुष्मान महाकात्यायनके भाषणका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, आसनसे उठकर, जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको प्रणाम कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवानको यह कहा—

"भगवान ! यह जो संक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्याके, उपदेश देनेके अनन्तर, आप उठकर विहार चले गये कि भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये .... आचरण करना चाहिये; तो भन्ते ! आपके चले जानेके थोड़ी ही देर बाद हमारे मनमें यह हुआ—"भगवानने हमें 'अधर्मको जानना चाहिये .... आचरण करना चाहिये' संक्षेपमें, बिना विस्तृत व्याख्या किये, धर्मोपदेश दिया और आसनसे उठ विहार चले गये। कौन है, जो भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तारसे अव्याख्यात धर्मकी विस्तृत व्याख्या कर सके ?

"भन्ते ! तब हमारे मनमें यह हुआ—यह जो आयुष्मान महाकात्यायन हैं, यह शास्ताके द्वारा प्रशंसित हैं तथा विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा आदृत हैं। भगवानके इस संक्षिप्त, विस्तृत रूपसे अव्याख्यात उपदेशको विस्तारपूर्वक समझानेमें आयुष्मान महाकात्यायन समर्थ हैं। हम जहाँ आयुष्मान महाकात्यायन हैं, वहाँ चलें। चलकर

आयुष्मान महाकात्यायनसे इसकी विस्तृत व्याख्या पूछें। जैसे हमें आयुष्मान महाकात्यायन समझायेंगे, वैसे धारण करेंगे।'

"भन्ते! तब हम जहाँ आयुष्मान कात्यायन थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर आयुष्मान महाकात्यायनसे यह बात पूछी। भन्ते! आयुष्मान महाकात्यायनने हमें इस तरह, इन पदोंसे, इन व्यंजनोंसे समझाया।"

"भिक्षुओ, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। भिक्षुओ, महाकात्यायन पण्डित है। भिक्षुओ, महाकात्यायन महाप्रज्ञ है। भिक्षुओ, यदि तुम मेरे पास भी आकर यही बात पूछते, तो मैं भी इसी प्रकार समझाता, जैसे महाकात्यायनने समझाया है। यही इसका अर्थ है। इसी प्रकार इसे ग्रहण करो।"

७. ततियअधम्मसुत्त

"भिक्षुओ, अधर्मको भी जानना चाहिये, धर्मको भी जानना चाहिये; अनर्थको भी जानना चाहिये, अर्थको भी जानना चाहिये। अधर्म तथा धर्मको जानकर, और अनर्थ तथा अर्थको जानकर, धर्मके अनुसार अर्थ (=हित) के अनुसार आचरण करना चाहिये।

"भिक्षुओ, अधर्म क्या है, धर्म क्या है, अनर्थ क्या है, अर्थ क्या है? भिक्षुओ, प्राणी-हिंसा करना अधर्म है; प्राणी-हिंसासे विरत रहना धर्म है; प्राणी-हिंसाके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; प्राणी-हिंसासे विरत रहनेके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।"

"भिक्षुओ, चोरी करना अधर्म है; चोरी करनेसे विरत रहना धर्म है ..... भिक्षुओ, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार अधर्म है; काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरति धर्म है .... भिक्षुओ, झूठ बोलना अधर्म है, झूठ बोलनेसे विरति धर्म है .... भिक्षुओ, चुगली खाना अधर्म है, चुगली खानेसे विरत रहना धर्म है ...... भिक्षुओ, कठोर बोलना अधर्म है, कठोर बोलनेसे विरत रहना धर्म है ...... भिक्षुओ, व्यर्थ बातचीत अधर्म है, व्यर्थ बातचीतसे विरत रहना धर्म है ..... भिक्षुओ, लोभ अधर्म है, लोभसे विरत रहना धर्म है .... भिक्षुओ, व्यापाद (=द्वेष) अधर्म है, द्वेषसे विरत रहना धर्म है ....

"भिक्षुओ, मिथ्या दृष्टि अधर्म है, सम्यक दृष्टि धर्म है; मिथ्या दृष्टिके कारण जो अनेक अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, यह अनर्थ है; सम्यक दृष्टिके कारण जो अनेक कुशल धर्मोंकी पूर्ति होती है, यह अर्थ है।

"भिक्षुओ, अधर्मकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये, तथा धर्मकी; अनर्थकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये तथा अर्थ (=हित) की। अधर्म और धर्मको जानकर, अनर्थ तथा अर्थको जानकर, धर्मानुसार तथा अर्थ (=हित) के अनुसार आचरण करना चाहिये,' यह जो कहा, यह इसी आशयसे कहा गया।

८. कम्मनिदानसुत्त

भिक्षुओ ! मैं प्राणी-हिंसाको तीन प्रकारकी कहता हूँ—लोभसे उत्पन्न होनेवाली, द्वेषसे उत्पन्न होनेवाली तथा मोह (=मूढ़ता) से उत्पन्न होनेवाली।

भिक्षुओ ! मैं चोरी भी तीन प्रकारकी कहता हूँ—लोभसे उत्पन्न होनेवाली, द्वेषसे उत्पन्न होनेवाली तथा मोह (=मूढ़ता) से उत्पन्न होनेवाली।

भिक्षुओ ! मैं काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार भी तीन प्रकारका कहता हूँ—लोभसे उत्पन्न होनेवाला, द्वेषसे उत्पन्न होनेवाला तथा मोह (=मूढ़ता) से उत्पन्न होनेवाला।

भिक्षुओ, मैं झूठ भी तीन प्रकारका कहता हूँ—लोभसे उत्पन्न होनेवाला, द्वेषसे उत्पन्न होनेवाला तथा मोहसे उत्पन्न होनेवाला।

भिक्षुओ, मैं चुगली खाना भी तीन प्रकारका कहता हूँ—लोभसे उत्पन्न, द्वेषसे उत्पन्न तथा मोहसे उत्पन्न।

भिक्षुओ, मैं कठोर बोलना भी तीन प्रकारका कहता हूँ—लोभसे उत्पन्न, द्वेषसे उत्पन्न तथा मोहसे उत्पन्न।

भिक्षुओ, मैं व्यर्थ बोलना भी तीन प्रकारका कहता हूँ—लोभसे उत्पन्न, द्वेषसे उत्पन्न तथा मोहसे उत्पन्न।

भिक्षुओ, मैं अभिध्या (=लोभ ?) भी तीन प्रकारकी कहता हूँ—लोभसे उत्पन्न, द्वेषसे उत्पन्न तथा मोहसे उत्पन्न।

भिक्षुओ, मैं व्यापाद (=द्वेष) भी तीन प्रकारका कहता हूँ—लोभसे उत्पन्न, द्वेषसे उत्पन्न तथा मोहसे उत्पन्न।

भिक्षुओ, मैं मिथ्या दृष्टि भी तीन प्रकारकी कहता हूँ—लोभसे उत्पन्न द्वेषसे उत्पन्न, तथा मोहसे उत्पन्न। भिक्षुओ, लोभ कर्म-निदानसे उत्पन्न होता है द्वेष कर्म-निदानसे उत्पन्न होता है, मोह कर्म-निदानसे उत्पन्न होता है। लोभका क्षय होनेसे कर्म-निदानका क्षय हो जाता है। द्वेषका क्षय होनेसे कर्म-निदानका क्षय हो जाता है। मोहका क्षय होनेसे कर्म-निदानका क्षय हो जाता है।

९. परिक्कमनसुत्त

भिक्षुओ, इस धर्ममें प्रति-कर्मके लिये स्थान है; यह धर्म बिना प्रति-कर्मके नहीं है। भिक्षुओ, यह धर्म सप्रति-कर्म कैसे है? यह धर्म बिना प्रति-कर्मके कैसे नहीं है।? भिक्षुओ, प्राणी-हिंसाका प्राणी-हिंसासे विरत रहना प्रति-कर्म होता है। चोरी करनेका चोरी करनेसे विरत रहना प्रति-कर्म होता है। काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचारका काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत रहना प्रति-कर्म होता है। भिक्षुओ, झूठ बोलनेका झूठ बोलनेसे विरत रहना प्रति-कर्म होता है। भिक्षुओ, चुगल-खोरीका चुगल खोरीसे विरत रहना प्रति-कर्म है। कठोर बोलनेका कठोर बोलनेसे विरत रहना प्रति-कर्म होता है। व्यर्थ बोलनेका व्यर्थ बोलनेसे विरत रहना प्रति-कर्म होता है। भिक्षुओ, जो अभिध्या (= लोभ ?) से युक्त है, उसका लोभसे विरत रहना प्रति-कर्म होता है, भिक्षुओ, जो व्यापाद (= क्रोध) से युक्त है, उसका व्यापादसे विरत रहना प्रति-कर्म है। जो मिथ्या दृष्टि है, उसका मिथ्या दृष्टिसे विरत रहना प्रति-कर्म है। भिक्षुओ, इस धर्ममें प्रति-कर्मके लिए स्थान है; यह धर्म बिना प्रति-कर्मके नहीं है।

१०. चुन्दसुत्त

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान चुन्द कर्मारपुत्रके आम्रवनमें, पावा (नगरी) में विहार करते थे। तब चुन्द कर्मारपुत्र जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे चुन्द कर्मारपुत्रको भगवानने यह कहा—

"चुन्द! तुझे किसकी पवित्रतामें (= शुचि-भाव) अच्छे लगते हैं?"

"भन्ते! ब्राह्मण पश्चिमकी ओर देखनेवाले (?) कमण्डल धारण करने-वाले, शेवालकी माला धारण करनेवाले (?), अग्नि-सेवी, पानीमें उतरनेवाले अपने शुचि-भावको प्रकट करते हैं। मुझे उनके शुचि-भाव पसन्द है।"

"चुन्द! पश्चिमकी ओर देखनेवाले (?) कमण्डल धारण करनेवाले शेवालकी माला धारण करनेवाले (?), अग्नि-सेवी, पानीमें उतरनेवाले ब्राह्मण किस प्रकार अपनी पवित्रताओंका प्रचार करते हैं?"

"भन्ते! पश्चिमकी ओर देखनेवाले (?) कमण्डल धारण करनेवाले, शेवालकी माला धारण करनेवाले (?), अग्नि-सेवी, पानीमें उतरनेवाले ब्राह्मण अपने श्रावकोंका इस प्रकार शिक्षण करते हैं—हे पुरुष! इधर आ, सुन। तू समयसे उठकर चारपाई पर बैठे ही बैठे पृथ्वीका स्पर्श किया कर। यदि पृथ्वीका स्पर्श न करे, तो गीले

गोबरका स्पर्श किया कर। यदि गीले गोबरका स्पर्श न करे तो हरी घासका स्पर्श किया कर। यदि हरी घासका स्पर्श न करे तो अग्नि-परिचर्या किया कर। यदि अग्नि परिचर्या न करे तो हाथ जोड़कर सूर्यको नमस्कार किया कर। यदि हाथ जोड़कर सूर्यको नमस्कार न करे तो दिनमें तीन बार पानीमें उतरकर (स्नान किया कर)। भन्ते! पश्चिमकी ओर देखनेवाले (?) कमण्डल धारण करनेवाले, शेवालकी माला धारण करनेवाले (?) अग्नि-सेवी, पानीमें उतरनेवाले ब्राह्मण इस प्रकार अपनी पवित्रताओंका प्रचार करते हैं। मुझे उनकी पवित्रताएँ अच्छी लगती हैं।"

"चुन्द! पश्चिमकी ओर देखनेवाले (?) कमण्डल धारण करनेवाले, शेवालकी माला धारण करनेवाले अग्नि-सेवी, पानीमें उतरनेवाले ब्राह्मण दूसरी तरहसे अपनी "पवित्रताओं" को प्रकट करते हैं; लेकिन आर्य-विनय (=बुद्ध-शासन) में दूसरी तरहसे शुचिता होती है।"

"भन्ते! आर्य-विनय (=बुद्ध-शासन) में शुचिता कैसे होती है? भन्ते! अच्छा हो कि आप मुझे वैसे धर्मोपदेश दें, जैसे आर्य-विनय (=बुद्ध-शासन) में शुचिता होती है?"

"तो चुन्द! सुन। अच्छी तरह मनमें धारण कर। कहता हूँ।"

"भन्ते! अच्छा" कह चुन्द कर्मारपुत्रने भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने यह कहा—

"चुन्द! तीन प्रकारसे शरीरसे अशुचिता होती है; चार प्रकारसे वाणीसे अशुचिता होती है; तीन प्रकारसे मनसे अशुचिता होती है।

"चुन्द! तीन प्रकारकी शरीरकी अशुचिता कैसी होती है?

"चुन्द! एक आदमी प्राणी-हिंसा करनेवाला होता है, लोभी, रक्त-पाणि, हत्या करने—मार डालनेमें लगा हुआ, प्राणियोंके प्रति सर्वथा निर्दयी।

"वह चोरी करनेवाला होता है। जो पराया माल होता है, चाहे ग्राममें हो, चाहे जंगलमें, वह उसकी चोरी करनेवाला होता है।

"वह काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करनेवाला होता है। वह किसी स्त्रीसे भी भोग करता है, चाहे वह उसकी अपनी माताके घरमें हो, पिताके घरमें हो, माता-पिताके घरमें हो, भाईके घरमें हो, बहिनके घरमें हो, रिश्तेदारोंके घरमें हो, गोत्रवालोंके घरमें हो, धर्मकी लड़की हो, किसीसे विवाह हो गया हो, दासी हो, और तो और जो गलेमें माला डाले नाचनेवाली हो। चुन्द! इस प्रकार तीन तरहसे शरीरकी अशुचिता होती है।

"चुन्द! वाणीकी चार प्रकारकी" अशुचिता क्या है? चुन्द! एक आदमी झूठ बोलनेवाला होता है। वह सभामें, परिषदमें, भाई-बिरादरीमें, पंचायतमें, वा राज-सभामें, किसी भी जगह जाता है। वहाँ उससे गवाही पूछी जाती है कि 'जो जानते हो, उसे ठीक-ठीक कहो। वह नहीं जानते हुए भी कहता है कि जानता हूँ। जानते हुए भी कहता है कि नहीं जानता हूँ। वह नहीं देखते हुए कहता है कि देखता हूँ, देखता हुआ कहता है कि नहीं देखता हूँ। वह अपने लिये या परायेके लिये या किसी भी लौकिक वस्तुके लिए जान-बूझकर झूठ बोलनेवाला होता है।

"वह चुगली खानेवाला होता है। वह यहाँकी बात सुनकर वहाँ कहनेवाला होता है कि यहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाये; वहाँकी बात सुनकर यहाँ कहता है कि वहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाये। वह मिले हुओंमें भेद उत्पन्न करता है, जिनमें भेद है, उसे और बढ़ाता है। वह ऐसी वाणी बोलता है जिससे लोग पृथक-पृथक रहें।" उसे लोगोंका पृथक-पृथक रहना ही अच्छा लगता है, प्रिय लगता है। वह लोगोंके पृथक-पृथक रहनेमें ही आनन्दित होता है।

"वह कठोर बोलनेवाला होता है। वह ऐसी वाणी बोलनेवाला होता है, जो असंयत होती है, जो कर्कश होती है, जो दूसरोंको कड़ुवी लगनेवाली होती है, जो अपशब्द-भरी होती है, जो क्रोध-भरी होती है, जो अनेकाग्रता बढ़ानेवाली होती है।

वह व्यर्थ बोलनेवाला होता है। वह ऐसी वाणी बोलनेवाला होता है, जो समयानुकूल न हो, जो यथार्थ न हो, जो अनर्थकर हो, जो धर्मके विरुद्ध हो, जो विनयके विरुद्ध हो, जो संग्रह करने लायक न हो, जो तर्कानुकूल न हो, जिसका कोई ओर-छोर न हो तथा जो अहितकर हो। चुन्द! इस प्रकार चार तरहसे वाणीकी अशुचिता होती है।

"चुन्द! मनकी तीन प्रकारकी अशुचिता कैसे होती है? चुन्द! एक आदमी लोभी होता है। जो दूसरेका धन है, जो दूसरेकी वस्तु है, उसे हथियाना चाहता है—'पराई वस्तु मेरी हो जाये।'

"वह द्वेषयुक्त होता है, दुष्ट मन संकल्पोंवाला। वह सोचता है—ये प्राणी मारे जायें, बाँधे जायें, छिन्न-भिन्न हो जायें, विनाश को प्राप्त हो जायें अथवा न रहें।

"वह मिथ्या दृष्टिवाला होता है, उलटी दृष्टिवाला। वह समझता है दान (का फल) नहीं है, यज्ञ (का फल) नहीं है, होम (का फल) नहीं है, अच्छे-बुरे कर्मोंका फल नहीं है, यह लोक नहीं है, परलोक नहीं है, न माता है, न पिता है, न

ओपपातिक प्राणी होते हैं[1], न लोकमें ऐसे श्रमण-ब्राह्मण होते हैं, जो सम्यक ज्ञान प्राप्त हैं, जिनका आचरण सम्यक है और जो इस लोक तथा परलोकको स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्रकट करते हैं। चुन्द ! इस तरह मनकी तीन प्रकारकी अशुचिता होती है।

चुन्द ! ये दस अकुशल-कर्म हैं। चुन्द ! जो इन दस अकुशल कर्मोंसे युक्त है, वह समयसे उठ, शय्यापर बैठे-बैठे यदि पृथ्वीका स्पर्श करता है, तो भी 'अपवित्र' ही होता है; पृथ्वीका स्पर्श नहीं करता है, तो भी 'अपवित्र' ही होता है।

"वह यदि गीले गोबरका स्पर्श करता है, तो भी 'अपवित्र' ही होता है; गीले गोबरका स्पर्श नहीं करता, तो भी 'अपवित्र' ही होता है।

"वह यदि हरी घासका स्पर्श करता है, तो भी 'अपवित्र' ही होता है; हरी घासका स्पर्श नहीं करता, तो भी 'अपवित्र' ही होता है।

"वह यदि अग्निकी परिचर्या करता है, तो भी 'अपवित्र' ही होता है; अग्निकी परिचर्या (=सेवा) नहीं करता, तो भी 'अपवित्र' ही होता है।

"वह यदि हाथ जोड़कर सूर्यको नमस्कार करता है, तो भी 'अपवित्र' ही होता है; हाथ जोड़कर सूर्यको नमस्कार नहीं करता, तो भी 'अपवित्र' ही होता है।

"वह यदि दिनमें तीन बार भी पानीमें उतरता है, तो भी 'अपवित्र' ही होता है; यदि दिनमें तीन बार पानीमें नहीं उतरता, तो भी 'अपवित्र' ही होता है। ऐसा किसलिये ? चुन्द ! ये अकुशल-कर्म 'अपवित्र' हैं, 'अपवित्र' बनानेवाले हैं।

"चुन्द ! इन दस अकुशल कर्मोंसे युक्त होनेके परिणाम-स्वरूप 'नरक' में जाना दिखाई देता है, पशु योनिमें उत्पन्न होना भी दिखाई देता है, 'प्रेत' होकर उत्पन्न होना भी दिखाई देता है, अथवा कोई दूसरी भी दुर्गति।

"चुन्द ! तीन प्रकारसे शरीरसे शुचिता होती है; चार प्रकारसे वाणीसे शुचिता होती है; तीन प्रकारसे मनसे शुचिता होती है।

चुन्द ! तीन प्रकारकी शरीरकी शुचिता कैसी होती है ?

"चुन्द ! एक आदमी जीव-हिंसाको छोड़ जीव-हिंसासे दूर रहता है। वह दण्डका प्रयोग नहीं करता, शस्त्रका प्रयोग नहीं करता, लज्जाशील, दयावान, सभी प्राणियोंपर अनुकम्पा करनेवाला होता है।

"वह आदमी चोरी करना छोड़, चोरी करनेसे दूर रहता है। बिना चोरी किये जो प्राप्त होता है, केवल उसीको ग्रहण कर पवित्र जीवन व्यतीत करता

---

१. माता-पिताके बिना उत्पन्न होनेवाले प्राणी।

है। जो पराया माल है, चाहे ग्राममें हो, चाहे जंगलमें, वह उसकी चोरी नहीं करता।

"वह आदमी काम-भोग सम्बन्धी जो मिथ्याचार है, उसे छोड़, काम-भोगके मिथ्याचारसे दूर रहता है। वह किसी ऐसी स्त्रीसे भोग नहीं करता, जो उसकी अपनी माताके घरमें हो, पिताके घरमें हो, माता-पिताके घरमें हो, भाईके घरमें हो, बहिनके घरमें हो, रिश्तेदारोंके घरमें हो, गोत्रवालोंके घरमें हो, धर्मकी लड़की हो, जिसका किसीसे विवाह हो गया हो, जो दासी हो, और तो और जो गलेमें माला डाले नाचनेवाली हो। चुन्द ! इस तरह तीन प्रकारसे शरीरसे शुचिता होती है।

"चुन्द ! वाणीकी चार प्रकारकी शुचिता क्या है ? चुन्द ! एक आदमी झूठ बोलना छोड़, झूठ बोलनेसे दूर रह, सत्य बोलनेवाला, सच्चा, लोकमें यथार्थवादी होता है। वह सभामें, परिषदमें, भाई-बिरादरीमें, पंचायतमें, वा राजसभामें, किसी भी जगह जाता है, वहाँ उससे गवाही पूछी जाती है कि 'जो जानते हो, उसे ठीक-ठीक कहो।' वह यदि नहीं जानता है, तो कहता है कि 'नहीं जानता हूँ', यदि जानता है तो कहता है कि "जानता हूँ।" जिस बातको नहीं देखता है, उसे कहता है कि नहीं देखता हुँ, जिसे देखता है, उसे कहता है कि देखता हूँ। इस प्रकार न वह अपने लिए, न किसी दूसरेके लिये, न किसी लौकिक पदार्थके ही लिये जान-बूझकर झूठ बोलता है।

"वह चुगली खाना छोड़, चुगली खानेसे दूर रह, यहाँकी बात सुनकर वहाँ नहीं कहता कि यहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाये; वहाँकी बात सुनकर यहाँ नहीं कहता कि यहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाये। वह एक दूसरेसे पृथक-पृथक होनेवालोंको मिलाता है, मिले हुओंको पृथक नहीं होने देता। वह ऐसी वाणी बोलता है जिससे लोग इकट्ठे रहें, मिल जुलकर रहें।

"वह कठोर वाणी छोड़, कठोर शब्दोंसे दूर रह, ऐसी वाणी बोलता है जो कानोंको सुख देनेवाली, प्रेमभरी, हृदयमें पैठ जानेवाली, सभ्य, बहुत जनोंको प्रिय लगनेवाली।

"वह फजूल बोलना छोड़, फजूल बोलनेसे दूर रह, ऐसी वाणी बोलता है जो समयानुकूल हो, यथार्थ हो, बेमतलब न हो, धर्मानुकूल हो, नियमानुकूल हो। वह ऐसी वाणी बोलता है, जो संग्रह करने लायक हो, जो तर्कानुकूल हो, जिसका कोई ओर-छोर हो तथा जो हितकर हो। चुन्द ! इस तरह वाणीकी चार प्रकारकी 'शुचिता' होती है।

"चुन्द ! मनकी तीन प्रकारकी 'शुचिता' कैसी होती है ? 'चुन्द ! एक आदमी निर्लोभी होता है। जो दूसरेका धन है, जो दूसरेकी वस्तु है, वह उसे हथियाना नहीं चाहता कि 'पराई वस्तु मेरी हो जाये।'

"वह निर्द्वेष होता है, उसके मनके संकल्प स्वच्छ होते हैं। वह सोचता है— 'ये प्राणी अवैर हों, व्यापाद-रहित हों, दुख-रहित हों तथा अपने आपको सुखी रखें।"

"वह सम्यक दृष्टिवाला होता है, ऋजु दृष्टिवाला। वह समझता है दान (का फल) है, यज्ञ (का फल) है, होम (का फल) है, अच्छे बुरे कर्मोंका फल है, यह लोक है, परलोक है, माता है, पिता है, ओपपातिक प्राणी[1] होते हैं। लोकमें ऐसे श्रमण-ब्राह्मण होते हैं, जो सम्यक ज्ञान प्राप्त हैं, जिनका आचरण सम्यक होता है और जो इस लोक तथा परलोकको स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्रकट करते हैं। चुन्द ! इस तरह मनकी तीन प्रकारकी 'शुचिता' होती है।

"चुन्द ! ये दस कुशल-कर्म हैं। चुन्द ! जो इन दस कुशल-कर्मोंसे युक्त है, वह समयपर उठ, शय्यापर बैठे-बैठे, यदि पृथ्वीका स्पर्श करता है, तो भी 'पवित्र' ही होता है, पृथ्वीका स्पर्श नहीं करता है, तो भी 'पवित्र' ही होता है।

"वह यदि गीले गोबरका स्पर्श करता है, तो भी 'पवित्र' ही होता है, गीले गोबरका स्पर्श नहीं करता है, तो भी 'पवित्र' ही होता है।

"वह यदि हरी घासका स्पर्श करता है, तो भी 'पवित्र' ही होता है; हरी घासका स्पर्श नहीं करता तो भी 'पवित्र' ही होता है।

"वह यदि अग्निकी परिचर्या करता है, तो भी 'पवित्र' ही होता है; अग्निकी परिचर्या नहीं करता, तो भी 'पवित्र' ही होता है।

"वह यदि हाथ जोड़कर सूर्यको नमस्कार करता है, तो भी 'पवित्र' ही होता है; हाथ जोड़कर सूर्यको नमस्कार नहीं करता, तो भी 'पवित्र' ही होता है।

"वह यदि दिनमें तीन बार पानीमें उतरता है, तो भी 'पवित्र' ही होता है; यदि दिनमें तीन बार पानीमें नहीं उतरता है, तो भी 'पवित्र' ही होता है। यह किसलिए ? चुन्द ! ये दस कुशल-कर्म 'पवित्र' हैं, 'पवित्र' बनानेवाले हैं।

"चुन्द ! इन दस कुशल-कर्मोंसे युक्त होनेके परिणाम स्वरूप देव-योनिमें जन्म ग्रहण करना भी दिखाई देता है, मनुष्य योनिमें जन्म ग्रहण करना भी दिखाई देता है, अथवा अन्य भी जो सुगतियाँ हैं, (उनकी प्राप्ति)।"

---

१. बिना माता-पिताके पैदा होनेवाले।

ऐसा कहनेपर चुन्द कर्मार-पुत्रने भगवानसे निवेदन किया—"बहुत सुन्दर भन्ते! ....आजसे प्राण रहने तक भन्ते भगवान! मुझे अपना शरणागत उपासक समझें।"

११. जाणुस्सोणिसुत्त

उस समय जाणु श्रोणि ब्राह्मण जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवानके साथ कुशल-क्षेम की बातचीत की। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेपर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जाणु श्रोणि ब्राह्मणने भगवानसे पूछा--

"हे गौतम! हम ब्राह्मण हैं। हम दान देते हैं। 'श्राद्ध' करते हैं--'यह दान हमारे रिश्तेदार, हमारे रक्त-सम्बन्धी प्रेतोंको मिले, इसका वे उपभोग करें।'

"हे गौतम! क्या वह दान रिश्तेदार रक्त-सम्बन्धी प्रेतोंको मिलता है? क्या वे इस दानका उपभोग करते हैं?"

"ब्राह्मण! यदि वह (मिलनेके) स्थानपर हों, तो मिलता है, नहीं हो तो नहीं मिलता है।"

"हे गौतम! (मिलनेका) स्थान कौन-सा है? (न मिलनेका) स्थान कौन-सा है?"

"ब्राह्मण! एक आदमी हिंसा करनेवाला होता है, चोरी करनेवाला होता है, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करनेवाला होता है, झूठ बोलनेवाला होता है चुगली खानेवाला होता है, कठोर बोलनेवाला होता है, व्यर्थ बोलनेवाला होता है लोभी होता है, क्रोधी होता है तथा मिथ्या दृष्टिवाला होता है। वह शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरकमें पैदा होता है। 'नरक' में रहनेवाले प्राणियोंका जो आहार है, उससे उसका गुजारा चलता है, उसीसे वह वहाँ (जीवित) रहता है। ब्राह्मण! यह 'नरक' भी वह स्थान है, जहाँ रहनेवालेको वह 'दान' नहीं मिलता है।

"ब्राह्मण! एक आदमी हिंसा करनेवाला होता है.....मिथ्या दृष्टिवाला होता है। वह शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर पशु योनिमें उत्पन्न होता है। पशुओंका जो आहार है, उससे उसका गुजारा चलता है, उसीसे वह वहाँ (जीवित) रहता है। ब्राह्मण! यह पशु-योनि भी वह स्थान है, जहाँ रहनेवालेको वह 'दान' नहीं मिलता है।

"ब्राह्मण! एक आदमी प्राणी-हिंसासे विरत होता है, चोरीसे विरत होता है, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत होता है, झूठसे विरत होता है, चुगलखोरीसे

विरत होता है, कठोर वाणीसे विरत होता है, व्यर्थ बोलनेसे विरत होता है, निर्लोभी होता है, अक्रोधी होता है, सम्यक दृष्टिवाला होता है। वह शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर मनुष्य-योनिमें पैदा होता है। मनुष्योंका जो आहार है, उससे उसका गुजारा चलता है, उसीसे वह वहाँ (जीवित) रहता है। ब्राह्मण! यह मनुष्य-योनि भी वह स्थान है, जहाँ रहनेवालेको वह 'दान' नहीं मिलता है।

"ब्राह्मण! एक आदमी प्राणी हिंसासे विरत होता है. . . .सम्यक दृष्टि-वाला होता है। वह शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर देव-योनिमें उत्पन्न होता है। देवताओंका जो आहार होता है, उससे उसका गुजारा चलता है, उसीसे वह वहाँ (जीवित) रहता है। ब्राह्मण! यह देव-योनि भी वह स्थान है, जहाँ रहनेवालेको वह 'दान' नहीं मिलता है।

"ब्राह्मण! एक आदमी प्राणी-हिंसा करता है. . . . मिथ्या दृष्टिवाला होता है। वह शरीर छूटनेपर मरनेके अनन्तर 'प्रेत' होकर उत्पन्न होता है। प्रेतोंका जो आहार होता है, उससे उसका गुजारा चलता है, उससे वह वहाँ (जीवित) रहता है और उसके यार-दोस्त तथा रिश्तेदार रक्त-सम्बन्धी जो कुछ यहाँ से भेजते हैं, उससे उसका गुजारा चलता है, उससे वह वहाँ (जीवित) रहता है। ब्राह्मण! यह प्रेत-योनि वह स्थान है जहाँ रहनेवालेको वह दान मिलता है।"

"हे गौतम! यदि वह रिश्तेदार रक्त सम्बन्धी प्रेत वहाँ उत्पन्न नहीं हुआ होता है, तो उस 'दान' को कौन ग्रहण करता है?

"ब्राह्मण! दूसरे भी उसके रिश्तेदार रक्त सम्बन्धी 'प्रेत' वहाँ उत्पन्न हुए रहते हैं, वे उस 'दान' को ग्रहण करते हैं।"

"हे गौतम! यदि वह रिश्तेदार रक्त सम्बन्धी वहाँ उत्पन्न नहीं हुआ होता, तथा दूसरे भी रिशतेदार रक्त-सम्बन्धी वहाँ उत्पन्न हुए नहीं रहते, तो उस 'दान' को कौन ग्रहण करता है?"

ब्राह्मण! इसके लिए कोई स्थान नहीं है, इसकी कुछ गुंजायश नहीं है कि इतने दीर्घकालके बीतने पर भी वह स्थान रिश्तेदार रक्त सम्बन्धी प्रेतोंसे खाली रहे और दायकोंका श्रम निष्फल हो।"

"हे गौतम! आप जहाँ प्रेतोंको प्राप्ति नहीं होती, ऐसा स्थान रहनेपर भी दान देनेको कहते हैं।"

"ब्राह्मण! जहाँ प्रेतोंको प्राप्ति नहीं होती, ऐसा स्थान रहनेपर भी 'दान' देनेको कहते हैं?"

"ब्राह्मण! एक आदमी प्राणी हिंसा करता है, चोरी करता है, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करता है, झूठ बोलता है, चुगलखोर होता है, कठोर बोलनेवाला होता है, व्यर्थ बोलनेवाला होता है, लोभी होता है, क्रोधी होता है, मिथ्या दृष्टिवाला होता है। वह श्रमण या ब्राह्मणका दाता होता है—अन्न, पान, वस्त्र, दान, माला गन्ध विलेपन, शयनस्थान तथा प्रदीपका सामान देनेवाला। वह शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर हाथीकी योनिमें पैदा होता है। उसे वहाँ अन्न, पान, मालाएँ तथा नाना प्रकारके अलंकार मिलते हैं।

"ब्राह्मण! जो यह प्राणी हिंसा करता है, चोरी करता है, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करता है, झूठ बोलता है, चुगली खाता है, कठोर बोलता है, व्यर्थ बोलता है, लोभी होता है, द्वेषी होता है तथा मिथ्या दृष्टिवाला होता है; वह इसी कारणसे हाथीकी योनिमें पैदा होता है। लेकिन वह जो श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला-गन्ध-विलेपन, शयनासन तथा प्रदीपका सामान देता है, उसके फल स्वरूप उसे वहाँ हाथीकी योनिमें अन्न, पान, माला तथा नाना प्रकारके अलंकार प्राप्त होते हैं।

"ब्राह्मण! एक आदमी प्राणी हिंसा करनेवाला होता है....मिथ्या दृष्टि-वाला होता है। वह श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला-गन्ध-विलेपन, शयनासन तथा प्रदीपका सामान देनेवाला होता है। वह शरीर छूटनेपर मरनेके अनन्तर घोड़ेकी योनिमें पैदा होता है.........बैलोंकी योनिमें पैदा होता है......कुत्तोंकी योनिमें पैदा होता है। वह वहाँ अन्न, पान, माला तथा नाना विध अलंकारोंका लाभी होता है।

"ब्राह्मण! जो यह प्राणी हिंसा करता है....मिथ्या दृष्टिवाला होता है; वह इसी कारण से कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होता है। लेकिन वह जो श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला-गन्ध-विलेपन शयनासन तथा प्रदीपका सामान देता है उसके फलस्वरूप वह अन्न, पान, माला तथा नाना अलंकारोंका लाभी होता है।

"ब्राह्मण! एक आदमी प्राणी हिंसासे विरत होता है........सम्यक दृष्टि होता है। वह श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला-गन्ध-विलेपन, शयनासन तथा प्रदीपके सामानका दाता होता है। वह शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर मनुष्य-योनिमें उत्पन्न होता है। उसे वहाँ पाँचों इन्द्रियोंके मानुषी भोग प्राप्त होते हैं।

"ब्राह्मण! जो यह प्राणी हिंसासे विरत होता है....सम्यक दृष्टिवाला होता है; वह इसी कारणसे शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर मनुष्य-योनिमें उत्पन्न होता है। लेकिन वह जो श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला-गन्ध-विलेपन, शयनासन तथा प्रदीपका सामान देता है, उसके फल स्वरूप वह पाँचों इन्द्रियोंके मानुषी भोग प्राप्त करता है।

"ब्राह्मण! एक आदमी प्राणी हिंसासे विरत होता है...सम्यक दृष्टि-वाला होता है। वह श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गन्ध-विलेपन, शयनासन तथा प्रदीपके सामानका दान करता है। वह शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर देव-योनिमें उत्पन्न होता है। उसे पाँचों इन्द्रियोंके मानुषी भोग प्राप्त होते हैं।

"ब्राह्मण! जो यह प्राणी हिंसासे विरत होता है....सम्यक दृष्टिवाला होता है; वह इसी कारणसे शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर देव-योनिमें उत्पन्न होता है। लेकिन, वह जो श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला-गन्ध-विलेपन, शयनासन तथा प्रदीपका सामान देता है, उसके फल स्वरूप वह पाँचों दिव्य इन्द्रीय भोगोंको प्राप्त करता है।

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। हे गौतम! 'दान' देना योग्य है; 'श्राद्ध' करना योग्य है; जिससे दायकको भी फल मिलता है।"

"हे ब्राह्मण! ऐसा ही है। दायकको भी फल मिलता ही है।"

"हे गौतम! बहुत सुन्दर है.......आजसे प्राणान्त तक मुझे अपना शरणागत उपासक समझें।"

१८. साधु वर्ग

१. साधुसुत्त

"भिक्षुओ, 'साधु' तथा 'असाधु' की देशना करता हूँ। उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"भन्ते बहुत अच्छा", कह उन भिक्षुओंने प्रतिवचन दिया।

"भिक्षुओ, असाधु (=बुरा) क्या है? प्राणी-हिंसा, चोरी, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार, झूठ बोलना, चुगलखोरी, कठोर भाषण, व्यर्थ बोलना, लोभ, द्वेष, मिथ्या दृष्टि—भिक्षुओ, ये 'असाधु' कहलाते हैं।

"भिक्षुओ, साधु (=भला) क्या है? प्राणी हिंसासे विरत रहना, चोरीसे विरत रहना, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत रहना, झूठ बोलनेसे

विरत रहना, चुगलखोरीसे विरत रहना, कठोर भाषणसे विरत रहना, व्यर्थ बोलनेसे विरत रहना, लोभसे विरत रहना, द्वेषसे विरत रहना तथा सम्यक दृष्टि—भिक्षुओ, ये 'साधु' कहलाते हैं।

२. अरियधम्मसुत्त

"भिक्षुओ, आर्य-धर्म तथा अनार्य-धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो..... भिक्षुओ, अनार्य-धर्म क्या है? प्राणी-हिंसा...मिथ्या-दृष्टि—भिक्षुओ, यह अनार्य धर्म है।

"भिक्षुओ, आर्य-धर्म क्या है? प्राणी-हिंसासे विरति.... सम्यक-दृष्टि—भिक्षुओ, यह आर्य-धर्म है।

३. कुसलसुत्त

"भिक्षुओ, कुशल तथा अकुशलकी देशना करता हूँ। उसे सुनो।...... भिक्षुओ, 'अकुशल' क्या है? प्राणी-हिंसा......मिथ्या दृष्टि। भिक्षुओ, इसे 'अकुशल' कहते हैं।

"भिक्षुओ, 'कुशल' क्या है? प्राणी-हिंसासे विरति......सम्यक दृष्टि—भिक्षुओ, इसे 'कुशल' कहते हैं।

४. अत्थसुत्त

"भिक्षुओ, अर्थ (=हित) की तथा अनर्थकी देशना करता हूँ। उसे सुनो।.....भिक्षुओ, अनर्थ (=अनहित) क्या है? प्राणी-हिंसा.....मिथ्या दृष्टि, भिक्षुओ, इसे अनर्थ कहते हैं।

"भिक्षुओ, अर्थ (=हित) क्या है? प्राणी-हिंसासे विरति.....सम्यक दृष्टि, भिक्षुओ, इसे अर्थ कहते हैं।

५. धम्मसुत्त

"भिक्षुओ, धर्मकी तथा अधर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो।...... भिक्षुओ, अधर्म क्या है? प्राणी-हिंसा...मिथ्या दृष्टि, भिक्षुओ, इसे अधर्म कहते हैं।

भिक्षुओ, 'धर्म' क्या है? प्राणी-हिंसासे विरति......सम्यक दृष्टि, भिक्षुओ, इसे 'धर्म' कहते हैं।

६. आसवसुत्त

भिक्षुओ, 'सास्रव' तथा 'अनास्रव' की देशना करता हूँ। उसे सुनो..... भिक्षुओ, 'सास्रव धर्म' क्या है? प्राणी-हिंसा.......मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, यह सास्रव धर्म है।

भिक्षुओ, 'अनास्रव धर्म' क्या है? प्राणी-हिंसासे विरति......सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, यह अनास्रव धर्म हैं।

७. वज्जसुत्त

"भिक्षुओ, 'सदोष' तथा 'निर्दोष' की देशना करता हूँ। उसे सुनो..... भिक्षुओ, 'सदोष' धर्म क्या है? प्राणी-हिंसा......मिथ्या-दृष्टि—भिक्षुओ, यह 'सदोष' धर्म है।

"भिक्षुओ, 'निर्दोष' धर्म क्या है? प्राणी-हिंसासे विरति......सम्यक दृष्टि—भिक्षुओ, यह निर्दोष धर्म है।

८. तपनीयसुत्त

भिक्षुओ, मैं तपानेवाले तथा न तपानेवाले धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो।.......भिक्षुओ, तपानेवाला धर्म क्या है? प्राणी-हिंसा......मिथ्या दृष्टि—भिक्षुओ, यह तपानेवाला धर्म है।

भिक्षुओ, न तपानेवाला धर्म क्या है? प्राणी-हिंसासे विरति......सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, यह तपानेवाला धर्म नहीं हैं।

९. आचयगामिसुत्त

भिक्षुओ, आचयगामी (= जन्मान्तरका संग्रह करनेवाले) तथा अपचयगामी (= जन्मान्तरका संग्रह न करनेवाले) धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो......भिक्षुओ, आचयगामी धर्म कौन-सा है? प्राणी-हिंसा...मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, यह आचयगामी धर्म कहलाता है। भिक्षुओ, अपचयगामी धर्म किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसासे विरति....सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे अपचयगामी धर्म कहते हैं।

१०. दुक्खुद्रयसुत्त

भिक्षुओ, दुखदायक धर्मकी देशना करता हूँ तथा सुखदायक धर्मकी। उसे सुनो.........भिक्षुओ, दुखदायक धर्म कौन-सा है? प्राणी-हिंसा.......... मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, यह दुखदायक धर्म कहलाता है।

भिक्षुओ, सुखदायक धर्म किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसासे विरति.....सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, यह सुखदायक धर्म कहलाता है।

११. विपाकसुत्त

भिक्षुओ, दुख-विपाक धर्मकी देशना करता हूँ तथा सुख-विपाक धर्म की। उसे सुनो........भिक्षुओ, दुख-विपाक धर्म किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसा...... मिथ्यादृष्टि; भिक्षुओ, यह दुख-विपाक धर्म है।

भिक्षुओ, सुख-विपाक धर्म किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसासे विरति..... सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे सुख-विपाक धर्म कहते हैं।

१९. आर्य-मार्ग वर्ग

१. अरियमग्गसुत्त

भिक्षुओ, आर्य-मार्गकी देशना करता हूँ, तथा अनार्य-मार्गकी। उसे सुनो ....भिक्षुओ, अनार्य-मार्ग किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसा......मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, इसे अनार्य-मार्ग कहते हैं।

भिक्षुओ, आर्य-मार्ग किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसासे विरति......सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे आर्य-मार्ग कहते हैं।

२. कण्हमग्गसुत्त

भिक्षुओ, कृष्ण मार्गकी देशना करता हूँ तथा शुक्ल मार्ग की। उसे सुनो ....भिक्षुओ, कृष्ण-मार्ग क्या है? प्राणी-हिंसा.......मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, इसे कृष्ण मार्ग कहते हैं।

भिक्षुओ, शुक्ल मार्ग किसे कहते हैं? प्राणी हिंसासे विरति......सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे शुक्ल मार्ग कहते हैं।

३. सद्धम्मसुत्त

भिक्षुओ, असद्धर्मकी देशना करता हूँ तथा असद्धर्म की। उसे सुनो...... भिक्षुओ, असद्धर्म किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसा.......मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, इसे असद्धर्म कहते हैं।

भिक्षुओ, सद्धर्म किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसासे विरति......सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे सद्धर्म कहते हैं।

४. सप्पुरिसधम्मसुत्त

भिक्षुओ, सत्पुरुष-धर्मकी देशना करता हूँ, असत्पुरुष धर्म की। उसे सुनो... ....भिक्षुओ, असत्पुरुष धर्म किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसा.......मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, इसे असत्पुरुष धर्म कहते हैं। भिक्षुओ, सत्पुरुष धर्म किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसासे विरति.........सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे सत्पुरुष धर्म कहते हैं।

५. उप्पादेतब्बधम्मसुत्त

भिक्षुओ, अपनाने योग्य धर्म तथा न अपनाने योग्य धर्मकी देशना करता हू। उसे सुनो .... भिक्षुओ, न अपनाने योग्य धर्म कौन-सा है ? प्राणी-हिंसा ...... मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, इसे न अपनाने योग्य धर्म कहते हैं।

भिक्षुओ, अपनाने योग्य धर्म किसे कहते हैं ? प्राणी-हिंसासे विरति ..... सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे अपनाने योग्य धर्म कहते हैं।

६. आसेवितब्बधम्मसुत्त

भिक्षुओ, सेवन करने योग्य धर्म तथा सेवन न करने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो .... भिक्षुओ, सेवन न करने योग्य धर्म कौन-सा है ? प्राणी-हिंसा .... मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, इसे सेवन न करने योग्य धर्म कहते हैं।

भिक्षुओ, सेवन करने योग्य धर्म किसे कहते हैं ? प्राणी-हिंसासे विरति ..... सम्यक दृष्टि भिक्षुओ, इसे कहते हैं सेवन करने योग्य धर्म।

७. भावेतब्बधम्मसुत्त

भिक्षुओ, अभ्यास करने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ तथा अभ्यास न करने योग्य धर्मकी। उसे सुनो .... अभ्यास न करने योग्य धर्म कौन-सा है ? प्राणी-हिंसा .... मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, इसे अभ्यास न करने योग्य धर्म कहते हैं।

भिक्षुओ, अभ्यास करने योग्य धर्म किसे कहते हैं ? प्राणी-हिंसासे विरति... ....सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे अभ्यास करने योग्य धर्म कहते हैं।

८. बहुलीकातब्बसुत्त

भिक्षुओ, वृद्धि करने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ तथा वृद्धि न करने योग्य धर्मकी। उसे सुनो .... वृद्धि न करने योग्य धर्म कौन-सा है ? प्राणी-हिंसा .... मिथ्या-दृष्टि; भिक्षुओ, इसे कहते हैं, वृद्धि न करने योग्य धर्म।

भिक्षुओ, वृद्धि करने योग्य धर्म कौन-सा है ? प्राणी-हिंसासे विरति ..... सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे वृद्धि करने योग्य धर्म कहते हैं।

९. अनुस्सरितब्बसुत्त

भिक्षुओ, अनुस्मरण करने योग्य तथा अनुस्मरण न करने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो .... भिक्षुओ, अनुस्मरण न करने योग्य धर्म किसे कहते हैं ? प्राणी-हिंसा .... सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे अनुस्मरण न करने योग्य धर्म कहते हैं। भिक्षुओ, अनुस्मरण करने योग्य धर्म किसे कहते हैं ?

प्राणी-हिंसासे विरति ....सम्यक दृष्टि ; भिक्षुओ इसे अनुस्मरण करने योग्य धर्म कहते हैं।

१०. सच्छिकातब्बसुत्त

भिक्षुओ, साक्षात करने योग्य तथा साक्षात न करने योग्य धर्मकी देशना करता हूँ। उसे सुनो......भिक्षुओ, साक्षात न करने योग्य धर्म कौन-सा है? प्राणी-हिंसा.......मिथ्या दृष्टि; भिक्षुओ, इसे साक्षात न करने योग्य धर्म कहते हैं।

भिक्षुओ, साक्षात करने योग्य धर्म किसे कहते हैं? प्राणी-हिंसासे विरति ....सम्यक दृष्टि; भिक्षुओ, इसे साक्षात करने योग्य धर्म कहते हैं।

२०. अपर पुद्गल वर्ग

१–१२. नसेवितब्बादिसुत्तानि

भिक्षुओ, जिस व्यक्तिमें ये दस बातें (=धर्म) हों, उसकी संगति नहीं करनी चाहिए। कौन-सी दस बातें? वह प्राणी-हिंसा करनेवाला होता है, चोर होता है, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करनेवाला होता है, झूठ बोलनेवाला होता है, चुगली खानेवाला होता है, कठोर बोलनेवाला होता है, व्यर्थ बोलनेवाला होता है, लोभी होता है, क्रोधी होता है तथा मिथ्या दृष्टिवाला होता है, भिक्षुओ, जिस व्यक्तिमें ये दस बातें (=धर्म) हों, उसकी संगति नहीं करनी चाहिए।

भिक्षुओ, जिस व्यक्तिमें ये दस बातें (=धर्म) हों, उसकी संगति करनी चाहिए। कौन-सी दस बातें? वह प्राणी-हिंसा नहीं करता, चोरी नहीं करता, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, चुगली नहीं खाता, कठोर नहीं बोलता, व्यर्थ नहीं बोलता, लोभी नहीं होता, क्रोधी नहीं होता तथा सम्यक दृष्टिवाला होता है; भिक्षुओ, जिस व्यक्तिमें ये दस बातें (=धर्म) हों उसकी संगति करनी चाहिए।

"भिक्षुओ, जिस व्यक्तिमें ये दस बातें (=धर्म) हों, उसके साथ नहीं रहना चाहिए.........साथ रहना चाहिए.......उसकी सेवामें नहीं रहना चाहिये......सेवामें रहना चाहिए.......वह पूज्य नहीं होता......वह पूज्य होता है.....वह प्रशंसनीय नहीं होता.....वह प्रशंसनीय होता है......वह गौरवार्ह नहीं होता.....वह गौरवार्ह होता है....वह प्रतिष्ठित नहीं होता....वह प्रतिष्ठित होता है.......वह प्रसन्न करनेवाला नहीं होता........वह प्रसन्न करनेवाला होता है.....वह परिशुद्ध नहीं होता.....वह परिशुद्ध होता है.....

वह अहंकार-मुक्त नहीं होता......वह अहंकार-मुक्त होता है.......उसकी प्रज्ञा नहीं बढ़ती है........प्रज्ञा बढ़ती है.......”

“वह बहुत अपुण्य लाभ करता है..........बहुत पुण्य लाभ करता है। किन दस बातों (=धर्मों) से? वह हिंसासे विरत होता है, वह चोरीसे विरत होता है, वह काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत होता है, वह झूठसे विरत होता है, वह चुगलखोरीसे विरत होता है, वह कठोर बोलनेसे विरत होता है, वह बेकार बातचीतसे विरत होता है, वह निर्लोभी होता है, वह अक्रोधी होता है तथा वह सम्यक दृष्टिवाला होता है। भिक्षुओ, जिस व्यक्तिमें ये दस बातें होती हैं, वह बहुत पुण्य-लाभ करता है।

२१. करजकाय वर्ग

१. पठमनिरयसग्गसुत्त

भिक्षुओ, जिस आदमीमें ये दस बातें (=दुर्गुण) होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे नरकमें लाकर डाल दिया गया हो। कौन-सी दस बातें? भिक्षुओ, वह आदमी प्राणी-हिंसा करनेवाला होता है, लोभी, रक्त-पाणि, हत्या करने—मार डालनेमें लगा हुआ, प्राणियोंके प्रति सर्वथा निर्दयी।

“वह चोरी करनेवाला होता है। जो पराया माल होता है, चाहे ग्राममें हो, चाहे जंगलमें, वह उसकी चोरी करनेवाला होता है।

“वह काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करनेवाला होता है। वह किसी स्त्रीसे भी भोग करता है, चाहे वह उसकी अपनी माताके घरमें हो, पिताके घरमें हो, माता-पिताके घरमें हो, भाईके घरमें हो, बहनके घरमें हो, रिश्तेदारोंके घरमें हो, गोत्र वालोंके घरमें हो, धर्मकी लड़की हो, किसीसे विवाह हो गया हो, दासी हो, और तो और जो गलेमें माला डाले नाचनेवाली हो।”

“वह झूठ बोलनेवाला होता है। वह सभामें, परिषदमें, भाई-बिरादरीमें, पंचायतमें, वा राज-सभामें, किसी भी जगह जाता है। वहाँ उससे गवाही पूछी जाती है कि ‘जो जानते हो, उसे ठीक-ठीक कहो।’ वह नहीं जानते हुए भी कहता है कि जानता हूँ; जानते हुए भी कहता है कि नहीं जानता हूँ। वह नहीं देखते हुए कहता है कि देखता हूँ, देखता हुआ कहता है कि नहीं देखता हूँ। वह अपने लिए या परायेके लिए, या किसी भी लौकिक वस्तुके लिए जान-बूझकर झूठ बोलनेवाला होता है।

" वह चुगली खानेवाला होता है। वह यहाँकी बात सुनकर वहाँ कहनेवाला होता है कि यहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाए; वहाँकी बात सुनकर यहाँ कहता है कि वहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाए। वह मिले हुओंमें भेद उत्पन्न करता है; जिनमें भेद है, उसे और बढ़ाता है। वह ऐसी वाणी बोलता है, जिससे लोग पृथक-पृथक रहें। उसे लोगोंका पृथक-पृथक रहना ही अच्छा लगता है, प्रिय लगता है। वह लोगोंके पृथक-पृथक रहनेमें ही आनन्दित होता है।"

" वह कठोर बोलनेवाला होता है। वह ऐसी वाणी बोलनेवाला होता है, जो असंयत होती है, जो कर्कश होती है, जो दूसरोंको कटु लगनेवाली होती है, जो अपशब्द-भरी होती है, जो क्रोध-भरी होती है, जो अनेकाग्रता बढ़ानेवाली होती है।

" वह व्यर्थ बोलनेवाला होता है। वह ऐसी वाणी बोलनेवाला होता है, जो समयानुकूल न हो, जो यथार्थ न हो, जो अनर्थकर हो, जो धर्मके विरुद्ध हो, जो विनयके विरुद्ध हो, जो संग्रह करने लायक न हो, जो तर्कानुकूल न हो, जिसका कोई ओर-छोर न हो तथा जो अहितकर हो।

" वह आदमी लोभी होता है। जो दूसरेका धन है, जो दूसरेकी वस्तु है, उसे हथियाना चाहता है—पराई वस्तु, मेरी हो जाए।"

" वह द्वेष-युक्त होता है, दुष्ट मन संकल्पोंवाला। वह सोचता है—ये प्राणी मारे जाएँ, बाँधे जाएँ, छिन्न-भिन्न हो जाएँ, विनाशको प्राप्त हो जाएँ अथवा न रहें।

" वह मिथ्या दृष्टिवाला होता है, उलटी दृष्टिवाला। वह समझता है दान (का फल) नहीं है, यज्ञ (का फल) नहीं है, होम (का फल) नहीं है, अच्छे-बुरे कर्मोंका फल नहीं है, यह लोक नहीं है, परलोक नहीं है, न माता है, न पिता है, न ओपपातिक[1] प्राणी होते हैं, न लोकमें ऐसे श्रमण-ब्राह्मण होते हैं, जो सम्यक ज्ञान प्राप्त हैं, जिनका आचरण सम्यक है और जो इस लोक तथा परलोकको स्वयं जानकर, साक्षातकर, प्रकट करते हैं। भिक्षुओ, जिस आदमीमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे नरकमें लाकर डाल दिया गया हो।

" भिक्षुओ, जिस व्यक्तिमें ये दस गुण होते हैं, वह ऐसे ही होता है, जैसे स्वर्गमें लाकर डाल दिया गया हो। कौनसे दस गुण? भिक्षुओ, वह आदमी जीव-हिंसा को छोड़, जीव-हिंसासे दूर रहता है। वह दण्डका प्रयोग नहीं करता, शस्त्रका प्रयोग नहीं करता, लज्जाशील, दयावान, सभी प्राणियोंपर अनुकम्पा करनेवाला होता है।

---

१. माता-पिताके बिना उत्पन्न होनेवाले प्राणी।

"वह आदमी चोरी करना छोड़, चोरी करनेसे दूर रहता है। बिना चोरी किए जो प्राप्त होता है, केवल उसीको ग्रहण कर, पवित्र जीवन व्यतीत करता है। जो पराया माल है—चाहे ग्राममें हो, चाहे जंगलमें—वह उसकी चोरी नहीं करता।

"वह आदमी काम-भोग सम्बन्धी जो मिथ्याचार है, उसे छोड़ .....और तो और, जो गलेमें माला डाले नाचनेवाली हो।'

"वह झूठ बोलना छोड़, झूठ बोलनेसे दूर रह, सत्य बोलनेवाला, सच्चा, लोकमें यथार्थवादी होता है। वहसभा में, परिषदमें, भाई-बिरादरीमें, पंचायतमें, वा राज-सभामें, किसी भी जगह जाता है, वहाँ उससे गवाही पूछी जाती है कि 'जो जानते हो, उसे ठीक-ठीक कहो।' वह यदि नहीं जानता है, तो कहता है कि 'नहीं जानता हूँ।' यदि जानता है, तो कहता है कि 'जानता हूँ।' जिस बातको नहीं देखता है, उसे कहता है कि 'नहीं देखता हूँ;' जिसे देखता है, उसे कहता है कि 'देखता हूँ।' इस प्रकार न वह अपने लिए, न किसी दूसरेके लिए, न किसी लौकिक पदार्थके ही लिए जान बूझकर झूठ बोलता है।'

"वह चुगली खाना छोड़, चुगली खानेसे दूर रह, यहाँकी बात सुनकर वहाँ नहीं कहता कि यहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाए; वहाँकी बात सुनकर यहाँ नहीं कहता कि यहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाए। वह एक दूसरेसे पृथक-पृथक होनेवालोंको मिलाता है, मिले हुओंको पृथक नहीं होने देता। वह ऐसी वाणी बोलता है, जिससे लोग इकट्ठे रहें, मिल-जुलकर रहें।

"वह कठोर वाणी छोड़, कठोर शब्दोंसे दूर रह, ऐसी वाणी बोलता है जो कानोंको सुख देनेवाली, प्रेम-भरी, हृदयमें पैठ जानेवाली, सभ्य, बहुत जनोंको प्रिय लगने वाली।

"वह फजूल बोलना छोड़, फजूल बोलनेसे दूर रह, ऐसी वाणी बोलता है जो समयानुकूल हो, यथार्थ हो, बेमतलब न हो, धर्मानुकूल हो, नियमानुकूल हो। वह ऐसी वाणी बोलता है, जो संग्रह करने लायक हो, जो तर्कानुकूल हो, जिसका कोई ओर-छोर हो तथा जो हितकर हो।

"वह निर्लोभी होता है। जो दूसरेका धन है, जो दूसरेकी वस्तु है, वह उसे हथियाना नहीं चाहता कि 'परायी वस्तु मेरी हो जाए।'

"वह निर्द्वेष होता है, उसके मनके संकल्प-स्वच्छ होते हैं। वह सोचता है—'ये प्राणी अवैर हों, व्यापाद-रहित हों, दुख-रहित हों तथा अपने आपको सुखी रखें।'

"वह सम्यक दृष्टिवाला होता है, ऋजु दृष्टिवाला। वह समझता है कि दान (का फल) है, यज्ञ (का फल) है, होम (का फल) है, अच्छे-बुरे कर्मोंका फल है, यह लोक है, परलोक है, माता है, पिता है, ओपपातिक प्राणी होते हैं, लोकमें ऐसे श्रमण-ब्राह्मण होते हैं जो सम्यक ज्ञान प्राप्त होते हैं, जिनका आचरण सम्यक होता है और जो इस लोक तथा परलोकको स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्रकट करते हैं। भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें (= सद्गुण) होती हैं, वह ऐसे ही होता है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दिया गया हो।

२. दुतियनिरयसग्गसुत्त

भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें (= दुर्गुण) होती हैं, वह ऐसा ही होता है' जैसे नरकमें लाकर डाल दिया गया हो। कौन-सी दस बातें ? भिक्षुओ, वह आदमी प्राणी-हिंसा करनेवाला होता है, लोभी, रक्त-पाणि, हत्या करने—मार डालनेमें लगा हुआ, प्राणियोंके प्रति सर्वथा निर्दयी।

"वह चोरी करनेवाला होता है ....काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करनेवाला होता है ....झूठ बोलनेवाला होता है .....चुगली खानेवाला होता है ....कठोर बोलनेवाला होता है ....व्यर्थ बोलनेवाला होता है ....लोभी होता है........द्वेष-युक्त होता है ....मिथ्या दृष्टिवाला होता है, उल्टी दृष्टिवाला। वह समझता है, दान (का फल) नहीं है ......स्वयं जानकर, साक्षात कर प्रकट करते हैं। भिक्षुओ, जिस आदमीमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे नरकमें लाकर डाल दिया गया हो।

भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे स्वर्गमें लाकर डाल दिया गया हो। कौन-सी दस बातें ? वह आदमी जीव-हिंसाको छोड़-जीव-हिंसासे दूर रहता है। वह दण्डका प्रयोग नहीं करता, शस्त्रका प्रयोग नहीं करता, लज्जाशील, दयावान, सभी प्राणियोंपर अनुकम्पा करनेवाला होता है।

"वह आदमी चोरी करना छोड़, चोरी करनेसे दूर रहता है ......वह आदमी काम-भोग सम्बन्धी जो मिथ्याचार है, उसे छोड़, उससे विरत रहता है ..... झूठ बोलना छोड़, झूठ बोलनेसे विरत रहता है ....चुगली खाना छोड़, चुगली खानेसे विरत रहता है ......कठोर बोलना छोड़, कठोर बोलनेसे विरत रहता है ....व्यर्थ बोलना छोड़, व्यर्थ बोलनेसे विरत रहता है ......निर्लोभी होता है .....अक्रोधी होता .....सम्यक दृष्टिवाला होता है, ऋजु दृष्टिवाला। वह समझता है कि दान (का फल) है ....जो इस लोक तथा परलोकको स्वयं

जानकर, साक्षात कर प्रकट करते हैं। भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दिया गया हो।

३. मातुगामसुत्त

भिक्षुओ, जिस स्त्रीमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसी ही होती है, जैसे लाकर नरकमें डाल दी गई हो। कौन-सी दस बातें? वह प्राणी-हिंसा करनेवाली होती है ....चोरी करनेवाली होती है......काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करनेवाली होती है.......झूठ बोलनेवाली होती है......चुगली खानेवाली होती है.........कठोर बोलनेवाली होती है.........व्यर्थ बोलनेवाली होती है... ....लोभ करनेवाली होती है........द्वेष करनेवाली होती है......तथा मिथ्या दृष्टिवाली होती है........। भिक्षुओ, जिस स्त्रीमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसी ही होती है, जैसे लाकर नरकमें डाल दी गई हो।

"भिक्षुओ, जिस स्त्रीमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसी ही होती है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दी गई हो। कौन-सी दस बातें? वह प्राणी-हिंसासे विरत होती है........चोरीसे विरत होती है.......काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत होती है.......झूठ बोलनेसे विरत होती है......चुगलखोरीसे विरत होती है.......कठोर बोलनेसे विरत होती है.......व्यर्थ बोलनेसे विरत होती है ......निर्लोभी होती है.......द्वेषसे विरत होती है.......सम्यक दृष्टिवाली होती है..........। भिक्षुओ, जिस स्त्रीमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसी ही होती है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दी गई हो।

४. उपासिकासुत्त

भिक्षुओ, जिस उपासिकामें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसी ही होती है, जैसे लाकर नरकमें डाल दी गई हो। कौन-सी दस? वह प्राणी-हिंसा करनेवाली होती है.......मिथ्या दृष्टिवाली होती है.......। भिक्षुओ, जिस उपासिकामें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसी ही होती है, जैसे लाकर नरकमें डाल दी गई हो।

भिक्षुओ, जिस उपासिकामें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसी ही होती है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दी गई हो। कौन-सी दस? वह प्राणी-हिंसासे विरत होती है ....सम्यक दृष्टिवाली होती है। भिक्षुओ, जिस उपासिकामें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसी ही होती है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दी गई हो।

५. विसारदसुत्त

भिक्षुओ, जिस उपासिकामें ये दस बातें होती हैं, वह मूर्खा बन गृह-वास करती है। कौन-सी दस? वह प्राणी-हिंसा करती है......चोरी करती है......काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करती है.......झूठ बोलती है......चुगली खाती है.......कठोर बोलती है.......व्यर्थ बोलती है........लोभ करती है........द्वेष करती है.......मिथ्या दृष्टिवाली होती है.......। भिक्षुओ, जिस उपासिकामें ये दस बातें होती हैं, वह मूर्खा बन गृह-वास करती है।

भिक्षुओ, जिस उपासिकामें ये दस बातें होती हैं, वह पण्डिता बन गृह-वास करती है। कौन-सी दस? वह प्राणी-हिंसासे विरत होती है.......चोरीसे विरत होती है.......काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत होती है.......झूठसे विरत होती है.......चुगलखोरीसे विरत होती है.......कठोर बोलनेसे विरत होती है......व्यर्थ बोलनेसे विरत होती है.....लोभसे विरत होती है...द्वेषसे विरत होती है........सम्यक दृष्टिवाली होती है.......। भिक्षुओ, जिस उपासिकामें ये दस बातें होती हैं, वह पण्डिता बन गृह-वास करती है।

६. संसप्पनीयसुत्त

भिक्षुओ, मैं 'रेंगना' शीर्षकवाले धर्म-पर्य्यायकी देशना करता हूँ। सुनो, अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ। 'अच्छा भन्ते!', कह उन भिक्षुओंने भगवानको 'प्रतिवचन' दिया। भगवानने कहा—

भिक्षुओ, रेंगना (=संसप्पनीय) शीर्षकवाला धर्म-पर्य्याय (=प्रवचन) कौन-सा है? भिक्षुओ, प्राणी कर्माधीन हैं, वे कर्मके उत्तराधिकारी हैं, उनकी कर्मसे ही उत्पत्ति होती है, उनका कर्म ही बन्धु होता है, वे कर्मकी ही शरणमें रहते हैं; वे जैसा भी भला-बुरा कर्म करते हैं, उसके उत्तराधिकारी होते हैं।

"भिक्षुओ, एक आदमी प्राणी-हिंसा करनेवाला होता है, लोभी, रक्त-पाणि, हत्या करने—मार डालनेमें लगा हुआ, प्राणियोंके प्रति सर्वथा निर्दयी। वह शरीरसे रेंगता है, वाणीसे रेंगता है तथा मनसे रेंगता है। उसके शारीरिक कर्म टेढ़े होते हैं, वाणीके कर्म टेढ़े होते हैं, मनके कर्म टेढ़े होते हैं, गति टेढ़ी होती है, उत्पत्ति टेढ़ी होती है।

"भिक्षुओ, जिसकी चाल (=गति) टेढ़ी होती है, जिसकी उत्पत्ति टेढ़ी होती है, उसकी दो गतियोंमेंसे एक गति होती है—या तो सर्वांशमें दुख देनेवाली, नरकोत्पत्ति या टेढ़ी-मेढ़ी गतिसे चलनेवाले किसी पशुकी योनि। भिक्षुओ, टेढ़ी-

मेढ़ी गतिसे चलनेवाले पशुकी योनि कौन-सी होती है ? सर्प-योनि, बिच्छू-योनि, कानखजूरेकी योनि, नेवलेकी योनि, बिल्लीकी योनि, चूहेकी योनि, उल्लुओंकी योनि तथा दूसरी भी ऐसी योनियाँ जिनमें उत्पन्न होनेवाले प्राणी आदमियोंको देखकर रेंगते हैं। इस प्रकार भिक्षुओ, भूत (=प्राणी) से भूत (=प्राणी) की उत्पत्ति होती है। जो करता है, उसी कर्मके अनुसार वह उत्पन्न होता है। उत्पन्न होनेपर उसे वह स्पर्श स्पर्श करते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार मैं कहता हूँ कि प्राणी कर्मोंके उत्तराधिकारी हैं।

"भिक्षुओ, एक आदमी चोरी करता है......काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करता है.......झूठ बोलता है.......चुगलखोरी करता है.... कठोर बोलता है........व्यर्थ बोलता है.......लोभी होता है......द्वेषी होता है....मिथ्या दृष्टिवाला होता है, उल्टी दृष्टिवाला। वह समझता है, दान (का फल) नहीं है.......स्वयं जानकर, साक्षात कर प्रकट करते हैं। वह शरीरसे रेंगता है, वाणीसे रेंगता है, मनसे रेंगता है। उसके शारीरिक कर्म टेढ़े होते हैं, वाणीके कर्म टेढ़े होते हैं, मनके कर्म टेढ़े होते हैं, गति टेढ़ी होती है, उत्पत्ति टेढ़ी होती है।

"भिक्षुओ, जिसकी चाल (=गति) टेढ़ी होती है, जिसकी उत्पत्ति टेढ़ी होती है, उसकी दो गतियोंमेंसे एक गति होती है—या तो सर्वांशमें दुख देनेवाली नरकोत्पत्ति या टेढ़ी-मेढ़ी गतिसे चलनेवाले किसी पशुकी योनि। भिक्षुओ, टेढ़ी-मेढ़ी गतिसे चलनेवाले पशुकी योनि कौन-सी होती है ? सर्प-योनि, बिच्छू-योनि, कनखजूरेकी योनि, नेवलेकी योनि, बिल्लीकी योनि, चूहेकी योनि, उल्लूकी योनि तथा दूसरी भी ऐसी योनियाँ, जिनमें उत्पन्न होनेवाले प्राणी आदमियोंको देखकर रेंगते हैं। इस प्रकार भिक्षुओ, भूत (=प्राणी) से भूत (=प्राणी) की उत्पत्ति होती है। जो करता है, उसी कर्मके अनुसार वह उत्पन्न होता है। उत्पन्न होनेपर उसे वह स्पर्श स्पर्श करते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार मैं कहता हूँ कि प्राणी कर्मोंके उत्तराधिकारी हैं, उनकी कर्मसे ही उत्पत्ति होती है, उनका कर्म ही बन्धु होता है वे कर्मकी ही शरणमें रहते हैं; वे जैसा भी भला-बुरा कर्म करते हैं, उसके उत्तराधिकारी होते हैं।

"भिक्षुओ, एक आदमी जीव-हिंसाको छोड़, जीव-हिंसासे दूर रहता है। वह दण्डका प्रयोग नहीं करता, शस्त्रका प्रयोग नहीं करता, लज्जाशील, दयावान, सभी प्राणियोंपर अनुकम्पा करनेवाला होता है। वह न शरीरसे रेंगता है, न वाणीसे रेंगता है और न मनसे रेंगता है। उसके शारीरिक कर्म ऋजु (=सीधे) होते हैं, वाणीके कर्म ऋजु होते हैं, मनके कर्म ऋजु होते हैं, गति ऋजु होती है, उत्पत्ति ऋजु होती है।

भिक्षुओ, जिसकी चाल (= गति) ऋजु होती है, जिसकी उत्पत्ति ऋजु होती है, उसकी दो गतियोंमेंसे एक गति होती है—या तो सर्वांशमें सुख देनेवाले स्वर्ग लोककी प्राप्ति या उन ऊँचे कुलोंमें जन्म—क्षत्रिय महासारवान कुलोंमें, ब्राह्मण महासारवान कुलोंमें, वैश्य महासारवान कुलोंमें, ऐश्वर्यशाली कुलोंमें, महाधनवान कुलोंमें, महान सम्पत्तिशाली कुलोंमें, बहुत सोना चांदीवाले कुलोंमें, बहुत साधनवाले कुलोंमें तथा बहुत धन-धान्यवाले कुलोंमें। इस प्रकार भिक्षुओ, भूत (= प्राणी) से भूत (= प्राणी) की उत्पत्ति होती है। जो करता है, उसी कर्मके अनुसार वह उत्पन्न होता है। उत्पन्न होनेपर उसे वह स्पर्श स्पर्श करते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार मैं कहता हूँ कि प्राणी कर्मोंके उत्तराधिकारी हैं।

"भिक्षुओ, एक आदमी चोरीको छोड़, चोरीसे विरत हो जाता है ...... काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत होता है ..... झूठ बोलना छोड़, उससे विरत होता है .... चुगली खाना छोड़, उससे विरत होता है ...... कठोर वाणी छोड़ उससे विरत होता है .... व्यर्थ वाणी छोड़ उससे विरत होता है ...... निर्लोभी होता है ..... द्वेष-रहित होता है ...... सम्यक दृष्टिवाला होता है, ऋजु दृष्टिवाला। वह सोचता है—दान (का फल) है ......जो इस लोक तथा परलोकको स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्रकट करते हैं। वह न शरीरसे रेंगता है, न वाणीसे रेंगता है। न मनसे रेंगता है। उसके शारीरिक कर्म ऋजु होते हैं, वाणीके कर्म ऋजु होते हैं, मनके कर्म ऋजु होते हैं, गति ऋजु होती है, उत्पत्ति ऋजु होती है।

भिक्षुओ, जिसकी चाल (= गति) ऋजु होती है, जिसकी उत्पत्ति ऋजु होती है, उसकी दो गतियोंमेंसे एकमें उत्पत्ति होती है—या तो सर्वांशमें सुख देनेवाले स्वर्ग लोककी प्राप्ति या उन ऊँचे कुलोंमें जन्म—क्षत्रिय महासारवान कुलोंमें, ब्राह्मण महासारवान कुलोंमें, वैश्य महासारवान कुलोंमें, ऐश्वर्यशाली कुलोंमें, महा धनवान कुलोंमें, महान सम्पत्तिशाली कुलोंमें, बहुत सोना चाँदी वाले कुलोंमें, बहुत साधनवाले कुलोंमें तथा बहुत धन-धान्यवाले कुलोंमें। इस प्रकार भिक्षुओ, भूत (= प्राणी) से भूत (= प्राणी) की उत्पत्ति होती है। जो करता है, उसी कर्मके अनुसार वह उत्पन्न होता है। उत्पन्न होनेपर उसे वह स्पर्श स्पर्श करते हैं। इस प्रकार भिक्षुओ, मैं कहता हूँ कि प्राणी कर्मोंके उत्तराधिकारी हैं।

"भिक्षुओ, प्राणी कर्माधीन हैं, वे कर्मके उत्तराधिकारी हैं, उनकी कर्मसे ही उत्पत्ति होती है, उनका कर्म ही बन्धु हैं, वे कर्मकी ही शरणमें रहते हैं; वे जैसा भी भला-बुरा कर्म करते हैं, वे उसके उत्तराधिकारी होते हैं।

भिक्षुओ, यही है रेंगना (= संसप्पनीय) शीर्षकवाला धर्म-पर्य्याय।

७. पठमसंचेतनिकसुत्त

भिक्षुओ, जान-बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना उनका अन्त नहीं होता—मैं कहता हूँ। वह कर्म-फलका भोगना इसी जन्ममें हो सकता है अथवा अगले किसी जन्ममें। भिक्षुओ, जान-बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना दुखका अन्त नहीं होता—मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ, तीन कर्म शरीरके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है। चार कर्म वाणीके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है; तीन कर्म मनके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है।

भिक्षुओ, वे तीन कर्म जो शरीरके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है, कौन-से होते हैं?

"भिक्षुओ, एक आदमी प्राणी-हिंसा करनेवाला होता है, लोभी, रक्तपाणि, हत्या करने—मार डालनेमें लगा हुआ, प्राणियोंके प्रति सर्वथा निर्दयी।

"वह चोरी करनेवाला होता है। जो पराया माल होता है, चाहे ग्राममें हो चाहे जंगलमें हो, वह उसकी चोरी करनेवाला होता है।

"वह काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करनेवाला होता है। वह किसी स्त्रीसे भी भोग करता है ....और तो और जो गलेमें माला डाले नाचने वाली हो। भिक्षुओ, इस प्रकार ये तीन कर्म हैं, जो शरीरके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका दुख होता है।

"भिक्षुओ, वे चार कर्म जो वाणीके दोष होते है, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है, कौनसे होते हैं?

"भिक्षुओ, एक आदमी झूठ बोलनेवाला होता है। वह सभामें, परिषदमें, भाई-बिरादरीमें, पंचायतमें, वा राज-सभामें, किसी भी जगह जाता है। वहाँ उससे गवाही पूछी जाती है कि जो जानते हो, वह ठीक-ठीक कहो। वह नहीं जानते हुए भी कहता है कि जानता हूँ; जानते हुए भी कहता है कि नहीं जानता हूँ। वह नहीं देखते हुए कहता है कि देखता हूँ; देखता हुआ कहता है कि नहीं देखता हूँ। वह अपने लिए या परायेके लिए या किसी भी लौकिक वस्तुके लिए जान-बूझकर झूठ बोलनेवाला होता है।

"वह चुगली खानेवाला होता है। वह यहाँकी बात सुनकर वहाँ कहनेवाला होता है कि यहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाय; वहाँकी बात सुनकर यहाँ कहता है कि वहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाय। वह मिले हुओंमें भेद उत्पन्न करता है; जिनमें भेद है, उसे और बढ़ाता है। वह ऐसी वाणी बोलता है, जिससे लोग पृथक-पृथक रहें। उसे लोगोंका पृथक-पृथक रहना ही अच्छा लगता है, प्रिय लगता है। वह लोगोंके पृथक-पृथक रहनेमें ही आनन्दित होता है।

"वह कठोर बोलनेवाला होता है। वह ऐसी वाणी बोलनेवाला होता है, जो असंयत होती है, जो कर्कश होती है, जो दूसरोंको कड़ुवी लगनेवाली होती है, जो अपशब्द-भरी होती है, जो क्रोध-भरी होती है, जो अनेकाग्रता बढ़ानेवाली होती है।

"वह व्यर्थ बोलनेवाला होता है। वह ऐसी वाणी बोलनेवाला होता है, जो समयानुकूल न हो, जो यथार्थ न हो, जो अनर्थकर हो, जो धर्मके विरुद्ध हो, जो विनयके विरुद्ध हो, जो संग्रह करने लायक न हो, जो तर्कानुकूल न हो, जिसका कोई ओर-छोर न हो तथा जो अहितकर हो। भिक्षुओ, इस प्रकार, ये चार कर्म हैं, जो वाणीके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुख के देनेवाले होते हैं, तथा जिनका फल दुख होता है।

भिक्षुओ, वे तीन कर्म, जो मनके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है, कौन-से होते हैं?

"भिक्षुओ, एक आदमी लोभी होता है। जो दूसरेका धन होता है, जो दूसरेकी वस्तु है, उसे हथियाना चाहता है—'परायी वस्तु, मेरी हो जाए।'

"वह द्वेष-युक्त होता है, दुष्ट मन संकल्पोंवाला। वह सोचता है—ये प्राणी मारे जायें, बाँधे जायें, छिन्न-भिन्न हो जायें, विनाशको प्राप्त हो जायें अथवा न रहें।

"वह मिथ्या दृष्टिवाला होता है,उलटी दृष्टिवाला। वह समझता है कि दान (का फल) नहीं है,....स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्रकट करते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार, ये तीन कर्म हैं, जो मनके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है।

भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फल स्वरूप (जो शरीरके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरक लोकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ उन चार कर्मोंके फल स्वरूप (जो शरीरके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते

हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरकमें पैदा होते हैं। भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फलस्वरूप (जो मनके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुख देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरकमें उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओ, जैसे चौकोर मणिको यदि ऊपरकी ओर फेंका जाय, तो वह जिस किसी तरह भी गिरती है, सुप्रतिष्ठित होकर ही गिरती है। इसी प्रकार भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फल स्वरूप (जो शरीरके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है) प्राणी शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर, नरक लोकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ, उन चार कर्मोंके फलस्वरूप (जो शरीरके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है) प्राणी शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरकमें पैदा होते हैं। भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फलस्वरूप (जो मनके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है) प्राणी शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरकमें पैदा होते हैं।

भिक्षुओ, जान-बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना, उनका अन्त नहीं होता—मैं कहता हूँ। वह कर्मका फल भोगना, इसी जन्ममें हो सकता है अथवा अगले किसी जन्ममें। भिक्षुओ, जान-बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना दुखका अन्त नहीं होता—मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ, तीन कर्म शरीरके सद्गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है; चार कर्म वाणीके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है; तीन कर्म मनके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है।

भिक्षुओ, वे तीन कर्म जो शरीरके सद्गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है, कौन-से होते हैं ?

"भिक्षुओ, एक आदमी जीव-हिंसाको छोड़, जीव-हिंसासे दूर रहता है। वह दण्डका प्रयोग नहीं करता, शस्त्रका प्रयोग नहीं करता, लज्जाशील, दयावान, सभी प्राणियोंपर अनुकम्पा करनेवाला होता है........।

"वह आदमी चोरी करना छोड़, चोरी करनेसे दूर रहता है। जो पराया माल है—चाहे ग्राममें हो, चाहे जंगलमें—वह उसकी चोरी नहीं करता।

"वह आदमी काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारको छोड़........और तो और जो गलेमें माला डाले नाचनेवाली हो। भिक्षुओ, इस प्रकार, ये तीन कर्म होते हैं, जो शरीरके सद्गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है।

"भिक्षुओ, वे चार कर्म जो वाणीके सद्गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है, कौन-से होते हैं?

"भिक्षुओ, एक आदमी झूठ बोलना छोड़, झूठ बोलनेसे दूर रह, सत्य बोलनेवाला, सच्चा, लोकमें यथार्थवादी होता है। वह सभामें, परिषदमें, भाई-बिरादरीमें, पंचायतमें, वा राज-सभामें, किसी भी जगह जाता है, वहाँ उससे गवाही पूछी जाती है कि 'जो जानते हो, उसे ठीक-ठीक कहो।' वह यदि नहीं जानता है, तो कहता है कि 'नहीं जानता हूँ', यदि जानता है, तो कहता है कि 'जानता हूँ।' जिस बातको नहीं देखता है, उसे कहता है कि 'नहीं देखता हूँ'; जिसे देखता है, उसे कहता है कि 'देखता हूँ।' इस प्रकार न वह अपने लिए, न किसी दूसरेके लिए, न किसी लौकिक पदार्थके ही लिए, जान-बूझकर झूठ बोलता है।

"वह चुगली खाना छोड़, चुगली खानेसे दूर रह, यहाँकी बात सुनकर वहाँ नहीं कहता कि यहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाए; वहाँकी बात सुनकर यहाँ नहीं कहता कि यहाँके लोगोंमें झगड़ा हो जाए। वह एक दूसरेसे पृथक-पृथक होनेवालोंको मिलाता है, मिले हुओंको पृथक नहीं होने देता। वह ऐसी वाणी बोलता है, जिससे लोग इकट्ठे रहें, मिल जुलकर रहें।

"वह कठोर वाणी छोड़, कठोर शब्दोंसे दूर रह, ऐसी वाणी बोलता है, जो कानोंको सुख देनेवाली, प्रेम-भरी, हृदयमें पैठ जानेवाली, सभ्य, बहुत जनोंको प्रिय लगनेवाली होती है।

"वह फजूल बोलना छोड़, फजूल बोलनेसे दूर रह, ऐसी वाणी बोलता है, जो समयानुकूल हो, यथार्थ हो, बेमतलब न हो, धर्मानुकूल हो, नियमानुकूल हो। वह ऐसी वाणी बोलता है, जो संग्रह करने लायक हो, जो तर्कानुकूल हो, जिसका कोई ओर-छोर हो तथा जो हितकर हो। भिक्षुओ, इस प्रकार, ये चार कर्म होते हैं, जो वाणीके सद्गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं; जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है।

"भिक्षुओ, वे तीन कर्म, जो मनके सद्‌गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है, कौन-से होते हैं ?

भिक्षुओ, एक आदमी निर्लोभी होता है,। जो दूसरेका धन है, जो दूसरेकी वस्तु है, वह उसे हथियाना नहीं चाहता कि 'पराई वस्तु मेरी हो जाए।'

"वह निर्द्वेष होता है, उसके संकल्प स्वच्छ होते हैं। वह सोचता है—'ये प्राणी अवैर हों, व्यापाद-रहित हों, दुख-रहित हों तथा अपने आपको सुखी रखें।'

"वह सम्यक दृष्टिवाला होता है, ऋजु दृष्टिवाला। वह समझता है दान (का फल) है .....इस लोक तथा परलोकको स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्रकट करते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार, ये तीन कर्म होते हैं, जो मनके सद्‌गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं; जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है।

भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फलस्वरूप (जो शरीरके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर मरनेके अनन्तर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ, उन चार कर्मोंके फलस्वरूप (जो शरीरके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फलस्वरूप (जो मनके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओ, जैसे चौकोर मणिको यदि ऊपरकी ओर फेंका जाए, तो वह जिस किसी तरह भी गिरती है, सुप्रतिष्ठित होकर ही गिरती है। इसी प्रकार भिक्षुओ, इन तीन कर्मोंके फलस्वरूप (जो शरीरके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर मरनेके अनन्तर, स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ, उन चार कर्मोंके फलस्वरूप (जो वाणीके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर मरनेके अनन्तर, स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फलस्वरूप (जो मनके उत्पन्न होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओ, जान-बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना उनका अन्त नहीं होता—मैं कहता हूँ। वह कर्म-फलका भोगना इसी जन्ममें हो सकता है, अथवा अगले किसी जन्ममें। भिक्षुओ, जान-बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना दुखका अन्त नहीं होता—मैं कहता हूँ।

८. दुतियसंचेतनिकसुत्त

भिक्षुओ, जान-बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना, उनका अन्त नहीं होता—मैं कहता हूँ। वह कर्म-फलका भोगना इसी जन्ममें हो सकता है अथवा अगले किसी जन्ममें। भिक्षुओ, जान-बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना दुखका अन्त नहीं होता—मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ, तीन कर्म शरीरके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है; चार कर्म वाणीके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है; तीन कर्म मनके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है; तीन कर्म मनके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है।

भिक्षुओ, वे तीन कर्म जो शरीरके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है, कौन-से होते हैं? .... भिक्षुओ, इस प्रकार ये तीन कर्म हैं, जो शरीरके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है।

"भिक्षुओ, वे चार कर्म जो वाणीके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है, कौन-से होते हैं? .... भिक्षुओ, इस प्रकार ये चार कर्म हैं, जो वाणीके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतना से उत्पन्न होते हैं, जो दुख के देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है।

भिक्षुओ, वे तीन कर्म जो मनके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है, कौन-से होते हैं? .... भिक्षुओ, इस प्रकार, ये तीन कर्म हैं, जो मनके दोष होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है।

भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फलस्वरूप (जो शरीरके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरक लोकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ, उन चार कर्मोंके....... भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फलस्वरूप (जो मनके होते हैं, जो अकुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो दुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल दुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरकमें उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओ, जान बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना, उनका अन्त नहीं होता—मैं कहता हूँ। वह कर्म-फलका भोगना इसी जन्ममें हो सकता है, अथवा अगले किसी जन्ममें। भिक्षुओ, जान बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना दुखका अन्त नहीं होता—मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ, तीन कर्म शरीरके सद्‌गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है; चार कर्म वाणीके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है; तीन कर्म मनके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है।

"भिक्षुओ, वे तीन कर्म जो शरीरके सद्‌गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है, कौन-से होते हैं? ....भिक्षुओ, इस प्रकार ये तीन कर्म होते हैं, जो शरीरके सद्‌गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है।

"भिक्षुओ, वे चार कर्म जो वाणीके सद्‌गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है, कौन-से होते हैं? ......भिक्षुओ, इस प्रकार, ये चार कर्म होते हैं, जो वाणीके सद्‌गुण होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है।

"भिक्षुओ, वे तीन कर्म जो मनके सद्‌गुण होते हैं, जो कुशल-चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है, कौन-से होते हैं? ....भिक्षुओ, इस प्रकार ये तीन कर्म होते हैं, जो मनके सद्‌गुण फोते हैं, जो कुशल चेतनासे उन्त्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है।

"भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फलस्वरूप (जो शरीरके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है) प्राणी, शरीर छुटनेपर, मरनेके अनन्तर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ, उन चार कर्मोंके फलस्वरूप....... भिक्षुओ, उन तीन कर्मोंके फलस्वरूप (जो मनके होते हैं, जो कुशल चेतनासे उत्पन्न होते हैं, जो सुखके देनेवाले होते हैं तथा जिनका फल सुख होता है) प्राणी, शरीर छूटनेपर मरनेके अनन्तर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होते हैं..........

९. करजकायसुत्त

भिक्षुओ, जान-बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना, उनका अन्त नहीं होता——मैं कहता हूँ। वह कर्म-फलका भोगना इसी जन्ममें हो सकता है, अथवा अगले किसी जन्ममें। भिक्षुओ, जान बूझकर जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनको भोगे बिना दुखका अन्त नहीं होता——मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओ, जो आर्य-श्रावक लोभ-रहित होता है, व्यापाद-रहित होता है, मोह-रहित होता है , वह ज्ञानी, स्मृतिमान, एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशाको मैत्री-चित्तसे व्याप्त करता है। वह ऊपर, नीचे, बीचमें, सब दिशाओंमें, सर्वदा, सारेके सारे लोकको विपुल, महान, असीम, वैर-रहित, व्यापाद-रहित, मैत्री-चित्तसे व्याप्त कर विचरता है।

"वह जानता है——पहले मेरा चित्त सीमित था, (मैत्री) भावनासे अनभ्यस्त था; अब मेरा यह चित्त असीम है, (मैत्री–) भावनासे सम्यक् अभ्यस्त है। जो सीमित कर्म है, वह अब यहाँ शेष नहीं रहेगा, वह अब यहाँ टिका नहीं रहेगा।'

"भिक्षुओ, तो तुम क्या मानते हो, यदि वह बचपनसे ही आरम्भ करके मैत्री-भावना रूपी चित्त-विमुक्तिका अभ्यास करे, तब भी क्या वह पाप कर्म करेगा ?"

"भन्ते ! नहीं।"

"जो पाप-कर्म नहीं करेगा, वह भी क्या दुख भोगेगा ?"

"भन्ते ! जो पाप-कर्म नहीं करेगा, वह दुख कहाँसे भोगेगा ?"

"भिक्षुओ, स्त्री अथवा पुरुषके द्वारा यह मैत्री चित्त-विमुक्ति भावना की जानी चाहिए। कोई भी स्त्री या पुरुष इस शरीरको अपने साथ नहीं ले जाता। भिक्षुओ, मनुष्य (का अस्तित्व) चित्ताश्रित है। वह यह जानता है, 'इस तुच्छ शरीरसे पूर्व जन्ममें जो पाप-कर्म किया गया है, उस सबको यहीं भुगतना है। यह (कर्म) पीछा नहीं करेगा।' भिक्षुओ, यदि मैत्री चित्त-विमुक्तिकी इस प्रकार भावना की

जाए तो वह ऐसे आर्य-श्रावक भिक्षुके लिए जो इससे अधिक ऊँचा नहीं चढ़ सकता, अनागामिताका कारण होती है।

"वह एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशाको करुणा-युक्त चित्तसे........मुदिता-युक्त चित्तसे........उपेक्षा-युक्त चित्तसे व्याप्त करता है। वह ऊपर, नीचे, बीचमें, सब दिशाओंमें, सर्वदा, सारेके सारे लोकको विपुल, महान, असीम, वैर-रहित, व्यापाद-रहित उपेक्षा चित्तसे व्याप्त कर विचरता है।

"वह जानता है––पहले मेरा चित्त सीमित था, (उपेक्षा–) भावनासे अनभ्यस्त था; अब मेरा यह चित्त असीम है, (उपेक्षा–) भावनासे सम्यक अभ्यस्त है। जो सीमित कर्म है, वह अब यहाँ शेष नहीं रहेगा, वहाँ अब यहाँ टिका नहीं रहेगा।"

"भिक्षुओ, तो तुम क्या मानते हो, यदि वह बचपनसे ही आरम्भ करके (उपेक्षा–) भावना रूपी चित्त-विमुक्तिका अभ्यास करे, तब भी क्या वह पाप-कर्म करेगा ?"

"भन्ते ? नहीं।"

"जो पाप-कर्म नहीं करेगा, वह भी क्या दुख भोगेगा ?"

"भन्ते ! जो पाप कर्म नहीं करेगा, वह दुख कहाँ से भोगेगा ?"

"भिक्षुओ, स्त्री अथवा पुरुषके द्वारा यह उपेक्षा चित्त-विमुक्ति भावना की जानी चाहिए। कोई भी स्त्री या पुरुष इस शरीरको अपने साथ नहीं ले जाता। भिक्षुओ, मनुष्य (का अस्तित्व) चित्ताश्रित है। वह यह जानता है कि 'इस तुच्छ शरीरसे पूर्व जन्ममें जो पाप-कर्म किया गया है, उस सबको यहीं भुगतना है। यह (कर्म) पीछा नहीं करेगा।' भिक्षुओ, यदि उपेक्षा चित्त-विमुक्ति की इस प्रकार भावना की जाए तो वह ऐसे आर्य-श्रावक भिक्षुके लिए, जो इससे अधिक ऊँचा नहीं चढ़ सकता, अनागामिताका कारण होती है।

१०. अधम्मचरियासुत्त

उस समय एक ब्राह्मण जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवानसे कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेमकी बातचीत समाप्त होनेपर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए उस ब्राह्मणने भगवानसे कहा––

"हे गौतम ! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है कि कोई-कोई प्राणी, शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरक (लोक) में उत्पन्न होते हैं ?

"ब्राह्मण ! इसका हेतु है अधार्मिक आचरण, सदोष आचरण, जिससे कोई-कोई प्राणी शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरक (लोक) में उत्पन्न होते हैं।"

"हे गौतम ! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है कि कोई-कोई प्राणी, शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर स्वर्ग (लोक) में उत्पन्न होते हैं ?"

"ब्राह्मण ! इसका हेतु है धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरण, जिससे कोई-कोई प्राणी शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर स्वर्ग (लोक) में उत्पन्न होते हैं।"

"मैं आप भगवान गौतमके इस संक्षिप्त कथनका विस्तृत अर्थ नहीं जानता। हे गौतम ! अच्छा होगा कि आप मुझे इस प्रकार धर्मोपदेश करें कि मैं आपके इस संक्षिप्त कथनका विस्तृत अर्थ जान लूं।"

"तो ब्राह्मण ! सुन। अच्छी तरह मनमें धारण कर। कहता हूँ।"

"बहुत अच्छा" कह, उस ब्राह्मणने भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने यह कहा—

"ब्राह्मण ! शरीरसे तीन प्रकारसे अधार्मिक-आचरण, सदोष आचरण होता है; चार प्रकारसे वाणीसे अधार्मिक आचरण, सदोष आचरण होता है; तीन प्रकारसे मनसे अधार्मिक आचरण, सदोष आचरण होता है।"

"ब्राह्मण ! शरीरसे तीन प्रकारसे अधार्मिक आचरण, सदोष आचरण कैसे होता है ? ....ब्राह्मण ! इस प्रकार शरीरसे तीन प्रकारसे अधार्मिक-आचरण, सदोष-आचारण होता है।

"ब्राह्मण ! वाणीसे चार प्रकारसे अधार्मिक-आचरण, सदोष आचरण कैसे होता है ? ....ब्राह्मण ! इस प्रकार वाणीसे चार प्रकारसे अधार्मिक आचरण, सदोष आचरण होता है ?।

"ब्राह्मण ! मनसे तीन प्रकारसे अधार्मिक आचरण, सदोष आचरण कैसे होता है ? ....ब्राह्मण ! इस प्रकार मनसे तीन प्रकारसे अधार्मिक आचरण, सदोष आचरण होता है। हे ब्राह्मण ! इस प्रकार अधार्मिक आचरण, सदोष आचरणके हेतुसे कोई-कोई प्राणी, शरीर छोड़नेपर मरनेके अनन्तर, नरक (लोक) में उत्पन्न होते हैं।

"ब्राह्मण ! शरीरसे तीन प्रकारसे धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरण होता है; चार प्रकारसे वाणीसे धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरण होता है; तीन प्रकारसे मनसे धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरण होता है।

"ब्राह्मण ! शरीरसे तीन प्रकारसे धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरण कैसे होता है ? ....ब्राह्मण ! इस प्रकार शरीरसे तीन प्रकारसे धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरण होता है।

"ब्राह्मण ! वाणीसे चार प्रकारसे धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरण कैसे होता है ?........ब्राह्मण ! इस प्रकार वाणीसे चार प्रकारसे धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरण होता है ।

"ब्राह्मण ! मनसे तीन प्रकारसे धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरण कैसे होता है ?.........ब्राह्मण ! इस प्रकार मनसे तीन प्रकारसे धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरण होता है । हे ब्राह्मण ! इस प्रकार धार्मिक आचरण, निर्दोष आचरणके हेतुसे कोई-कोई प्राणी शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर स्वर्ग (लोक) में उत्पन्न होते हैं ।"

"हे गौतम ! बहुत सुन्दर। हे गौतम ! बहुत सुन्दर ! हे गौतम ! आजसे प्राण रहने तक आप मुझे अपना शरणागत उपासक समझें ।"

२२—श्रामण्य-वर्ग

भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसे ही होता है, जैसे लाकर नरकमें डाल दिया गया हो। कौन-सी दस बातें ? वह प्राणी-हिंसा करता है, चोरी करता है, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करता है, झूठ बोलता है, चुगली खाता है, कठोर बोलता है, व्यर्थ बोलता है, लोभी होता है, द्वेषी होता है तथा मिथ्या दृष्टि-वाला होता है । भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसे ही होता है, जैसे लाकर नरकमें डाल दिया गया हो।

भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दिया गया हो। कौन-सी दस बातें ? वह प्राणी-हिंसासे विरत होता है, चोरीसे विरत होता है, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत होता है, झूठ बोलनेसे विरत होता है, चुगली खानेसे विरत होता है, कठोर बोलनेसे विरत होता है, व्यर्थ बोलनेसे विरत होता है, लोभ-रहित होता है, द्वेष-रहित होता है तथा सम्यक दृष्टिवाला होता है । भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें होती हैं, वह ऐसे ही होता है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दिया गया हो।

भिक्षुओ, जिसमें ये बीस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे लाकर नरकमें डाल दिया गया हो। कौन-सी बीस बातें ? स्वयं प्राणी-हिंसा करनेवाला होता है तथा दूसरेको प्राणी हिंसाकी प्रेरणा देता है; स्वयं चोरी करनेवाला होता है तथा दूसरेको चोरी करनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करता है तथा दूसरेको काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारकी प्रेरणा देता है; स्वयं झूठ

बोलता है तथा दूसरेको झूठ बोलनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं चुगली खाता है तथा दूसरेको चुगली खानेकी प्रेरणा देता है; स्वयं कठोर बोलता है तथा दूसरेको कठोर बोलनेको प्रेरणा देता है; स्वयं व्यर्थ बोलता है तथा दूसरेको व्यर्थ बोलनेकी प्रेरणा देता है, स्वयं लोभी होता है तथा दूसरेको लोभी होनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं व्यापाद-युक्त होता है तथा दूसरेको द्वेष (—व्यापाद) के लिए प्रेरित करता है; स्वयं मिथ्या दृष्टिवाला होता है तथा दूसरेको मिथ्या दृष्टिकी ओर प्रेरित करता है। भिक्षुओ, जिसमें ये बीस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे लाकर नरकमें डाल दिया गया हो।

भिक्षुओ, जिसमें ये बीस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दिया गया हो। कौन-सी बीस बातें ? स्वयं प्राणी-हिंसासे विरत होता है तथा दूसरेको प्राणी-हिंसासे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं चोरीसे विरत होता है, तथा दूसरेको चोरीसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत होता है तथा दूसरेको काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं झूठ बोलनेसे विरत होता है तथा दूसरेको झूठ बोलनेसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं चुगलखोरीसे विरत होता है तथा दूसरेको चुगल-खोरीसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं कठोर बोलनेसे विरत रहता है तथा दूसरेको कठोर बोलनेसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं व्यर्थ बोलनेसे विरत रहता है तथा दूसरेको व्यर्थ बोलनेसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं लोभ-रहित होता है तथा दूसरेको लोभ-रहित होनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं द्वेष-रहित होता है तथा दूसरेको द्वेष-रहित रहनेकी प्रेरणा देता है; स्वयं सम्यक दृष्टिवाला होता है तथा दूसरेको सम्यक दृष्टिकी ओर प्रेरित करता है। भिक्षुओ, जिसमें ये बीस बातें होती हैं, वह ऐसे ही होता है जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दिया गया हो।

भिक्षुओ, जिसमें ये तीस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे लाकर नरकमें डाल दिया गया हो। कौन-सी तीस बातें ? स्वयं प्राणी-हिंसा करता है, दूसरेको प्राणी-हिंसाकी प्रेरणा देता है तथा प्राणी-हिंसाका समर्थन करता है; स्वयं चोरी करनेवाला होता है, दूसरेको चोरी करनेकी प्रेरणा देता है तथा चोरी करनेका समर्थन करता है; स्वयं-काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करनेवाला होता है, दूसरेको मिथ्या-चारके लिए प्रेरित करता है तथा मिथ्याचार का समर्थन करता है; स्वयं झूठ बोलने-वाला होता है, दूसरेको झूठ बोलनेकी प्रेरणा देता है तथा झूठ बोलनेका समर्थन करता है; स्वयं चुगली खानेवाला होता है, दूसरेको चुगली खानेकी प्रेरणा देता है तथा

चुगली खानेका समर्थन करता है; स्वयं कठोर बोलनेवाला होता है, दूसरेको कठोर बोलनेकी प्रेरणा देता है तथा कठोर बोलनेका समर्थन करता है; स्वयं व्यर्थ बोलनेवाला होता है, दूसरेको व्यर्थ बोलनेकी प्रेरणा देता है तथा व्यर्थ बोलनेका समर्थन करता है; स्वयं लोभी होता है, दूसरेको लोभके लिए प्रेरित करता है तथा लोभका समर्थन करता है; स्वयं द्वेषयुक्त होता है, दूसरेको द्वेषके लिए प्रेरित करता है तथा द्वेषका समर्थन करता है; स्वयं मिथ्या दृष्टिवाला होता है, दूसरेको मिथ्या दृष्टि होनेके लिए प्रेरित करता है तथा मिथ्या दृष्टिका समर्थन करता है। भिक्षुओ, जिसमें ये तीस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे लाकर नरकमें डाल डिया गया हो।

भिक्षुओ, जिसमें ये तीस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दिया गया हो। कौन-सी तीस बातें? स्वयं प्राणी-हिंसासे विरत होता है, दूसरेको प्राणी-हिंसासे विरत रहनेकी प्रेरणा करता है तथा प्राणी-हिंसासे विरत रहनेका समर्थन करता है; स्वयं चोरीसे विरत होता है, दूसरेको चोरी से विरत रहनेके लिए प्रेरित करता है तथा चोरीसे विरत रहनेका समर्थन करता है; स्वयं काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत रहता है, दूसरेको मिथ्याचारसे विरत रहनेकी प्रेरणा करता है तथा मिथ्याचारसे विरत रहनेका समर्थन करता है; स्वयं झूठ बोलनेसे विरत रहता है, दूसरेको झूठ बोलनेसे विरत रहनेकी प्रेरणा करता है तथा झूठ बोलनेसे विरत रहनेका समर्थन करता है; स्वयं चुगली खानेसे विरत रहता है, दूसरेको चुगली खानेसे विरत रहनेकी प्रेरणा करता है तथा चुगली खानेसे विरत रहनेका समर्थन करता है; स्वयं कठोर बोलनेसे विरत होता है, दूसरेको कठोर बोलनेसे विरत रहनेकी प्रेरणा करता है तथा कठोर बोलनेसे विरत रहनेका समर्थन करता है; स्वयं व्यर्थ बोलनेसे विरत होता है, दूसरेको व्यर्थ बोलनेसे विरत रहनेके लिए प्रेरित करता है तथा व्यर्थ बोलनेसे विरत रहनेका समर्थन करता है; स्वयं निर्लोभी होता है, दूसरेको लोभसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है तथा लोभसे विरत रहनेका समर्थन करता है; स्वयं द्वेष-रहित होता है, दूसरेको द्वेष-रहित रहनेके लिए प्रेरित करता है तथा द्वेष-रहित का समर्थन करता है; स्वयं सम्यक दृष्टिवाला होता है, दूसरेको सम्यक दृष्टिकी ओर प्रेरित करता है तथा सम्यक दृष्टिका समर्थन करता है। भिक्षुओ, जिसमें ये तीस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दिया गया हो।

भिक्षुओ, जिसमें ये चालीस बातें हों, वह ऐसा ही होता है जैसे लाकर नरकमें डाल दिया गया हो। कौन-सी चालीस बातें? स्वयं प्राणी-हिंसा करता है, दूसरेको प्राणी-हिंसाकी प्रेरणा देता है, प्राणी-हिंसाका समर्थन करता है तथा प्राणी-हिंसा का

गुणगान करता है। स्वयं चोरी करता है, चोरी करनेकी प्रेरणा देता है, चोरी करनेका समर्थन करता है तथा चोरी करनेका गुणगान करता है। स्वयं काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करता है, मिथ्याचारकी प्रेरणा देता है, मिथ्याचारका समर्थन करता है, मिथ्याचारका गुणगान करता है। स्वयं झूठ बोलता है, झूठ बोलनेकी प्रेरणा देता है, झूठ बोलनेका समर्थन करता है, झूठ बोलनेका गुणगान करता है। स्वयं चुगली खाता है, चुगली खानेकी प्रेरणा देता है, चुगली खानेका समर्थन करता है, चुगली खानेका गुणगान करता है; स्वयं कठोर बोलता है, कठोर बोलनेकी प्रेरणा देता है, कठोर बोलनेका समर्थन करता है, कठोर बोलनेका गुणगान करता है; स्वयं व्यर्थ बोलता है, व्यर्थ बोलनेकी प्रेरणा देता है, व्यर्थ बोलनेका समर्थन कराता है, व्यर्थ बोलनेका गुणगान करता है; स्वयं लोभी होता है, लोभी बननेकी प्रेरणा देता है, लोभी बननेका समर्थन करता है तथा लोभी बननेका गुणगान करता है; स्वयं द्वेषी होता है, द्वेष करनेकी प्रेरणा देता है, द्वेष करनेका समर्थन करता है, द्वेष करनेका गुणगान करता है; स्वयं मिथ्या-दृष्टिवाला होता है, मिथ्या-दृष्टिकी ओर प्रेरित करता है, मिथ्या-दृष्टि होनेका समर्थन करता है तथा मिथ्या-दृष्टि होनेका गुणगान करता है। भिक्षुओ, जिसमें ये चालीस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे लाकर नरकमें डाल दिया गया हो।

भिक्षुओ, जिसमें ये चालीस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है, जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दिया गया हो। कौन-सी चालीस? स्वयं प्राणी-हिंसासे विरत होता है, प्राणी-हिंसासे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है, प्राणी-हिंसासे विरत रहनेका समर्थन करता है तथा प्राणी-हिंसासे विरत रहनेका गुणगान करता है, स्वयं चोरीसे विरत रहता है, चोरीसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है, चोरीसे विरत रहनेका समर्थन करता है तथा चोरीसे विरत रहनेका गुणगान करता है; स्वयं काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचारसे विरत होता है, मिथ्याचारसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है, मिथ्याचारसे विरत रहनेका समर्थन करता है, मिथ्याचारसे विरत रहनेका गुणगान करता है; स्वयं झूठ बोलनेसे विरत रहता है, झूठ बोलनेसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है, झूठ बोलनेसे विरत रहनेका समर्थन करता है, झूठ बोलनेसे विरत रहनेका गुणगान करता है; स्वयं चुगली खानेसे विरत होता है, चुगली खानेसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है, चुगली खानेसे विरत रहनेका समर्थन करता है तथा चुगली खानेसे विरत रहनेका गुणगान करता है; स्वयं कठोर बोलनेसे विरत रहता है, कठोर बोलनेसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है, कठोर बोलनेसे विरत रहनेका समर्थन करता है तथा

कठोर बोलनेसे विरत रहनेका गुणगान करता है; स्वयं व्यर्थ बोलनेसे विरत रहता है, व्यर्थ बोलनेसे विरत रहनेकी प्रेरणा देता है, व्यर्थ बोलनेसे विरत रहनेका समर्थन करता है, तथा व्यर्थ बोलनेसे विरत रहनेका गुणगान करता है; स्वयं लोभ-रहित होता है, लोभ-रहित होनेकी प्रेरणा देता है, लोभ-रहित होनेका समर्थन करता है तथा लोभ-रहित होनेका गुणगान करता है; स्वयं द्वेष-रहित होता है, द्वेष-रहित होनेकी प्रेरणा देता है, द्वेष-रहित होनेका समर्थन करता है तथा द्वेष-रहित होनेका गुणगान करता है; स्वयं सम्यक दृष्टिवाला होता है, सम्यक दृष्टि होनेकी प्रेरणा देता है, सम्यक दृष्टि होनेका समर्थन करता है तथा सम्यक दृष्टि होनेका गुणगान करता है। भिक्षुओ, जिसमें ये चालीस बातें होती हैं, वह ऐसा ही होता है जैसे लाकर स्वर्गमें डाल दिया गया हो।

भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें होती हैं, उसकी जड़ खुदी हुई रहती है और वह मृतवत ही होता है....... उसकी जड़ खुदी हुई नहीं रहती है और वह मृतवत नहीं होता है...... भिक्षुओ, जिसमें ये बीस बातें...... भिक्षुओ, जिसमें ये तीस बातें........ भिक्षुओ, जिसमें ये चालीस बातें होती हैं........।"

"भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें होती हैं, उनमें से कोई-कोई शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरकमें पैदा होते हैं........कोई-कोई शरीर छूटनेपर मरनेके अनन्तर स्वर्गमें पैदा होते हैं...... भिक्षुओ, जिसमें ये बीस बातें..... भिक्षुओ, जिसमें ये तीस बातें.... भिक्षुओ, जिसमें य चालीस बातें होती हैं, उनमें से कोई-कोई शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर नरकमें पैदा होते हैं...... कोई-कोई शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर स्वर्गमें पदा होते हैं।

"भिक्षुओ, जिसमें ये दस बातें हों, उसे मूर्ख जानना चाहिए..... पण्डित जानना चाहिए....... भिक्षुओ, जिसमें ये बीस बातें हों..... जिसमें ये तीस बातें हों........जिसमें ये चालीस बातें हो, उसे भिक्षुओ, पण्डित जानना चाहिए।

२३. रागपेय्याल

"भिक्षुओ, रागकी पहचानके लिए दस बातों (= धर्मों) का अभ्यास करना चाहिए। कौन-सी दस बातोंका? अशुभ-संज्ञा, मरण-संज्ञा, आहार (= भोजन) के बारेमें प्रतिकूल (= घृणा) संज्ञा, समस्त लोकके प्रति अनासक्त-संज्ञा, अनित्य-संज्ञा, अनित्यके प्रति दुख-संज्ञा, दुखके प्रति अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, वैराग्य-संज्ञा, निरोध-संज्ञा। भिक्षुओ, रागकी पहचान के लिए इन दस बातों (= धर्मों) का अभ्यास करना चाहिए।

"भिक्षुओ, रागकी पहचानके लिए दस बातों (=धर्मों) का अभ्यास करना चाहिए। कौन-सी दस बातों का? अनित्य-संज्ञा, अनात्म-संज्ञा, आहार (=भोजन) के प्रति प्रतिकूल (=घृणा) की संज्ञा, समस्त लोकके प्रति अनासक्त-संज्ञा, अस्थि-संज्ञा, फूले हुए (मुर्दे) की संज्ञा, नीले पड़ गए (मुर्दे) की संज्ञा, पीप पड़ गए (मुर्दे) की संज्ञा, छिद्र हो गए (मुर्दे) की संज्ञा तथा सूज गए की संज्ञा। भिक्षुओ, रागके क्षयके लिए इन दस बातों (=धर्मों) का अभ्यास करना चाहिए।

भिक्षुओ, रागकी पहचानके लिए दस बातों (=धर्मों) का अभ्यास करना चाहिए? कौन-सी दस बातोंका? सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मान्त, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि, सम्यक ज्ञान तथा सम्यक विमुक्ति। भिक्षुओ, रागकी पहचानके लिए दस बातों (=धर्मों) का अभ्यास करना चाहिए।

"भिक्षुओ, रागके परिज्ञानके लिए, परिक्षयके लिए,.....प्रहाणके लिए ......क्षयके लिए......व्ययके लिए.......वैराग्यके लिए.....निरोधके लिए......त्यागके लिए.......प्रतिनिसर्गके लिए, इन दस बातोंका अभ्यास करना चाहिए।

"भिक्षुओ, द्वेषके.......मोहके, क्रोधके, उपनाहके, मुक्षके, प्रदासके, ईर्षाके, मात्सर्यके, मायाके, शठताके, जड़ताके, समारम्भके, मानके, अतिमानके, मदके तथा प्रमादके परिज्ञानके लिए......परिक्षयके लिए.....प्रहाणके लिए..... क्षयके लिए......व्ययके लिए......वैराग्यके लिए.......निरोधके लिए.... .....त्यागके लिए......प्रतिनिसर्गके लिए........इन दस बातों (=धर्मों) का अभ्यास करना चाहिए।

ग्यारहवाँ निपात

१. निश्रय वर्ग

१. किमत्थियसुत्त

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार कर रहे थे। तब आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान आनन्दने भगवानसे यह कहा—

"भन्ते! शील-आरक्षाका क्या प्रयोजन है? उसका क्या शुभ परिणाम होता है?"

"आनन्द। शील-आरक्षाका प्रयोजन है, पश्चातापका न होना। शील-पालनका शुभ परिणाम है पश्चातापका न होना।"

"भन्ते! पश्चातापके न होनेका क्या प्रयोजन है? उसका क्या शुभ-परिणाम होता है?"

"आनन्द! पश्चातापके न होनेका प्रयोजन है प्रमोद। पश्चातापके न होनेका शुभ परिणाम है प्रमोद।"

"भन्ते! प्रमोदका क्या प्रयोजन है? उसका क्या शुभ परिणाम होता है?"

"आनन्द! प्रमोदका प्रयोजन है प्रीति। प्रमोदका शुभ परिणाम है प्रीति।"

"भन्ते! प्रीतिका क्या प्रयोजन है? उसका क्या शुभ परिणाम होता है?"

"आनन्द! प्रीतिका प्रयोजन है 'शान्ति।' 'प्रीति' का शुभ परिणाम है शान्ति (=प्रश्रब्धि)।"

"भन्ते! शान्तिका क्या प्रयोजन है? उसका क्या शुभ परिणाम होता है?"

"आनन्द! शान्तिका प्रयोजन है 'सुख'। शान्तिका शुभ परिणाम है 'सुख'।"

"भन्ते! सुखका क्या प्रयोजन है? उसका क्या शुभ परिणाम होता है?"

"आनन्द! सुखका प्रयोजन है एकाग्रता (=समाधि)। सुखका शुभ परिणाम है 'समाधि।"

"भन्ते! समाधिका क्या प्रयोजन है? उसका क्या शुभ परिणाग होता है?"

"आनन्द! समाधिका प्रयोजन है यथार्थ ज्ञान-दर्शन। समाधिका शुभ परिणाम है यथार्थ ज्ञान-दर्शन।"

"भन्ते! यथार्थ ज्ञान-दर्शनका क्या प्रयोजन है? उसका क्या शुभ परिणाम होता है?"

"आनन्द! यथार्थ ज्ञान-दर्शनका प्रयोजन है निर्वेद। यथार्थ ज्ञान-दर्शनका शुभ परिणाम है निर्वेद।"

"भन्ते! निर्वेदका क्या प्रयोजन है? उसका क्या शुभ-परिणाम होता है?"

"आनन्द! निर्वेदका प्रयोजन है वैराग्य। निर्वेदका शुभ परिणाम है वैराग्य।"

"भन्ते! वैराग्यका क्या प्रयोजन है? उसका क्या शुभ परिणाम होता है?"

"आनन्द! वैराग्यका प्रयोजन है विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन। वैराग्यका शुभ परिणाम है विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन।

"इस प्रकार आनन्द! शील-रक्षणका प्रयोजन है पश्चातापका न होना; शील-रक्षणका शुभ परिणाम है पश्चातापका न होना। पश्चातापके न होनेका प्रयोजन है प्रमोद; पश्चातापके न होनेका शुभ परिणाम परिणाम है प्रमोद। प्रमोदका प्रयोजन है 'प्रीति'। प्रमोदका शुभ-परिणाम है 'प्रीति'। प्रीतिका प्रयोजन है 'शान्ति'। प्रीतिका शुभ परिणाम है 'शान्ति'। शान्तिका प्रयोजन है 'सुख'; शान्तिका शुभ-परिणाम है 'सुख'। सुखका प्रयोजन है एकाग्रता (=समाधि); सुखका शुभ-परिणाम है 'समाधि'। समाधिका प्रयोजन है, 'यथार्थ-ज्ञान-दर्शन'; समाधिका शुभ परिणाम है 'यथार्थ ज्ञान-दर्शन।' यथार्थ-ज्ञान-दर्शनका प्रयोजन है 'निर्वेद'; ज्ञान-दर्शनका शुभ-परिणाम है निर्वेद। निर्वेदका प्रयोजन है 'वैराग्य'; निर्वेदका शुभ-परिणाम है वैराग्य। वैराग्यका प्रयोजन है विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन; वैराग्यका शुभ-परिणाम है विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन। इस प्रकार आनन्द! कुशल-धर्मों (=शील) का पालन क्रमशः अर्हत्व तक पहुँचा देता है।

२. चेतनाकरणीयसुत्त

भिक्षुओ, जो शील-सम्पन्न है, जो सदाचारी है, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं होती कि मुझे पश्चाताप न हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जो शील-सम्पन्न है, जो सदाचारी है, उसे पश्चाताप न हो।

भिक्षुओ, जिसे पश्चाताप नहीं होता, उसे यह इच्छा करने की आवश्यकता नहीं होती कि मुझे प्रमुदता प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है, कि जिसे पश्चाताप न हो, उसे प्रमुदता प्राप्त हो।

भिक्षुओ, जिसे प्रमुदता प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं, कि मुझे 'प्रीति' उत्पन्न हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे प्रमुदता प्राप्त हो, उसे प्रीति उत्पन्न हो।

भिक्षुओ, जिसे प्रीति प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे 'प्रश्रब्धि' प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे प्रीति प्राप्त हो, उसे शान्ति (= प्रश्रब्धि) प्राप्त हो।

भिक्षुओ, जिसे प्रश्रब्धि प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे 'सुख' प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे प्रश्रब्धि प्राप्त हो, उसे 'सुख' प्राप्त हो।

भिक्षुओ, जिसे 'सुख' प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे एकाग्रता (= समाधि) प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे 'सुख' प्राप्त हो, उसे 'समाधि' उत्पन्न हो।

भिक्षुओ, जिसका चित्त एकाग्र हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे यथार्थ ज्ञान हो, यथार्थ दर्शन हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे 'समाधि' प्राप्त हो, उसे 'यथार्थ ज्ञान' उत्पन्न हो।

भिक्षुओ, जिसे 'यथार्थ-ज्ञान' उत्पन्न हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे निर्वेद प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे 'यथार्थ-ज्ञान' प्राप्त हो, उसे 'निर्वेद' प्राप्त हो।

भिक्षुओ, जिसे निर्वेद प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे 'वैराग्य' प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे निर्वेद प्राप्त हो, उसे 'वैराग्य' प्राप्त हो।

भिक्षुओ, जिसे वैराग्य प्राप्त हो, उसे यह इच्छा करनेकी आवश्यकता नहीं कि मुझे 'विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन' प्राप्त हो। भिक्षुओ, यह स्वाभाविक धर्म है कि जिसे वैराग्य प्राप्त हो, उसे 'विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन' प्राप्त हो।

इस प्रकार भिक्षुओ, वैराग्य होनेसे विमुक्ति-ज्ञान-दर्शनकी प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; निर्वेदसे वैराग्य प्राप्त होता है, यही उसका परिणाम है; यथार्थ ज्ञान-दर्शनसे निर्वेदकी प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; समाधिसे

होनेसे यथार्थज्ञान-दर्शनकी प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; सुख होनेसे समाधिकी प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; प्रश्रब्धि होनेसे 'सुख' की प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; 'प्रीति' होनेसे प्रश्रब्धिकी प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; प्रमुदता होनेसे 'प्रीति' की प्राप्ति होती है, यही उसका परिणाम है; कुशल धर्मों (=शील) का पालन करनेसे पश्चाताप नहीं होता, यही उसका परिणाम है। इस प्रकार भिक्षुओ, धर्मोंसे धर्मोंकी प्राप्ति होती है, धर्मोंसे धर्मोंकी वृद्धि होती है—उत्तरोत्तर वृद्धि।

३. पठमउपनिसासुत्त

भिक्षुओ, जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप-रहित होना नहीं है। जो पश्चाताप-रहित नहीं, उसे प्रमुदताकी प्राप्ति नहीं होती। जिसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति नहीं, उसके भाग्यमें 'प्रीति' नहीं। जिसे 'प्रीति' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'प्रश्रब्धि' नहीं। जिसे 'प्रश्रब्धि' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'सुख' नहीं। जिसे 'सुख' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें एकाग्रता (=समाधि) नहीं। जिसे एकाग्रता प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'यथार्थज्ञान-दर्शन' नहीं। जिसे 'यथार्थ ज्ञान-दर्शन' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें निर्वेद नहीं। जिसे निर्वेद प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें वैराग्य नहीं। जिसे वैराग्य प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन नहीं।

भिक्षुओ, जिस प्रकार शाखा-पत्ते रहित वृक्षकी पपड़ी भी नहीं पकती...... छाल भी...... फेग्गु भी नहीं पकती तथा सारकी भी पूर्ति नहीं होती। इसी प्रकार भिक्षुओ, जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप-रहित होना नहीं है। जो पश्चाताप-रहित नहीं है, उसके भाग्यमें.....विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन नहीं।

भिक्षुओ, जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप-रहित होना है। जो पश्चाताप-रहित है, उसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति होती है। जिसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति होती है, उसके भाग्यमें 'प्रीति' है। जिसे 'प्रीति' प्राप्त है, उसके भाग्यमें 'प्रश्रब्धि' है। जिसे 'प्रश्रब्धि' प्राप्त है, उसके भाग्यमें 'सुख' है। जिसे 'सुख' प्राप्त है, उसके भाग्यमें सम्यक समाधि (=एकाग्रता) है। जिसे एकाग्रताप्राप्त है, उसके भाग्यमें यथार्थ-ज्ञान-दर्शन है। जिसे यथार्थज्ञान-दर्शन प्राप्त है, उसके भाग्यमें निर्वेद है। जिसे निर्वेद प्राप्त है, उसके भाग्यमें वैराग्य है। जिसे वैराग्य प्राप्त है, उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन है।

भिक्षुओ, जिस प्रकार शाखा-पत्ते युक्त वृक्षकी पपड़ी भी पकती है, छाल भी ...... फेग्गु भी पकती है तथा सारकी भी पूर्ति होती है। इसी प्रकार भिक्षुओ, जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप-रहित होना है। जो पश्चाताप-रहित है ...... उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन है।

४. दुतियउपनिसासुत्त

उस समय आयुष्मान सारिपुत्रने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"आयुष्मान भिक्षुओ।"

उन भिक्षुओंने आयुष्मान सारिपुत्रको "आयुष्मान" कहकर प्रतिवचन दिया। आयुष्मान सारिपुत्रने यह कहा—

"आयुष्मानो! जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप रहित होना नहीं है। जो पश्चाताप-रहित नहीं, उसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति नहीं होती जिसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति नहीं, उसके भाग्यमें 'प्रीति' नहीं। जिसे 'प्रीति' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'प्रश्रब्धि' नहीं। जिसे 'प्रश्रब्धि' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'सुख' नहीं। जिसे 'सुख' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें एकाग्रता (=समाधि) नहीं। जिसे एकाग्रता प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'यथार्थज्ञान-दर्शन' नहीं। जिसे 'यथार्थज्ञान-दर्शन' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें निर्वेद नहीं। जिसे निर्वेद प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें वैराग्य नहीं। जिसे वैराग्य प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन' नहीं।

आयुष्मानो! जिस प्रकार शाखा-पत्ते रहित वृक्षकी पपड़ी भी नहीं पकती ...... छाल भी .... फेग्गु भी नहीं पकती तथा सारकी भी पूर्ति नहीं होती। इसी प्रकार भिक्षुओ, जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप-रहित होना नहीं है, उसके भाग्यमें ..... विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन नहीं'।

आयुष्मानो, जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप-रहित होना है। जो पश्चाताप-रहित है, उसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति होती है। जिसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति होती है, उसके भाग्यमें 'प्रीति' है। जिसे प्रीति प्राप्त है, उसके भाग्यमें प्रश्रब्धि है। जिसे प्रश्रब्धि प्राप्त है, उसके भाग्यमें 'सुख' है। जिसे 'सुख' प्राप्त है, उसके भाग्यमें सम्यक समाधि (=एकाग्रता) है। जिसे एकाग्रता प्राप्त है, उसके भाग्यमें यथार्थज्ञान-दर्शन है। जिसे यथार्थज्ञान-दर्शन प्राप्त है, उसके भाग्यमें निर्वेद है। जिसे निर्वेद प्राप्त है, उसके भाग्यमें वैराग्य है। जिसे वैराग्य प्राप्त है, उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन है।

आयुष्मानो, जिस प्रकार शाखा-पत्ते-युक्त वृक्षकी पपड़ी भी पकती है, छाल भी........फेग्गु भी पकती है तथा सारकी भी पूर्ति होती है। इसी प्रकार आयुष्मानो, जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप-रहित होना है। जो पश्चाताप-रहित है......उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन है।

५. ततियउपनिसासुत्त

उस समय आयुष्मान आनन्दने भिक्षुओंको सम्बोधित किया.....यह कहा—

"आयुष्मानो, जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप-रहित होना नहीं है। जो पश्चाताप-रहित नहीं, उसे प्रमुदताकी प्राप्ति नहीं होती। जिसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति नहीं, उसके भाग्यमें 'प्रीति' नहीं। जिसे 'प्रीति' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें प्रश्रब्धि नहीं। जिसे 'प्रश्रब्धि' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'सुख' नहीं। जिसे 'सुख' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें एकाग्रता (= समाधि) नहीं। जिसे एकाग्रता प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें 'यथार्थज्ञान-दर्शन' नहीं। जिसे 'यथार्थ ज्ञान-दर्शन' प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें निर्वेद नहीं। जिसे निर्वेद प्राप्त नहीं। जिसे निर्वेद प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें वैराग्य नहीं। जिसे वैराग्य प्राप्त नहीं, उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन नहीं।

आयुष्मानो! जिस प्रकार शाखा-पत्ते रहित वृक्षकी पपड़ी भी नहीं पकती.......छाल भी......फेग्गु भी नहीं पकती तथा सारकी भी पूर्ति नहीं होती। इसी प्रकार आयुष्मानो! जो दुश्शील है, जो दुराचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप रहित होना नहीं है; उसके भाग्यमें.....विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन नहीं।

आयुष्मानो! जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप-रहित होना है। जो पश्चाताप-रहित है, उसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति होती है। जिसे 'प्रमुदता' की प्राप्ति होती है, उसके भाग्यमें 'प्रीति' है। जिसे 'प्रीति' प्राप्त है, उसके भाग्यमें प्रश्रब्धि है। जिसे 'प्रीति' प्राप्त है, उसके भाग्यमें 'सुख' है। जिसे 'सुख' प्राप्त है, उसके भाग्यमें (सम्यक) समाधि है। जिसे समाधि प्राप्त है, उसके भाग्यमें यथार्थ ज्ञान-दर्शन है। जिसे यथार्थज्ञान-दर्शन प्राप्त है, उसके भाग्यमें निर्वेद है। जिसे निर्वेद प्राप्त है, उसके भाग्यमें वैराग्य है। जिसे वैराग्य प्राप्त है, उसके भाग्यमें विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन' है।

आयुष्मानो! जिस प्रकार शाखा-पत्ते-युक्त वृक्षकी पपड़ी भी पकती है, छाल भी........फेग्गु भी पकती है तथा सारकी भी पूर्ति होती है। उसी प्रकार

आयुष्मानो ! जो शीलवान है, जो सदाचारी है, उसके भाग्यमें पश्चाताप-रहित होना है। जो पश्चाताप-रहित है.......उसके भाग्यमें 'विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन' है।

६. व्यसनसुत्त

भिक्षुओ, जो अपने साथियोंको बुरा-भला कहता है, परिहास करता है, सुजनोंकी निन्दा करता है; इसकी सम्भावना है, इसकी गुंजाइश है कि उसपर ग्यारह विपत्तियोंमें से कोई एक विपत्ति आ पड़े। कौन-सी ग्यारह विपत्तियोंमें से? उसे अप्राप्त प्राप्त नहीं होता, प्राप्त नष्ट हो जाता है, सद्धर्म स्पष्ट नहीं होता, सद्धर्मके बारेमें अहंकारी हो जाता है......श्रेष्ठ जीवनमें उसका मन रमण नहीं करता। किसी गम्भीर दोषका दोषी हो जाता है, शिक्षाका त्याग कर हीन-मार्गी (= गृहस्थ) हो जाता है, किसी भयानक रोगका खतरा उपस्थित हो जाता है, उन्माद या चित्त-विक्षेपको प्राप्त हो जाता है, मूढ़ता (= बेहोशी) की अवस्थामें मृत्युको प्राप्त होता है तथा शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर अपाय = दुर्गति = नरकमें उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, जो अपने साथियोंको बुरा-भला कहता है, परिहास करता है, सुजनोंकी निन्दा करता है; इसकी सम्भावना है, इसकी गुंजाइश है कि उसपर ग्यारह विपत्तियोंमें से कोई एक विपत्ति आ पड़े।

भिक्षुओ, जो अपने साथियोंको बुरा-भला कहता है, परिहास करता है, सुजनोंकी निन्दा करता है; इसकी सम्भावना नहीं है, इसकी गुंजाइश नहीं है कि उसपर ग्यारह विपत्तियोंमें से कोई एक विपत्ति न आ पड़े। कौन-सी ग्यारह विपत्तियोंमें से? उसे अप्राप्त प्राप्त नहीं होता, प्राप्त नष्ट हो जाता है, सद्धर्म स्पष्ट नहीं होता, सद्धर्मके बारेमें अहंकारी हो जाता है और श्रेष्ठ जीवनमें उसका मन रमण नहीं करता। वह किसी गम्भीर दोषका दोषी हो जाता है, शिक्षा (= भिक्षु जीवन) का त्याग कर हीन-मार्गी (= गृहस्थ) हो जाता है, किसी भयानक रोगका खतरा उपस्थित हो जाता है, उन्माद या चित्त-विक्षेपको प्राप्त हो जाता है, मूढ़ता (= बेहोशी) की अवस्थामें मृत्युको प्राप्त होता है तथा शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर अपाय = दुर्गति = नरकमें उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, जो अपने साथियोंको बुरा-भला कहता है, परिहास करता है, सुजनोंकी निन्दा करता है; इसकी सम्भावना नहीं, इसकी गुंजाइश नहीं है कि उसपर ग्यारह विपत्तियोंमें से कोई एक विपत्ति न आ पड़े।

७. सञ्ञासुत्त

तब आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान थे, वहाँ गए। पास जाकर भगवानको प्रणाम कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्दने भगवानसे यह कहा—

"भन्ते ! क्या भिक्षुको ऐसी समाधि (=चित्त एकाग्रता) प्राप्त हो सकती है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो कि यह पृथ्वी है, जलके बारेमें यह होश न हो कि यह जल है, तेज (=अग्नि) के बारेमें यह होश न हो कि यह तेज है, वायुके बारेमें यह होश न हो कि यह वायु है, आकाशानञ्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकाशानञ्चायतन है, विज्ञानञ्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह विज्ञानञ्चायतन है, आकिञ्चन्यायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकिञ्चन्यायतन है, नैव संज्ञा-न-असंज्ञायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह नैव संज्ञा-न-असंज्ञायतन है, इहलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह इह लोक है, परलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह परलोक है, जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें भी होश न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको होश हो।

"आनन्द ! भिक्षुके लिए ऐसी समाधि अवस्थाका प्राप्त कर सकना सम्भव है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो कि यह पृथ्वी है, जलके बारेमें यह होश न हो कि यह जल है, तेज (=अग्नि) के बारेमें यह होश न हो कि यह तेज है, वायुके बारेमें यह होश न हो कि यह वायु है, आकाशानञ्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकाशानञ्चायतन है, विज्ञानञ्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह विज्ञानञ्चायतन है, आकिञ्चन्यायतन के बारेमें यह होश न हो कि यह आकिञ्चन्यायतन है, नैव संज्ञा-न असंज्ञायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह नैव संज्ञा-न असंज्ञायतन है, इहलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह इहलोक है, परलोक के बारेमें होश न हो कि यह परलोक है, जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें भी होश न हो, लेकिन तब भी उस भिक्षुको 'होश' हो।

"भन्ते ! भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ कैसे हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो कि यह पृथ्वी है......लेकिन तब भी उस भिक्षुको 'होश' हो।

"आनन्द ! उस समय भिक्षुकी यही संज्ञा होती है कि यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन है, सभी उपाधियोंका परित्याग है, तृष्णाका क्षय है, विराग है, निरोध है, निर्वाण है।

आनन्द ! इस प्रकार भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो कि यह पृथ्वी है....लेकिन तब भी उस भिक्षुको 'होश' हो।

उस समय आयुष्मान आनन्दने भगवानके भाषणका अभिनन्दन किया, अनुमोदन (=समर्थन) किया। फिर आसनसे उठ भगवानको नमस्कार कर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आयुष्मान सारिपुत्र थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर आयुष्मान सारिपुत्रके साथ कुशल-क्षेमकी बातचीत की। कुशल-क्षेम पूछ चुकनेपर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान आनन्दने आयुष्मान सारिपुत्रको यह कहा—

"आयुष्मान सारिपुत्र ! क्या भिक्षुके लिए ऐसी समाधिका प्राप्त कर सकना सम्भव है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो ...... लेकिन तब भी उस भिक्षुको 'होश' हो ?"

"आयुष्मान आनन्द ! भिक्षुके लिए ऐसी समाधिका प्राप्त कर सकना सम्भव है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो ...... लेकिन तब भी उस भिक्षुको 'होश' हो।"

"आयुष्मान सारिपुत्र ! भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ कैसे हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो कि यह पृथ्वी है ...... लेकिन तब भी उस भिक्षुको 'होश' हो ?"

"आयुष्मान आनन्द ! उस समय भिक्षुकी यही संज्ञा (=अनुभूति) होती है कि 'यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन है, सभी उपाधियोंका परित्याग है, तृष्णाका क्षय है, विराग है, निरोध है, निर्वाण है।' आनन्द ! इस प्रकार भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो कि यह पृथ्वी है .... लेकिन तब भी उस भिक्षु को होश हो।"

"आयुष्मान ! आश्चर्य है। आयुष्मान ! अद्भुत है। शास्ता और श्रावकके कथनमें न अर्थोंका भेद है और न शब्दोंका भेद है। दोनों परस्पर एकदम मिलते हैं, दोनोंमें विरोध नहीं है—निर्वाणको लेकर। आयुष्मान ! मैंने अभी जाकर भगवानसे यही बात पूछी। भगवानने भी मुझे आयुष्मान सारिपुत्रकी ही तरह ठीक इन्हीं अक्षरोंसे, इन्हीं पदोंसे, इन्हीं व्यंजनोंसे समझाया। आयुष्मान ! आश्चर्य है। आयुष्मान ! अद्भुत है। शास्ता और श्रावकके कथनमें न अर्थोंका भेद है और न शब्दोंका भेद है। दोनों परस्पर एकदम मिलते हैं, दोनोंमें विरोध नहीं है—निर्वाणको लेकर।"

८. मनसिकारसुत्त

उस समय आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको प्रणाम कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान आनन्दने भगवानसे प्रश्न किया—

"भन्ते ! क्या भिक्षु ऐसी समाधिका लाभ कर सकता है, जब चक्षुको मनमें जगह दे, न रूपको मनमें जगह दे, न श्रोतको मनमें जगह दे, न शब्दको मनमें जगह दे, न घ्राणको मनमें जगह दे, न गन्धको मनमें जगह दे, न जिह्वाको मनमें जगह दे, न रसको मनमें जगह दे, न काम (= स्पर्शेन्द्रिय) को मनमें जगह दे, न स्पर्शजन्यको मनमें जगह दे, न पृथ्वीको मनमें जगह दे, न जलको मनमें जगह दे, न तेज (= अग्नि) को मनमें जगह दे, न वायुको मनमें जगह दे, न आकाशानञ्चायतनको मनमें जगह दे, न विज्ञानञ्चायतनको मनमें जगह दे, न आकिञ्चन्यायतनको मनमें जगह दे, न नैवसंज्ञा न असंज्ञायतनको मनमें जगह दे, न इहलोकको मनमें जगह दे, न परलोकको मनमें जगह दे, जो कुछ भी देखा, सुना, चखा-सूँघा-स्पर्श किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा, मनका विषय बनाया—उसे मनमें जगह न दे, लेकिन चिन्तन करे ?"

"आनन्द ! भिक्षु ऐसी समाधिका लाभ कर सकता है कि यह चक्षुको मनमें जगह न दे ....जो कुछ भी देखा, सुना, चखा-सूँघा-स्पर्श किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा, मनका विषय बनाया—उसे मनमें जगह न दे, लेकिन चिन्तन करे।

"भन्ते ! भिक्षुको ऐसी समाधिका लाभ कैसे हो सकता है कि वह चक्षुको मनमें जगह न दे........जो कुछ भी देखा, सुना, चखा-सूंघा-स्पर्श किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा, मनका विषय बनाया—उसे मनमें जगह न दे, लेकिन चिन्तन करे ?"

"आनन्द ! भिक्षु इस प्रकार सोचता है कि 'यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन है, सभी उपाधियोंका परित्याग है, तृष्णाका क्षय है, विराग है, निरोध है, निर्वाण है।' आनन्द ! भिक्षु ऐसी समाधिका लाभ कर सकता है कि वह चक्षुको मनमें जगह न दे.......जो कुछ भी देखा-सुना, चखा-सूँघा-स्पर्श किया, खोजा, मनका विषय बनाया—उसे मनमें जगह न दे, लेकिन चिन्तन करे।"

९. सद्धसुत्त

एक समय भगवान नातिकाके गिंजकावासमें विहार करते थे। तब आयुष्मान सद्ध जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान श्रद्धको भगवानने यह कहा—

"सद्ध ! आजानीय (= अश्व) ध्यानका ध्यान करो, खलुंक (= अशिक्षित अश्व)—ध्यानका ध्यान मत करो। सद्ध खलुंक-ध्यान कैसे होता है ? सद्ध ! खलुंक-अश्व द्रोणीसे बँधा हुआ, 'जौ-जौ' का ही ध्यान करता है। यह किसलिए ? सद्ध ! जो खलुंक अश्व होता है, उसके मनमें यह नहीं होता—'पता नहीं अश्व-शमन-सारथि आज मेरे साथ क्या व्यवहार करेगा ? मुझे उसके प्रति क्या करना चाहिए ?' वह

द्रोणासे बंधा आ केवल 'जौ-जौ' का ध्यान करता है। हे सद्ध! इस प्रकार कोई कोई अशिक्षित आदमी अरण्यमें जानेपर भी, वृक्षके नीचे बैठा रहनेपर भी, शून्यागारमें रहनेपर भी, कामुकता-युक्त चित्तसे, कामुकता-लिए चित्तसे विहार करता है। वह उत्पन्न कामुकतासे बच निकलना नहीं जानता। वह कामुकताको ही केन्द्र-बिन्दु बनाकर ध्यान करता है, मनन करता है, विचार करता है, चिन्तन करता है; व्यापाद-युक्त चित्तसे विहार करता है......स्त्यान-मृद्ध चित्तसे युक्त विहार करता है.... .....औद्धत्य-कौकृत्य युक्त चित्तसे विहार करता है......विचिकित्सा-युक्त चित्तसे, विचिकित्सा लिए चित्तसे विहार करता है। वह उत्पन्न विचिकित्सासे बच निकलना नहीं जानता। वह विचिकित्साको ही केन्द्र-बिन्दु बनाकर ध्यान करता है, मनन करता है, विचार करता है, चिन्तन करता है। वह पृथ्वीको लेकर भी ध्यान करता है, जलको लेकर भी ध्यान करता है, तेज (=अग्नि) को लेकर भी ध्यान करता है, वायुको लेकर भी ध्यान करता है, आकाशानन्चायतनको लेकर भी ध्यान करता है, विज्ञानन्चायतनको लेकर भी ध्यान करता है, आकिञ्चन्यायतनको लेकर भी ध्यान करता है, नैवसंज्ञा न असंज्ञाको लेकर भी ध्यान करता है, इहलोकको लेकर भी ध्यान करता है, परलोकको लेकर भी ध्यान करता है, जो देखा, सुना, चखा-सूँघा-हुआ, जाना, प्राप्त किया, खोजा, मनका विषय बनाया—इन सबको लेकर भी ध्यान करता है। सद्ध! इस प्रकार खलुंक आदमीका ध्यान होता है।

सद्ध! आजानीय (=श्रेष्ठ) आदमीका ध्यान करना कैसे होता है? सद्ध! जो भद्र श्रेष्ठ अश्व होता है, वह द्रोणीसे बंधा हुआ 'जौ-जौ' का ही ध्यान नहीं करता। ऐसा किसलिए? सद्ध! जो भद्र श्रेष्ठ अश्व होता है, वह इस प्रकार सोचता है—'आज अश्व-दमन-सारथि मेरे साथ क्या व्यवहार करेगा? मुझे क्या बरताव करना होगा?' वह द्रोणी से बँधा हुआ,'जौ-जौ' नहीं सोचता रहता। सद्ध! जो भद्र श्रेष्ठ घोड़ा होता है, वह जैसे ऋणसे, जैसे बंधनसे, जैसे हानिसे, जैसे बड़े अपराधसे कोई घबराता है, उसी प्रकार अपने सामने उठे हुए चाबुकको देखता है। इसी प्रकार सद्ध! जो भद्र श्रेष्ठ आदमी होता है वह अरण्यमें जानेपर भी, वृक्षके नीचे बैठे रहनेपर भी, शून्यागारमें रहनेपर भी कामुकता-युक्त चित्तसे, कामुकता-लिए चित्तसे विहार करता है। वह उत्पन्न कामुकतासे बच निकलना जानता है। वह कामुकताको ही केन्द्र-बिन्दु बनाकर ध्यान नहीं करता है, मनन नहीं करता है, विचार नहीं करता है, चिन्तन नहीं करता है; व्यापाद-युक्त चित्तसे विहार नहीं करता है....स्त्यान-मृद्ध चित्तसे युक्त विहार नहीं करता है.....औद्धत्य कौकृत्य-युक्त चित्तसे विहार

नहीं करता है.......विचिकित्सायुक्त चित्तसे, विचिकित्सा-लिए चित्तसे विहार नहीं करता है। वह उत्पन्न विचिकित्सासे बच निकलना जानता है। वह पृथ्वीको लेकर भी ध्यान नहीं करता है, जलको लेकर भी ध्यान नहीं करता है, तेज (=अग्नि) को लेकर भी ध्यान नहीं करता है, वायुको लेकर भी ध्यान नहीं करता है, आकाशानन्चायतनको लेकर भी ध्यान नहीं करता है, विज्ञानन्चायतन को लेकर भी ध्यान नहीं करता है। आकिञ्चन्यायतनको लेकर भी ध्यान नहीं करता है, न संज्ञा न असंज्ञायातनको लेकर ध्यान नहीं करता है, न इहलोकको लेकर ध्यान करता है, न परलोकको लेकर ध्यान करता है, न 'जो देखा हो, सुना हो, चखा-सूँघा-छुआ हो, जाना हो, प्राप्त किया हो, खोजा हो, मनसे विचार किया हो' को लेकर ध्यान करता है। हे सद्ध! ऐसा ध्यान करनेवाले भद्र श्रेष्ठ पुरुषको इन्द्र, देव, ब्रह्मा तथा प्रजापति दूरसे ही नमस्कार करते हैं—

नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरसुत्तम।
यस्स ते नाभिजानाम, यं पि निस्साय झायसि॥

(हे श्रेष्ठ पुरुष! हे उत्तम पुरुष! तुझे नमस्कार है। हम यह भी नहीं जानते कि तू किसको लेकर ध्यान करता है।)

ऐसा कहनेपर आयुष्मान सद्धने भगवानसे यह कहा—"भन्ते! जो भद्र श्रेष्ठ ध्यानी पुरुष होता है, वह किसे लेकर ध्यान करता है? वह न पृथ्वीको लेकर ध्यान करता है, न जलको लेकर ध्यान करता है, न तेज (=अग्नि) को लेकर ध्यान करता है, न वायुको लेकर ध्यान करता है, न आकाशानन्चायतनको लेकर ध्यान करता है, न विज्ञानन्चायतनको लेकर ध्यान करता है, न आकिञ्चन्यायतनको लेकर ध्यान करता है, न संज्ञा न असंज्ञायतनके लिए ध्यान करता है, न इहलोकके लिए ध्यान करता है, न परलोकके लिए ध्यान करता है, न 'जो देखा हो, सुना हो, चखा-सूँघा-छुआ हो, जाना हो, प्राप्त किया हो, खोजा हो, मनसे विचार किया हो' को लेकर ध्यान करता है, किन्तु ध्यान करता है। भन्ते! किस प्रकार ध्यान करनेवालेको भद्र श्रेष्ठ पुरुषको इन्द्र, देव, ब्रह्मा तथा प्रजापति दूरसे ही नमस्कार करते हैं—

नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरिसुत्तम।
यस्स ते नाभिजानाम, यं पि निस्साय झायसि॥

(अर्थ ऊपर आ गया है—अनु०)

सद्ध! जो भद्र श्रेष्ठ पुरुष होता है, उसे पृथ्वीका ध्यान करनेसे पृथ्वी-संज्ञा प्रकट होती है, जलका ध्यान करनेसे जल-संज्ञा प्रकट होती है, तेज (=अग्नि)

का ध्यान करनेसे तेज-संज्ञा प्रकट होती है,वायुका ध्यान करनेसे वायु-संज्ञा प्रकट होती है, आकाशानञ्चायतनका ध्यान करनेसे आकाशानञ्चायतन-संज्ञा प्रकट होती है, विज्ञानञ्चायतनका ध्यान करनेसे विज्ञान-ञ्चायतन-संज्ञा प्रकट होती है, आकिञ्चन्यायतनका ध्यान करनेसे आकिञ्चन्यायतन-संज्ञा प्रकट होती है. न संज्ञा न असंज्ञायतनका ध्यान करनेसे न संज्ञा न असंज्ञायतन-संज्ञा प्रकट होती है. इहलोकका ध्यान करनेसे इहलोक-संज्ञा प्रकट होती है, परलोकका ध्यान करनेसे परलोक-संज्ञा प्रकट होती है, जो 'यह देखा, सुना, चखा-सूँघा-छुआ, जाना, प्राप्त किया, खोजा, मनसे सोचा,' उनमें भी संज्ञा प्रकट होती है। सद्ध ! इस प्रकार ध्यान करनेवाला भद्र श्रेष्ठ ध्यानी न पृथ्वीको लेकर ध्यान लगाता है .... न 'जो देखा हो, सुना हो, चखा-सूंघा-छुआ हो, जाना हो, प्राप्त किया हो, खोजा हो, मनसे विचार किया हो' को लेकर ध्यान करता है, किन्तु ध्यान करता है। सद्ध ! ऐसा ध्यान करनेवाले भद्र श्रेष्ठ पुरुषको इन्द्र, देव, ब्रह्मा तथा प्रजापति दूरसे ही नमस्कार करते हैं—

'नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरिसुत्तम।
यस्स ते नाभिजानाम, यं पि निस्साय झायसि।'

१०. मोरनिवापसुत्त

एक समय भगवान राजगृहके मोरनिवाप नामके परिब्राजकाराममें विहार करते थे। वहाँ भगवानने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ।" उन भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवचन दिया—

"भदन्त।" भगवानने यह कहा—

"भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये तीन बातें होती हैं, वह अत्यन्त निष्ठावान होता है, अत्यन्त योग-क्षेमी होता है, अत्यन्त ब्रह्मचारी होता है, अत्यन्त पारंगत होता है—देवताओं तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ। कौन-सी तीन बातें ? वह अशैक्ष शील-स्कन्धसे युक्त होता है, अशैक्ष समाधि-स्कन्धसे युक्त होता है, अशैक्ष प्रज्ञा-स्कन्धसे युक्त होता है। भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये तीन बातें होती हैं, वह अत्यन्त निष्ठावान होता है, अत्यन्त योग-क्षेमी होता है, अत्यन्त ब्रह्मचारी होता है, अत्यन्त पारंगत होता है—देवताओं तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ।

"भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये दूसरी तीन बातें होती हैं, वह भी अत्यन्त निष्ठावान होता है, अत्यन्त योग-क्षेमी होता है, अत्यन्त ब्रह्मचारी होता है, अत्यन्त पारंगत होता है—देवताओं तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ। कौन-सी तीन बातें ? ऋद्धि-

प्रातिहारी, आदेसना-प्रातिहारी[1] तथा अनुशासना-प्रातिहारी। भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये दूसरी तीन बातें होती हैं, वह भी अत्यन्त निष्ठावान होता है, अत्यन्त योग-क्षेमी होता है, अत्यन्त ब्रह्मचारी होता है, अत्यन्त पारंगत होता है—देवताओं तथा मनष्योंमें श्रेष्ठ।

"भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये दूसरी तीन बातें भी होती हैं, वह भी अत्यन्त निष्ठावान होता है, अत्यन्त योग-क्षेमी होता है, अत्यन्त ब्रह्मचारी होता है, अत्यन्त पारंगत होता है—देवताओं तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ। कौन-सी तीन बातें? सम्यक-दृष्टि, सम्यक-ज्ञान, सम्यक-विमुक्ति। भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये दूसरी तीन बातें होती हैं, वह भी अत्यन्त निष्ठावान होता है, अत्यन्त योग-क्षेमी होता है, अत्यन्त ब्रह्मचारी होता है, अत्यन्त पाररंगत होता है—देवताओं तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ।

भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये दो बातें होती हैं, वह अत्यन्त निष्ठावान होता है, अत्यन्त योग-क्षेमी होता है, अत्यन्त ब्रह्मचारी होता है, अत्यन्त पारंगत होता है—देवताओं तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ। कौन-सी दो बातें? विद्या तथा आचरण। भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये दो बातें होती हैं, वह अत्यन्त निष्ठावान होता है, अत्यन्त योग-क्षेमी होता है, अत्यन्त ब्रह्मचारी होता है, अत्यन्त पारंगत होता है—देवताओं तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ।

भिक्षुओ, सनत्कुमार ब्रह्मा[2]ने भी यह गाथा कही है—

खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मि, ये गोत्त पटिसारिनो।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सेट्ठो देवमानुसे॥

(जो 'गोत्र' माननेवाले लोग हैं, उनके अनुसार जनतामें 'क्षत्रिय' ही श्रेष्ठ हैं। जो विद्या तथा आचरणसे युक्त होता है, वह देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है।)

भिक्षुओ, यह जो सनतकुमार द्वारा कही गई गाथा है, यह सुभाषित है, दुर्भाषित नहीं; सार्थ है, निरर्थक नहीं, यह मेरे द्वारा समर्थित (=अनुमोदित) है। भिक्षुओ, मैं भी यह कहता हूँ—

"खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मि, ये गोत्त पटिसारिनो।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सेट्ठो देवमानुसे॥

(अर्थ ऊपर आ गया है—अनु०)

---

१. किसी दूसरेके चित्तकी बात जान लेना।

२. ब्रह्मवैवर्त पुराणमें है—'सनत्कुमारो धर्मश्च सनकश्च सनातनः। सनन्दश्चापि सूर्यश्च ये ऽन्ये वा ब्रह्मणः सुताः।' यह सनत्कुमार स्वयं ब्रह्मा था या ब्रह्मा-सुत? (अनु०)

२. अनुस्मृति वर्ग

१. पठममहानामसुत्त

एक समय भगवान शाक्य (जनपद) के कपिलवस्तु (नगर) के निग्रोधाराममें विहार करते थे। उस समय बहुतसे भिक्षु भगवानके लिए चीवर तैयार कर रहे थे—"चीवरका बनना समाप्त हो जानेपर और (वर्षावासके) तीन महीने पूरे हो जानेपर भगवान चारिकाके लिए चल देंगे।" महानाम शाक्यने सुना—"बहुतसे भिक्षु भगवानके लिए चीवर तैयार कर रहे हैं। चीवरका बनना समाप्त हो जानेपर और (वर्षावास) के तीन महीने समाप्त हो जानेपर भगवान चारिकाके लिए चल देंगे।"

तब महानाम शाक्य जहाँ भगवान थे, वहाँ गया। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे महानाम शाक्यने भगवानको यह कहा—"भन्ते! मैंने सुना है कि बहुतसे भिक्षु आपका चीवर तैयार कर रहे हैं। चीवर तैयार हो जानेपर और तीन महीने पूरे हो जानेपर भगवान चारिकाके लिए चल देंगे।' भन्ते! हम लोग जो नाना विहारों (=चित्त प्रवृत्तियों) में विचरनेवाले हैं, किस विहार (=चित्त-प्रवृत्ति) में विचरण करें?"

"महानाम! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। महानाम! तुम्हारे जैसे कुलपुत्रोंके लिए यही योग्य है कि तुम तथागतके पास आओ, और उनसे पूछो—'भन्ते! हम लोग नाना विहारोंमें विचरनेवाले हैं, किस विहारमें विचरण करें?' महानाम! जो श्रद्धावान होता है वह (उद्देश्य की) पूर्ति करनेवाला होता है, अश्रद्धावान नहीं; जो प्रयत्न करनेवाला होता है, वह पूर्ति करनेवाला होता है, आलसी नहीं; जो स्मृतिमान होता है, वह पूर्ति करनेवाला होता है, मूढ़-स्मृतिमान नहीं; जो एकाग्रता-युक्त होता है वह पूर्ति करनेवाला होता है, एकाग्रता-रहित नहीं; प्रज्ञावान पूर्ति करनेवाला होता है, दुष्प्रज्ञ नहीं। महानाम! तुम इन पाँच गुणों (=धर्मों) में प्रतिष्ठित होकर और छह धर्मोंका भी अभ्यास करना।

"महानाम! तुम तथागतका अनुस्मरण करना—'वह भगवान अर्हत हैं, सम्यक सम्बुद्ध हैं, विद्या तथा आचरणसे युक्त हैं, सुगत हैं, लोकके जानकार हैं, अनुपम हैं, (दुष्ट—) पुरुषोंका दमन करनेवाले सारथि हैं, देव-मनुष्योंके शास्ता हैं, बुद्ध भगवान हैं।'. महानाम! जिस समय आर्य-श्रावक तथागतका अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त राग-युक्त नहीं होता, द्वेष-युक्त नहीं होता, मोह-युक्त नहीं होता, उस समय तथागत को लेकर उसका चित्त ऋजु ही होता है। महानाम!

जिस आर्य-श्रावकका चित्त ऋजु होता है, उसे अर्थ-बोध हो जाता है, धर्म-बोध हो जाता है, उसे धर्माश्रित मोद प्राप्त होता है। जो प्रमुदित होता है, वह प्रीतिको प्राप्त होता है। जिसके मनमें प्रीति उत्पन्न होती है, उसका चित्त (=काम) शान्त होता है, शान्त चित्तवाला सुख अनुभव करता है, सुखीका मन एकाग्र होता है। महानाम ! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक विषमताको प्राप्त हुई जनतामें रहता हुआ वैषम्य-रहित जीवन व्यतीत करता है, व्यापाद-युक्त प्रजामें अव्यापादका जीवन व्यतीत करता है, धर्मके स्रोतको समर्पित हुआ हुआ बुद्धानुस्मृतिकी भावना करता है।

फिर महानाम ! तुम धर्मका अनुस्मरण करना—'भगवान द्वारा धर्म-सु-आख्यात है, सांदृष्टिक है,अकालिक है,इसके बारेमें कहा जा सकता है कि 'आओ और स्वयं देख लो', ऊपर उठानेवाला है, प्रत्येक विज्ञ आदमी स्वयं साक्षात्कार कर सकता है।' महानाम ! जिस समय आर्य-श्रावक धर्मका अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त राग-युक्त नहीं होता, द्वेष-युक्त नहीं होता, मोह-युक्त नहीं होता, उस समय धर्मको लेकर उसका चित्त ऋजु ही होता है। महानाम ! जिस आर्य-श्रावकका चित्त ऋजु होता है, उसे अर्थ-बोध हो जाता है, धर्म-बोध हो जाता है, उसे धर्माश्रित मोद प्राप्त होता है। जो प्रमुदित होता है, वह प्रीति को प्राप्त होता है, जिसके मनमें प्रीति उत्पन्न होती है, उसका चित्त (=काम) शान्त होता है, शान्त चित्तवाला सुख अनुभव करता है, सुखीका मन एकाग्र होता है। महानाम ! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक विषमताको प्राप्त हुई जनतामें रहता हुआ वैषम्य-रहित जीवन व्यतीत करता है, व्यापाद-युक्त प्रजामें अव्यापादका जीवन व्यतीत करता है धर्मके स्रोतको समर्पित हुआ हुआ धर्मानुस्मृतिकी भावना करता है।

"फिर महानाम ! तुम संघका अनुस्मरण करना—'भगवानका श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न है, भगवानका श्रावक-संघ ऋजु-मार्गारूढ़ है, भगवानका श्रावक-संघ न्याय-मार्गारूढ़ है, भगवानका श्रावक-संघ समीचीन मार्गपर आरूढ़ है, यह जो (आर्य–) पुरुषोंके चार जोड़े हैं, ये जो आठ व्यक्ति हैं, यही भगवानका श्रावक संघ है। यह संघ आदर करने योग्य है, पहुनाई करने योग्य है, दक्षिणार्ह है, हाथ जोड़नेके योग्य है, लोगोंके लिए अनुपम पुण्य-क्षेत्र है।' महानाम ! जिस समय आर्य-श्रावक संघका अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त राग-युक्त नहीं होता, द्वेष-युक्त नहीं होता, मोह-युक्त नहीं होता, उस समय संघको लेकर उसका चित्त ऋजु ही होता है। महानाभ ! जिस आर्य-श्रावकका चित्त ऋजु होता है, उसे अर्थ-बोध हो जाता है, धर्म-बोध हो जाता है, उसे धर्माश्रित मोद प्राप्त होता है। जो प्रमुदित होता है, वह

प्रीतिको प्राप्त होता है, जिसके मनमें प्रीति उत्पन्न होती है, उसका चित्त (=काम) शान्त होता है, शान्त चित्तवाला सुख अनुभव करता है, सुखीका मन एकाग्र होता है। महानाम ! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक विषमताको प्राप्त हुई जनतामें रहता हुआ वैषम्य-रहित जीवन व्यतीत करता है, व्यापाद-युक्त प्रजामें अव्यापादका जीवन व्यतीत करता है, धर्मके स्रोतको समर्पित हुआ संघानुस्मृतिकी भावना करता है।

"फिर महानाम ! तुम अपने शीलोंका अनुस्मरण करना—अखण्डित, छिद्र-रहित, धब्बे-रहित, दाग-रहित, स्वतंत्र, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित, स्वच्छ, समाधिकी ओर ले जानेवाले। महानाम ! जिस समय आर्य-श्रावक अपने शीलोंका अनुसरण करता है, उस समय उसका चित्त राग-युक्त नहीं होता, द्वेष-युक्त नहीं होता, मोह-युक्त नहीं होता, उस समय शीलको लेकर उसका चित्त ऋजु हीहोता है। महानाम! जिस आर्य-श्रावकका चित्त ऋजु होता है, उसे अर्थ-बोध हो जाता है, धर्म-बोध हो जाता है, उसे धर्माश्रित मोद प्राप्त होता है। जो प्रमुदित होता है, वह प्रीतिको प्राप्त होता है; जिसके मन में प्रीति उत्पन्न होती है, उसका चित्त (=काम) शान्त होता है, शान्त चित्तवाला सुख अनुभव करता है, सुखीका मन एकाग्र होता है। महानाम ! उसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक विषमताको प्राप्त हुई जनतामें रहता हुआ वैषम्य-रहित जीवन व्यतीत करता है, व्यापाद-युक्त प्रजामें अव्यापादका जीवन व्यतीत करता है, धर्मके स्रोतको समर्पित हुआ हुआ शीलानुस्मृतिकी भावना करता है।

फिर महानाम ! तुम अपने त्यागका अनुस्मरण करना—यह मेरे लिए कितने बड़े लाभकी बात है, सुलाभकी बात है कि मैं मात्सर्यसे युक्त प्रजाके बीच में रहता हुआ मात्सर्यसे रहित हो गृहस्थ जीवन व्यतीत करता हूँ—मुक्त-त्यागी, खुला-हाथ रखकर परित्याग-रत, याचकोंका सहायक बन, दानशील तथा बाँटनेवाला। महानाम ! जिस समय आर्य-श्रावक अपने त्यागका अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त राग-युक्त नहीं होता, द्वेष-युक्त नहीं होता, मोह युक्त नहीं होता, उस समय त्यागको लेकर उसका चित्त ऋजु ही होता है। महानाम ! जिस आर्य-श्रावकका चित्त ऋजु होता है, उसे अर्थ-बोध हो जाता है, धर्म -बोध हो जाता है, उसे धर्माश्रित मोद प्राप्त होता है। जो प्रमुदित होता है, वह प्रीतिको प्राप्त होता है; जिसके मनमें प्रीति उत्पन्न होती है, उसका चित्त शान्त हो जाता है, शान्त चित्तवाला सुख अनुभव करता है, सुखीका मन एकाग्र होता है। महानाम ! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक विषमताको प्राप्त हुई जनतामें रहता हुआ वैषम्य-रहित जीवन व्यतीत करता है,

व्यापाद-युक्त प्रजामें अव्यापादका जीवन व्यतीत करता है, धर्मके स्रोतको सर्मपित हुआ हुआ त्यागानुस्मृतिकी भावना करता है।

"फिर महानाम! तुम देवतानुस्मरण करना—चातुर्महाराजिका देवता हैं, त्र्योत्रिश देवता हैं, याम देवता हैं, तुषित देवता हैं, निर्माण-रति देवता हैं, पर्निमित वशवर्ती देवता हैं, ब्रह्मकायिक देवता हैं, और इनसे ऊपरके भी देवता हैं। जैसी श्रद्धासे समन्वित होकर वे यहाँसे च्युत होकर वहाँ उत्पन्न हुए, मेरे पास भी वैसी श्रद्धा है; जैसे शीलसे समन्वित होकर वे यहाँसे च्युत होकर वहाँ उत्पन्न हुए, मेरे पास भी वैसा शील है; जैसे श्रुतसे समन्वित होकर वे यहाँसे च्युत होकर वहाँ उत्पन्न हुए, मेरे पास भी वैसा श्रुत (–ज्ञान) है; जैसे त्यागसे समन्वित होकर वे यहाँसे च्युत होकर वहाँ उत्पन्न हुए, मेरे पास भी वैसा त्याग है; जैसी प्रज्ञासे समन्वित होकर वे यहाँसे च्युत होकर वहाँ उत्पन्न हुए, मेरे पास भी वैसी प्रज्ञा है। महानाम! जिस समय आर्य-श्रावक अपनी और उन देवताओंकी श्रद्धा, शील, श्रुत (–ज्ञान), त्याग तथा प्रज्ञाका अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त राग-युक्त नहीं होता, द्वेष-युक्त नहीं होता, मोह-युक्त नहीं होता, उस समय देवताओंको लेकर उसका चित्त ऋजु ही होता है। महानाम! जिस आर्य-श्रावकका चित्त ऋजु होता है, उसे अर्थ-बोध हो जाता है, धर्म-बोध हो जाता है, उसे धर्माश्रित मोद प्राप्त होता है। जो प्रमुदित होता है, वह प्रीतिको प्राप्त होता है; जिसके मनमें प्रीति उत्पन्न होती है, उसका मन शान्त हो जाता है, शान्त चित्तवाला सुख अनुभव करता है, सुखीका मन एकाग्र होता है। महानाम! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक विषमताको प्राप्त हुई जनतामें रहता हुआ वैषम्य-रहित जीवन व्यतीत करता है, व्यापाद-युक्त प्रजामें अव्यापादका जीवन व्यतीत करता है, धर्मके स्रोतको सर्मपित हुआ हुआ देवतानुस्मृतिकी भावना करता है।

२. दुतियमहानामसुत्त

एक समय भगवान शाक्य (जनपद) के कपिलवस्तु (नगर) के निग्रोधाराममें विहार करते थे। उस समय महानाम शाक्यको रोगी-शय्यासे उठे अभी थोड़ा ही समय हुआ था। उस समय बहुतसे भिक्षु भगवानके लिए चीवर तैयार कर रहे थे—"चीवरका बनना समाप्त हो जानेपर और (वर्षावास के) तीन महीने पूरे हो जानेपर भगवान चारिकाके लिए चल देंगे।' महानाम शाक्यने सुना—"बहुतसे भिक्षु भगवानके लिए चीवर तैयार कर रहे हैं। चीवरका बनना समाप्त हो जानेपर और तीन महीने समाप्त हो जानेपर भगवान चारिकाके लिए चल देंगे।"

तब महानाम शाक्य जहाँ भगवान थे, वहाँ गया। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे महानाम शाक्यने भगवानको यह कहा—"भन्ते! मैंने सुना है कि बहुत-से भिक्षु आपका चीवर तैयार कर रहे हैं। चीवर तैयार हो जानेपर और तीन महीने पूरे हो जानेपर भगवान चारिकाके लिए चल देंगे।' हम लोग जो नाना विहारों (=चित्त-प्रवृत्तियों) में विचरनेवाले हैं, किस विहारमें विचरण करें?"

"महानाम! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। महानाम! तुम्हारे जैसे कुल-पुत्रोंके लिए यही योग्य है कि तुम तथागतके पास जाओ, और उससे पूछो—'भन्ते! हम लोग नाना विहारोंमें विचरनेवाले हैं, किस विहारमें विचरण करें?' महानाम! जो श्रद्धावान होता है, वह (उद्देश्यकी) पूर्ति करनेवाला होता है, अश्रद्धावान नहीं; जो प्रयत्न करनेवाला है, वह पूर्ति करनेवाला होता है, आलसी नहीं, जो स्मृतिमान होता है, वह पूर्ति करनेवाला होता है, मूढ़-स्मृतिमान नहीं; जो एकाग्रता-युक्त होता है, पूर्ति करनेवाला होता है, एकाग्रता-रहित नहीं, प्रज्ञावान पूर्ति करनेवाला होता है दुष्प्रज्ञ नहीं। महानाम! तुम इन पाँच गुणों (=धर्मों) में प्रतिष्ठित होकर, और छह धर्मोंका भी अभ्यास करना।

"महानाम! तुम तथागतका अनुस्मरण करना—'वह भगवान अर्हत है..........वह भगवान हैं।' महानाम! जिस समय आर्य-श्रावक तथागतका अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त राग-युक्त नहीं होता, द्वेष-युक्त नहीं होता, मोह-युक्त नहीं होता, उस समय तथागतको लेकर उसका चित्त ऋजु ही होता है। महानाम! जिस आर्य-श्रावकका चित्त ऋजु होता है, उसे अर्थ-बोध हो जाता है, धर्म-बोध हो जाता है, उसे धर्माश्रित मोद प्राप्त होता है। जो प्रमुदित होता है, वह प्रीति को प्राप्त होता है। जिसके मनमें प्रीति उत्पन्न होती है, उसका चित्त (=काम) शान्त होता है। शान्त-चित्त वाला सुख अनुभव करता है। सुखीका मन एकाग्र होता है। महानाम! तुम चलते समय भी, खड़े रहते समय भी, बैठे रहते समय भी, लेटे रहनेपर भी, काममें लगे रहनेपर भी, घर-गृहस्थीके झंझटोंमें बझे रहते हुए भी इस बुद्धानुस्मृतिकी भावना करना।

"फिर महानाम! धर्मका अनुस्मरण करना......संघका अनुस्मरण करना.........अपने शीलोंका अनुस्मरण करना........अपने त्यागका अनुस्मरण करना........देवताओंका अनुस्मरण करना......देवताओंका अनुस्मरण करना—'चातुर्महाराजिका देवता हैं......और इनके ऊपरके भी देवता

हैं। जैसी श्रद्धासे समन्वित होकर, वे यहाँसे च्युत होकर, वहाँ उत्पन्न हुए, मेरे पास भी वैसी श्रद्धा है। जैसे शीलसे.......जैसे श्रुत (–ज्ञान) से.......जैसे त्यागसे ....जैसी प्रज्ञासे समन्वित होकर, वे यहाँसे च्युत होकर, वहाँ उत्पन्न हुए, मेरे पास भी वैसी प्रज्ञा है। महानाम! जिस समय आर्य-श्रावक अपनी और उन देवताओंकी श्रद्धा, शील, श्रुत (–ज्ञान), त्याग तथा प्रज्ञाका अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त राग-युक्त नहीं होता, द्वेष-युक्त नहीं होता, मोह-युक्त नहीं होता, उस समय देवताओंको लेकर उसका चित्त ऋजु ही रहता है। महानाम! जिस आर्य-श्रावकका चित्त ऋजु होता है, उसे अर्थ-बोध हो जाता है, धर्म-बोध हो जाता है, उसे धर्माश्रित मोद प्राप्त होता है। जो प्रमुदित होता है, वह प्रीतिको प्राप्त होता है; जिसके मनमें प्रीति उत्पन्न होती है, उसका मन शान्त हो जाता है, शान्त चित्तवाला सुख अनुभव करता है, सुखीका मन एकाग्र होता है। महानाम! तुम चलते समय भी, खड़े रहते समय भी, बैठे रहते समय भी, लेटे रहनेपर भी, काममें लगे रहनेपर भी, घर-गृहस्थीके झंझटोंमें बझे रहते हुए भी इस देवता-अनुस्मृतिकी भावना करना।

३. नन्दियसुत्त

एक समय भगवान शाक्य (जनपद) के कपिलवस्तु (नगर) के निग्रोधाराममें विहार करते थे। उस समय भगवान श्रावस्तीमें वर्षावास करनेके इच्छुक थे। नन्दिय शाक्यने सुना––'भगवान श्रावस्तीमें वर्षावास करना चाहते हैं।" तब नन्दिय शाक्यके मनमें यह हुआ––"क्यों न मैं भी श्रावस्तीमें ही वर्षा-काल व्यतीत करूँ। वहाँ अपना कार-बार (=कर्मान्त) भी देखूँगा और समय-समय पर भगवानका दर्शन करना भी मिलेगा।"

तब भगवानने श्रावस्तीमें 'वर्षा-वास' किया। नन्दिय शाक्य भी वर्षा कालमें श्रावस्तीमें रहने लगा। वहाँ कारोबार भी देखता था और उसे समय-समयपर भगवानका दर्शन करना भी मिलता था। उस समय बहुतसे भिक्षु भगवानका चीवर बनानेमें लगे थे––'चीवरकी समाप्तिपर और (वर्षावासके) तीन महीने पूरे होनेपर भगवान चारिकाके लिए निकल पड़ेंगे।"

तब नन्दिय शाक्य जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुए नन्दिय शाक्यने भगवानसे यह कहा–"भन्ते! मैंने यह सुना है कि बहुतसे भिक्षु भगवानके लिए चीवर बना रहे हैं। चीवर की बनवाई और (वर्षावासके) तीन महीनोंकी समाप्तिपर भगवान

चारिकाके लिए चल देंगे।' हम लोग जो नाना विहारों (=चित्त-वृत्तियों) में विचरने-वाले हैं; किस विहारमें विचरण करें?"

"नन्दिय! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। नन्दिय! तुम्हारे जैसे कुलपुत्रोंके लिए यही योग्य है कि तुम तथागतके पास जाओ, और उनसे पूछो—'भन्ते! हम लोग नाना विहारोंमें विचरनेवाले हैं, किस विहारमें विचरण करें?' नन्दिय! जो श्रद्धावान होता है, वह (उद्देश्यकी) पूर्ति करनेवाला होता है, अश्रद्धावान नहीं; जो शीलवान होता है, वह पूर्ति करनेवाला होता है, दुश्शील नहीं; जो प्रयत्न करनेवाला हैं, वह पूर्ति करनेवाला होता है, आलसी नहीं, जो स्मृतिमान होता है, वह पूर्ति करने-वाला होता है, मूढ़-स्मृतिमान नहीं; जो एकाग्रता-युक्त होता है, पूर्ति करनेवाला होता है, एकाग्रता-रहित नहीं; प्रज्ञावान पूर्ति करनेवाला होता है, दुष्प्रज्ञ नहीं। नन्दिय! तुम इन छह गुणों (=धर्मों) में प्रतिष्ठित होकर, और पाँच धर्मोंमें स्मृति उपस्थित रखनी चाहिए।

"नन्दिय! तुम तथागतका अनुस्मरण करना 'वह भगवान अर्हत हैं, सम्यक सम्बुद्ध हैं, विद्या तथा आचरणसे युक्त हैं, सुगत हैं, लोकके जानकार हैं, अनुपम हैं, (दुष्ट) पुरुषोंका दमन करनेवाले सारथी हैं, देव-मनुष्योंके शास्ता हैं, बुद्ध भगवान हैं।' नन्दिय! इस प्रकार तुम्हें तथागतके सम्बन्धमें अपनी स्मृति उपस्थित करनी चाहिए।

"फिर नन्दिय! तुम धर्मका अनुस्मरण करना—'भगवान द्वारा धर्म सु-आख्यात है, सांदृष्टिक है, अकालिक है, इसके बारेमें कहा जा सकता है कि 'आओ और स्वयं देख लो', ऊपर उठानेवाला है, प्रत्येक विज्ञ आदमी स्वयं साक्षात्कार कर सकता है।' नन्दिय! इस प्रकार तुम्हें धर्मके सम्बन्धमें अपनी स्मृति उपस्थित रखनी चाहिए।

"फिर नन्दिय! तुम कल्याण-मित्रोंका अनुस्मरण करना—'यह मेरे लिए कितने बड़े लाभकी बात है, सुलाभकी बात है, कि मेरे ऐसे कल्याण-मित्र हैं, जो मुझपर दया करनेवाले हैं, जो मेरा हित चाहनेवाले हैं, जो मुझे उपदेश देनेवाले हैं, तथा जो मेरा अनुशासन करनेवाले हैं।' नन्दिय! इस प्रकार तुम्हें कल्याण-मित्रोंके सम्बन्धमें अपनी स्मृति उपस्थित रखनी चाहिए।

"फिर नन्दिय! तुम अपने त्यागका अनुस्मरण करना—'यह मेरे लिए कितने बड़े लाभकी बात है, सुलभकी बात है कि मैं मात्सर्यसे युक्त प्रजाके बीचमें रहता हुआ मात्सर्यसे रहित हो गृहस्थ-जीवन व्यतीत करता हूँ—मुक्त-त्यागी, खुला-

हाथ रखकर, परित्याग-रत, याचकोंका सहायक बन, दान-शील तथा बाँटनेवाला।" इस प्रकार नन्दिय! तुम्हें त्यागके सम्बन्धमें अपनी स्मृति उपस्थित करनी चाहिए।

"फिर नन्दिय! तुम देवताओंको अनुस्मरण करना—'जो कौर खानेवाले (कायावचर) देवता हैं, उनके सह-अस्तित्वका अतिक्रमणकर जो देवता किसी मनोमय-शरीरको धारण करते हैं, उन्हें अपने लिए कुछ कर्तव्य-कर्म नहीं दिखाई देता तथा उनके किए कर्मोंका संग्रह नहीं होता। नन्दिय! जैसे किसी क्षीणास्रव (=असमय विमुक्त) भिक्षुको अपने लिए कुछ कर्तव्य-कर्म नहीं दिखाई देता, अथवा उसका किया संग्रहीत नहीं होता; इसी प्रकार नन्दिय! जो कौर खानेवाले कायावचर देवता हैं, उनके सह-अस्तित्वका अतिक्रमण कर जो देवता किसी मनोमय शरीरको धारण करते हैं, उन्हें अपने लिए कुछ कर्तव्य-कर्म नहीं दिखाई देता, अथवा उनका किया संग्रहीत नहीं होता। इस प्रकार नन्दिय! तुम्हें देवताओंके सम्बन्धमें अपनी स्मृति उपस्थित करनी चाहिए।

"नन्दिय! जिस आर्य-श्रावकमें ये ग्यारह बातें होती हैं, वह पाप-स्वरूप अकुशल धर्मोंका त्याग ही करता है, अपनाता नहीं है। नन्दिय! जिस प्रकार कोई अधोमुख घड़ा पानी का वमन ही करता है, उसे वापस नहीं लेता है; अथवा नन्दिय! जिस प्रकार सूखे तिनकोंपर डाली हुई आग उन्हें जलाती ही है, बिना जलाए वापस नहीं लौटती; इसी प्रकार नन्दिय! जिस आर्य-श्रावकमें ये ग्यारह बातें होती हैं, वह पाप-स्वरूप अकुशल-धर्मोंका त्याग ही करता है, अपनाता नहीं।

४. सुभूतिसुत्त

उस समय सद्ध भिक्षुको साथ लिए आयुष्मान सुभूति जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। जाकर भगवानको प्रणाम कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान सुभूतिको भगवानने कहा—

"सुभूति! इस भिक्षुका क्या नाम है?"

"भन्ते! इस भिक्षुका नाम है सद्ध। यह उपासक सुदत्तका पुत्र है। यह श्रद्धापूर्वक घरसे बे-घर हो प्रव्रजित हुआ है।"

"सुभूति! क्या यह उपासक सुदत्तका 'श्रद्धा' नामका पुत्र, जो श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, 'श्रद्धावान' के लक्षणोंसे परिचित है?"

"भगवान! इसीके लिए उचित समय है। सुगत! इसीका उचित काल है कि आप श्रद्धावानके लक्षण कहें। तब हम जानेंगे कि यह भिक्षु श्रद्धावानके लक्षणोंसे परिचित है वा नहीं?

"तो सुभूति। सुन। अच्छी तरह मनमें धारण कर। कहता हूँ।"

"अच्छा भन्ते!" कह आयुष्मान सुभूतिने भगवानको प्रत्युत्तर दिया। भगवानने यह कहा—

"भिक्षु! भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्षके नियमोंका पालन करनेवाला, आचरण तथा व्यवहार (=गोचर) से युक्त, छोटे-से-छोटे दोषके करनेमें भयदर्शी, तथा शिक्षा पदोंका भली प्रकार पालन करनेवाला। सुभूति! यह जो 'भिक्षु शीलवान होता है......शिक्षा-पदोंका भली प्रकार पालन करनेवाला' होता है, यह भी सुभूति श्रद्धावानका लक्षण है।

"फिर सुभूति! भिक्षु बहुश्रुत होता है, श्रुत-धारी, श्रुत-संग्राहक; जो अर्थ तथा व्यंजन सहित आदि, मध्य, अन्तमें कल्याणकारक धर्म कहे जाते हैं और जो सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध धर्म हैं, ऐसे धर्म उसके द्वारा बहुत सुने गए होते हैं, धारण किए गए होते हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए होते हैं, मनके द्वारा सम्यक रूपसे जाने गए होते हैं तथा (सम्यक) दृष्टिके द्वारा भली प्रकार बींधे गए होते हैं। सुभूति! यह जो 'भिक्षु बहुश्रुत होता है ......भली प्रकार बींधे गए होते हैं,' यह भी सुभूति! श्रद्धावानका लक्षण है।

"फिर सुभूति! भिक्षु कल्याण-मित्र होता है, भला दोस्त, भला यार। सुभूति! यह जो 'भिक्षु कल्याण-मित्र होता है, भला दोस्त, भला यार,' यह भी सुभूति! श्रद्धावानका लक्षण है।

"फिर सुभूति! भिक्षु सुवच होता है, भली बातको ग्रहण करनेवाला, अच्छी शिक्षाको स्वीकार करनेवाला। सुभूति! यह जो 'भिक्षु सुवच होता है, भली बातको ग्रहण करनेवाला, अच्छी शिक्षाको स्वीकार करनेवाला', यह भी सुभूति! श्रद्धावानका लक्षण है।

"फिर सुभूति! सह-ब्रह्मचारियोंके प्रति जो उसके कर्तव्य होते हैं, उनके विषय में दक्ष होता है, उन कर्तव्योंको प्रमाद-रहित पूरा करनेवाला। सुभूति! यह जो 'सह-ब्रह्मचारियोंके प्रति जो उसके कर्तव्य होते हैं, उनके विषयमें दक्ष होता है, उन कर्तव्योंको प्रमाद रहित रहकर पूरा करनेवाला,' यह भी सुभूति! श्रद्धावानका लक्षण है।

"फिर सुभूति! भिक्षु धर्म-कामी होता है, प्रिय-भाषी, धर्म तथा विनयको लेकर आनन्दित रहनेवाला। सुभूति! यह जो भिक्षु 'धर्म-कामी होता है, प्रिय-भाषी, धर्म तथा विनयको लेकर आनन्दित रहनेवाला होता है,' यह भी सुभूति! श्रद्धावानका लक्षण है।

"फिर सुभूति ! भिक्षु अकुशल धर्मोंका प्रहाण करनेके लिए, कुशल-धर्मोंको अंगीकार करनेके लिए प्रयत्नशील रहता है, दृढ़-पराक्रमी रहता है, भले कामोंके करनेमें निरन्तर लगा रहनेवाला होता है'। सुभूति ! यह जो 'भिक्षु अकुशल धर्मोंको प्रदान करनेके लिए, कुशल अंगीकार करनेके लिए, प्रयत्नशील रहता है, दृढ़-पराक्रमी रहता है, भले कामोंके करनेमें निरन्तर लगे रहनेवाला होता है', यह भी सुभूति ! श्रद्धावानका लक्षण है।

"फिर सुभूति ! भिक्षु इसी शरीरमें सुख देनेवाले चारों चैतसिक ध्यानोंको अनायास प्राप्त करनेवाला होता है, प्रचुर मात्रामें प्राप्त करनेवाले तथा बहुलतासे प्राप्त करनेवाला होता है"। सुभूति ! यह जो 'भिक्षु इसी शरीरमें सुख देनेवाले चारों चैतसिक ध्यानोंको अनायास प्राप्त करनेवाला होता है,प्रचुर मात्रामें प्राप्त करनेवाला तथा बहुलतासे प्राप्त करनेवाला होता है', यह भी सुभूति ! श्रद्धावानका लक्षण है।

"फिर सुभूति ! भिक्षु अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंका अनुस्मरण करता है, जैसे एक जन्मका, दो जन्मोंका, तीन जन्मोंका, चार जन्मोंका, पाँच जन्मोंका, दस जन्मोंका, बीस जन्मोंका, तीस जन्मोंका, चालीस जन्मोंका, पचास जन्मोंका, सौ जन्मोंका, हजार जन्मोंका, लाख जन्मोंका, अनेक संवर्त-कल्पोंका, अनेक विवर्त-कल्पोंका, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पोंका कि मैं अमुक स्थानपर था, यह नाम था, यह गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा भोजन ग्रहण करता था, इस प्रकार सुख-दुखका अनुभव किया तथा इतनी आयु तक जीवित रहा। वहाँसे च्युत होकर मैं ने अमुक जगह जन्म ग्रहण किया। वहाँ भी मेरा अमुक नाम था, अमुक गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा भोजन ग्रहण करता था, इस प्रकार सुख-दुखका अनुभव किया तथा इतनी आयु तक जीवित रहा। वहाँसे च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुआ, इस प्रकार आकार-उद्देश्य सहित नाना जन्मोंका अनुस्मरण करता है।' सुभूति ! यह जो 'भिक्षु अनेक प्रकारके पूर्वजन्मोंका अनुस्मरण करता है........नाना जन्मोंका अनुस्मरण करता है, यह भी सुभूति ! श्रद्धावानका लक्षण है।

"फिर सुभूति ! भिक्षु दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे प्राणियोंको मरते उत्पन्न होते देखते हैं, हीन योनिमें, श्रेष्ठ योनिमें, सुवर्ण या दुर्वर्ण, कर्मानुसार सुगति प्राप्त अथवा दुर्गति-प्राप्त। वह जानता है कि ये प्राणी शरीरके, वाणीके तथा मनके दुष्कर्मोंसे युक्त हैं,ये आर्यों (=श्रेष्ठ जनों) के निन्दक हैं, ये मिथ्या-दृष्टिवाले हैं,मिथ्या-मतके ग्रहण किए रहनेवाले; इसलिए ये शरीरके छूटनेपर, मरनेके अनन्तर, अपाय, दुर्गति, नरकमें उत्पन्न हुए हैं। अथवा, वह जानता है, कि ये प्राणी, शरीरके, वाणीके

तथा मनके दुष्कर्मोंसे मुक्त हैं,ये आर्यों (=श्रेष्ठजनों) के प्रशंसक हैं, ये सम्यक दृष्टिवाले हैं, सम्यक दृष्टिको ग्रहण किए रहनेवाले; इसीलिए ये शरीर छूटनेपर, मरनेके अनन्तर सुगति, स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न हुए। इस प्रकार वह दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे प्राणियोंको मरते-उत्पन्न होते देखता है, हीन योनिमें, श्रेष्ठ योनिमें, सुवर्ण या दुर्वर्ण, कर्मानुसार सुगति-प्राप्त अथवा दुर्गति-प्राप्त। सुभूति ! यह जो 'भिक्षु दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे......अथवा दुर्गति प्राप्त', यह भी सुभूति ! श्रद्धावानका लक्षण है।

"फिर सुभूति ! वह भिक्षु आस्रवोंका क्षयकर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी शरीरमें स्वयं जानकर साक्षातकर, प्राप्तकर विहार करता है'। सुभूति ! यह जो 'भिक्षु आस्रवोंका क्षयकर........विहार करता है,' यह भी सुभूति ! श्रद्धावानका लक्षण है।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान सुभूतिने यह कहा—"भन्ते ! आपने जो श्रद्धावानके लक्षण कहे, वे सब इस भिक्षुमें दिखाई देते हैं और यह भिक्षु उन सबमें दिखाई देता है।"

"भन्ते ! यह भिक्षु शीलवान है, प्रातिमोक्षके नियमोंका पालन करनेवाला, आचरण तथा व्यवहार (=गोचर) से युक्त, छोटे-से-छोटे दोषके करनेमें भय-दर्शी तथा शिक्षा पदोंका भली प्रकार पालन करनेवाला।

"भन्ते ! यह भिक्षु बहुश्रुत है, श्रुतधारी, श्रुत-संग्राहक; जो अर्थ तथा व्यंजन सहित आदि, मध्य, अन्तमें कल्याणकारक धर्म कहे जाते हैं और जो सम्पूर्ण रूपसे परिशुद्ध धर्म हैं, ऐसे धर्म इसके द्वारा बहुत सुने गए हैं, धारण किए गए हैं, वाणी द्वारा परिचित किए गए हैं, मनके द्वारा सम्यक रूपसे जाने गए हैं तथा (सम्यक) दृष्टि के द्वारा भली प्रकार बींधे गए हैं।

"भन्ते ! यह भिक्षु कल्याण-मित्र है, भला दोस्त, भला यार।

"भन्ते ! यह भिक्षु सुवच है.......अच्छी शिक्षाको स्वीकार करनेवाला।

"भन्ते ! यह भिक्षु सह-ब्रह्मचारियोंके प्रति जो उसके कर्तव्य....पूरा करनेवाला है।

"भन्ते ! यह भिक्षु धर्म-कामी है.......आनन्दित रहनेवाला।

"भन्ते ! यह भिक्षु अकुशल-धर्मोंका प्रहाणके लिए.....निरन्तर लगा रहनेवाला है।

"भन्ते ! यह भिक्षु इसी शरीरमें सुख देनेवाले....प्राप्त करनेवाला है।

"भन्ते ! यह भिक्षु अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंका अनुस्मरण करता है, जैसे एक जन्मका, दो जन्मका......इस प्रकार आकार-उद्देश्य सहित नाना जन्मोंका अनुस्मरण करता है।

"भन्ते ! यह भिक्षु दिव्य, विशुद्ध, मनुष्योत्तर चक्षुसे.......सुगति-प्राप्त वा दुर्गति-प्राप्त।

"भन्ते ! यह भिक्षु आस्रवोंका क्षय कर........प्राप्त कर विहार करता है। भन्ते ! आपने जो श्रद्धावानके लक्षण कहे, वे सब इस भिक्षुमें दिखाई देते हैं और यह भिक्षु उन सबमें दिखाई देता है।"

"बहुत अच्छा, सुभूति ! बहुत अच्छा। सुभूति ! तो तुम इस सद्ध भिक्षुकी संगति करो। सुभूति ! जब भी तुम्हारी तथागतके दर्शन करनेकी इच्छा हो, तो तुम इस भिक्षुको साथ ले, तथागतके दर्शनके लिए आओ।"

५. मेत्तासुत्त

भिक्षुओ, जो मैत्री-स्वरूप चित्तकी विमुक्ति है, उसका अभ्यास करनेसे उसकी भावना करनेसे, उसे बढ़ानेसे, उसमें विपुलता प्राप्त करनेसे, उसे वस्तु-स्वरूप करनेसे, उसका अनुष्ठान करनेसे, उसे सम्यक परिचित कर लेनेसे, उसका अच्छी तरह अभ्यास कर लेनेसे ग्यारह शुभ-परिणामोंकी आशा की जा सकती है; कौन-से ग्यारह ? वह सुखपूर्वक सोता है, सुखपूर्वक उठता है, बुरे स्वप्न नहीं देखता, मनुष्योंका प्रिय होता है, अमनुष्यों (=प्रेत आदिका) प्रिय होता है, उसकी देवता रक्षा करते हैं, आग, विष या शस्त्र से उसके शरीरको आघात नहीं पहुँचता, उसका चित्त शीघ्र एकाग्र हो जाता है, मुख-वर्ण प्रसन्न रहता है, होश-हवास सहित मृत्युको प्राप्त होता है, यदि अर्हत्व प्राप्त नहीं होता तो भी ब्रह्म लोक-गामी होता है। भिक्षुओ, जो मैत्री-स्वरूप चित्तकी विमुक्ति है, उसका अभ्यास करनेसे, उसकी भावना करनेसे, उसे बढ़ानेसे, उसमें विपुलता प्राप्त करनेसे उसे वस्तु-स्वरूप करनेसे, उसका अनुष्ठान करनेसे, उसे सम्यक परिचित कर लेनेसे, उसका अच्छी तरह अभ्यास कर लेनेसे ग्यारह शुभ-परिणामोंकी आशा की जा सकती है।

६. अट्ठकनागरसुत्त

एक समय आयुष्मान आनन्द वैशालीके वेलु-ग्राममें विहार करते थे। उस समय अट्ठक नगरवासी दशम नामका गृहपति किसी कामसे पाटलिपुत्र आया था। तब अट्ठक नगरवासी दशम गृहपति कुक्कुटाराममें एक भिक्षुके पास पहुँचा। पास जाकर उस भिक्षुसे बोला—

"भन्ते ! इस समय आयुष्मान आनन्द कहाँ विचरते हैं ?"

"गृहपति ! इस समय आयुष्मान आनन्द वैशालीके वेलु-ग्राममें निवास कर रहे हैं।"

तब अट्ठक-नगरवासी दशम गृहपति अपना पाटलिपुत्रका काम समाप्त कर वैशालीके वेलु-ग्राममें जहाँ आयुष्मान आनन्द थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर आयुष्मान आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए अट्ठक नगरवासी दशम गृहपतिने आयुष्मान आनन्दसे प्रश्न किया—

"भन्ते आनन्द ! क्या उन जानकार, दर्शी, अर्हत, सम्यक सम्बुद्ध भगवानने कोई ऐसा एक धर्म (=बात) बताया है, जिसका यदि भिक्षु अप्रमादपूर्वक आलस्य-रहित पालन करे तो उसका अविमुक्त चित्त विमुक्त हो जाए; जो आस्रव क्षीण नहीं हुए रहते वे क्षीण हो जाएँ अथवा अप्राप्त अनुपम योगक्षेम (=निर्वाण) प्राप्त हो जाए ?"

"गृहपति ! उन जानकार, दर्शी, अर्हत, सम्यक सम्बुद्ध भगवानने ऐसा एक धर्म (=बात) बताया है, जिसका यदि भिक्षु अप्रमादपूर्वक आलस्य-रहित पालन करे, तो उसका अविमुक्त चित्त विमुक्त हो जाए, जो आस्रव क्षीण नहीं हुए रहते, वे क्षीण हो जाएँ अथवा अप्राप्त अनुपम योग-क्षेम (=निर्वाण) प्राप्त हो जाए।"

"भन्ते आनन्द ! उन जानकार, दर्शी, अर्हत, सम्यक सम्बुद्ध भगवानने कौन-सा ऐसा एक धर्म बताया है, जिसका यदि भिक्षु अप्रमादपूर्वक आलस्य-रहित पालन करे, तो उसका अविमुक्त चित्त विमुक्त हो जाए, जो आस्रव क्षीण नहीं हुए करते, वे क्षीण हो जाएँ अथवा अप्राप्त अनुपम योग-क्षेम (=निर्वाण) प्राप्त हो जाए ?"

गृहपति ! भिक्षु काम-भोगका त्याग कर, अकुशल-धर्मोंका त्याग कर प्रथम-ध्यानको प्राप्तकर विचरता है, जिसमें वितर्क और विचार रहते हैं, जो एकान्तवाससे उत्पन्न होता है, जिसमें प्रीति और सुख रहते हैं। वह यह सोचता है—'यह ध्यान भी अभिसंस्कृत है, चित्तज है।' वह जानता है कि 'जो कुछ भी अभिसंस्कृत है, चित्तज है, वह अनित्य है, निरोध-धर्म है।' उसको उसी स्थितिमें आस्रव-क्षय प्राप्त हो जाता है; और यदि आस्रव-क्षय नहीं भी होता, तो उसी धर्म-स्नेहके प्रतापसे, उसी धर्म-प्रेमके बलसे इधरके पाँचों संयोजनों (=बन्धनों) का नाश हो ओपपातिक होता है, अर्थात अयोनिज देवयोनिमें उत्पन्न होता है। वहीं, उसका निर्वाण होता है—फिर उस लोकसे लौटकर संसारमें नहीं आता। गृहपति ! उन जानकार, दर्शी, अर्हत, सम्यक सम्बुद्ध भगवानने यह भी एक धर्म (=बात) ऐसा बतलाया है, जिसका यदि भिक्षु अप्रमाद-

पूर्वक आलस्य-रहित पालन करे, तो उसका अविमुक्त चित्त विमुक्त चित्त हो जाए, जो आस्रव क्षीण हुए नहीं रहते, वे क्षीण हो जाएँ अथवा अप्राप्त योग-क्षेम (=निर्वाण) प्राप्त हो जाए।"

"फिर गृहपति! भिक्षु वितर्क और विचारोंके उपशमनसे अन्दरकी प्रसन्नता और एकाग्रता-रूपी द्वितीय-ध्यानको प्राप्त होता है, जिसमें न वितर्क होते हैं, न विचार; जो समाधिसे उत्पन्न होता है और जिसमें प्रीति तथा सुख होते हैं.... तृतीय ध्यान......चतुर्थ-ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। वह सोचता है—'यह ध्यान भी अभिसंस्कृत है, चित्तज।' वह जानता है कि 'जो कुछ भी अभिसंस्कृत है, चित्तज है, वह अनित्य है, निरोध-धर्म है।' उसको उसी स्थितिमें आस्रव-क्षय प्राप्त हो जाता है, और यदि आस्रव-क्षय नहीं भी होता, तो उसी धर्म-स्नेहके प्रतापसे, उसी धर्म-प्रेमके बलसे इधरके पाँचों संयोजनों (=बंधनों) का नाश हो औपपातिक होता है अर्थात अयोनिज देवयोनिमें उत्पन्न होता है। वहीं उसका निर्वाण होता है, फिर उस लोकसे लौट कर संसारमें नहीं आता। गृहपति! उन जानकार, दर्शी, अर्हत, सम्यक सम्बुद्ध भगवानने यह भी एक धर्म (=व्रात) ऐसा बताया है, जिसका यदि भिक्षु अप्रमादपूर्वक आलस्य-रहित पालन करे, तो उसका अविमुक्तचित्त विमुक्त-चित्त हो जाए; जो आस्रव क्षीण न हुए हों, वे क्षीण हो जाएँ; अथवा अप्राप्त योग-क्षेम (=निर्वाण) प्राप्त हो जाए।"

"फिर गृहपति! भिक्षु एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चतुर्थ दिशाको मैत्री-चित्तसे स्पर्श करता है—ऊपर, नीचे, बीचमें, सर्वदा, सर्वत्र, समस्त लोकको। वह विपुल विशाल, असीम, अवैर, अव्यापाद चित्तसे स्पर्श करता हुआ विचरता है। वह सोचता है—'यह मैत्री चित्त-विमुक्त भी अभिसंस्कृत है, चित्तज है।' वह जानता है कि 'जो कुछ भी अभिसंस्कृत है, चित्तज है, वह अनित्य है, निरोध-धर्म है।' उसको उसी स्थितिमें आस्रव-क्षय प्राप्त होता है, और यदि आस्रव-क्षय नहीं भी होता, तो उसी धर्म-स्नेहके प्रतापसे, उसी धर्म-प्रेमके बलसे इधरके पाँचों संयोजनोंका नाश कर औपपातिक होता है अर्थात अयोनिज देवयोनिमें उत्पन्न होता है। वहीं उसका निर्वाण होता है, फिर उस लोकसे लौटकर संसारमें नहीं आता। गृहपति! उन जानकार, दर्शी, अर्हत, सम्यक सम्बुद्ध भगवानने......अप्राप्त योग-क्षेम (=निर्वाण) प्राप्त हो जाए।

फिर गृहपति! भिक्षु एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चतुर्थ दिशाको करुणा-युक्त चित्तसे.....मुदिता-युक्त चित्तसे...... उपेक्षा-युक्त चित्त

से स्पर्श करता है—ऊपर, नीचे, बीचमें, सर्वदा, सर्वत्र, समस्त लोक को। वह विपुल, विशाल, असीम,अवैर, अव्यापाद चित्त से स्पर्श करता हुआ विचरता है। वह सोचता है—'यह उपेक्षा चित्त-विमुक्ति भी अभिसंस्कृत है, चित्तज है।' वह जानता है कि 'जो कुछ भी अभिसंस्कृत है, चित्तज है, वह अनित्य है, निरोध-धर्म है।' उसको उसी स्थितिमें आस्रव-क्षय प्राप्त होता है, और यदि आस्रव-क्षय नहीं भी होता, तो उसी धर्म-स्नेहके प्रतापसे, उसी धर्म-प्रेमके बलसे, इधरके पाँचों संयोजनोंका नाश कर ओपपातिक होता है अर्थात अयोनिज देवयोनिमें उत्पन्न होता है। वहीं उसका निर्वाण होता है, फिर उस लोकसे लौटकर संसारमें नहीं आता। गृहपति! उन जानकार,दर्शी, अर्हत, सम्यक सम्बुद्ध भगवानने. . . . अप्राप्त योग-क्षेम (=निर्वाण) प्राप्त हो जाए।

"फिर गृहपति! भिक्षु सब रूप-संज्ञाओंको पारकर, प्रतिघ-संज्ञाओंको अस्तकर नानात्व-संज्ञाको मनसे निकाल 'आकाश अनंत है' करके आकाशानञ्चायतनको प्राप्त हो विचरता है। वह सोचता है—'यह आकाशानञ्चायतन समापत्ति (=ध्यान) अभिसंस्कृत है, चित्तज है।' वह जानता है कि 'जो कुछ भी अभिसंस्कृत है, चित्तज है, वह अनित्य है, निरोध-धर्म है।' उसको उसी स्थितिमें आस्रव-क्षय प्राप्त होता है, और यदि आस्रव-क्षय नहीं भी होता, तो उसी धर्म-स्नेहके प्रतापसे, उसी धर्म-प्रेमके बलसे, इधरके पाँचों संयोजनोंका नाश कर ओपपातिक होता है अर्थात अयोनिज देवयोनिमें उत्पन्न होता है; वहीं उसका निर्वाण होता है। फिर उस लोकसे लौटकर संसारमें नहीं आता। गृहपति! उन जानकार, दर्शी, अर्हत, सम्यक सम्बुद्ध भगवानने. . . . . .अप्राप्त योग-क्षेम (=निर्वाण) प्राप्त हो जाए।

"फिर गृहपति! भिक्षु 'आकाशानञ्चायतन को पारकर 'विज्ञान अनंत है' करके विज्ञानञ्चायतनको प्राप्त हो विहरता है. . . . .सभी विज्ञानञ्चायतनको पारकर 'कुछ नहीं है' करके आकिञ्चन्यायतनको प्राप्त हो विहरता है। वह सोचता है—'यह आकिञ्चन्यायतन समापत्ति (=ध्यान) भी अभिसंस्कृत है, चित्तज है।" वह जानता है कि 'जो कुछ भी अभिसंस्कृत है, चित्तज है, वह अनित्य है, निरोध-धर्म है।' उसको उसी स्थितिमें आस्रव-क्षय प्राप्त होता है, और यदि आस्रव-क्षय नहीं भी होता, तो उसी धर्म-स्नेहके प्रतापसे, उसी धर्म-प्रेमके बलसे, इधरके पाँचों संयोजनोंका नाश कर ओपपातिक होता है अर्थात अयोनिज देवयोनिमें उत्पन्न होता है; वहीं उसका निर्वाण होता है। फिर उस लोकसे लौटकर संसारमें नहीं आता। गृहपति! उन जानकार, दर्शी, अर्हत, सम्यक सम्बुद्ध भगवानने. . . . . .अप्राप्त योग-क्षेम (=निर्वाण) प्राप्त हो जाए।"

ऐसा कहने पर अट्ठक नगरवासी दशम गृहपतिने आयुष्मान आनन्दको यह कहा—भन्ते आनन्द ! जैसे कोई आदमी एक खजानेकी खोजमें हों, लेकिन उसे एक साथ ही ग्यारह खजाने मिल जाएँ; इसी प्रकार भन्ते ! मैं तो एक ही अमृत-द्वार की खोजमें था, मुझे एक ही साथ आचरण करनेके लिए ग्यारह अमृत-द्वार मिल गए। भन्ते ! जैसे किसीके घरके ग्यारह दरवाजे हों। वह उस घरमें आग लग जानेपर किसी एक भी द्वारसे निकलकर अपने आपको सुरक्षित रख सकता है; उसी प्रकार भन्ते ! मैं इन ग्यारह अमृत-द्वारोंमेंसे किसी एक भी द्वारसे अपना कल्याण कर सकता हूँ। भन्ते ! ये दूसरे सम्प्रदायवाले आचार्यको देनेके लिए आचार्य-धन खोजते रहते हैं। क्या मैं आयुष्मान आनन्दकी कुछ पूजा न करूँ ?

तब अट्ठक नगरवासी दशम गृहपतिने वैशाली और पाटलिपुत्रके भिक्षु संघको एकत्रित कर अपने हाथसे परोसकर बढ़िया भोजन कराया। प्रत्येक भिक्षुको एक-एक दुशालेकी जोड़ी ओढ़ाई, आयुष्मान आनन्दको तीन चीवर। आयुष्मान आनन्दके लिए पाँच सौ (के मूल्यका) विहार बनवाया।

७. गोपालसुत्त

भिक्षुओ, जिस ग्वालेमें ये ग्यारह बातें होती हैं वह गौओंको (चराने) ले जानेके योग्य नहीं होता और उन्नति नहीं कर सकता। कौन-सी ग्यारह बातें ?

भिक्षुओ, वह ग्वाला 'रूप' का जानकार नहीं होता, (गौओंकी बदनपर बनाए गए) चिह्नोंका जानकार नहीं होता, मक्खियों आदिको हटानेवाला नहीं होता, जखमको ढकनेवाला नहीं होता, धुआँ करनेवाला नहीं होता, तीर्थ (=पत्तन) का जानकार नहीं होता, गौओंके पानी पिए और न पिए रहनेका जानकार नहीं होता, रास्तेका जानकार नहीं होता, चरनेकी भूमिका जानकार नहीं होता, बछड़ेके लिए बिन-छोड़े पूरा-पूरा दूध दुह लेनेवाला होता है, जो साँड़ (=गो-पिता) होते हैं, गौओंके आगे-आगे चलनेवाले होते हैं, उनका विशेष आदर करनेवाला, विशेष पूजा करनेवाला नहीं होता। भिक्षुओ, जिस ग्वालेमें ये ग्यारह बातें होती हैं, वह गौओंको (चराने) ले जानेके योग्य नहीं होता और उन्नति नहीं कर सकता।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें यह ग्यारह बातें होती हैं, वह इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में वृद्धि, उन्नति, विपुलता प्राप्त करनेके लिए असमर्थ होता है। कौन-सी ग्यारह ? भिक्षुओ, भिक्षु 'रूप' का जानकार नहीं होता, लक्षणोंके जाननेमें कुशल नहीं होता, मक्खियोंको हटाने वाला नहीं होता, व्रण (=जखम) को ढकनेवाला नहीं होता, धुआँ करनेवाला नहीं होता, तीर्थ (=पत्तन) का जानकार

नहीं होता, पिये हुए को नहीं जानता, गलियों (वीथियों) का जानकार नहीं होता, गोचर (=चरनेकी जगह) कुशल नहीं होता, सब दूहनेवाला होता है तथा जो वृद्ध, चिरकालके प्रव्रजित स्थविर होते हैं, उनकी विशेष-पूजा करनेवाला नहीं होता।

"भिक्षुओ, भिक्षु 'रूप' का जानकार कैसे नहीं होता है? भिक्षुओ, 'यह चारों (पृथ्वी, अप्, तेज, वायु) महाभूत तथा उन महाभूतोंसे उत्पन्न' जो 'रूप' है, उस 'रूप' को यथार्थ रूपसे नहीं जानता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु 'रूप' का जानकार नहीं होता।

"भिक्षुओ, भिक्षु 'लक्षणों' के जाननेमें कैसे कुशल नहीं होता? भिक्षुओ, वह भिक्षु 'कर्मसे ही मूर्ख की पहचान होती है, कर्मसे ही पण्डितकी पहचान होती है,' इस बातको यथार्थ-रूपसे नहीं जानता। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु लक्षणोंके जाननेमें कुशल नहीं होता।

"भिक्षुओ, भिक्षु मक्खियोंके हटानेवाला कैसे नहीं होता? भिक्षुओ, वह भिक्षु उत्पन्न काम-वितर्क को बना रहने देता है, छोड़ता नहीं, त्यागता नहीं, दूर करता नहीं तथा अभाव-प्राप्त करता नहीं, उत्पन्न व्यापाद-वितर्क.......उत्पन्न विहिंसा वितर्क......उत्पन्न अकुशल धर्मोंको बने रहने देता है, छोड़ता नहीं, त्यागता नहीं, दूर करता नहीं तथा अभाव-प्राप्त करता नहीं। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु मक्खियोंको हटानेवाला नहीं होता।

"भिक्षुओ, भिक्षु कैसे व्रणको ढकनेवाला नहीं होता? वह अपनी आँखसे किसी सुन्दर रूपको देखता है, तो उसके निमित्तको और उसके व्यंजनको भी ग्रहण करता है। वह सावधान नहीं रहता कि चक्षुके असंयमसे कहीं लोभ-द्वेष आदि अकुशल पाप-मय ख्याल (उसके मनमें) घर न बना लें। वह उन पापमय विचारोंको दूर करनेके लिए प्रयत्न नहीं करता है, अपनी आँखको काबूमें नहीं रखता है, अपनी आँख-पर संयम नहीं रखता है। वह अपने कानसे सुन्दर शब्द सुनता है...नासिकासे सुगन्धित सूँघता है,.......जिह्वासे रस चखता है.....शरीरसे स्पर्श करता है.....मनसे मनके विषयोंको ग्रहण कर उनके निमित्त और उनके व्यंजनको भी ग्रहण करता है। वह सावधान नहीं रहता है कि मनके असंयमसे कहीं लोभ-मोह आदि अकुशल पापमय ख्याल (उसके मनमें) घर न बना लें। उन पापमय विचारोंको दूर रखनेके लिए प्रयत्न नहीं करता है। अपने मनको काबूमें नहीं रखता है। अपने मनपर संयम नहीं रखता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु व्रणके न ढकनेवाला होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु कैसे धुएँका करनेवाला नहीं होता? भिक्षुओ, वह भिक्षु अपने सुने, अपने पाठ किए धर्मकी दूसरोंके सामने विस्तृत व्याख्या करनेमें समर्थ नहीं होता। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु धुएँका करनेवाला नहीं होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु कैसे तीर्थ (=पत्तन) का जानकार नहीं होता? भिक्षुओ, वह भिक्षु, ऐसे भिक्षुओंसे—जो बहुश्रुत होते हैं, जो आगमके जानकार होते हैं, जो धर्मधर होते हैं, जो विनयधर होते हैं, जो मातृकाओं (=अभिधर्म-पिटक) के धारण करनेवाले होते हैं—उनके पास समय-समयपर जाकर उनसे न पूछता है, न प्रश्न करता है—भन्ते! इसका क्या अर्थ है? वे आयुष्मान उसके लिए जो ढ़का है, उसे उघाड़ नहीं देते हैं; जो अस्पष्ट है, उसे स्पष्ट नहीं करते; धर्मके विषयमें जो नाना प्रकारके सन्दिग्ध-स्थल हैं, उनके विषयमें उसका सन्देह निवारण नहीं करते। भिक्षुओ, इस प्रकार, भिक्षु तीर्थका जानकार नहीं होता।

"भिक्षुओ, भिक्षु पिएको किस प्रकार नहीं जानता? भिक्षुओ, वह भिक्षु तथागत द्वारा देशित धर्मकी देशना होनेपर न अर्थ-ज्ञान प्राप्त करता है, न धर्म-ज्ञान प्राप्त करता है और न धर्मज प्रीतिको प्राप्त करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार, भिक्षु पिएको नहीं जानता है।

भिक्षुओ, भिक्षु वीथी (=गली) को कैसे नहीं जानता है? भिक्षुओ, भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्गको यथार्थरूपसे नहीं जानता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु वीथीका जानकार नहीं होता। भिक्षुओ, भिक्षु किस प्रकार गोचर-कुशल नहीं होता? भिक्षुओ, भिक्षु चारों स्मृति-उपस्थाओंको सम्यक रूपसे नहीं जानता है। इस प्रकार भिक्षुओ भिक्षु गोचर-कुशल नहीं होता।

"भिक्षुओ, भिक्षु किस प्रकार सब दूह लेनेवाला होता है? भिक्षुओ, श्रद्धावान गृहस्थ उस भिक्षुके सामने चीवर, पिण्डपात, शयनासन तथा ग्लान-प्रत्यय आदि लाकर उसे यथावश्यक लेनेका निमन्त्रण देते हैं। वह भिक्षु उन चीजोंको लेनेके विषयमें मात्रज्ञ नहीं होता। भिक्षुओ,इस प्रकार भिक्षु सबका सब दूह लेनेवाला होता है।

"भिक्षुओ, वह भिक्षु जो वृद्ध, चिर-प्रव्रजित संघ-पति, संघ-नायक स्थविर भिक्षु होते हैं, कैसे उनकी विशेष पूजा करनेवाला नहीं होता? भिक्षुओ, वह भिक्षु, जो वृद्ध, चिर-प्रव्रजित संघ-पति, संघ-नायक स्थविर होते हैं, उनके प्रति प्रकट तथा अप्रकट रूपमें मैत्री-पूर्ण शरीरसे नहीं बरतता .... मैत्रीपूर्ण वाणीसे नहीं बरतता .... मैत्रीपूर्ण चित्तसे नहीं बरतता। भिक्षुओ, इस प्रकार, वह भिक्षु जो वृद्ध, चिर-प्रव्रजित, संघ-पति, संघ-नायक स्थविर भिक्षु होते हैं, उनकी विशेष सेवा नहीं करता।

"इस प्रकार भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये ग्यारह बातें होती हैं, वह इस धर्म विनयमें (=बुद्ध-शासन) में वृद्धि, उन्नति, विपुलता प्राप्त करनेके लिए असमर्थ होता है।

"भिक्षुओ, जिस ग्वालेमें ये ग्यारह बातें होती हैं, वह गौओंको ले जानेके योग्य होता है और उन्नति करता है। कौन-सी ग्यारह बातें? भिक्षुओ, वह ग्वाला 'रूप' का जानकार होता है, चिह्नोंका जानकार होता है, मक्खियोंको हटानेवाला होता है, जख्मोंको ढकनेवाला होता है, धुआँ करनेवाला होता है, तीर्थ (=पत्तन) का जानकार होता है, पानी पिए और न पिए रहनेका जानकार होता है, रास्तेका जानकार होता है, गोचर भूमिका जानकार होता है, पूरा-पूरा दूध दुहनेवाला नहीं होता है, जो साँड़ होते हैं, गौओंके आगे-आगे चलनेवाले होते हैं, उनका विशेष आदर करनेवाला, विशेष पूजा करनेवाला होता है। भिक्षुओ, जिस ग्वालेमें ये ग्यारह बातें होती हैं, वह गौओंको ले जानेके योग्य होता है और उन्नति करता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये ग्यारह बातें होती हैं, वह इस धर्म-विनय (=बुद्ध शासन) में वृद्धि, उन्नति, विपुलता प्राप्त करनेके लिए समर्थ होता है। कौन-सी ग्यारह बातें? भिक्षुओ, भिक्षु 'रूप' का जानकार होता है, लक्षणोंके जाननेमें कुशल होता है, मक्खियोंको हटानेवाला होता है, व्रणको ढकनेवाला होता है, धुआँ करनेवाला होता है, तीर्थ (=पत्तन) का जानकार होता है, पिए हुएको जानता है, गलियोंसे परिचित होता है, गोचर-कुशल होता है, सब दूहनेवाला नहीं होता है, तथा जो वृद्ध, चिरकालके प्रव्रजित स्थविर होते हैं, उनकी विशेष पूजा करनेवाला नहीं होता।

'भिक्षुओ, भिक्षु 'रूप' का जानकार कैसे होता है? भिक्षुओ, 'यह चारों महाभूत तथा उन महाभूतोंसे उत्पन्न' जो 'रूप' है, उस 'रूप' को यथार्थ रूपसे जानता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु 'रूप' का जानकार होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु लक्षणोंके जाननेमें कैसे कुशल होता है? भिक्षुओ, वह भिक्षु 'कर्मसे ही मूर्खकी पहचान होती है, कर्मसे ही पंडितकी पहचान होती है', इस बातको यथार्थ रूपसे जानता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु लक्षणोंके जाननेमें कुशल होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु मक्खियोंके हटानेवाला कैसे होता है? भिक्षुओ, वह भिक्षु उत्पन्न काम-वितर्कको बना रहने नहीं देता है, छोड़ता है, त्यागता है, दूर करता है, अभाव प्राप्त करता है; उत्पन्न व्यापाद-वितर्क. . . .उत्पन्न विहिंसा-वितर्क. . . .उत्पन्न अकुशल-धर्मोंको बने रहने नहीं देता है, छोड़ता है, त्यागता है, दूर करता है तथा अभाव-प्राप्त करता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु मक्खियोंको हटानेवाला होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु कैसे व्रणको ढकनेवाला होता है? वह अपनी आँखसे किसी सुन्दर 'रूप' को ग्रहण करता है तो उसके निमित्त और उसके व्यंजनको नहीं ग्रहण करता है। वह सावधान रहता है कि चक्षुके असंयमसे कहीं लोभ-द्वेष आदि अकुशल पापमय ख्याल (उसके मनमें) घर न बना लें। वह उन पापमय विचारोंको दूर करनेके लिए प्रयत्न करता है। अपनी आँखको काबूमें रखता है, अपनी आँखपर संयम रखता है। वह अपने कानसे सुन्दर शब्द सुनता है.........नासिकासे सुगन्धि सूँघता है.......जिह्वासे रस चखता है......शरीरसे स्पर्श करता है ....मनसे मनके विषयोंको ग्रहण कर उनके निमित्त तथा उनके व्यंजनको ग्रहण नहीं करता है। वह सावधान रहता है कि मनके असंयमसे कहीं लोभ-मोह आदि अकुशल पापमय ख्याल (उसके मनमें) घर न बना लें। उन पापमय विचारोंको दूर रखनेके लिए प्रयत्न करता है। अपने मनको काबूमें रखता है। अपने मनपर संयम रखता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु व्रणके ढकनेवाला होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु कैसे धुएँका करनेवाला होता है? भिक्षुओ, वह भिक्षु अपने सुने, अपने द्वारा पाठ किए गए धर्मकी दूसरोंके सामने विस्तृत व्याख्या करनेमें समर्थ होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु धुएँका करनेवाला होता है।

भिक्षुओ, भिक्षु कैसे तीर्थ (= पत्तन) का जानकार होता है? भिक्षुओ, वह भिक्षु, ऐसे भिक्षुओंसे—जो बहुश्रुत होते हैं, जो आगमके जानकार होते हैं, जो धर्मधर होते हैं, जो विनयधर होते हैं, जो मातृकाओं (= अभि-धर्म पिटक) के धारण करनेवाले होते हैं—उनके पास समय-समयपर जाकर उनसे पूछता है, प्रश्न करता है—भन्ते! इसका क्या अर्थ है? वे आयुष्मान उसके लिए, जो ढका है, उसे उघाड़ देते हैं, जो अस्पष्ट है, उसे स्पष्ट कर देते हैं, धर्मको लेकर जो नाना प्रकारके सन्दिग्ध-स्थल हैं, उनके विषयमें उसकी सन्देह-निवृत्ति कर देते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु तीर्थका जानकार होता है।

भिक्षुओ, भिक्षु पिएको किस प्रकार जानता है? भिक्षुओ, वह भिक्षु तथागत द्वारा देशित धर्मकी देशना होनेपर अर्थ-ज्ञान प्राप्त करता है, धर्म-ज्ञान प्राप्त करता है और धर्मज-प्रीति प्राप्त करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु पिएको जानता है।

भिक्षुओ, भिक्षु वीथी (= गली) को कैसे जानता है? भिक्षुओ, भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्गको यथार्थ रूपसे जानता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु वीथीका जानकार होता है।

भिक्षुओ, भिक्षु किस प्रकार गोचर-कुशल होता है ? भिक्षुओ, भिक्षु चारों स्मृति-उपस्थानोंको सम्यक रूपसे जानता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु गोचर-कुशल होता है।

भिक्षुओ, भिक्षु किस प्रकार सब दूह लेनेवाला नहीं होता ? भिक्षुओ, श्रद्धावान गृहस्थ उस भिक्षुके सामने चीवर, पिण्डपात, शयनासन तथा ग्लान-प्रत्यय आदि लेकर उसे यथावश्यक लेनेका निमन्त्रण देते हैं। वह भिक्षु उन चीजों को लेनेके विषयमें मात्रज्ञ होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार, भिक्षु सबका सब दूहनेवाला नहीं होता।

भिक्षुओ, भिक्षु जो वृद्ध, चिर-प्रव्रजित, संघ-पति, संघ-नायक स्थविर भिक्षु होते हैं, उनकी विशेष पूजा करनेवाला कैसे होता है ? भिक्षुओ, वह भिक्षु जो वृद्ध, चिर-प्रव्रजित, संघपति, संघ-नायक स्थविर होते हैं, उनके प्रति प्रकट तथा अप्रकट रूपमें, मैत्रीपूर्ण शरीरसे बरतता है..... मैत्रीपूर्ण वाणीसे बरतता है..... मैत्रीपूर्ण मनसे बरतता है। भिक्षुओ, इस प्रकार, वह भिक्षु जो वृद्ध, चिर-प्रव्रजित, संघ-पति, संघ-नायक स्थविर भिक्षु होते हैं, उनकी विशेष पूजा करनेवाला होता है।

भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये ग्यारह बातें होतीं हैं, वह इस धर्म-विनय (=बुद्ध-शासन) में वृद्धि, उन्नति, विपुलता प्राप्त करनेके लिए समर्थ होता है।

८. पठमसमाधिसुत्त

उस समय बहुतसे भिक्षु, जहाँ भगवान थे, वहाँ पहुँचे। पास जाकर भगवानको नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए भिक्षुओंने भगवानको यह कहा—

"भन्ते ! क्या भिक्षुको ऐसी समाधि (=चित्तकी एकाग्रता) प्राप्त हो सकती है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश (=संज्ञा) न हो कि यह पृथ्वी है, जलके बारेमें यह होश न हो कि यह जल है, तेज (=अग्नि) के बारेमें यह होश न हो कि यह तेज है, वायुके बारेमें यह होश न हो कि यह वायु है, आकाशानञ्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकाशानञ्चायतन है, विज्ञानञ्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह विज्ञानञ्चायतन है, आकिञ्चन्यायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकिञ्चन्यायतन है, नैव संज्ञा-नासंज्ञायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह नैवसंज्ञा नासंज्ञायतन है; इहलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह इहलोक है; परलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह परलोक है; जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें भी होश न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) हो ?"

"भिक्षुओ, भिक्षुके लिए ऐसी समाधि-अवस्थाको प्राप्त कर सकना सम्भव है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो कि यह पृथ्वी है........जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें भी संज्ञा (=होश) न हो; लेकिन तब भी उसे संज्ञा (=होश) हो।

"भन्ते ! भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ कैसे हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह संज्ञा (=होश) न हो कि यह पृथ्वी है......जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें यह होश न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको होश हो ?

"भिक्षुओ, उस समय भिक्षुकी यही संज्ञा होती है कि यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन है, सभी उपाधियोंका परित्याग है, तृष्णाका क्षय है, विराग है, निरोध है, निर्वाण है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश (=संज्ञा) न हो कि यह पृथ्वी है, जलके बारेमें यह होश न हो कि यह जल है, तेज (=अग्नि) के बारेमें यह होश न हो कि यह तेज है, वायुके बारेमें यह होश न हो कि यह वायु है, आकाशानञ्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकाशानञ्चायतन है, विज्ञानञ्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह विज्ञानञ्चायतन है, आकिञ्चन्यायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकिञ्चन्यायतन है, नैवसंज्ञानासंज्ञायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह नैवसंज्ञानासंज्ञायतन है; इहलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह इहलोक है, परलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह परलोक है; जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें भी होश न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) हो।"

९. दुतियसमाधिसुत्त

उस समय भगवानने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ !" उन भिक्षुओंने "भदन्त" कहकर भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने यह कहा—

"भिक्षुओ, भिक्षुके लिए ऐसी समाधि-अवस्थाको प्राप्त कर सकना सम्भव है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह संज्ञा (=होश) न हो कि यह पृथ्वी है, जलके बारेमें यह होश न हो कि यह जल है.....आकिञ्चन्यातनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकिञ्चन्यायतन है, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन के बारेमें यह होश न हो कि यह

नैवसंज्ञानासंज्ञायतन है, इहलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह इहलोक है, परलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह परलोक है; जो देखा है, जो सुना है, जो सूंघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोंजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें भी होश न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) हो।"

"भन्ते! हमारे धर्मका मूल भगवान ही हैं, भगवान ही मार्ग-दर्शक हैं, भगवानकी ही हम शरणमें हैं। भन्ते! अच्छा हो कि भगवान ही अपने इस कथनका अर्थ स्पष्ट करें। भगवानसे सुनकर भिक्षु ग्रहण करेंगे।

"तो भिक्षुओ सुनो। अच्छी तरहसे मनमें धारण करो। कहता हूँ।"

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह उन भिक्षुओंने भगवानको प्रतिवचन दिया। भगवानने यह कहा—

"भिक्षुओ! भिक्षुके लिए ऐसी समाधि-अवस्थाको प्राप्त कर सकना सम्भव है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो कि यह पृथ्वी है.......जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें भी संज्ञा (=होश) न हो; लेकिन तब भी उसे संज्ञा हो।"

"भन्ते! भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ कैसे हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह संज्ञा (=होश) न हो कि यह पृथ्वी है......जो देखा है, जो सुना है, जो सूंघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें यह होश न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको होश हो।

"भिक्षुओ, उस समय भिक्षुको यही संज्ञा होती है कि यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन है, सभी उपाधियोंका परित्याग है, तृष्णाका क्षय है, विराग है, निरोध है, निर्वाण है। उस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश(=संज्ञा)न हो कि यह पृथ्वी है... जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें यह होश न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) हो।

१०. ततियसमाधिसुत्त

उस समय बहुतसे भिक्षु आयुष्मान सारिपुत्रके पास पहुँचे। पास जाकर आयुष्मान सारिपुत्रका कुशल-क्षेम पूछा। कुशल-क्षेम पूछना समाप्त होनेपर वे एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओंने आयुष्मान सारिपुत्रको यह कहा—

"आयुष्मान सारिपुत्र ! क्या भिक्षुके लिए ऐसी समाधि-अवस्थाको प्राप्त कर सकना सम्भव है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह संज्ञा (=होश) न हो कि यह पृथ्वी है .... जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) न हो, लेकिन तब भी उसे होश हो।

"आयुष्मानो ! भिक्षुको ऐसी समाधि-अवस्थाका लाभ हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह संज्ञा (=होश) न हो कि यह पृथ्वी है .... जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) न हो लेकिन तब भी उसे होश हो।

"आयुष्मान सारिपुत्र ! भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ कैसे हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह संज्ञा न हो कि यह पृथ्वी है .... जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें यह संज्ञा (=होश) न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको होश हो।"

"भिक्षुओ, उस भिक्षुको यही संज्ञा होती है कि यह शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन है, सभी उपाधियोंका परित्याग है, तृष्णाका क्षय है, विराग है, निरोध है, निर्वाण है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह संज्ञा न हो कि यह पृथ्वी है .... जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें यह संज्ञा (=होश) न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) हो।

११. चतुत्थसमाधिसुत्त

उस समय आयुष्मान सारिपुत्रने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—
"आयुष्मानो। क्या भिक्षुको ऐसी समाधि-अवस्थाका लाभ हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह संज्ञा (=होश) न हो कि यह पृथ्वी है, जलके बारेमें यह होश न हो कि यह जल है, तेज (=अग्नि) के बारेमें यह होश न हो कि यह तेज है, वायुके बारेमें यह होश न हो कि यह वायु है, आकाशानञ्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकाशानञ्चायतन है, विज्ञानञ्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह विज्ञानञ्चायतन है, आकिञ्चन्यायतन के बारेमें यह होश न हो कि यह आकिञ्चन्यायतन है, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन के बारे में यह होश न हो कि यह नैवसंज्ञानासंज्ञायतन है;

इहलोक के बारेमें यह होश न हो कि यह इहलोक है, परलोक के बारेमें यह होश न हो कि यह परलोक है; जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें भी होश न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) हो ?"

"आयुष्मान ! आपके इस कथनका अर्थ जाननेके लिए हम आयुष्मान सारिपुत्रके पास दूरसे आए हैं। अच्छा हो, यदि आयुष्मान सारिपुत्र ही अपने इस कथनका अर्थ बताएँ। आयुष्मान सारिपुत्रसे सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।"

"तो आयुष्मानो ! सुनो। अच्छी तरह मनमें धारण करो। कहता हूँ।

"बहुत अच्छा" कह उन भिक्षुओंने आयुष्मान सारिपुत्रको प्रतिवचन दिया। आयुष्मान सारिपुत्रने यह कहा—

"आयुष्मानो ! भिक्षुको ऐसी समाधि-अवस्थाका लाभ हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह संज्ञा (=होश) न हो कि यह पृथ्वी है.......जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) हो।"

"आयुष्मान ! भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ कैसे हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह संज्ञा न हो कि यह पृथ्वी है......जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें यह संज्ञा न हो; लेकिन तब भी उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) हो।

"आयुष्मानो ! उस समय भिक्षुको यही संज्ञा होती है कि यही शान्ति है, यही प्रणीत है, यह जो सभी संस्कारोंका शमन है, सभी उपाधियोंका परित्याग है, तृष्णाका क्षय है, विराग है, निरोध है, निर्वाण है। इस प्रकार आयुष्मानो ! भिक्षुको ऐसा समाधि-लाभ हो सकता है कि पृथ्वीके बारेमें उसे यह होश न हो कि यह पृथ्वी है, जलके बारेमें यह होश न हो कि यह जल है, तेज (=अग्नि) के बारेमें यह होश न हो कि यह तेज है, वायुके बारेमें यह होश न हो कि यह वायु है, आकाशानन्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकाशानन्चायतन है, विज्ञानन्चायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह विज्ञानन्चायतन है, आकिञ्चन्यायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह आकिञ्चन्यायतन है, नैवसंज्ञानासंज्ञायतनके बारेमें यह होश न हो कि यह नैवसंज्ञानासंज्ञायतन है; इहलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह इहलोक है, परलोकके बारेमें यह होश न हो कि यह परलोक है; जो देखा है, जो सुना है, जो सूँघा-चखा-छुआ

है, जो ज्ञात हुआ है, जिसे खोजा है, जिसपर मनसे विचार किया है, उसके बारेमें भी होश न हो; तब भी उस भिक्षुको संज्ञा (=होश) हो।

३. श्रामण्य-वर्ग

[१–८]

भिक्षुओ, जिस ग्वालेमें ये ग्यारह बातें होती हैं, वह गौओंको ले जाने और उन्नति करनेमें असमर्थ होता है। कौन-सी ग्यारह बातें? भिक्षुओ, वह ग्वाला 'रूप का जानकार नहीं होता, चिह्नोंका जानकार नहीं होता, मक्खियोंको हटानेवाला नहीं होता, जख्मों (=व्रणों) को ढकनेवाला नहीं होता, धुआँ करनेवाला नहीं होता तीर्थ (=पत्तन) का जानकार नहीं होता, (गौओंके) पानी पिए रहने और न पिए रहनेका जानकार नहीं होता, रास्तेका जानकार नहीं होता, चरनेकी भूमिका जानकार नहीं होता, पूरा-पूरा दूध दुहनेवाला होता है, जो साँड़ (=गो-पितर) होते हैं, गौवोंके आगे आगे चलनेवाले होते हैं, उनका विशेष आदर, विशेष पूजा करनेवाला नहीं होता। भिक्षुओ, जिस ग्वालेमें ये ग्यारह बातें हों, वह गौओंको ले चलने या उनकी वृद्धिके लिए असमर्थ होता है।

इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस भिक्षुमें ये ग्यारह बातें होती हैं वह इस योग्य नहीं होता कि वह चक्षुको 'अनित्य' समझकर विहार कर सके.....वह इस योग्य नहीं होता कि चक्षुको 'दुख' समझकर विहार कर सके.........वह इस योग्य नहीं होता कि चक्षु को 'अनात्म' समझकर विहार कर सके.......वह इस योग्य नहीं होता कि चक्षुमें 'क्षय' देखता हुआ विहार कर सके.......वह इस योग्य नहीं होता कि चक्षुमें 'व्यय' देखता हुआ विहार कर सके.........वह इस योग्य नहीं होता कि चक्षुमें 'विराग' देखता हुआ विहार कर सके......वह इस योग्य नहीं होता कि चक्षुमें 'निरोध' देखता हुआ विहार कर सके.....वह इस योग्य नहीं होता कि चक्षुमें 'प्रतिनिसर्ग' देखता हुआ विहार कर सके।

[९–४८]

वह इस योग्य नहीं होता कि श्रोत्रमें.......घ्राणमें.......जिह्वामें ....काम (=स्पर्शेन्द्रिय) में........मनमें.........।

[४९–९६]

वह इस योग्य नहीं होता कि रूपोंमें........शब्दोंमें.......गन्धोंमें ....रसोंमें.......स्पर्शजन्योंमें.......धर्मों (=मनके विषयों) में...।

[९७—१४४]

वह इस योग्य नहीं होता कि चक्षु-विज्ञानमें .... श्रोत्र-विज्ञानमें ..... घ्राण-विज्ञान में .... जिह्वा-विज्ञान में ...... स्पर्श-विज्ञान में ...... मनो-विज्ञानमें ....।

[१४५—१९२]

वह इस योग्य नहीं होता कि चक्षु-स्पर्शमें .... श्रोत्र-स्पर्शमें ..... घ्राण-स्पर्शमें .... जिह्वा-स्पर्शमें .... काम-स्पर्शमें .... मन-स्पर्श में ....।

[१९३—२४०]

वह इस योग्य नहीं होता कि चक्षु-स्पर्शसे उत्पन्न होनेवाली वेदना (=अनुभूति) में .... श्रोत्र-स्पर्शसे उत्पन्न होनेवाली वेदनामें .... जिह्वा-स्पर्शसे उत्पन्न होनेवाली वेदनामें ...... काम-स्पर्शसे उत्पन्न होनेवाली वेदनामें ... . मन-स्पर्शसे उत्पन्न होनेवाली वेदनामें ......।

[२४१—२८८]

वह इस योग्य नहीं होता कि रूप-संज्ञामें ...... शब्द-संज्ञामें ..... गन्ध-संज्ञामें ..... रस-संज्ञामें ...... स्पर्शतव्य-संज्ञामें ...... धर्म (=मनके विषय) संज्ञामें ....।

[२८९—३३६]

वह इस योग्य नहीं होता कि रूप-संचेतनामें ...... शब्द-संचेतनामें .... गन्ध-संचेतनामें ...... रस-संचेतनामें ...... स्पर्शतव्य-संचेतनामें .... धर्म-संचेतनामें ....।

[३३७—३८४]

वह इस योग्य नहीं होता कि रूप-तृष्णामें .... शब्द-तृष्णामें ...... गन्ध-तृष्णामें .... रस-तृष्णामें .... स्पर्शतव्य-तृष्णामें ...... धर्म-तृष्णामें ....।

[३८५—४३२]

वह इस योग्य नहीं होता कि रूप-वितर्कोंमें .... शब्द-वितर्कोंमें ..... गन्ध-वितर्कोंमें .... रस-वितर्कोंमें .... स्पर्शतव्य-वितर्कोंमें ...... धर्म-वितर्कोंमें ....

[४३३—४८०]

वह इस योग्य नहीं होता कि रूप-विचारमें .... शब्द-विचारमें ..... गन्ध-विचार में .... रस-विचार में ...... स्पर्शतव्य-विचार में ...... धर्म-विचारमें 'अनित्यता' को देखता हुआ विहार कर सके .... 'दुख' को देखता हुआ विहार कर सके...... 'अनात्म' को देखता हुआ विहार कर सके ..... 'क्षय' को देखता हुआ विहार कर सके ...... 'व्यय' को देखता हुआ विहार कर सके .... 'विराग' को देखता हुआ विहार कर सके ..... 'निरोध' को देखता हुआ विहार कर सके........ 'प्रतिनिसर्ग' को देखता हुआ विहार कर सके ....।

४. राग-पेय्याल

"भिक्षुओ, राग (के यथार्थ रूप) की जानकारीके लिए ग्यारह धर्मों (= बातों) की भावना (= अभ्यास) करनी चाहिए ? कौन-सी ग्यारह बातोंकी ? प्रथम-ध्यान, द्वितीय-ध्यान, तृतीय-ध्यान, चतुर्थ-ध्यान, मैत्री-चित्तविमुक्ति, करुणा-चित्तविमुक्ति .... मुदिता-चित्तविमुक्ति .... उपेक्षा-चित्तविमुक्ति.... ...... आकाशानञ्चायतन .... विज्ञानञ्चायतन ...... आकिञ्चन्यायतन—भिक्षुओ, रागकी जानकारी के लिए इन ग्यारह धर्मों (= बातों) की भावना (= अभ्यास) करनी चाहिए।

[२—१०]

"भिक्षुओ, रागके परिज्ञानके लिए ...... परिक्षयके लिए ...... प्रहाणके लिए .... क्षयके लिए .... व्ययके लिए ...... विरागके लिए .... निरोधके लिए .... त्यागके लिए .... प्रतिनिसर्गके लिए .... इन ग्यारह धर्मोंकी भावना करनी चाहिए।

[११—१७०]

भिक्षुओ, द्वेष के .... मोह के .... क्रोध के ...... शत्रुता (= उपनाह) के ...... निर्दयता (= मुक्ष) के .... घृणा (= पलास) के .... ईर्षाके .... मात्सर्यके .... मायाके ...... शठताके ...... जड़ताके ...... कलहके .... मानके ...... अतिमानके ..... मदके .... प्रमादके अभिज्ञान (= यथार्थ जानकारी) के लिए .... परिज्ञानके लिए .... परिक्षयके लिए.......... प्रहाणके लिए......... क्षयके लिए .... व्ययके

लिए.......विरागके लिए.....निरोधके लिए......त्यागके लिए......प्रति-निसर्गके लिए........इन ग्यारह धर्मोंकी भावना करनी चाहिए।"

भगवानने यह कहा। उन भिक्षुओंने सन्तुष्ट होकर भगवानके भाषणका अभिनन्दन किया।

नव सुत्तसहस्सानि, भिय्यो पञ्चसतानि च।
सत्तपञ्ञास सुत्तन्ता, अंगुत्तरसमायुता ति॥

[अंगुत्तर निकायमें गिनतीके हिसाबसे कुल नौ हजार पाँच सौ सत्तावन (९५५७) सूत्र हैं।]





